SKPF-Wincompete Test Series 2026

खण्ड 5: अर्थशास्त्र

Test 17 -अर्थशास्त्र की अवधारणाएं

अध्याय १: राष्ट्रीय आय लेखांकन - अवधारणाएं, समुच्चय एवं मापन विधियां

खंड A: राष्ट्रीय आय के आधारभूत सिद्धांत एवं वृत्तीय प्रवाह

उपखंड a: आर्थिक सीमा, सामान्य निवासी, मध्यवर्ती वस्तुएं बनाम अंतिम वस्तुएं, पूंजीगत वस्तुएं और मूल्यह्रास

आर्थिक सीमा अथवा घरेलू सीमा की संकल्पना

समष्टि अर्थशास्त्र एवं राष्ट्रीय आय लेखांकन प्रणाली में देश की राजनीतिक अथवा भौगोलिक सीमा और आर्थिक सीमा के मध्य स्पष्ट भेद किया जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के राष्ट्रीय लेखा प्रणाली के अनुसार आर्थिक अथवा घरेलू सीमा से आशय उस भौगोलिक क्षेत्र से है जिसका प्रशासन किसी देश की सरकार द्वारा किया जाता है और जिसके भीतर व्यक्तियों, वस्तुओं तथा पूंजी का संचलन पूर्णतः निर्बाध रूप से होता है। राष्ट्रीय आय के प्रयोजनार्थ इस सीमा में निम्नलिखित घटकों को सम्मिलित किया जाता है:

क) देश की मुख्य भूमि की भौगोलिक सीमाएं तथा प्रादेशिक जल सीमाएं।
ख) देश के निवासियों द्वारा संचालित जलपोत तथा वायुयान, जो विश्व के किन्हीं दो या अधिक देशों के मध्य संचालित होते हैं। उदाहरणार्थ, भारतीय विमानन कंपनियों द्वारा विभिन्न विदेशी नगरों के मध्य संचालित उड़ानें भारत की आर्थिक सीमा का ही अंग मानी जाती हैं।
ग) अंतरराष्ट्रीय जलक्षेत्र में तैरने वाले तेल व प्राकृतिक गैस निष्कर्षण पोत, तैरते हुए प्लेटफॉर्म तथा मछली पकड़ने वाली नौकाएं, जिन पर देश के निवासियों का अनन्य संचालन अधिकार हो।
घ) विदेशों में स्थित देश के दूतावास, उच्चायोग, वाणिज्य दूतावास, सैन्य प्रतिष्ठान तथा वैज्ञानिक अनुसंधान केंद्र।

इसके विपरीत, निम्नलिखित घटकों को संबंधित देश की आर्थिक सीमा से बाहर रखा जाता है:

क) देश की भौगोलिक सीमा के भीतर स्थित विदेशी दूतावास, उच्चायोग तथा विदेशी वाणिज्य दूतावास।
ख) देश में स्थित अंतरराष्ट्रीय संगठनों (यथा संयुक्त राष्ट्र संघ, विश्व स्वास्थ्य संगठन, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष) के आधिकारिक कार्यालय।

wincompete

सामान्य निवासी की विधिक एवं आर्थिक परिभाषा

किसी देश के सामान्य निवासी से अभिप्राय उस व्यक्ति अथवा संस्था से है जो सामान्यतः उस देश में निवास करती है तथा जिसकी **आर्थिक रुचि का केंद्र** उसी देश में स्थित होता है। आर्थिक रुचि के केंद्र की उपस्थिति हेतु दो अनिवार्य शर्तों का पूरा होना आवश्यक माना जाता है:

क) वह व्यक्ति संबंधित देश की आर्थिक सीमा के भीतर कम से कम एक वर्ष (तीन सौ पैंसठ दिन) या उससे अधिक समय से निवास कर रहा हो अथवा संचालन कर रहा हो।

ख) वह व्यक्ति अपनी उपभोग, उत्पादन, परिसंपत्ति अर्जन तथा निवेश संबंधी मुख्य आर्थिक क्रियाएं उसी देश की सीमा के भीतर संपन्न करता हो।
सामान्य निवासी की श्रेणी में देश के नागरिकों के साथ-साथ विदेशी नागरिक भी सम्मिलित हो सकते हैं। निम्नलिखित व्यक्तियों को किसी देश का सामान्य निवासी नहीं माना जाता:

क) देश में अध्ययन, चिकित्सा, पर्यटन अथवा खेल प्रतियोगिताओं हेतु अल्पावधि के लिए आए विदेशी नागरिक।
ख) विदेशी दूतावासों, उच्चायोगों तथा वाणिज्य दूतावासों में कार्यरत राजनयिक, सैन्य अधिकारी तथा विदेशी प्रतिनिधि।
ग) अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं में कार्यरत विदेशी कर्मचारी, जब तक कि वे किसी देश में लगातार एक वर्ष से अधिक समय तक तैनात न रहें।
घ) सीमा पार श्रमिक, जो प्रतिदिन रोजगार हेतु सीमा पार आते हैं किंतु उनका स्थायी निवास सीमा के दूसरी ओर स्थित होता है।

तुलना का आधार	**सामान्य निवासी**	**गैर-निवासी**
भौगोलिक उपस्थिति	न्यूनतम एक वर्ष या उससे अधिक की निरंतर उपस्थिति।	एक वर्ष से कम अवधि का अस्थाई प्रवास।
आर्थिक रुचि का केंद्र	संबंधित देश की घरेलू सीमा में स्थित।	गृह देश अथवा अन्य किसी बाह्य देश में स्थित।
घरेलू आय में योगदान	इनके द्वारा देश के भीतर अर्जित आय घरेलू उत्पाद का भाग होती है।	इनके द्वारा देश के भीतर अर्जित आय भी घरेलू उत्पाद का भाग होती है।
राष्ट्रीय आय में योगदान	इनकी वैश्विक आय देश की राष्ट्रीय आय में सम्मिलित होती है।	इनकी आय देश की राष्ट्रीय आय में सम्मिलित नहीं होती।

मध्यवर्ती वस्तुएं बनाम अंतिम वस्तुएं
अर्थव्यवस्था में उत्पादित समस्त भौतिक वस्तुओं तथा सेवाओं को उनके अंतिम उपयोग के आधार पर दो स्पष्ट संवर्गों में वर्गीकृत किया जाता है। किसी वस्तु की भौतिक संरचना यह निर्धारित नहीं करती कि वह मध्यवर्ती है अथवा अंतिम, अपितु उसका अंतिम उपयोग इस भेद का आधार बनता है।

मध्यवर्ती वस्तुएं: वे वस्तुएं जिनका उपयोग अन्य वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन में कच्चे माल के रूप में किया जाता है अथवा जिन्हें उसी लेखा वर्ष के दौरान लाभ कमाने के उद्देश्य से पुनः विक्रय हेतु क्रय किया जाता है। इन वस्तुओं का मूल्य उस अंतिम वस्तु में विलीन हो जाता है जिसके निर्माण में इनका प्रयोग होता है। उदाहरणार्थ, आटा चक्की द्वारा खरीदा गया गेहूं, हलवाई द्वारा खरीदी गई चीनी अथवा फर्नीचर निर्माता द्वारा खरीदी गई लकड़ी।

अंतिम वस्तुएं: वे वस्तुएं जो उत्पादन की सीमा रेखा को पार कर चुकी हैं और अपने अंतिम प्रयोक्ताओं (उपभोक्ताओं अथवा उत्पादकों) द्वारा उपयोग के लिए पूर्णतः तैयार हैं। अंतिम वस्तुओं को पुनः दो उप-वर्गों में विभाजित किया जाता है:

क) अंतिम उपभोक्ता वस्तुएं: वे वस्तुएं जो परिवारों द्वारा अपनी प्रत्यक्ष आवश्यकताओं की संतुष्टि हेतु उपभोग की जाती हैं (यथा भोजन, वस्त्र, घरेलू उपकरण)।
ख) अंतिम उत्पादक वस्तुएं (पूंजीगत वस्तुएं): वे वस्तुएं जो अन्य वस्तुओं के उत्पादन हेतु उत्पादकों द्वारा स्थिर परिसंपत्ति के रूप में दीर्घकाल तक उपयोग में लाई जाती हैं (यथा संयंत्र, मशीनरी, ट्रैक्टर)।

तुलनात्मक आयाम	मध्यवर्ती वस्तुएं	अंतिम वस्तुएं
उत्पादन सीमा	उत्पादन सीमा रेखा के भीतर स्थित होती हैं।	उत्पादन सीमा रेखा को पार कर चुकी होती हैं।
मूल्य संवर्धन	इनमें मूल्य संवर्धन की प्रक्रिया शेष रहती है।	इनमें किसी प्रकार का अतिरिक्त मूल्य संवर्धन नहीं होता।
पुनः विक्रय	चालू लेखा वर्ष में पुनः विक्रय हेतु क्रय की जा सकती हैं।	इन्हें पुनः विक्रय के उद्देश्य से नहीं खरीदा जाता।
राष्ट्रीय आय में समावेशन	राष्ट्रीय आय की गणना में इन्हें छोड़ दिया जाता है ताकि दोहरी गणना न हो।	राष्ट्रीय आय की गणना में केवल अंतिम वस्तुओं का मूल्य शामिल किया जाता है।

पूंजीगत वस्तुएं बनाम उपभोक्ता वस्तुएं
समस्त भौतिक परिसंपत्तियां पूंजीगत नहीं होतीं। पूंजीगत वस्तुएं वे टिकाऊ उत्पादक वस्तुएं हैं जो उत्पादन प्रक्रिया में कई वर्षों तक बारंबार प्रयुक्त होती हैं और जिनका मूल्य अपेक्षाकृत अधिक होता है। ये वस्तुएं अन्य वस्तुओं के उत्पादन की क्षमता का विस्तार करती हैं। इसके विपरीत, टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएं (यथा घरेलू टेलीविजन, कार) यद्यपि कई वर्षों तक चलती हैं, परंतु वे उत्पादन कार्य में प्रयुक्त न होकर अंतिम व्यक्तिगत संतुष्टि प्रदान करती हैं, अतः वे पूंजीगत वस्तुएं न होकर टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएं कहलाती हैं।

मूल्यह्रास अथवा स्थिर पूंजी का उपभोग
उत्पादन प्रक्रिया के दौरान स्थिर परिसंपत्तियों (यथा मशीनरी, भवन, उपकरण) के निरंतर उपयोग से उनके भौतिक स्वरूप तथा कार्यक्षमता में जो क्षरण होता है, उसे **स्थिर पूंजी का उपभोग** अथवा **मूल्यह्रास** कहा जाता है। मूल्यह्रास के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:

क) सामान्य टूट-फूट: उत्पादन कार्य के दौरान संयंत्रों के नियमित संचालन से होने वाला स्वाभाविक घिसाव।
ख) समय का बीत जाना: प्राकृतिक कारकों (यथा वर्षा, धूप, जंग) के प्रभाव से परिसंपत्तियों के मूल्य में आने वाली गिरावट।

ग) प्रत्याशित अप्रचलन: प्रौद्योगिकी में सुधार अथवा मांग के स्वरूप में परिवर्तन के कारण विद्यमान मशीनों का अप्रचलित हो जाना।

मूल्यह्रास एवं आकस्मिक हानि में भेद: अप्रत्याशित अप्रचलन (यथा प्राकृतिक आपदाएं, युद्ध, अप्रत्याशित आर्थिक मंदी) से परिसंपत्तियों को होने वाली क्षति को मूल्यह्रास में सम्मिलित नहीं किया जाता, अपितु इसे **पूंजीगत हानि** माना जाता है। पूंजीगत हानि की भरपाई बीमा दावों अथवा आकस्मिक आरक्षित निधियों से होती है, जबकि मूल्यह्रास हेतु कंपनियां नियमित रूप से **मूल्यह्रास आरक्षित निधि** का सृजन करती हैं।

उपखंड b: आय का द्वि-क्षेत्रीय, त्रि-क्षेत्रीय और चार-क्षेत्रीय चक्रीय प्रवाह, लीकेज एवं इंजेक्शन

चक्रीय प्रवाह की आधारभूत संकल्पना

अर्थव्यवस्था में उत्पादन, आय सृजन तथा व्यय की प्रक्रियाएं एक अंतहीन चक्र के रूप में निरंतर चलती रहती हैं। उत्पादन प्रक्रिया से साधन आय (लगान, मजदूरी, ब्याज तथा लाभ) उत्पन्न होती है; यह साधन आय परिवारों को प्राप्त होकर उनके उपभोग व्यय तथा फर्मों के निवेश व्यय में रूपांतरित हो जाती है; और यह व्यय पुनः फर्मों के पास उत्पादन की मांग के रूप में पहुंचता है। इसे ही **आय का चक्रीय प्रवाह** कहा जाता है। चक्रीय प्रवाह के तीन चरण होते हैं:

क) उत्पादन चरण: वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन द्वारा मूल्य संवर्धन।
ख) वितरण चरण: उत्पादन के साधनों के मध्य साधन आय का वितरण।
ग) निपटान अथवा व्यय चरण: उपभोग तथा निवेश पर साधन आय का व्यय।

द्वि-क्षेत्रीय मॉडल

यह मॉडल एक बंद अर्थव्यवस्था की कल्पना करता है जिसमें केवल दो आर्थिक अभिकर्ता होते हैं: **पारिवारिक क्षेत्र** और **उत्पादक क्षेत्र (फर्म)**।

क) वास्तविक प्रवाह: पारिवारिक क्षेत्र फर्मों को उत्पादन के साधन (भूमि, श्रम, पूंजी, उद्यम) प्रदान करता है, और फर्में परिवारों को उपभोग हेतु वस्तुएं एवं सेवाएं प्रदान करती हैं।
ख) वित्तीय अथवा मौद्रिक प्रवाह: फर्में उत्पादन के साधनों के बदले परिवारों को साधन भुगतान (लगान, पारिश्रमिक, ब्याज, लाभ) करती हैं, और परिवार इस आय का उपयोग फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं को खरीदने में करते हैं।

यदि वित्तीय बाजार (बैंक एवं वित्तीय संस्थाएं) उपस्थित हों, तो परिवार अपनी आय का एक भाग बचाते हैं, जो वित्तीय बाजार के माध्यम से फर्मों द्वारा निवेश के रूप में पुनः उत्पादन प्रक्रिया में डाल दिया जाता है। इस प्रकार संतुलन की स्थिति में:

समग्रउत्पादन = समग्रआय = समग्रव्यय

त्रि-क्षेत्रीय मॉडल

इस मॉडल में पारिवारिक क्षेत्र और उत्पादक क्षेत्र के साथ **सरकारी क्षेत्र** का प्रवेश होता है। सरकार की उपस्थिति से चक्रीय प्रवाह में निम्नलिखित नए प्रवाह जुड़ते हैं:

क) परिवारों से सरकार की ओर: सरकार परिवारों पर प्रत्यक्ष कर आरोपित करती है। इसके बदले सरकार परिवारों को हस्तांतरण भुगतान (यथा वृद्धावस्था पेंशन, छात्रवृत्ति) तथा प्रशासनिक सेवाएं प्रदान करती है।

ख) फर्मों से सरकार की ओर: सरकार फर्मों पर निगम कर एवं अप्रत्यक्ष कर लगाती है। इसके बदले सरकार फर्मों को आर्थिक सहायता (सब्सिडी) प्रदान करती है तथा उनसे वस्तुएं व सेवाएं क्रय करती है।

ग) सरकारी बचत एवं ऋण: सरकार वित्तीय बाजार से राजकोषीय घाटे की पूर्ति हेतु ऋण लेती है अथवा अधिशेष होने पर वित्तीय बाजार में जमा कराती है।

चार-क्षेत्रीय मॉडल (खुली अर्थव्यवस्था)
चार-क्षेत्रीय मॉडल में पारिवारिक, उत्पादक एवं सरकारी क्षेत्र के अतिरिक्त **विदेशी क्षेत्र (शेष विश्व क्षेत्र)** सम्मिलित होता है। यह एक खुली अर्थव्यवस्था का यथार्थवादी स्वरूप प्रस्तुत करता है।

क) आयात एवं निर्यात: घरेलू फर्मों द्वारा विदेशों को वस्तुओं का निर्यात करने पर देश में विदेशी मुद्रा का आगमन होता है, जबकि विदेशी वस्तुओं के आयात पर घरेलू आय बाहर जाती है।

ख) साधन आय का प्रवाह: घरेलू साधनों द्वारा विदेशों से अर्जित साधन आय तथा विदेशी साधनों को देश के भीतर किया गया साधन भुगतान।

ग) बाह्य हस्तांतरण: विदेशों से प्राप्त उपहार, प्रेषण तथा अनुदान।

रिसाव (लीकेज) एवं अंतःक्षेपण (इंजेक्शन)
चक्रीय प्रवाह के संतुलन तथा राष्ट्रीय आय के आकार को प्रभावित करने वाले दो विपरीत तत्व होते हैं:

रिसाव (लीकेज अथवा निकास): वे चर जो आय के चक्रीय प्रवाह से मुद्रा को बाहर निकालते हैं, जिससे वस्तुओं एवं सेवाओं की कुल मांग में कमी आती है और उत्पादन का स्तर घटता है।

द्वि-क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में रिसाव: बचत
त्रि-क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में रिसाव: बचत जोड़ कर
चार-क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में रिसाव: बचत जोड़ कर जोड़ आयात

अंतःक्षेपण (इंजेक्शन अथवा प्रवेश): वे चर जो आय के चक्रीय प्रवाह में अतिरिक्त मुद्रा का समावेश करते हैं, जिससे समग्र मांग में वृद्धि होती है और उत्पादन चक्र का विस्तार होता है।

द्वि-क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में अंतःक्षेपण: निवेश
त्रि-क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में अंतःक्षेपण: निवेश जोड़ सरकारी व्यय
चार-क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में अंतःक्षेपण: निवेश जोड़ सरकारी व्यय जोड़ निर्यात

अर्थव्यवस्था के दीर्घकालिक साम्य हेतु कुल रिसाव का मान कुल अंतःक्षेपण के मान के बराबर होना अनिवार्य है:

बचत + कर + आयात = निवेश + सरकारीव्यय + निर्यात

खंड B: राष्ट्रीय आय के प्रमुख समुच्चय

उपखंड a: सकल घरेलू उत्पाद, सकल राष्ट्रीय उत्पाद, शुद्ध घरेलू उत्पाद, शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद

wincompete

सकल घरेलू उत्पाद (GDP)
सकल घरेलू उत्पाद किसी देश की आर्थिक सीमा के भीतर एक लेखा वर्ष (एक अप्रैल से इकतीस मार्च) के दौरान उत्पादित समस्त अंतिम वस्तुओं एवं सेवाओं का मौद्रिक मूल्य है, चाहे इसका उत्पादन सामान्य निवासियों द्वारा किया गया हो अथवा गैर-निवासियों द्वारा। जीडीपी की मुख्य विशेषताएं:

क) यह विशुद्ध रूप से एक क्षेत्रीय अथवा भौगोलिक अवधारणा है।
ख) इसमें केवल अंतिम वस्तुओं एवं सेवाओं को ही सम्मिलित किया जाता है।
ग) इसमें स्थिर पूंजी के उपभोग (मूल्यह्रास) को घटाया नहीं जाता, इसलिए यह 'सकल' मूल्य होता है।

शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP)
सकल घरेलू उत्पाद में से उत्पादन प्रक्रिया के दौरान प्रयुक्त परिसंपत्तियों के मूल्यह्रास को घटाने के पश्चात प्राप्त होने वाला मूल्य शुद्ध घरेलू उत्पाद कहलाता है।

शुद्धघरेलूउत्पाद = सकलघरेलूउत्पाद – मूल्यह्रास
शुद्ध घरेलू उत्पाद इस तथ्य का वास्तविक संकेतक है कि अर्थव्यवस्था ने अपनी पूंजीगत परिसंपत्तियों को अक्षुण्ण बनाए रखने के बाद वास्तव में कितना निवल उत्पादन किया है। किसी भी अर्थव्यवस्था में शुद्ध घरेलू उत्पाद का मान सामान्यतः सकल घरेलू उत्पाद से कम ही होता है, क्योंकि मूल्यह्रास का मान कभी ऋणात्मक नहीं हो सकता।

सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP)
सकल राष्ट्रीय उत्पाद एक राष्ट्रीय अवधारणा है। यह एक लेखा वर्ष में किसी देश के सामान्य निवासियों द्वारा उत्पादित समस्त अंतिम वस्तुओं और सेवाओं के मौद्रिक मूल्य को दर्शाता है, भले ही वह उत्पादन देश की घरेलू सीमा में हुआ हो अथवा विदेशों में। सकल राष्ट्रीय उत्पाद प्राप्त करने हेतु सकल घरेलू उत्पाद में **विदेशों से शुद्ध साधन आय** जोड़ी जाती है।

सकलराष्ट्रीयउत्पाद = सकलघरेलूउत्पाद + विदेशोंसेशुद्धसाधनआय
विदेशों से शुद्ध साधन आय के घटक:

क) कर्मचारियों का शुद्ध पारिश्रमिक: देश के निवासियों द्वारा विदेशों में अस्थायी रूप से कार्य करके अर्जित पारिश्रमिक में से देश की सीमा के भीतर विदेशी श्रमिकों को किए गए भुगतान का अंतर।

ख) संपत्ति एवं उद्यमशीलता से शुद्ध आय: देश के निवासियों द्वारा विदेशों से अर्जित लगान, ब्याज तथा लाभांश में से विदेशियों को देश के भीतर किए गए ऐसे भुगतानों का अंतर।

ग) घरेलू कंपनियों की शुद्ध प्रतिधारित आय: विदेशों में कार्यरत निवासी कंपनियों की अवितरित आय में से देश में कार्यरत विदेशी कंपनियों की अवितरित आय का अंतर।

शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP)
सकल राष्ट्रीय उत्पाद में से मूल्यह्रास की राशि घटाने पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद प्राप्त होता है।

शुद्धराष्ट्रीयउत्पाद = सकलराष्ट्रीयउत्पाद – मूल्यह्रास
अथवा

शुद्धराष्ट्रीयउत्पाद = शुद्धघरेलूउत्पाद + विदेशोंसेशुद्धसाधनआय

wincompete

समुच्चय का नाम	अवधारणात्मक स्वरूप	मूल्यह्रास की स्थिति	विदेशी आय का प्रभाव
सकल घरेलू उत्पाद	विशुद्ध भौगोलिक/घरेलू	मूल्यह्रास सम्मिलित	विदेशों से शुद्ध साधन आय बहिष्कृत
शुद्ध घरेलू उत्पाद	विशुद्ध भौगोलिक/घरेलू	मूल्यह्रास घटाया गया	विदेशों से शुद्ध साधन आय बहिष्कृत
सकल राष्ट्रीय उत्पाद	राष्ट्रीय (नागरिक केंद्रित)	मूल्यह्रास सम्मिलित	विदेशों से शुद्ध साधन आय सम्मिलित
शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद	राष्ट्रीय (नागरिक केंद्रित)	मूल्यह्रास घटाया गया	विदेशों से शुद्ध साधन आय सम्मिलित

उपखंड b: बाजार मूल्य बनाम साधन लागत, कारक लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद, वैयक्तिक आय, प्रयोज्य आय

बाजार मूल्य बनाम साधन लागत

किसी भी आर्थिक समुच्चय का मूल्यांकन दो आधारों पर किया जा सकता है: साधन लागत पर अथवा बाजार मूल्य पर।

साधन लागत: उत्पादन के साधनों (भूमि, श्रम, पूंजी, उद्यम) को उनकी सेवाओं के बदले फर्मों द्वारा किए जाने वाले वास्तविक भुगतानों (लगान, मजदूरी, ब्याज, लाभ) का कुल योग साधन लागत कहलाता है। इसमें किसी प्रकार का अप्रत्यक्ष कर अथवा सरकारी सहायता सम्मिलित नहीं होती।

बाजार मूल्य: जिस मूल्य पर वस्तुएं एवं सेवाएं वास्तव में बाजार में उपभोक्ताओं को बेची जाती हैं, वह बाजार मूल्य कहलाता है। साधन लागत को बाजार मूल्य में बदलने हेतु **शुद्ध अप्रत्यक्ष कर** का समायोजन किया जाता है।

$$\text{शुद्धअप्रत्यक्षकर} = \text{अप्रत्यक्षकर}(GST, \text{उत्पादशुल्कआदि}) - \text{सरकारीआर्थिकसहायता}(\text{सब्सिडी})$$

अतः:

$$\text{बाजारमूल्य} = \text{साधनलागत} + \text{शुद्धअप्रत्यक्षकर}$$

$$\text{साधनलागत} = \text{बाजारमूल्य} - \text{शुद्धअप्रत्यक्षकर}$$

wincompete

यदि किसी अर्थव्यवस्था में सरकार द्वारा कोई कर न लगाया जाए और न ही कोई सब्सिडी दी जाए, तो साधन लागत और बाजार मूल्य पूर्णतः समान होंगे। यदि सब्सिडी की राशि अप्रत्यक्ष करों से अधिक हो, तो साधन लागत का मान बाजार मूल्य से अधिक हो जाता है।

कारक लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद (राष्ट्रीय आय)
अर्थशास्त्र के मानक सिद्धांतों के अनुसार, **साधन लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद** को ही किसी देश की वास्तविक **राष्ट्रीय आय** की संज्ञा दी जाती है।

राष्ट्रीयआय = बाजारमूल्यपरशुद्धराष्ट्रीयउत्पाद – शुद्धअप्रत्यक्षकर
अथवा

राष्ट्रीयआय = बाजारमूल्यपरसकलघरेलूउत्पाद – मूल्यह्रास + विदेशोंसेशुद्धसाधनआय – शुद्धअप्रत्यक्षकर
वर्ष दो हजार पंद्रह में भारत के केंद्रीय सांख्यिकी संगठन (अब राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय - NSO) ने राष्ट्रीय लेखांकन प्रणाली में संशोधन करते हुए साधन लागत के स्थान पर **मूल्य वर्धन के आधार पर आधारभूत मूल्यों पर सकल मूल्य वर्धन (GVA at Basic Prices)** तथा **बाजार मूल्यों पर सकल घरेलू उत्पाद (GDP at Market Prices)** को प्राथमिक आर्थिक वृद्धि दर मापने का आधिकारिक मानक घोषित किया।

आधारभूत मूल्य की संकल्पना:

आधारभूतमूल्यपरजीवीए = साधनलागतपरजीवीए + उत्पादनकर – उत्पादनसब्सिडी

बाजारमूल्यपरजीडीपी = आधारभूतमूल्यपरजीवीए + उत्पादकर – उत्पादसब्सिडी
उत्पादन कर वे कर हैं जो उत्पादन की मात्रा से स्वतंत्र होते हैं (यथा भूमि राजस्व, स्टांप शुल्क, व्यवसाय कर), जबकि उत्पाद कर प्रति इकाई उत्पादन पर लगाए जाते हैं (यथा जीएसटी, पेट्रोलियम पर उत्पाद शुल्क)।

वैयक्तिक आय एवं वैयक्तिक प्रयोज्य आय
निजी आय: यह वह आय है जो निजी क्षेत्र (व्यक्तियों एवं निजी उद्यमों) को सभी घरेलू तथा विदेशी स्रोतों से साधन आय एवं वर्तमान हस्तांतरण के रूप में प्राप्त होती है।

वैयक्तिक आय: देश के व्यक्तियों तथा परिवारों को वास्तव में सभी स्रोतों से प्राप्त होने वाली कुल आय वैयक्तिक आय कहलाती है। राष्ट्रीय आय में से कुछ ऐसी मदे घटाई जाती हैं जो कमाई तो जाती हैं किंतु परिवारों को वितरित नहीं होतीं, तथा कुछ ऐसी मदे जोड़ी जाती हैं जो कमाई नहीं जातीं किंतु परिवारों को प्राप्त होती हैं।

वैयक्तिकआय = राष्ट्रीयआय – अवितरितनिगमलाभ – निगमकर – सामाजिकसुरक्षाअंशदान + सरकारीहस्तांतरणभुगतान +
वैयक्तिक प्रयोज्य आय: यह परिवारों तथा व्यक्तियों के पास उपलब्ध वह निवल आय है जिसे वे अपनी इच्छानुसार उपभोग पर व्यय करने अथवा बचत करने हेतु स्वतंत्र होते हैं।

वैयक्तिकप्रयोज्यआय = वैयक्तिकआय – प्रत्यक्षवैयक्तिककर(यथाआयकर) – सरकारकोदिएगएविविधप्रशासनिकशुल्कएवंजुम
अथवा

वैयक्तिकप्रयोज्यआय = वैयक्तिकउपभोगव्यय + वैयक्तिकबचत

खंड C: राष्ट्रीय आय गणना की विधियां एवं सीमाएं

उपखंड a: उत्पाद विधि, आय विधि, व्यय विधि, दोहरी गणना की समस्या और मूल्य संवर्धन विधि

उत्पाद विधि अथवा मूल्य संवर्धन विधि

उत्पाद विधि अर्थव्यवस्था के प्रत्येक उत्पादक उद्यम द्वारा अपने उत्पादन चरण में किए गए शुद्ध योगदान को मापकर राष्ट्रीय आय का आकलन करती है।

मूल्य संवर्धन की गणना:

उत्पाद विधि का मूल सिद्धांत मूल्य संवर्धन है। किसी फर्म द्वारा किया गया मूल्य संवर्धन उसके उत्पादन के मूल्य और उसके द्वारा उपयोग की गई मध्यवर्ती उपभोग की लागत का अंतर होता है।

सकलमूल्यसंवर्धन = उत्पादनकामूल्य – मध्यवर्तीउपभोग
उत्पादन के मूल्य की गणना दो प्रकार से की जाती है:

क) यदि समस्त उत्पादन उसी वर्ष बिक जाता है: उत्पादनकामूल्य = बिक्री

ख) यदि उत्पादन का कुछ भाग बिना बिका रह जाता है: उत्पादनकामूल्य = बिक्री + स्टॉकमेंपरिवर्तन
जहाँ, स्टॉकमेंपरिवर्तन = अंतिमस्टॉक – प्रारंभिकस्टॉक

अर्थव्यवस्था को तीन प्रमुख क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है:

क) प्राथमिक क्षेत्र: कृषि, वानिकी, मत्स्यन, खनन एवं उत्खनन।

ख) द्वितीयक क्षेत्र: विनिर्माण, निर्माण, विद्युत, गैस एवं जल आपूर्ति।

ग) तृतीयक क्षेत्र: व्यापार, परिवहन, वित्तीय सेवाएं, लोक प्रशासन एवं अन्य सेवाएं।

समस्त उत्पादक इकाइयों के सकल मूल्य संवर्धन का योग **बाजार मूल्य पर सकल घरेलू उत्पाद** कहलाता है।

दोहरी गणना की समस्या एवं समाधान:

जब राष्ट्रीय आय की गणना करते समय मध्यवर्ती वस्तुओं के मूल्य को अंतिम वस्तुओं के मूल्य के साथ अलग से जोड़ लिया जाता है, तो एक ही वस्तु के मूल्य की गणना कई बार हो जाती है। इसे **दोहरी गणना की समस्या** कहते हैं। इसके कारण राष्ट्रीय आय का कृत्रिम रूप से बढ़ा हुआ आकलन प्रस्तुत होता है।

उदाहरणार्थ: एक किसान चार सौ रुपये का गेहूं आटा मिल को बेचता है। आटा मिल उस गेहूं को पीसकर छह सौ रुपये में बेकर को बेचती है। बेकर उस आटे से ब्रेड बनाकर उपभोक्ता को नौ सौ रुपये में बेचता है। यदि यहां चार सौ, छह सौ और नौ सौ तीनों को जोड़ दिया जाए, तो कुल योग उन्नीस सौ रुपये होगा, जो भ्रामक है। वास्तव में गेहूं का मूल्य तीन बार जुड़ चुका है।

दोहरी गणना से बचने के दो निश्चित उपाय हैं:

क) अंतिम उत्पाद विधि: केवल अंतिम उपभोक्ताओं को बेची गई अंतिम ब्रेड के मूल्य (नौ सौ रुपये) को ही राष्ट्रीय उत्पाद में शामिल किया जाए।

ख) मूल्य संवर्धन विधि: उत्पादन के प्रत्येक चरण पर केवल शुद्ध जोड़े गए मूल्य को सम्मिलित किया जाए। किसान का संवर्धन चार सौ रुपये, मिल का संवर्धन दो सौ रुपये (छह सौ ऋण चार सौ), तथा बेकर का संवर्धन तीन सौ रुपये (नौ सौ ऋण छह सौ)। कुल मूल्य संवर्धन चार सौ जोड़ दो सौ जोड़ तीन सौ बराबर नौ सौ रुपये होगा।

आय विधि (साधन भुगतान विधि)

आय विधि उत्पादन के प्राथमिक साधनों के स्वामियों को उनकी उत्पादक सेवाओं के बदले प्राप्त होने वाले साधन भुगतानों के योग के रूप में राष्ट्रीय आय का मापन करती है। इसके मुख्य घटक निम्नलिखित हैं:

क) कर्मचारियों का पारिश्रमिक: इसके अंतर्गत नकद मजदूरी एवं वेतन, किस्म के रूप में भुगतान (यथा निःशुल्क आवास, चिकित्सा सुविधा), तथा नियोजकों द्वारा कर्मचारियों की सामाजिक सुरक्षा योजनाओं में किया गया अंशदान (भविष्य निधि, ग्रेच्युटी) सम्मिलित होता है।

ख) प्रचालन अधिशेष: संपत्ति एवं उद्यमशीलता से अर्जित आय का योग। इसमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं:

१. लगान (भूमि एवं भवनों से प्राप्त आय, जिसमें स्व-अधिकृत भवनों का आकलित किराया भी शामिल है)।

२. रॉयल्टी (खनन पट्टों, बौद्धिक संपदा, कॉपीराइट आदि के उपयोग हेतु प्राप्त अधिकार शुल्क)।

३. ब्याज (उत्पादन कार्यों हेतु उधार दी गई पूंजी पर प्राप्त ब्याज; सरकारी उपभोग ऋणों पर ब्याज इसमें शामिल नहीं होता)।

४. लाभ (निगम कर, शेयरधारकों को लाभांश, तथा कंपनियों की अवितरित बचत का योग)।

ग) स्व-नियोजितों की मिश्रित आय: असंगठित क्षेत्र के उन छोटे उद्यमियों, चिकित्सकों, वकीलों, किसानों तथा दुकानदारों की आय, जहाँ श्रम, पूंजी, भूमि और उद्यमशीलता एक ही व्यक्ति में निहित होती है तथा मजदूरी, लगान, ब्याज व लाभ को पृथक करना संभव नहीं होता।

इन तीनों घटकों का योग **साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद** प्रदान करता है:

NDP_{FC} = कर्मचारियोंकापारिश्रमिक + प्रचालनअधिशेष + मिश्रितआय

राष्ट्रीय आय प्राप्त करने हेतु इसमें विदेशों से शुद्ध साधन आय जोड़ दी जाती है:

$NNP_{FC} = NDP_{FC}$ + विदेशोंसेशुद्धसाधनआय

व्यय विधि (अंतिम व्यय विधि)

व्यय विधि एक लेखा वर्ष के दौरान देश की आर्थिक सीमा के भीतर उत्पादित अंतिम वस्तुओं एवं सेवाओं को खरीदने हेतु किए गए कुल अंतिम व्यय को जोड़कर राष्ट्रीय आय मापती है। इसके चार प्रमुख घटक हैं:

क) निजी अंतिम उपभोग व्यय: देश के सामान्य निवासियों तथा परिवारों द्वारा टिकाऊ, गैर-टिकाऊ वस्तुओं एवं सेवाओं पर किया गया कुल व्यय, साथ ही परिवारों की सेवा करने वाली गैर-लाभकारी निजी संस्थाओं का उपभोग व्यय।

ख) सरकारी अंतिम उपभोग व्यय: सामान्य सरकार द्वारा प्रशासनिक, रक्षा, विधि-व्यवस्था, शिक्षा तथा स्वास्थ्य जैसी निःशुल्क सेवाओं के प्रावधान हेतु वस्तुओं एवं सेवाओं पर किया गया कुल चालू व्यय।

ग) सकल घरेलू पूंजी निर्माण (सकल निवेश): अर्थव्यवस्था के भौतिक पूंजीगत स्टॉक में होने वाली कुल वृद्धि। इसके दो उप-घटक होते हैं:

१. सकल घरेलू स्थायी पूंजी निर्माण (व्यापारिक स्थायी निवेश, आवासीय निर्माण निवेश तथा सरकारी सार्वजनिक अवसंरचना निवेश)।

२. स्टॉक में परिवर्तन (इन्वेंट्री निवेश)।

घ) शुद्ध निर्यात: देश के कुल निर्यात में से कुल आयात की राशि घटाने पर प्राप्त मान (निर्यात ऋण आयात)।

इन चारों घटकों का योग **बाजार मूल्य पर सकल घरेलू उत्पाद** कहलाता है:

GDP_{MP} = निजीअंतिमउपभोगव्यय + सरकारीअंतिमउपभोगव्यय + सकलघरेलूपूंजीनिर्माण + शुद्धनिर्यात

साधन आय बनाम हस्तांतरण भुगतान

राष्ट्रीय आय के लेखांकन में साधन आय और हस्तांतरण भुगतान का भेद सर्वाधिक महत्वपूर्ण है:

साधन आय: वह आय जो उत्पादन के साधनों द्वारा वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में अपने उत्पादक योगदान के प्रतिफल स्वरूप अर्जित की जाती है। यह द्विपक्षीय होती है तथा सदैव राष्ट्रीय आय एवं घरेलू आय में सम्मिलित की जाती है।

हस्तांतरण भुगतान (अंतरण आय): वह भुगतान जिसके बदले में प्राप्तकर्ता द्वारा कोई समतुल्य वस्तु, सेवा अथवा उत्पादक योगदान प्रदान नहीं किया जाता। यह एकतरफा प्रवाह होता है। उदाहरणार्थ: वृद्धावस्था पेंशन, बेरोजगारी भत्ता, छात्रवृत्ति, उपहार, दान तथा कर। हस्तांतरण भुगतान राष्ट्रीय आय में कभी भी सम्मिलित नहीं किए जाते क्योंकि इनसे किसी नवीन मूल्य अथवा उत्पादन का सृजन नहीं होता।

उपखंड b: वास्तविक बनाम सांकेतिक जीडीपी, जीडीपी अपस्फीतिकारक, ग्रीन जीडीपी की अवधारणा और गणना में व्यावहारिक कठिनाइयां

सांकेतिक जीडीपी बनाम वास्तविक जीडीपी

सांकेतिक जीडीपी (चालू मूल्यों पर जीडीपी): जब किसी वर्ष के अंतिम उत्पादन का मूल्यांकन उसी वर्ष के प्रचलित बाजार मूल्यों पर किया जाता है, तो उसे सांकेतिक जीडीपी कहते हैं। यदि अर्थव्यवस्था में उत्पादन स्थिर रहे और केवल वस्तुओं के मूल्य स्तर में वृद्धि हो जाए, तब भी सांकेतिक जीडीपी बढ़ जाती है। अतः यह देश के वास्तविक भौतिक आर्थिक कल्याण का सटीक परिचायक नहीं है।

वास्तविक जीडीपी (स्थिर मूल्यों पर जीडीपी): जब किसी चालू वर्ष के उत्पादन का मूल्यांकन किसी एक चुने हुए आधार वर्ष के स्थिर मूल्यों पर किया जाता है, तो उसे वास्तविक जीडीपी कहा जाता है। वास्तविक जीडीपी में वृद्धि केवल तभी संभव होती है जब अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं के भौतिक उत्पादन की मात्रा में वास्तविक वृद्धि हो। भारत में वर्तमान में राष्ट्रीय आय गणना हेतु **आधार वर्ष २०११-१२** का प्रयोग किया जा रहा है।

तुलनात्मक आधार	सांकेतिक जीडीपी	वास्तविक जीडीपी
मूल्यन का आधार	चालू वर्ष के प्रचलित बाजार मूल्य।	किसी चयनित आधार वर्ष के स्थिर मूल्य।
मुद्रास्फीति का प्रभाव	मुद्रास्फीति के प्रभाव से प्रभावित एवं विकृत।	मुद्रास्फीति के प्रभाव से पूर्णतः मुक्त।
अंतर-वर्षीय तुलना	विभिन्न वर्षों के वास्तविक उत्पादन की तुलना हेतु अनुपयुक्त।	वास्तविक आर्थिक वृद्धि की तुलना हेतु सर्वाधिक विश्वसनीय।
कल्याण का संकेतक	जनसाधारण के वास्तविक कल्याण का भ्रामक चित्र प्रस्तुत कर सकती है।	समाज के भौतिक जीवन स्तर एवं उत्पादन वृद्धि का वास्तविक सूचक।

जीडीपी अपस्फीतिकारक (GDP Deflator)

जीडीपी अपस्फीतिकारक सांकेतिक जीडीपी और वास्तविक जीडीपी का अनुपात होता है, जो अर्थव्यवस्था में उत्पादित समस्त अंतिम वस्तुओं और सेवाओं के समग्र मूल्य स्तर में होने वाले औसत परिवर्तन को मापता है।

$$\text{जीडीपीअपस्फीतिकारक} = \frac{\text{सांकेतिकजीडीपी}}{\text{वास्तविकजीडीपी}} \times १००$$

जीडीपी अपस्फीतिकारक तथा उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (CPI) में अंतर:

क) उपभोक्ता मूल्य सूचकांक केवल उपभोक्ताओं द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुओं की एक निश्चित प्रतिनिधि टोकरी के मूल्य स्तर को मापता है, जबकि जीडीपी अपस्फीतिकारक अर्थव्यवस्था में घरेलू रूप से उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं के मूल्यों को समाहित करता है।

ख) सीपीआई में आयातित वस्तुओं के मूल्य शामिल होते हैं, जबकि जीडीपी अपस्फीतिकारक में केवल देश की भौगोलिक सीमा के भीतर उत्पादित वस्तुओं के मूल्य ही आते हैं, आयातित वस्तुएं इसमें पूर्णतः बहिष्कृत होती हैं।

ग) सीपीआई में प्रत्येक वस्तु का भार निश्चित होता है, जबकि जीडीपी अपस्फीतिकारक में उत्पादन के बदलते ढांचे के अनुसार वस्तुओं के भार स्वतः परिवर्तित होते रहते हैं।

ग्रीन जीडीपी (हरित सकल घरेलू उत्पाद) की अवधारणा

पारंपरिक जीडीपी मापन प्रणाली आर्थिक विकास की अंधी दौड़ में पर्यावरण को होने वाले नुकसान और प्राकृतिक संसाधनों के ह्रास की पूर्णतः अनदेखी करती है। इस कमी को दूर करने हेतु संयुक्त राष्ट्र के पर्यावरण एवं आर्थिक लेखांकन प्रणाली (SEEA) के अंतर्गत **ग्रीन जीडीपी** का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया।

ग्रीन जीडीपी पारंपरिक सकल घरेलू उत्पाद का वह समायोजित रूप है, जिसमें से उत्पादन प्रक्रिया के दौरान पर्यावरण के अवक्रमण, जैव विविधता की क्षति, प्रदूषण तथा प्राकृतिक संसाधनों के दोहन एवं ह्रास की मौद्रिक लागत को घटा दिया जाता है।

ग्रीनजीडीपी = पारंपरिकजीडीपी – प्राकृतिकपूंजीकाक्षरण – पर्यावरणीयक्षतिकीआर्थिकलागत
भारत में पर्यावरण मंत्रालय द्वारा पार्थ दासगुप्ता की अध्यक्षता में विशेषज्ञ समिति का गठन किया गया था, जिसने भारत में हरित राष्ट्रीय लेखा प्रणाली को चरणबद्ध रूप से लागू करने के दिशा-निर्देश तैयार किए। ग्रीन जीडीपी की गणना से धारणीय एवं सतत विकास की वास्तविक स्थिति का आकलन संभव होता है।

राष्ट्रीय आय गणना में व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक कठिनाइयां
विकासशील देशों में राष्ट्रीय आय का सटीक मापन अत्यंत जटिल कार्य है। इसके मार्ग में आने वाली प्रमुख बाधाओं को दो श्रेणियों में समझा जा सकता है:

सैद्धांतिक कठिनाइयां:

क) गैर-मौद्रिक लेनदेन: ग्रामीण अर्थव्यवस्था में आज भी वस्तु विनिमय प्रणाली आंशिक रूप से विद्यमान है। किसानों द्वारा उपज का एक बड़ा भाग अपने स्वयं के उपभोग हेतु रख लिया जाता है, जिसका कोई बाजार रिकॉर्ड नहीं होता।

ख) अवैतनिक घरेलू सेवाएं: गृहणियों द्वारा परिवार के पालन-पोषण, भोजन पकाने तथा देखभाल हेतु दी जाने वाली मूल्यवान सेवाओं को राष्ट्रीय आय में सम्मिलित नहीं किया जाता क्योंकि उनका कोई मौद्रिक मूल्यांकन संभव नहीं है।

ग) बाह्यताएं: आर्थिक गतिविधियों से उत्पन्न सकारात्मक बाह्यताओं (यथा सार्वजनिक उद्यानों से मिलने वाला सुख) और नकारात्मक बाह्यताओं (यथा औद्योगिक प्रदूषण से स्वास्थ्य क्षति) का पारंपरिक राष्ट्रीय आय में कोई लेखांकन नहीं होता।

व्यावहारिक एवं सांख्यिकीय कठिनाइयां:

क) असंगठित एवं अनौपचारिक क्षेत्र का विशाल आकार: भारत जैसी अर्थव्यवस्थाओं में अस्सी प्रतिशत से अधिक कार्यबल अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत है। इन छोटे व्यवसायों, फेरीवालों एवं दिहाड़ी श्रमिकों द्वारा कोई औपचारिक बहीखाता नहीं रखा जाता, जिससे उनकी आय का सटीक आंकड़ा उपलब्ध नहीं हो पाता।

ख) समानांतर अथवा काली अर्थव्यवस्था: कर अपवंचन, भ्रष्टाचार, तस्करी तथा अवैध व्यापारिक गतिविधियों से उत्पन्न आय राष्ट्रीय लेखांकन के आधिकारिक तंत्र से बाहर रह जाती है, जिससे राष्ट्रीय आय वास्तविक स्तर से कम दिखाई देती है।

ग) विश्वसनीय आंकड़ों का अभाव: विशेषकर कृषि, पशुपालन, मत्स्य पालन तथा कुटीर उद्योगों के उत्पादन व लागत संबंधी विश्वसनीय, अद्यतन तथा वैज्ञानिक आंकड़ों का समय पर संकलन न हो पाना।

घ) मूल्यह्रास के आकलन में विसंगति: विभिन्न प्रकार की पूंजीगत संपत्तियों के जीवनकाल तथा मूल्यह्रास की दरों के निर्धारण हेतु कोई सर्वमान्य सार्वभौमिक पैमाना न होना, जिससे विभिन्न उद्योगों में मूल्यह्रास की गणना मनमाने ढंग से की जाती है।

खंड D: राष्ट्रीय आय लेखांकन से जुड़े अन्य महत्वपूर्ण आयाम

उपखंड a: प्रति व्यक्ति आय, आर्थिक कल्याण तथा पूंजी निर्माण

प्रति व्यक्ति आय (Per Capita Income)

किसी देश की कुल वास्तविक राष्ट्रीय आय को उस देश की कुल मध्य-वर्षीय जनसंख्या से विभाजित करने पर प्राप्त होने वाला मान **प्रति व्यक्ति आय** कहलाता है।

$$\text{प्रतिव्यक्तिआय} = \frac{\text{साधनलागतपरशुद्धराष्ट्रीयउत्पाद(स्थिरमूल्योंपर)}}{\text{कुलजनसंख्या}}$$

प्रति व्यक्ति आय किसी देश के नागरिकों के औसत आर्थिक स्तर का माप प्रस्तुत करती है। यद्यपि यह जीवन स्तर का एक उपयोगी संकेतक है, परंतु यह आय के वितरण की विषमता को स्पष्ट नहीं करती। यदि देश की अधिकांश राष्ट्रीय आय मुट्ठी भर धनाढ्यों के हाथों में केंद्रित हो, तब भी प्रति व्यक्ति आय उच्च स्तर प्रदर्शित कर सकती है, जबकि सामान्य जनता निर्धनता में जीवन यापन कर रही हो।

जीडीपी एवं आर्थिक कल्याण का अंतर्संबंध

सामान्यतः यह माना जाता है कि उच्च जीडीपी उच्च आर्थिक कल्याण का प्रतीक है। तथापि, वास्तविक धरातल पर जीडीपी वृद्धि और सामाजिक कल्याण के मध्य पूर्ण प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं:

क) आय का वितरण: यदि जीडीपी में वृद्धि तो हो रही है किंतु आय की असमानता (गिनी गुणांक) बढ़ रही है, तो समाज के निचले वर्गों का कल्याण घटने लगता है।

ख) उत्पादन की संरचना: यदि जीडीपी में होने वाली वृद्धि युद्ध सामग्री, शराब अथवा प्रदूषणकारी वस्तुओं के उत्पादन से प्रेरित है, तो यह भौतिक कल्याण में वृद्धि नहीं करती।

ग) गैर-बाजार लेनदेन का लोप: जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाने वाले कई घटक (यथा अवकाश का समय, स्वच्छ पर्यावरण, सामाजिक सौहार्द) जीडीपी में स्थान नहीं पाते।

सकल पूंजी निर्माण की दर

किसी भी अर्थव्यवस्था में उत्पादन क्षमता के विस्तार हेतु सकल पूंजी निर्माण (निवेश) की दर रीढ़ की हड्डी मानी जाती है। सकल घरेलू उत्पाद में सकल पूंजी निर्माण के प्रतिशत अनुपात को निवेश दर अथवा पूंजी निर्माण की दर कहा जाता है। उच्च पूंजी निर्माण दर भविष्य में उच्च आर्थिक वृद्धि की पूर्व-शर्त है। यह दर घरेलू बचत दर (पारिवारिक बचत, निजी निगमित बचत तथा सरकारी बचत) एवं विदेशों से प्राप्त शुद्ध पूंजी प्रवाह पर निर्भर करती है। भारत में बचत दर में पारिवारिक क्षेत्र की भौतिक तथा वित्तीय बचतों का योगदान ऐतिहासिक रूप से सर्वोच्च रहा है।

अध्याय २: लोक वित्त - आगम, लोक व्यय और ऋण संरचना

wincompete

खंड A: लोक वित्त का स्वरूप एवं राजस्व की संरचना

उपखंड a: लोक वित्त बनाम निजी वित्त, सार्वजनिक वस्तुएं बनाम निजी वस्तुएं, मेरिट वस्तुएं

लोक वित्त की आधारभूत संकल्पना एवं कार्यक्षेत्र

लोक वित्त (Public Finance) समष्टि अर्थशास्त्र की वह शाखा है जो संप्रभु प्राधिकारी अथवा सरकार के आय, व्यय, ऋण तथा उनसे संबंधित वित्तीय नीतियों और प्रबंधन का अध्ययन करती है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री ह्यूग डाल्टन के अनुसार, लोक वित्त सार्वजनिक सत्ताओं की आय एवं व्यय तथा इनके पारस्परिक समायोजन से संबंधित विधा है। इसके विपरीत, रिचर्ड मसग्रेव ने लोक वित्त को तीन प्रमुख विनियामक कार्यों के आधार पर परिभाषित किया: संसाधनों का इष्टतम आबंटन (Allocation Function), आय एवं संपदा का न्यायपूर्ण पुनर्वितरण (Distribution Function), तथा समष्टि आर्थिक स्थिरीकरण (Stabilization Function)। आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में लोक वित्त केवल एक लेखांकन प्रक्रिया नहीं है, अपितु यह सामाजिक न्याय, पूर्ण रोजगार तथा समावेशी विकास का संप्रभु माध्यम है।

लोक वित्त तथा निजी वित्त का तुलनात्मक विश्लेषण

निजी वित्त किसी व्यक्ति, परिवार अथवा निजी व्यावसायिक उपक्रम की आय, व्यय और परिसंपत्ति प्रबंधन को संदर्भित करता है। यद्यपि दोनों ही प्रणालियों का अंतिम उद्देश्य दुर्लभ संसाधनों का उपयोग करके अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करना होता है, तथापि उनके संचालन के दर्शन, विधिक अधिकार और कार्यप्रणाली में मौलिक भेद पाया जाता है।

तुलना का आधार	लोक वित्त	निजी वित्त
मूल उद्देश्य	अधिकतम सामाजिक कल्याण (Social Welfare) प्राप्त करना।	अधिकतम व्यक्तिगत लाभ (Profit) अथवा व्यक्तिगत उपयोगिता।
व्यय एवं आय का समायोजन	सरकार पहले अपने व्यय का निर्धारण करती है और तदनुरूप राजस्व के साधन जुटाती है।	व्यक्ति पहले अपनी आय का आकलन करता है और उसी सीमा में व्यय निर्धारित करता है।
संसाधनों की बाध्यकारी शक्ति	संप्रभु सत्ता होने के नाते सरकार विधि निर्माण द्वारा अनिवार्य कर लगा सकती है।	व्यक्ति किसी अन्य पर बाध्यकारी कर अथवा वसूली नहीं कर सकता; अनुबंध पूर्णतः स्वैच्छिक होते हैं।
बजट का स्वरूप	सामान्यतः आर्थिक मंदी के निवारण और विकास हेतु घाटे का बजट (Deficit Budget) स्वीकार्य होता है।	व्यक्ति अथवा फर्म के लिए अधिशेष का बजट (Surplus Budget) ही वित्तीय विवेक का परिचायक है।
ऋण सृजन का अधिकार	सरकार घरेलू एवं बाह्य दोनों स्रोतों से ऋण ले सकती है तथा केंद्रीय बैंक के माध्यम से नई मुद्रा जारी कर सकती है।	व्यक्ति केवल आंतरिक अथवा सीमित वित्तीय संस्थानों से ऋण ले सकता है; मुद्रा सृजन का अधिकार शून्य है।

wincompete

प्रक्रिया की पारदर्शिता	आय-व्यय का विवरण विधायिका में प्रस्तुत करना तथा सार्वजनिक संवीक्षा कराना संवैधानिक अनिवार्यता है।	वित्तीय संचालन पूर्णतः गोपनीय रखा जा सकता है; सार्वजनिक प्रकटीकरण अनिवार्य नहीं होता।

सार्वजनिक वस्तुएं, निजी वस्तुएं और सामान्य संपत्ति संसाधन

अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं का वर्गीकरण उनकी उपभोग प्रकृति और बाजार मूल्य निर्धारण की क्षमता के आधार पर किया जाता है। मुख्य रूप से दो प्रमुख कसौटियों का प्रयोग किया जाता है: **अपवर्जनशीलता (Excludability)** और **प्रतिद्वंद्विता (Rivalry)**।

क) निजी वस्तुएं (Private Goods): ये वस्तुएं उपभोग में प्रतिद्वंद्वी और अपवर्जनीय दोनों होती हैं। प्रतिद्वंद्विता का आशय है कि यदि एक व्यक्ति किसी वस्तु का उपभोग करता है, तो दूसरे व्यक्ति के लिए उसकी उपलब्धता कम हो जाती है। अपवर्जनशीलता का अर्थ है कि जो व्यक्ति वस्तु की बाजार कीमत नहीं चुकाता, उसे उसके उपभोग से विधिक रूप से वंचित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, भोजन, वस्त्र और निजी वाहन।

ख) सार्वजनिक वस्तुएं (Public Goods): ये वस्तुएं उपभोग में गैर-प्रतिद्वंद्वी और गैर-अपवर्जनीय होती हैं। गैर-प्रतिद्वंद्विता का अर्थ है कि एक अतिरिक्त व्यक्ति द्वारा उपभोग करने से किसी अन्य व्यक्ति के उपभोग में कोई कमी नहीं आती। गैर-अपवर्जनशीलता का अर्थ है कि किसी भी व्यक्ति को मूल्य न चुकाने पर भी उसके उपयोग से वंचित नहीं किया जा सकता। इसके उत्कृष्ट उदाहरण राष्ट्रीय रक्षा, सड़क प्रकाश व्यवस्था (Street Lighting), विधि और न्याय व्यवस्था, तथा स्वच्छ वायु हैं। सार्वजनिक वस्तुओं की इस विशिष्टता के कारण बाजार प्रणाली इनके उत्पादन में विफल हो जाती है, जिसे **बाजार विफलता (Market Failure)** कहा जाता है।

ग) सामान्य संपत्ति संसाधन (Common Property Resources): ये वस्तुएं उपभोग में प्रतिद्वंद्वी होती हैं किंतु गैर-अपवर्जनीय होती हैं। उदाहरणार्थ, समुद्री मत्स्य क्षेत्र, चारागाह और भूमिगत जल। इनके अत्यधिक दोहन से 'साझा संपदा की त्रासदी' (Tragedy of the Commons) उत्पन्न होती है।

घ) क्लब वस्तुएं (Club Goods): ये वस्तुएं उपभोग में गैर-प्रतिद्वंद्वी होती हैं किंतु अपवर्जनीय होती हैं। जैसे टोल सड़कें, उपग्रह केबल टीवी और सिनेमा हॉल।

मुक्त सवार की समस्या (Free-Rider Problem)

सार्वजनिक वस्तुओं के संदर्भ में गैर-अपवर्जनशीलता की प्रकृति के कारण **मुक्त सवार की समस्या** उत्पन्न होती है। मुक्त सवार से आशय उस उपभोक्ता से है जो किसी सार्वजनिक सेवा का लाभ तो उठाता है, किंतु उसकी लागत वहन करने अथवा कर भुगतान करने में सहयोग नहीं करता। चूँकि किसी भी व्यक्ति को सेवा से बाहर नहीं किया जा सकता, अतः कोई भी निजी उत्पादक स्वेच्छा से इन वस्तुओं का निर्माण नहीं करता क्योंकि वह मूल्य वसूलने में असमर्थ होता है। इसी कारण सार्वजनिक वस्तुओं का प्रावधान केवल राज्य द्वारा अनिवार्य कराधान के माध्यम से ही संभव हो पाता है।

मेरिट वस्तुएं, डिमेरिट वस्तुएं और सार्वजनिक वस्तु में अंतर

मेरिट वस्तुओं (Merit Goods) की अवधारणा का प्रतिपादन रिचर्ड मसग्रेव ने किया था। ये वे वस्तुएं अथवा सेवाएं हैं जिन्हें सरकार समाज के प्रत्येक नागरिक के सर्वांगीण कल्याण हेतु आवश्यक मानती है, भले ही संबंधित व्यक्ति स्वयं उनकी उपयोगिता को पूर्ण रूप से न समझता हो अथवा उनका पूर्ण बाजार मूल्य चुकाने में असमर्थ हो।

अ) मेरिट वस्तुएं (Merit Goods): प्राथमिक शिक्षा, मूलभूत स्वास्थ्य सेवाएं, टीकाकरण, सुरक्षित पेयजल और स्वच्छ पोषण इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इन वस्तुओं में सकारात्मक बाह्यताएं (Positive Externalities) निहित होती हैं; अर्थात जब कोई व्यक्ति शिक्षित या स्वस्थ होता है, तो उसका लाभ केवल उसे नहीं, अपितु पूरे समाज

को मिलता है। बाजार प्रणाली इन वस्तुओं का उत्पादन सामाजिक आवश्यकता से कम मात्रा में करती है, अतः सरकार इन्हें या तो निःशुल्क अथवा भारी आर्थिक सहायता (सब्सिडी) देकर उपलब्ध कराती है।

ब) डिमेरिट वस्तुएं (Demerit Goods): ये वे वस्तुएं हैं जिनका उपभोग व्यक्तिगत और सामाजिक रूप से हानिकारक होता है, जैसे मदिरा, तंबाकू और नशीले पदार्थ। इनमें नकारात्मक बाह्यताएं (Negative Externalities) होती हैं। सरकार इन पर उच्च कर (सिन टैक्स) लगाकर अथवा इनके उत्पादन और वितरण को प्रतिबंधित करके इनके उपभोग को हतोत्साहित करती है।

स) सार्वजनिक वस्तु बनाम मेरिट वस्तु: सार्वजनिक वस्तुएं तकनीकी रूप से गैर-अपवर्जनीय होती हैं (रक्षा), जबकि मेरिट वस्तुएं अनिवार्यतः अपवर्जनीय हो सकती हैं (जैसे किसी निजी विद्यालय में शुल्क न देने पर प्रवेश रोका जा सकता है)। किंतु सरकार सामाजिक नीति के तहत मेरिट वस्तुओं को गैर-अपवर्जनीय बनाने का प्रयास करती है।

उपखंड b: कर राजस्व, प्रत्यक्ष कर, अप्रत्यक्ष कर, गैर-कर राजस्व स्रोत (शुल्क, जुर्माना, सार्वजनिक उपक्रमों के लाभांश)

कर का विधिक एवं आर्थिक स्वरूप

कर (Tax) संप्रभु राज्य द्वारा व्यक्तियों, संस्थाओं अथवा वस्तुओं पर लगाया जाने वाला एक अनिवार्य अंशदान (Compulsory Contribution) है, जिसका भुगतान न करना कानूनन दंडनीय अपराध है। कर की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि करदाता और राज्य के मध्य **प्रतिफल का कोई सीधा संबंध (Quid Pro Quo)** नहीं होता। इसका अर्थ है कि करदाता यह दावा नहीं कर सकता कि उसके द्वारा दिए गए कर के अनुपात में ही सरकार उसे विशिष्ट सेवाएं प्रदान करे। करों से एकत्रित धनराशि का उपयोग सामान्य लोक हित और प्रशासनिक कार्यों के संचालन हेतु किया जाता है।

करारोपण के सिद्धांत (Canons of Taxation)

एडम स्मिथ ने अपनी कृति 'वेल्थ ऑफ नेशंस' में करारोपण के चार सार्वभौमिक सिद्धांत प्रतिपादित किए थे, जो आधुनिक कर प्रणालियों के भी आधार स्तंभ हैं:

क) समानता का सिद्धांत (Canon of Equality): कर नागरिकों की भुगतान क्षमता (Ability to Pay) के अनुपात में लगाया जाना चाहिए, जिससे सामाजिक न्याय की प्राप्ति हो सके।

ख) निश्चितता का सिद्धांत (Canon of Certainty): कर भुगतान का समय, राशि, विधि और भुगतान का स्थान करदाता तथा कर प्रशासन दोनों के लिए पूर्णतः निश्चित और स्पष्ट होना चाहिए।

ग) सुविधा का सिद्धांत (Canon of Convenience): कर इस समय और इस रीति से वसूला जाना चाहिए जो करदाता के लिए सर्वाधिक सुविधाजनक हो; जैसे कृषि आय पर कर फसल कटाई के समय या वेतनभोगियों पर स्रोत पर कर कटौती (TDS)।

घ) मितव्ययिता का सिद्धांत (Canon of Economy): कर संग्रहण की प्रशासनिक लागत न्यूनतम होनी चाहिए ताकि वसूली गई राशि का अधिकतम भाग राज्य कोष में जमा हो सके।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने इसमें उत्पादकता, लोचशीलता (Elasticity) और सरलता के सिद्धांतों को भी समाहित किया है।

कराघात, करापात और कर विवर्तन

कराधान के आर्थिक विश्लेषण में तीन तकनीकी पारिभाषिक शब्दावलियों का अध्ययन अपरिहार्य है:

अ) कराघात (Impact of Tax): कर का प्रारंभिक मौद्रिक भार उस व्यक्ति पर पड़ता है जो विधि के अनुसार सबसे पहले सरकार को कर का भुगतान करने हेतु उत्तरदायी होता है।

ब) करापात (Incidence of Tax): कर का अंतिम मौद्रिक भार उस व्यक्ति पर पड़ता है जो अंततः उस कर को वहन करता है और जिसे वह किसी अन्य व्यक्ति पर हस्तांतरित नहीं कर सकता।

स) कर विवर्तन (Shifting of Tax): करदाता द्वारा कर के भार को मूल्य वृद्धि अथवा अन्य माध्यमों से किसी दूसरे व्यक्ति पर स्थानांतरित करने की प्रक्रिया कर विवर्तन कहलाती है। यदि कर का भार आगे की ओर क्रेता

पर डाला जाए, तो इसे अग्रवर्ती विवर्तन (Forward Shifting) कहते हैं; और यदि यह कच्चे माल के आपूर्तिकर्ता या श्रमिक की मजदूरी घटाकर पीछे धकेला जाए, तो इसे पश्चवर्ती विवर्तन (Backward Shifting) कहते हैं।

प्रत्यक्ष कर बनाम अप्रत्यक्ष कर

कराघात और करापात के संबंध के आधार पर करों को दो व्यापक संवर्गों में विभाजित किया जाता है:

विभाजन का मानदंड	**प्रत्यक्ष कर (Direct Tax)**	**अप्रत्यक्ष कर (Indirect Tax)**
कराघात एवं करापात	कराघात और करापात दोनों एक ही व्यक्ति पर पड़ते हैं।	कराघात एक व्यक्ति पर पड़ता है, किंतु करापात अंतिम उपभोक्ता पर।
कर विवर्तन की संभावना	कर का विवर्तन कानूनी और व्यावहारिक रूप से असंभव है।	कर का विवर्तन वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य के माध्यम से संभव है।
प्रकृति एवं सामाजिक प्रभाव	सामान्यतः प्रगतिशील (Progressive); धनी वर्ग पर अधिक दर से आरोपित।	सामान्यतः प्रतिगामी (Regressive); निर्धन और धनी दोनों पर समान भार।
मुद्रास्फीति पर प्रभाव	प्रयोज्य आय को कम करके मांग को नियंत्रित करता है (स्फीतिरोधी)।	वस्तुओं की कीमतें बढ़ाकर प्रत्यक्ष रूप से लागत-प्रेरित मुद्रास्फीति बढ़ाता है।
संग्रहण एवं प्रशासन	केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड (CBDT) द्वारा विनियमित।	केंद्रीय अप्रत्यक्ष कर और सीमा शुल्क बोर्ड (CBIC) द्वारा विनियमित।
प्रमुख उदाहरण	व्यक्तिगत आयकर, निगम कर, प्रतिभूति लेनदेन कर (STT)।	वस्तु एवं सेवा कर (GST), केंद्रीय उत्पाद शुल्क, सीमा शुल्क।

करारोपण की पद्धतियां

क) प्रगतिशील कर (Progressive Tax): आय में वृद्धि के साथ-साथ कर की दर में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। भारत में व्यक्तिगत आयकर इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। यह आय की असमानता को कम करता है।

ख) आनुपातिक कर (Proportional Tax): आय का स्तर चाहे जो भी हो, सभी आय वर्गों पर कर की दर समान रहती है।

ग) प्रतिगामी कर (Regressive Tax): आय में वृद्धि होने पर कर की प्रभावी दर घटती जाती है। अप्रत्यक्ष कर अपनी प्रकृति में प्रतिगामी होते हैं क्योंकि एक निर्धन व्यक्ति अपनी सीमित आय का एक बड़ा प्रतिशत उपभोग कर के रूप में चुकाता है।

wincompete

घ) अधोगामी कर (Degressive Tax): एक निश्चित आय सीमा तक कर की दर प्रगतिशील रूप से बढ़ती है, किंतु उस सीमा के बाद यह स्थिर (आनुपातिक) हो जाती है।

कर उत्प्लावकता और कर लोचशीलता

अ) कर उत्प्लावकता (Tax Buoyancy): यह सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में परिवर्तन के सापेक्ष कर राजस्व में होने वाले कुल परिवर्तन की संवेदनशीलता को मापती है। इसमें कर दरों में किए गए नीतिगत और विवेकाधीन परिवर्तनों का प्रभाव भी स्वतः सम्मिलित होता है। यदि कर उत्प्लावकता का मान एक से अधिक है, तो इसका अर्थ है कि अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर की तुलना में कर राजस्व अधिक तीव्र गति से बढ़ रहा है।

ब) कर लोचशीलता (Tax Elasticity): यह सकल घरेलू उत्पाद में परिवर्तन के प्रत्युत्तर में कर राजस्व के स्वतःस्फूर्त परिवर्तन को मापती है, जिसमें सरकार द्वारा किए गए किसी भी विवेकाधीन नीतिगत या दर परिवर्तन के प्रभाव को गणितीय रूप से निष्कासित कर दिया जाता है।

गैर-कर राजस्व स्रोत (Non-Tax Revenue Sources)

सरकार को करों के अतिरिक्त अन्य प्रशासनिक और व्यावसायिक गतिविधियों से जो नियमित आय प्राप्त होती है, उसे गैर-कर राजस्व कहा जाता है। इसके प्रमुख घटक निम्नलिखित हैं:

क) प्रशासनिक राजस्व:

शुल्क (Fees): सरकार द्वारा नागरिकों को प्रदान की जाने वाली विशिष्ट सेवाओं के बदले ली जाने वाली राशि, जिसमें प्रतिफल का प्रत्यक्ष तत्व होता है। जैसे न्यायालय शुल्क, पासपोर्ट शुल्क, ड्राइविंग लाइसेंस शुल्क।

लाइसेंस और परमिट (License and Permits): किसी विशिष्ट आर्थिक अथवा व्यावसायिक गतिविधि को संचालित करने की अनुमति प्रदान करने हेतु लगाया जाने वाला प्रभार।

जुर्माना और अर्थदंड (Fines and Penalties): कानूनों, प्रशासनिक आदेशों अथवा यातायात नियमों का उल्लंघन करने पर दंडात्मक रूप से वसूली जाने वाली राशि। इसका उद्देश्य आय अर्जन नहीं, बल्कि विधि का अनुपालन सुनिश्चित करना है।

राजगामी संपदा या एस् cheat (Escheat): जब किसी व्यक्ति की बिना किसी विधिक उत्तराधिकारी अथवा वैध वसीयत के मृत्यु हो जाती है, तो उसकी चल-अचल संपत्ति पर संप्रभु विधिक अधिकार के तहत राज्य का अधिकार हो जाता है।

ख) व्यावसायिक एवं वित्तीय राजस्व:

सार्वजनिक उपक्रमों का लाभ और लाभांश: केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (जैसे ONGC, NTPC, IOCL), राष्ट्रीयकृत बैंकों तथा भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) द्वारा अपनी वार्षिक अधिशेष आय से केंद्र सरकार को दिया जाने वाला लाभांश।

ब्याज प्राप्तियां: केंद्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों, केंद्र शासित प्रदेशों, विदेशी सरकारों तथा घरेलू सार्वजनिक उद्यमों को दिए गए संप्रभु ऋणों पर प्राप्त होने वाला ब्याज।

उपयोगकर्ता प्रभार (User Charges): सरकार द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली बुनियादी ढांचा सेवाओं (रेलवे, डाक सेवा, राष्ट्रीय राजमार्ग टोल, सिंचाई जल) के उपभोग के बदले ली जाने वाली राशि।

स्पेक्ट्रम नीलामी और प्राकृतिक संसाधनों से रॉयल्टी: दूरसंचार क्षेत्र हेतु 4G/5G स्पेक्ट्रम की नीलामी, खनिज ब्लॉकों और अपतटीय तेल क्षेत्रों के दोहन से प्राप्त एकमुश्त एवं नियमित रॉयल्टी।

बाह्य अनुदान एवं सहायता (Grants-in-Aid): विदेशी सरकारों अथवा अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं से प्राप्त होने वाली गैर-चुकौती योग्य वित्तीय सहायता, जिसे प्राकृतिक आपदाओं या विकास कार्यक्रमों हेतु प्रदान किया जाता है।

खंड B: लोक व्यय एवं लोक ऋण

उपखंड a: राजस्व व्यय बनाम पूंजीगत व्यय, विकासात्मक बनाम गैर-विकासात्मक व्यय, योजनागत और गैर-योजनागत व्यय का ऐतिहासिक संदर्भ

लोक व्यय का सैद्धांतिक आधार एवं वैगनर का नियम

लोक व्यय से आशय केंद्र, राज्य अथवा स्थानीय सत्ताओं द्वारा समाज की सामूहिक आवश्यकताओं की पूर्ति, आर्थिक विकास और प्रशासनिक संचालन हेतु किए जाने वाले व्यय से है। उन्नीसवीं शताब्दी के जर्मन अर्थशास्त्री एडोल्फ वैगनर ने 'राज्य की बढ़ती गतिविधियों का नियम' (Wagner's Law of Increasing State Activities) प्रतिपादित किया था। इस सिद्धांत के अनुसार, जैसे-जैसे किसी देश में आर्थिक विकास और औद्योगिकीकरण का स्तर बढ़ता है, वैसे-वैसे सार्वजनिक व्यय का अनुपात सकल घरेलू उत्पाद की तुलना में अधिक तीव्र गति से बढ़ता है। इसके मुख्य कारणों में कानून-व्यवस्था की जटिलता, शहरीकरण का विस्तार, कल्याणकारी राज्य की प्रतिबद्धताएं तथा बड़े पैमाने पर सार्वजनिक अवसंरचना का निर्माण सम्मिलित हैं। दूसरी ओर, पीकॉक और वाइजमैन ने विस्थापन प्रभाव (Displacement Effect) का सिद्धांत दिया, जिसके अनुसार युद्ध या वित्तीय संकट जैसी आपात स्थितियों में सार्वजनिक व्यय का स्तर स्थायी रूप से उच्च स्तर पर स्थापित हो जाता है।

राजस्व व्यय बनाम पूंजीगत व्यय

बजटीय लेखांकन के दृष्टिकोण से सार्वजनिक व्यय को दो संवैधानिक संवर्गों में विभाजित किया जाता है:

वर्गीकरण का आधार	राजस्व व्यय (Revenue Expenditure)	पूंजीगत व्यय (Capital Expenditure)
परिसंपत्ति और देयता पर प्रभाव	न तो किसी भौतिक परिसंपत्ति का निर्माण करता है और न ही वित्तीय देयताओं में कमी लाता है।	या तो नई उत्पादक भौतिक परिसंपत्तियों का सृजन करता है अथवा वित्तीय देयताओं को घटाता है।
प्रकृति एवं आवधिकता	यह प्रकृति में आवर्ती (Recurring) होता है और प्रशासनिक संचालन हेतु निरंतर अनिवार्य है।	यह प्रकृति में गैर-आवर्ती (Non-recurring) होता है और दीर्घकालिक निवेश का रूप लेता है।
आर्थिक प्रभाव	तात्कालिक उपभोग और मांग को बढ़ाता है, किंतु दीर्घकालिक उत्पादन क्षमता का विस्तार नहीं करता।	अर्थव्यवस्था की पूंजीगत क्षमता, अवसंरचना और उत्पादकता को दीर्घकाल तक बढ़ाता है।

wincompete

गुणक प्रभाव (Multiplier Effect)	इसका राजकोषीय गुणक अपेक्षाकृत कम (लगभग शून्य दशमलव नौ से एक) होता है।	इसका राजकोषीय गुणक अत्यधिक उच्च (लगभग दो दशमलव पांच से तीन दशमलव दो) होता है।
व्यय के प्रमुख घटक	सरकारी कर्मचारियों का वेतन, पेंशन, ऋणों पर ब्याज भुगतान, सब्सिडी, रक्षा सेवाओं का रख-रखाव।	सड़कों, पुलों, बंदरगाहों, विद्यालयों का निर्माण, मशीनरी की खरीद, राज्यों को दिए गए ऋण, बाह्य ऋणों की मूल राशि का पुनर्भुगतान।

प्रभावी पूंजीगत व्यय (Effective Capital Expenditure)
राजकोषीय विश्लेषण में कई बार केंद्र सरकार द्वारा राज्यों अथवा स्थानीय निकायों को 'पूंजीगत परिसंपत्तियों के सृजन हेतु अनुदान' (Grants for Creation of Capital Assets) प्रदान किए जाते हैं। यद्यपि लेखांकन नियमों के अनुसार केंद्र के बहीखाते में यह व्यय 'राजस्व व्यय' के रूप में दर्ज होता है, किंतु इसके द्वारा वास्तविक धरातल पर विद्यालय, ग्रामीण सड़कें अथवा अस्पताल जैसी स्थायी परिसंपत्तियां निर्मित होती हैं। अतः इस प्रकार के अनुदानों को केंद्र के शुद्ध पूंजीगत व्यय में जोड़कर **प्रभावी पूंजीगत व्यय** की गणना की जाती है, जो अर्थव्यवस्था में वास्तविक परिसंपत्ति निर्माण की गति को प्रदर्शित करता है।

विकासात्मक बनाम गैर-विकासात्मक व्यय
क) विकासात्मक व्यय (Developmental Expenditure): यह वह व्यय है जो सीधे तौर पर देश के आर्थिक, औद्योगिक और सामाजिक विकास को गति प्रदान करता है। इसे दो उप-भागों में वर्गीकृत किया जाता है:

आर्थिक सेवाएं: कृषि, ग्रामीण विकास, उद्योग, ऊर्जा, परिवहन, संचार तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी पर किया जाने वाला व्यय।

सामाजिक एवं सामुदायिक सेवाएं: शिक्षा, चिकित्सा, जनस्वास्थ्य, श्रम कल्याण, सामाजिक सुरक्षा और पोषण पर किया जाने वाला व्यय।

ख) गैर-विकासात्मक व्यय (Non-Developmental Expenditure): यह वह व्यय है जो राज्य की संप्रभु प्रशासनिक व्यवस्था को बनाए रखने हेतु अपरिहार्य होता है, यद्यपि यह सीधे तौर पर किसी उत्पादक परिसंपत्ति का निर्माण नहीं करता। इसे 'अनिवार्य व्यय' भी कहा जाता है। इसके मुख्य घटक हैं:

सामान्य सेवाएं: राष्ट्रपति, संसद, न्यायपालिका, पुलिस और कर प्रशासन का संचालन।

रक्षा सेवाएं: देश की बाह्य सुरक्षा और सशस्त्र बलों का संचालन व्यय।

ऋण सेवाएं: पूर्ववर्ती संप्रभु ऋणों पर अनिवार्य ब्याज का भुगतान (Interest Payments)।

वित्तीय सहायता: गैर-विकासोन्मुख सब्सिडी और पेंशन भुगतान।

योजनागत एवं गैर-योजनागत व्यय का ऐतिहासिक संदर्भ
वर्ष २०१७-१८ के आम बजट से पूर्व भारत में व्यय को योजनागत (Plan) और गैर-योजनागत (Non-Plan) श्रेणियों में विभाजित करने की एक ऐतिहासिक व्यवस्था विद्यमान थी।
अ) ऐतिहासिक पृष्ठभूमि: वर्ष १९५० में योजना आयोग के गठन के पश्चात पंचवर्षीय योजनाओं के तहत क्रियान्वित होने वाली विकास परियोजनाओं पर किए जाने वाले व्यय को योजनागत व्यय कहा जाता था। इसके

विपरीत, सामान्य प्रशासनिक कार्यों, रक्षा, कानून व्यवस्था तथा पिछली पूरी हो चुकी योजनाओं के संपत्तियों के रख-रखाव पर होने वाले व्यय को गैर-योजनागत व्यय के रूप में वर्गीकृत किया जाता था।
ब) व्यवस्था की विसंगतियां: व्यवहार में यह धारणा बन गई थी कि योजनागत व्यय स्वभावतः 'अच्छा और उत्पादक' होता है तथा गैर-योजनागत व्यय 'बुरा और अनुत्पादक' होता है। इसके कारण जब कोई पंचवर्षीय योजना समाप्त हो जाती थी, तो उसके तहत बने अस्पतालों और विद्यालयों के रख-रखाव का व्यय गैर-योजनागत मद में चला जाता था, जिसे बजट में उपेक्षित कर दिया जाता था। इस कृत्रिम विभाजन से वित्तीय आवंटन विकृत होता था।
स) सी. रंगराजन समिति की सिफारिश और व्यवस्था का उन्मूलन: डॉ. सी. रंगराजन की अध्यक्षता में गठित 'सार्वजनिक व्यय के कुशल प्रबंधन संबंधी उच्चस्तरीय समिति' ने इस विभाजन को पूर्णतः समाप्त करने की दृढ़ संस्तुति की। समिति के अनुसार, यह विभाजन बजट की समग्रता और प्राथमिकताओं को बाधित करता है। परिणामस्वरूप, वित्तीय वर्ष २०१७-१८ के बजट से इस वर्गीकरण को पूरी तरह समाप्त कर दिया गया तथा वैश्विक मानकों के अनुरूप व्यय को केवल **राजस्व व्यय** और **पूंजीगत व्यय** के रूप में संहिताबद्ध किया गया।

उपखंड b: आंतरिक ऋण, बाह्य ऋण, ऋण वहनीयता, सार्वजनिक ऋण के प्रबंधन के सिद्धांत और देयताएं

सार्वजनिक ऋण का स्वरूप एवं संवैधानिक उपबंध

सार्वजनिक ऋण (Public Debt) से आशय सरकार द्वारा अपनी चालू आय (राजस्व) की तुलना में अधिक व्यय करने पर उत्पन्न वित्तीय अंतर को पाटने हेतु लिए गए संप्रभु ऋणों के संचयी योग से है। भारतीय संविधान में सार्वजनिक ऋण के संबंध में सुस्पष्ट विधिक उपबंध किए गए हैं:
क) अनुच्छेद २९२: यह उपबंध भारत की संसद को यह अधिकार देता है कि वह विधि द्वारा समय-समय पर भारत की संचित निधि (Consolidated Fund of India) की प्रत्याभूति पर केंद्र सरकार द्वारा ली जाने वाली उधारी की सीमाएं (Borrowing Limits) निर्धारित कर सकती है।
ख) अनुच्छेद २९३: यह राज्यों की कार्यपालिका शक्ति को राज्य की संचित निधि की साख पर राज्य की सीमाओं के भीतर ऋण लेने की शक्ति प्रदान करता है। किंतु अनुच्छेद २९३(३) यह अनिवार्य विधिक शर्त लगाता है कि यदि किसी राज्य पर केंद्र सरकार का कोई पूर्ववर्ती ऋण बकाया है, तो वह राज्य केंद्र की पूर्व सहमति के बिना कोई नया ऋण नहीं ले सकता।

आंतरिक ऋण बनाम बाह्य ऋण

ऋण के स्रोतों और भौगोलिक क्षेत्राधिकार के आधार पर संप्रभु देयताओं को दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जाता है:

तुलना का आधार	आंतरिक ऋण (Internal Debt)	बाह्य ऋण (External Debt)
ऋणदाता की प्रकृति	देश की भौगोलिक सीमा के भीतर स्थित नागरिक, वाणिज्यिक बैंक, वित्तीय संस्थाएं और केंद्रीय बैंक।	विदेशी सरकारें, अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थान (विश्व बैंक, IMF, ADB) अथवा विदेशी वाणिज्यिक बैंक।
मुद्रा का स्वरूप	पूर्णतः घरेलू मुद्रा (भारतीय रुपया) में संविदाकृत और देय होता है।	सामान्यतः विदेशी मुद्राओं (अमेरिकी डॉलर, यूरो, जापानी येन) में संविदाकृत होता है।

wincompete

राष्ट्रीय आय पर प्रभाव	यह केवल देश के भीतर आय और संपदा का पुनर्वितरण करता है; कुल राष्ट्रीय आय नहीं घटती।	ऋण और ब्याज के भुगतान से देश के वास्तविक संसाधनों का विदेशों में बहिर्वाह (Drain) होता है।
विनिमय दर का जोखिम	विनिमय दर के उतार-चढ़ाव का कोई जोखिम नहीं होता।	घरेलू मुद्रा के अवमूल्यन की स्थिति में ऋण चुकाने की वास्तविक लागत में तीव्र वृद्धि का जोखिम।
भारतीय संदर्भ में स्थिति	भारत के कुल संप्रभु ऋण का लगभग ९५ प्रतिशत भाग आंतरिक ऋण के रूप में सुरक्षित है।	भारत का संप्रभु बाह्य ऋण कुल संप्रभु देनदारियों का मात्र लगभग ५ प्रतिशत है, जो वित्तीय सुरक्षा प्रदान करता है।

आंतरिक ऋण के प्रमुख विनियामक उपकरण

अ) दिनांकित सरकारी प्रतिभूतियां (Dated Government Securities): ये केंद्र सरकार द्वारा दीर्घकालिक वित्तीय आवश्यकताएं पूरी करने हेतु जारी किए जाने वाले बॉन्ड हैं, जिनकी परिपक्वता अवधि सामान्यतः पांच वर्ष से लेकर चालीस वर्ष तक होती है। इन पर निश्चित कूपन दर (ब्याज) देय होता है।

ब) ट्रेज़री बिल (Treasury Bills): केंद्र सरकार द्वारा अपनी अल्पकालिक नकदी विसंगतियों को दूर करने हेतु जारी की जाने वाली शून्य-कूपन प्रतिभूतियां, जो ९१ दिन, १८२ दिन और ३६४ दिन की परिपक्वता अवधि के लिए बट्टे (Discount) पर जारी की जाती हैं तथा सममूल्य पर भुनाई जाती हैं।

स) अर्थोपाय अग्रिम (Ways and Means Advances - WMA): भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, १९३४ की धारा १७(५) के तहत आरबीआई द्वारा केंद्र और राज्य सरकारों को उनकी प्राप्तियों और भुगतानों के मध्य अस्थायी असंतुलन को पाटने हेतु दिया जाने वाला अल्पकालिक अग्रिम, जिसे अधिकतम ९० दिनों के भीतर चुकाना अनिवार्य होता है।

द) राज्य विकास ऋण (State Development Loans - SDL): राज्य सरकारों द्वारा अपनी विकासात्मक परियोजनाओं और राजकोषीय घाटे की पूर्ति हेतु भारतीय रिजर्व बैंक के माध्यम से खुले बाजार में जारी किए जाने वाले दिनांकित बॉन्ड।

सार्वजनिक देयताएं (Public Liabilities) की समग्र संरचना

भारत सरकार की कुल संप्रभु देयताओं को तीन विशिष्ट शीर्षों के अंतर्गत विभाजित किया जाता है:

क) संचित निधि पर आंतरिक ऋण भारित: इसके अंतर्गत बाजार ऋण, ट्रेजरी बिल, आरबीआई से उधारी और विशेष प्रतिभूतियां आती हैं।

ख) बाह्य ऋण: बहुपक्षीय और द्विपक्षीय संप्रभु ऋण।

ग) 'लोक लेखा' के अंतर्गत देयताएं (Public Account Liabilities): यह तकनीकी रूप से संचित निधि का भाग नहीं है, बल्कि सरकार केवल एक ट्रस्टी अथवा बैंकर के रूप में इन निधियों को अपने पास रखती है। इसके अंतर्गत राष्ट्रीय लघु बचत निधि (NSSF - जैसे पीपीएफ, डाकघर जमा), भविष्य निधि (Provident Funds), पेंशन निधियां तथा विशेष आरक्षित निधियां सम्मिलित होती हैं।

ऋण वहनीयता की अवधारणा और डोमर का नियम

ऋण वहनीयता (Debt Sustainability) से अभिप्राय सरकार की उस वित्तीय क्षमता से है जिसके तहत वह भविष्य में बिना किसी असाधारण समायोजन, चूक (Default) अथवा मुद्रा मुद्रण के अपने वर्तमान और भावी ऋण दायित्वों (मूलधन एवं ब्याज) का सुचारु रूप से भुगतान कर सके।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री एव्सी डोमर ने ऋण वहनीयता की एक अत्यंत महत्वपूर्ण गणितीय शर्त प्रतिपादित की, जिसे **डोमर का नियम (Domar's Condition)** कहा जाता है। इस नियम के अनुसार:

> यदि अर्थव्यवस्था की वास्तविक संवृद्धि दर (Real GDP Growth Rate - 'g') वास्तविक ब्याज दर (Real Interest Rate - 'r') से अधिक है, अर्थात **(g - r > 0)**, तो सार्वजनिक ऋण-जीडीपी अनुपात समयावधि के साथ स्वतः स्थिर अथवा कम होता जाएगा, बशर्ते प्राथमिक घाटा नियंत्रण से बाहर न हो। इसे **अनुकूल ब्याज दर-संवृद्धि अंतर (Growth-Interest Rate Differential)** कहा जाता है।
>
> इसके विपरीत, यदि ब्याज दर संवृद्धि दर से अधिक हो जाती है (r > g), तो सरकार को केवल पुराने ऋणों का ब्याज चुकाने हेतु नए ऋण लेने पड़ते हैं, जिससे अर्थव्यवस्था **ऋण जाल (Debt Trap)** में फंस जाती है।

सार्वजनिक ऋण प्रबंधन के मार्गदर्शक सिद्धांत

सार्वजनिक ऋण का प्रबंधन राजकोषीय नीति का एक अत्यंत संवेदनशील आयाम है। एक कुशल ऋण प्रबंधन रणनीति निम्नलिखित मूल सिद्धांतों पर आधारित होती है:

क) न्यूनतम लागत का सिद्धांत (Low Cost): संप्रभु ऋण इस प्रकार और ऐसे उपकरणों से जुटाया जाना चाहिए जिससे राजकोष पर ब्याज अदायगी का दीर्घकालिक भार न्यूनतम रहे।

ख) जोखिम न्यूनीकरण (Risk Mitigation): ऋण पोर्टफोलियो में विनिमय दर जोखिम (मुद्रा अवमूल्यन), पुनर्वित्त जोखिम (Refinancing Risk) और ब्याज दर अस्थिरता के जोखिम को न्यूनतम करना। इसके लिए अल्पकालिक ऋणों के स्थान पर दीर्घकालिक घरेलू ऋणों को प्राथमिकता दी जाती है।

ग) घरेलू बाजार का विकास (Market Development): सरकारी प्रतिभूतियों के द्वितीयक बाजार को तरल, पारदर्शी और व्यापक बनाना ताकि संस्थागत और खुदरा निवेशक आसानी से भाग ले सकें।

घ) संस्थागत स्वायत्तता: विश्व के अधिकांश विकसित देशों की भांति भारत में भी संप्रभु ऋण प्रबंधन को केंद्रीय बैंक से पृथक करके एक स्वतंत्र **सार्वजनिक ऋण प्रबंधन एजेंसी (Public Debt Management Agency - PDMA)** के गठन की सिफारिश डॉ. वाई.वी. रेड्डी समिति और न्यायमूर्ति श्रीकृष्ण की अध्यक्षता वाले वित्तीय क्षेत्र विधायी सुधार आयोग (FSLRC) द्वारा की गई है, ताकि मौद्रिक नीति और राजकोषीय नीति के हितों के टकराव को रोका जा सके।

एन.के. सिंह समिति और ऋण-जीडीपी अनुपात के मानदंड

वर्ष २०१६ में केंद्र सरकार ने राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबंधन (FRBM) अधिनियम, २००३ की समीक्षा हेतु **एन.के. सिंह की अध्यक्षता में FRBM समीक्षा समिति** का गठन किया। समिति ने वर्ष २०१७ में प्रस्तुत अपनी युगांतरकारी रिपोर्ट में पारंपरिक 'राजकोषीय घाटे' के स्थान पर **'ऋण-जीडीपी अनुपात' (Debt-to-GDP Ratio)** को राजकोषीय नीति का मुख्य लंगर (Anchor) बनाने की सिफारिश की।

समिति द्वारा प्रस्तुत प्रमुख विनियामक लक्ष्य निम्नलिखित थे:

अ) सामान्य सरकारी ऋण लक्ष्य: वित्तीय वर्ष २०२३ तक केंद्र और राज्यों का संयुक्त ऋण-जीडीपी अनुपात घटाकर **६० प्रतिशत** के स्तर पर लाया जाना चाहिए।

ब) आनुपातिक विभाजन: कुल ६० प्रतिशत के लक्ष्य में से **केंद्र सरकार हेतु ४० प्रतिशत** तथा **समस्त राज्य सरकारों हेतु संयुक्त रूप से २० प्रतिशत** का ऋण-जीडीपी अनुपात निर्धारित किया गया।

स) प्राथमिक घाटे पर बल: समिति ने राजकोषीय घाटे को धीरे-धीरे घटाकर जीडीपी के २.५ प्रतिशत पर लाने तथा प्राथमिक घाटे को शून्य करने की अनुशंसा की।

द) एस्केप क्लॉज (Escape Clause): राष्ट्रीय सुरक्षा, युद्ध, गंभीर प्राकृतिक आपदा अथवा कृषि और आर्थिक संवृद्धि में तीव्र गिरावट जैसी असाधारण परिस्थितियों में सरकार को राजकोषीय घाटे के लक्ष्य से अधिकतम शून्य दशमलव पांच प्रतिशत (०.५%) तक के विचलन की अनुमति दी गई, बशर्ते इसके आधारों को संसद में स्पष्ट किया जाए।

उपखंड c: राजकोषीय समेकन, घाटा मुद्रीकरण और क्राउडिंग-आउट प्रभाव

राजकोषीय समेकन (Fiscal Consolidation) की अवधारणा

राजकोषीय समेकन सरकार द्वारा राजकोषीय घाटे और संचित संप्रभु ऋण को कम करने हेतु अपनाई जाने वाली सुनियोजित नीतिगत रूपरेखा है। यह दोहरे मोर्चों पर संचालित होती है: कर राजस्व में अभिवृद्धि (कर आधार का विस्तार, कर चोरी पर अंकुश, अनुपालन में सुधार) तथा गैर-विकासात्मक एवं अनुत्पादक सार्वजनिक व्यय में कटौती (अनुत्पादक सब्सिडियों का युक्तियुक्तकरण, डिजिटलीकरण द्वारा लीकेज की रोकथाम)। इसका मुख्य उद्देश्य वित्तीय स्थिरता बनाए रखना, मुद्रास्फीति को नियंत्रित करना और वैश्विक साख रेटिंग (Credit Rating) में सुधार करना है।

घाटा मुद्रीकरण (Monetization of Deficit)

जब सरकार अपने व्यय और राजस्व के अंतर (राजकोषीय घाटे) को पाटने के लिए केंद्रीय बैंक से सीधे नई मुद्रा जारी करवाती है अथवा केंद्रीय बैंक को अपनी तदर्थ ट्रेजरी बिल (Ad-hoc Treasury Bills) बेचती है, तो इसे घाटे का मुद्रीकरण अथवा **घाटे की वित्तव्यवस्था (Deficit Financing)** कहा जाता है।

> *ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य:* भारत में १९९० के दशक तक यह एक स्वचालित प्रक्रिया थी, जिसके कारण अत्यधिक मुद्रा आपूर्ति उत्पन्न होती थी और देश लगातार दोहरे अंकों की मुद्रास्फीति से ग्रस्त रहता था।
>
> *रंगराजन-मनमोहन सिंह ऐतिहासिक समझौता (१९९४ और १९९७):* इस स्वचालित व्यवस्था को समाप्त करने हेतु १९९४ में एक ऐतिहासिक समझौता हुआ और अंततः वर्ष १९९७ से तदर्थ ट्रेजरी बिलों को पूर्णतः बंद कर दिया गया। इसके स्थान पर केवल अल्पकालिक नकदी प्रवाह के प्रबंधन हेतु अर्थोपाय अग्रिम (WMA) की व्यवस्था लागू की गई।
>
> *FRBM अधिनियम का विधिक प्रतिबंध:* FRBM अधिनियम, २००३ की धारा ५ के तहत यह अनिवार्य विधिक प्रतिबंध लगाया गया कि भारतीय रिजर्व बैंक केंद्र सरकार की प्रतिभूतियों के प्राथमिक निर्गम (Primary Issue) में सीधे भाग नहीं ले सकता; वह केवल द्वितीयक बाजार में खुले बाजार की क्रियाओं (OMO) के माध्यम से तरलता का प्रबंधन कर सकता है। केवल युद्ध अथवा असाधारण संकट के समय ही प्रत्यक्ष मुद्रीकरण की छूट दी जा सकती है।

क्राउडिंग-आउट प्रभाव (Crowding-Out Effect)

जब सरकार अपने विशाल राजकोषीय घाटे की पूर्ति के लिए घरेलू वित्तीय बाजार से बड़े पैमाने पर ऋण जुटाती है, तो अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र के निवेश हेतु उपलब्ध ऋण योग्य निधियों (Loanable Funds) की कमी हो जाती है।

इस प्रक्रिया की आर्थिक गतिकी निम्नलिखित चरणों में कार्य करती है:
क) सरकार बाजार से ऋण की मांग बढ़ाती है।
ख) ऋण की अत्यधिक मांग के कारण वित्तीय प्रणाली में वास्तविक ब्याज दरें (Interest Rates) बढ़ जाती हैं।
ग) उच्च ब्याज दरों के कारण निजी उद्यमियों और कॉर्पोरेट घरानों के लिए पूंजी की लागत (Cost of Capital) अत्यधिक महंगी हो जाती है।
घ) परिणामस्वरूप, निजी क्षेत्र अपनी नई निवेश परियोजनाओं को स्थगित अथवा रद्द कर देता है।

सार्वजनिक उधारी के कारण निजी निवेश में होने वाली इस संकुचनकारी प्रक्रिया को **क्राउडिंग-आउट प्रभाव** कहा जाता है। इसके विपरीत, यदि सरकारी पूंजीगत व्यय से आधारभूत अवसंरचना (सड़क, बंदरगाह, बिजली) का विस्तार होता है, जिससे निजी क्षेत्र की उत्पादकता बढ़ती है और निजी निवेश आकर्षित होता है, तो उसे **क्राउडिंग-इन प्रभाव (Crowding-In Effect)** की संज्ञा दी जाती है। अतः सरकार के सार्वजनिक व्यय की संरचना ही यह निर्धारित करती है कि अर्थव्यवस्था में क्राउडिंग-आउट होगा अथवा क्राउडिंग-इन।

अध्याय 3: बजट निर्माण प्रक्रिया, राजकोषीय घाटे और एफआरबीएम अधिनियम

खंड A: बजट निर्माण एवं विधायी प्रक्रिया

उपखंड a: संवैधानिक प्रावधान, बजट चक्र, वित्त मंत्रालय की भूमिका, विभिन्न विभागों से अनुमान संकलन

संवैधानिक रूपरेखा एवं अधिदेश

भारतीय संविधान के मूल पाठ में 'बजट' शब्द का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है। इसके स्थान पर संविधान के अनुच्छेद 112 के अंतर्गत **वार्षिक वित्तीय विवरण** (Annual Financial Statement) शब्दावली को संहिताबद्ध किया गया है। अनुच्छेद 112 (1) के अनुसार, भारत का राष्ट्रपति प्रत्येक वित्तीय वर्ष (जो 1 अप्रैल से 31 मार्च तक प्रभावी रहता है) के संबंध में संसद के दोनों सदनों के समक्ष भारत सरकार की उस वर्ष के लिए अनुमानित प्राप्तियों और व्यय का विवरण रखवाएगा।

संवैधानिक दृष्टि से बजट निर्माण एवं प्रस्तुतीकरण से जुड़े मुख्य अनुच्छेद निम्नलिखित हैं:

अनुच्छेद 112: संघ के वार्षिक वित्तीय विवरण की रूपरेखा, जिसमें संचित निधि पर भारित व्यय तथा संचित निधि से किए जाने वाले अन्य व्यय के आकलनों को पृथक-पृथक दर्शाना अनिवार्य किया गया है।

अनुच्छेद 113: संसद में प्राक्कलनों के संबंध में प्रक्रिया, जिसके तहत संचित निधि पर भारित व्यय मतदान के लिए नहीं रखे जाते, जबकि अन्य व्यय अनुदानों की मांगों के रूप में लोक सभा की स्वीकृति हेतु प्रस्तुत किए जाते हैं।

अनुच्छेद 114: संचित निधि से धन की विधिक निकासी हेतु विनियोग विधेयक का अनिवार्य पारण।

अनुच्छेद 115: अनुपूरक, अतिरिक्त या अधिक अनुदानों की संवैधानिक व्यवस्था।

अनुच्छेद 116: लेखानुदान (Vote on Account), प्रत्ययानुदान (Vote of Credit) और अपवादानुदान (Exceptional Grant)।

अनुच्छेद 117: वित्त विधेयकों (Financial Bills) के संबंध में विशेष उपबंध।

अनुच्छेद 265: विधि के प्राधिकार के बिना किसी कर का न तो अधिरोपण किया जाएगा और न ही संग्रहण।

बजट चक्र की कार्यप्रणाली

बजट चक्र एक सतत, बहु-चरणीय प्रशासनिक और विधायी चक्र है, जो लगभग नौ से दस माह की अवधि में पूर्ण होता है। इसे चार सुस्पष्ट चरणों में विभक्त किया जाता है:

क) बजट की तैयारी और संकलन (मंत्रालयों एवं वित्त मंत्रालय के स्तर पर)।

ख) संसद द्वारा विधायी विचार, बहस एवं पारण।

ग) कार्यपालिका द्वारा बजट का क्रियान्वयन एवं आबंटन।

घ) वित्तीय औचित्य की विधायी संवीक्षा (सीएजी तथा संसदीय वित्तीय समितियों द्वारा)।

wincompete

वर्ष 2017 से बजट चक्र की तिथियों में ऐतिहासिक संरचनात्मक परिवर्तन किए गए। इसके अंतर्गत दो प्रमुख सुधार लागू हुए:

अ) 92 वर्ष पुरानी औपनिवेशिक प्रथा को समाप्त करते हुए विवेक देबरॉय समिति की सिफारिशों के आधार पर रेल बजट का आम बजट में पूर्ण विलय।

ब) बजट प्रस्तुति की तिथि को फरवरी के अंतिम कार्यदिवस से बदलकर 1 फरवरी किया जाना, जिससे 1 अप्रैल से प्रारंभ होने वाले नवीन वित्तीय वर्ष से पूर्व ही संपूर्ण बजटीय प्रक्रिया संसद द्वारा पारित कराई जा सके और अंतरिम लेखानुदान की आवश्यकता न रहे।

वित्त मंत्रालय की केंद्रीय भूमिका एवं बजट प्रभाग

बजट निर्माण की धुरी वित्त मंत्रालय का **आर्थिक कार्य विभाग** (Department of Economic Affairs - DEA) है। इस विभाग के अंतर्गत स्थापित **बजट प्रभाग** (Budget Division) समस्त प्रक्रिया का समन्वय, एकीकरण और दस्तावेजीकरण करता है। वित्त मंत्रालय के अन्य चार विभाग भी इसमें सक्रिय योगदान देते हैं:

क) व्यय विभाग: विभिन्न मंत्रालयों के पूंजीगत और राजस्व व्यय की प्राथमिकताओं का मूल्यांकन करता है तथा निधियों के आबंटन की अधिकतम सीमा निर्धारित करता है।

ख) राजस्व विभाग: केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड (CBDT) और केंद्रीय अप्रत्यक्ष कर एवं सीमा शुल्क बोर्ड (CBIC) के माध्यम से आगामी वर्ष के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कर संग्रहण के अग्रिम अनुमान तैयार करता है।

ग) वित्तीय सेवाएं विभाग: सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों, वित्तीय संस्थानों और सामाजिक सुरक्षा योजनाओं की वित्तीय देनदारियों का आकलन करता है।

घ) दीपम (DIPAM): रणनीतिक विनिवेश और सार्वजनिक परिसंपत्तियों के मौद्रीकरण से प्राप्त होने वाली गैर-ऋण पूंजीगत प्राप्तियों का अनुमान निर्धारित करता है।

विभिन्न विभागों से अनुमान संकलन की प्रक्रिया

बजट निर्माण का व्यावहारिक कार्य वित्तीय वर्ष के प्रारंभ होने से लगभग सात माह पूर्व, अर्थात सितंबर माह में औपचारिक रूप से प्रारंभ होता है। प्रक्रिया का चरणबद्ध अनुक्रम निम्नलिखित है:

क) बजट परिपत्र जारी होना: वित्त मंत्रालय का बजट प्रभाग सितंबर के आरंभ में समस्त केंद्रीय मंत्रालयों, विभागों, स्वायत्त निकायों और केंद्र शासित प्रदेशों को विस्तृत **बजट परिपत्र** (Budget Circular) जारी करता है।

ख) वित्तीय प्राक्कलनों का वर्गीकरण: मंत्रालयों द्वारा व्यय अनुमानों को दो प्राथमिक श्रेणियों में संकलित किया जाता है—राजस्व व्यय (संस्थापन व्यय, वेतन, पेंशन, अनुरक्षण) और पूंजीगत व्यय (अवसंरचना, परिसंपत्ति निर्माण, ऋण अदायगी)।

ग) व्यय की संवीक्षा बैठकें: अक्टूबर से नवंबर के मध्य व्यय सचिव और विभिन्न प्रशासनिक मंत्रालयों के वित्तीय सलाहकारों (Financial Advisors) के मध्य पूर्व-बजट बैठकें आयोजित होती हैं। इन बैठकों में संबंधित विभागों द्वारा पिछले वर्ष किए गए वास्तविक व्यय तथा संशोधित अनुमानों (RE) के आधार पर आगामी वर्ष के बजट अनुमानों (BE) की सीमा निर्धारित की जाती है।

घ) शीर्ष स्तर पर अंतिम समायोजन: दिसंबर और जनवरी माह में वित्त मंत्री, मुख्य आर्थिक सलाहकार और प्रधानमंत्री के मध्य व्यापक विचार-विमर्श होता है, जहां राजकोषीय घाटे के अनुमत स्तर को ध्यान में रखते हुए विकासात्मक प्राथमिकताओं के अनुसार अंतिम आबंटन तय किया जाता है।

ङ) मुद्रण एवं गोपनीयता: बजट प्रस्तुति से लगभग दस दिन पूर्व वित्त मंत्रालय के प्रांगण में पारंपरिक **हलवा समारोह** आयोजित किया जाता है, जिसके पश्चात बजट से जुड़े समस्त अधिकारी और कर्मचारी पूर्ण गोपनीयता (Lock-in) के अंतर्गत बाह्य संपर्क से पूरी तरह अलग हो जाते हैं। यह स्थिति वित्त मंत्री द्वारा संसद में बजट भाषण समाप्त होने तक बनी रहती है।

उपखंड b: संचित निधि, लोक लेखा, आकस्मिकता निधि, विनियोग विधेयक, वित्त विधेयक, अनुदान मांगें, गिलोटिन

सरकारी निधियों का त्रि-स्तरीय विन्यास

भारतीय संविधान केंद्र सरकार के वित्तीय लेन-देन के लिए तीन स्वतंत्र निधियों की विधिक व्यवस्था करता है:

विधिक निधि	संवैधानिक प्रावधान	निधि की प्रकृति एवं संघटन	निकासी की विधिक प्रक्रिया
भारत की संचित निधि (Consolidated Fund of India)	अनुच्छेद 266 (1)	सरकार को प्राप्त समस्त राजस्व, ट्रेजरी बिलों व अर्थोपाय अग्रिमों से लिए गए ऋण तथा ऋणों की अदायगी से प्राप्त समस्त धन।	संसद द्वारा पारित विधायी अधिनियम (विनियोग विधेयक) के बिना एक रुपया भी नहीं निकाला जा सकता।
भारत का लोक लेखा (Public Account of India)	अनुच्छेद 266 (2)	भविष्य निधि (PF), डाकघर बचत जमा, न्यायिक निक्षेप और विभागीय अग्रिम जैसी निधियां, जहां सरकार केवल एक न्यासी (Trustee/Banker) की भांति कार्य करती है।	कार्यपालिका के प्रशासनिक आदेश से व्यय संभव; इसके लिए पूर्व विधायी स्वीकृति अनिवार्य नहीं होती।
भारत की आकस्मिकता निधि (Contingency Fund of India)	अनुच्छेद 267 (1)	अप्रत्याशित या आपात व्यय की पूर्ति हेतु संसद द्वारा विधि द्वारा स्थापित स्थायी अग्रदाय (Imprest)। वर्तमान में इसका कोष 30,000 करोड़ रुपये है।	राष्ट्रपति की ओर से वित्त मंत्रालय के आर्थिक कार्य विभाग का सचिव इसका संचालन करता है; संसद से बाद में घटनोत्तर स्वीकृति आवश्यक।

संचित निधि पर भारित व्यय बनाम संचित निधि से किए जाने वाले व्यय

अनुच्छेद 112 (2) के अनुसार बजट में व्यय के आकलनों को दो भागों में पृथक किया जाना संवैधानिक रूप से बाध्यकारी है:

क) संचित निधि पर भारित व्यय (Expenditure Charged on CFI): यह वह व्यय है जिस पर लोक सभा में सामान्य बहस तो हो सकती है, परंतु मतदान नहीं कराया जाता। इसका उद्देश्य उच्च संवैधानिक पदों की स्वतंत्रता को राजनीतिक दबावों से अक्षुण्ण रखना है। इसके अंतर्गत राष्ट्रपति, लोक सभा अध्यक्ष, राज्य सभा के सभापति, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन-भत्ते, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG) के वेतन-भत्ते, ऋण प्रभार (ब्याज अदायगी) तथा न्यायालयों की डिक्री शामिल हैं।

ख) संचित निधि से किए जाने वाले अन्य व्यय (Expenditure Made from CFI): यह सरकार का वास्तविक कार्यकारी व्यय है, जिसे विभिन्न मंत्रालयों की अनुदान मांगों के रूप में लोक सभा के मतदान हेतु प्रस्तुत किया जाता है।

अनुदान मांगें एवं कटौती प्रस्ताव

मंत्रालयों के अनुमानित व्यय को **अनुदान मांगों** (Demands for Grants) के रूप में लोक सभा में रखा जाता है। अनुच्छेद 113 (3) के अनुसार, राष्ट्रपति की पूर्व अनुशंसा के बिना कोई भी अनुदान मांग प्रस्तुत नहीं की जा सकती। अनुदान मांगें केवल लोक सभा में मतदान के अधीन होती हैं; राज्य सभा को इन पर मतदान का अधिकार नहीं है।

बजट पर सामान्य चर्चा के पश्चात संसद सदस्य सरकारी नीतियों के विरोध अथवा व्यय में कमी हेतु तीन प्रकार के **कटौती प्रस्ताव** (Cut Motions) प्रस्तुत कर सकते हैं:

अ) नीति अनुमोदन कटौती (Policy Cut Motion): इसके द्वारा मांग की राशि को घटाकर 1 रुपया करने का प्रस्ताव किया जाता है। यह सरकार की नीति के प्रति पूर्ण असहमति व्यक्त करता है।

ब) मितव्ययिता कटौती (Economy Cut Motion): इसमें मांग की राशि में से एक निर्दिष्ट राशि (यथा 1000 करोड़ रुपये) कम करने का प्रस्ताव होता है, ताकि सरकारी व्यय में अपव्यय रोका जा सके।

स) सांकेतिक कटौती (Token Cut Motion): इसमें भारत सरकार के किसी विशिष्ट उत्तरदायित्व से जुड़ी शिकायत को उठाने के लिए मांग की राशि में से 100 रुपये घटाने का प्रस्ताव किया जाता है।

संसदीय परंपरा के अनुसार, यदि कोई भी कटौती प्रस्ताव लोक सभा में पारित हो जाता है, तो इसे सरकार में सदन के अविश्वास का स्पष्ट प्रमाण माना जाता है और मंत्रिपरिषद को त्यागपत्र देना पड़ता है।

गिलोटिन (Guillotine) की विधायी व्यवस्था

संसदीय कार्यप्रणाली में समय की सीमा निर्धारित होती है। सामान्यतः लोक सभा में केवल कुछ ही महत्वपूर्ण मंत्रालयों (यथा रक्षा, गृह, सड़क परिवहन, कृषि) की अनुदान मांगों पर विस्तृत चर्चा संभव हो पाती है। अनुदान मांगों पर मतदान हेतु निर्धारित अंतिम दिन के निश्चित समय (प्रायः शाम 5:00 बजे) पर लोक सभा अध्यक्ष चर्चा समाप्त घोषित कर देते हैं।

इस प्रक्रिया को **गिलोटिन** कहा जाता है, जिसके अंतर्गत जिन मंत्रालयों की अनुदान मांगों पर संसद में चर्चा नहीं भी हो सकी हो, उन समस्त अवशिष्ट मांगों को बिना किसी चर्चा के एक साथ मतदान के लिए रख दिया जाता है और उन्हें पारित कराया जाता है।

विनियोग विधेयक एवं वित्त विधेयक का तुलनात्मक विन्यास

संसद में बजट को विधायी स्वीकृति प्रदान करने हेतु दो भिन्न संवैधानिक विधेयकों का पारण आवश्यक होता है:

विधिक मानक	विनियोग विधेयक (Appropriation Bill)	वित्त विधेयक (Finance Bill)
संवैधानिक आधार	अनुच्छेद 114	अनुच्छेद 110 (1)(a) एवं अनुच्छेद 117
प्राथमिक उद्देश्य	संचित निधि से स्वीकृत व्यय को निकालने का विधिक प्राधिकार प्रदान करना।	आगामी वर्ष के लिए नए कर लगाने, विद्यमान करों में संशोधन या उन्हें जारी रखने का अधिकार।
प्रस्तुति का समय	लोक सभा द्वारा अनुदान मांगों को स्वीकृति दिए जाने के तुरंत बाद।	बजट भाषण के समापन पर बजट के साथ ही लोक सभा में पुरःस्थापित।
विधेयक का प्रकार	अनिवार्यतः एक धन विधेयक (Money Bill)।	धन विधेयक के रूप में प्रमाणित (लोक सभा अध्यक्ष द्वारा)।
संसदीय संशोधन की सीमा	इसमें ऐसा कोई संशोधन प्रस्तावित नहीं किया जा सकता जो अनुदान की राशि या उसके गंतव्य को बदले।	करों की दरों में कमी या छूट हेतु संशोधन लाए जा सकते हैं, परंतु कर बढ़ाने हेतु नहीं।
पारण की विहित समय-सीमा	वित्तीय वर्ष के आरंभ (1 अप्रैल) से पूर्व।	अनंतिम कर संग्रहण अधिनियम के तहत पुरःस्थापन के 75 दिनों के भीतर अनिवार्य पारण।

खंड B: बजटीय घाटे और राजकोषीय अनुशासन

उपखंड a: बजटीय घाटा, राजस्व घाटा, राजकोषीय घाटा, प्राथमिक घाटा, प्रभावी राजस्व घाटा

घाटे के अर्थशास्त्र की अवधारणा

सार्वजनिक वित्त में घाटा उस स्थिति को दर्शाता है जब सरकार का कुल सार्वजनिक व्यय उसकी कुल राजस्व और गैर-ऋण पूंजीगत प्राप्तियों से अधिक हो जाता है। कल्याणकारी राज्य में विकासात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु व्यय का प्राप्तियों से अधिक होना स्वाभाविक माना जाता है, परंतु इस घाटे की प्रकृति और वित्तपोषण का माध्यम अर्थव्यवस्था की समष्टिगत स्थिरता (Macroeconomic Stability) निर्धारित करता है।

घाटे के विभिन्न रूपों की गणितीय एवं अवधारणात्मक संरचना

घटक	सूत्र / समीकरण
कुल सरकारी प्राप्तियां	राजस्व प्राप्तियां + पूंजीगत प्राप्तियां
कुल सरकारी व्यय	राजस्व व्यय + पूंजीगत व्यय

क) बजटीय घाटा (Budgetary Deficit):
यह कुल व्यय और कुल प्राप्तियों (ऋण प्राप्तियों सहित) के मध्य का अंतर है:
बजटीय घाटा = कुल व्यय - कुल प्राप्तियां
वर्ष 1997 से पूर्व भारत में इस घाटे की भरपाई हेतु 91-दिवसीय **तदर्थ ट्रेजरी बिल** (Ad-hoc Treasury Bills) जारी करके आरबीआई द्वारा मुद्रा का स्वतः मुद्रीकरण (Deficit Financing) कर दिया जाता था। चक्रवर्ती समिति (1985) की सिफारिशों और 1997 में वित्त मंत्रालय व आरबीआई के मध्य हुए ऐतिहासिक समझौते के उपरांत तदर्थ ट्रेजरी बिलों को समाप्त कर दिया गया तथा सरकार की अल्पकालिक नकदी विसंगतियों हेतु **अर्थोपाय अग्रिम** (Ways and Means Advances - WMA) प्रणाली लागू की गई। अतः आधुनिक भारतीय बजट में बजटीय घाटा सदैव शून्य दर्शाया जाता है।

ख) राजस्व घाटा (Revenue Deficit):
यह सरकार की चालू राजस्व प्राप्तियों की तुलना में चालू राजस्व व्यय के आधिक्य को मापता है:
राजस्व घाटा = राजस्व व्यय - राजस्व प्राप्तियां
जहां राजस्व व्यय में ब्याज भुगतान, वेतन, पेंशन, रक्षा का परिचालन व्यय और सब्सिडी शामिल हैं, तथा राजस्व प्राप्तियों में कर राजस्व (शुद्ध केंद्रीय कर) और गैर-कर राजस्व (लाभांश, शुल्क) शामिल हैं। यह घाटा दर्शाता है कि सरकार अपनी नियमित दैनिक प्रशासनिक आवश्यकताओं को पूरा करने में अक्षम है और उसे उपभोग व्यय की पूर्ति हेतु उधार लेना पड़ रहा है।

ग) प्रभावी राजस्व घाटा (Effective Revenue Deficit):
इस संकल्पना को प्रणब मुखर्जी द्वारा केंद्रीय बजट 2011-12 में प्रस्तुत किया गया तथा 2012 के एफआरबीएम संशोधन अधिनियम द्वारा इसे औपचारिक विधिक दर्जा प्रदान किया गया:
प्रभावी राजस्व घाटा = राजस्व घाटा - पूंजीगत परिसंपत्तियों के सृजन हेतु राज्यों को दिए गए अनुदान
संविधान के अनुच्छेद 282 के तहत केंद्र सरकार राज्यों और स्थानीय निकायों को विशिष्ट योजनाओं (यथा पीएम गति शक्ति, ग्रामीण सड़कें, जल जीवन मिशन) के तहत सहायता अनुदान देती है। लेखांकन नियमों के अनुसार केंद्र के बहीखाते में यह संपूर्ण अनुदान 'राजस्व व्यय' माना जाता है, किंतु राज्यों द्वारा इस राशि से वास्तविक भौतिक अवसंरचना (Physical Assets) का निर्माण किया जाता है। अतः उत्पादक पूंजी निर्माण को अलग करने के उद्देश्य से प्रभावी राजस्व घाटे की गणना की जाती है।

घ) राजकोषीय घाटा (Fiscal Deficit):
यह सरकार के कुल व्यय तथा उसकी गैर-ऋण प्राप्तियों के बीच का समग्र अंतर है। सरल शब्दों में, यह सरकार की कुल उधारी आवश्यकताओं को प्रतिबिंबित करता है:
राजकोषीय घाटा = कुल व्यय - (राजस्व प्राप्तियां + गैर-ऋण पूंजीगत प्राप्तियां)
गैर-ऋण पूंजीगत प्राप्तियों (Non-Debt Capital Receipts - NDCR) में मुख्य रूप से पुराने ऋणों की वसूली (Recovery of Loans) और विनिवेश से प्राप्तियां शामिल होती हैं।
समीकरण के अनुसार:
राजकोषीय घाटा = बाजार उधारी + अन्य आंतरिक देयताएं (लघु बचत आदि) + बाह्य ऋण
यह अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति, चालू खाता घाटा (CAD) और निजी निवेश के बाहर धकेले जाने (Crowding-out Effect) का प्राथमिक स्रोत माना जाता है।

ङ) प्राथमिक घाटा (Primary Deficit):
यह राजकोषीय घाटे में से सरकार द्वारा पूर्व में लिए गए संचित ऋणों पर किए जाने वाले शुद्ध ब्याज भुगतान को घटाने के बाद प्राप्त होता है:
प्राथमिक घाटा = राजकोषीय घाटा - ब्याज भुगतान
यह चालू वित्तीय वर्ष के दौरान सरकारी नीतियों के कारण उत्पन्न राजकोषीय असंतुलन का वास्तविक माप है। यदि प्राथमिक घाटा शून्य हो, तो इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि चालू वर्ष में सरकार का राजकोषीय घाटा केवल और केवल अतीत में लिए गए ऋणों के ब्याज दायित्वों को चुकाने के कारण उत्पन्न हुआ है।

घाटे के विभिन्न पैमानों का तुलनात्मक मैट्रिक्स

घाटे का प्रकार	सूत्र/संघटन	आर्थिक निहितार्थ एवं जोखिम	नीतिगत आदर्श स्थिति
राजस्व घाटा	राजस्व व्यय - राजस्व प्राप्तियां	सरकार की वित्तीय अक्षमता; उपभोग हेतु परिसंपत्तियों का क्षरण या उधारी।	शून्य (संतुलित चालू खाता)
प्रभावी राजस्व घाटा	राजस्व घाटा - पूंजीगत परिसंपत्ति सृजन हेतु अनुदान	अनुत्पादक उपभोग व्यय का सटीक मापन; उत्पादक अनुदानों का पृथक्करण।	पूर्णतः शून्य
राजकोषीय घाटा	कुल व्यय - (राजस्व प्राप्तियां + गैर-ऋण पूंजीगत प्राप्तियां)	संपूर्ण अर्थव्यवस्था पर सरकार की कुल नई ऋण निर्भरता; ब्याज दायित्वों में वृद्धि।	जीडीपी का 3.0 प्रतिशत (एफआरबीएम मानक)
प्राथमिक घाटा	राजकोषीय घाटा - ब्याज भुगतान	चालू वर्ष के नीतिगत निर्णयों का शुद्ध वित्तीय भार; अतीत के ऋणों का प्रभाव रहित माप।	शून्य अथवा अधिशेष

उपखंड b: राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबंधन अधिनियम, इसके लक्ष्य, संशोधन, एस्केप क्लॉज, राजकोषीय समेकन रोडमैप

एफआरबीएम अधिनियम 2003 की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

वर्ष 1990 के दशक के उत्तरार्ध में भारत का संयुक्त राजकोषीय घाटा जीडीपी के 9 से 10 प्रतिशत तक पहुंच गया था और आंतरिक ऋण जाल का गंभीर संकट उत्पन्न हो गया था। इस राजकोषीय गैर-जिम्मेदारी को संस्थागत रूप से नियंत्रित करने हेतु संसद द्वारा **राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबंधन अधिनियम, 2003** (Fiscal Responsibility and Budget Management Act - FRBM Act) पारित किया गया, जो 5 जुलाई 2004 से प्रभावी हुआ।

इस अधिनियम के मूल विधिक लक्ष्य निम्नलिखित थे:

क) 31 मार्च 2009 तक राजस्व घाटे को पूर्णतः समाप्त कर शून्य पर लाना।

ख) प्रतिवर्ष राजस्व घाटे में जीडीपी के न्यूनतम 0.5 प्रतिशत की वार्षिक कटौती करना।

ग) 31 मार्च 2009 तक राजकोषीय घाटे को घटाकर जीडीपी के 3.0 प्रतिशत तक सीमित करना।

घ) प्रतिवर्ष राजकोषीय घाटे में जीडीपी के न्यूनतम 0.3 प्रतिशत की वार्षिक कटौती करना।

ङ) 1 अप्रैल 2006 से भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा केंद्र सरकार के प्राथमिक प्रतिभूति बाजार (Primary Market) से प्रत्यक्ष बांड खरीद पर पूर्ण प्रतिबंध लगाना।

वर्ष 2008 के वैश्विक वित्तीय संकट (Global Financial Crisis) के कारण घरेलू अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन पैकेज (Fiscal Stimulus) देने हेतु इन लक्ष्यों को स्थगित कर दिया गया, जिससे राजकोषीय समेकन का मार्ग बाधित हुआ।

अनिवार्य बजटीय प्रकटीकरण विवरण

एफआरबीएम अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत सरकार के लिए बजट के साथ संसद के पटल पर निम्नलिखित चार महत्वपूर्ण समष्टिगत दस्तावेज प्रस्तुत करना अनिवार्य है:

क) समष्टि-आर्थिक रूपरेखा विवरण (Macro-economic Framework Statement): अर्थव्यवस्था की विकास दर, बाह्य संतुलन, मुद्रास्फीति और मौद्रिक प्रवृत्तियों का समग्र आकलन।

ख) मध्यम-अवधि राजकोषीय नीति विवरण (Medium-Term Fiscal Policy Statement): आगामी तीन वर्षों के लिए राजकोषीय घाटे, राजस्व घाटे, कर राजस्व और ऋण के विशिष्ट लक्ष्यों का निर्धारण।

ग) राजकोषीय नीति रणनीति विवरण (Fiscal Policy Strategy Statement): प्राथमिकताओं का औचित्य, कराधान में सुधार की दिशा और व्यय प्रबंधन की रणनीतिक रूपरेखा।

घ) मध्यम-अवधि व्यय रूपरेखा विवरण (Medium-Term Expenditure Framework Statement): मंत्रालयों के लिए बहु-वर्षीय व्यय लक्ष्यों का विखंडन।

एन.के. सिंह समिति (2016) की सिफारिशें

मई 2016 में भारत सरकार ने पूर्व राज्यसभा सदस्य एवं वरिष्ठ अर्थशास्त्री एन.के. सिंह की अध्यक्षता में पांच सदस्यीय **एफआरबीएम समीक्षा समिति** का गठन किया। इस समिति में उर्जित पटेल, अरविंद सुब्रमण्यम, सुमित बोस और रथिन रॉय शामिल थे। समिति ने जनवरी 2017 में अपनी विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की।

समिति की प्रमुख सिफारिशें निम्नलिखित थीं:

क) लक्ष्य का केंद्र बिंदु बदलना: समिति ने केवल 'राजकोषीय घाटे' के स्थान पर **ऋण-जीडीपी अनुपात** (Debt-to-GDP Ratio) को राजकोषीय नीति का प्राथमिक आधार (Anchor) बनाने की संस्तुति की।

ख) ऋण सीमा के मानक: वर्ष 2023 तक सामान्य सरकारी ऋण (केंद्र + राज्य) को घटाकर जीडीपी के 60 प्रतिशत पर लाना, जिसमें केंद्र सरकार हेतु 40 प्रतिशत तथा सभी राज्य सरकारों के लिए संयुक्त रूप से 20 प्रतिशत की सीमा निर्धारित की गई।

ग) राजकोषीय घाटा पथ: वित्तीय वर्ष 2022-23 तक केंद्र के राजकोषीय घाटे को क्रमिक रूप से घटाकर 2.5 प्रतिशत पर लाना।

घ) राजस्व घाटा लक्ष्य: वित्तीय वर्ष 2022-23 तक राजस्व घाटे को घटाकर जीडीपी के 0.8 प्रतिशत पर लाना।

ङ) राजकोषीय परिषद (Fiscal Council): एक स्वायत्त एवं स्वतंत्र बहु-सदस्यीय संस्था के गठन का प्रस्ताव, जो स्वतंत्र रूप से बजटीय अनुमानों की संवीक्षा करे और समष्टि-आर्थिक पूर्वानुमान जारी करे।

एस्केप क्लॉज (Escape Clause) की विधिक रूपरेखा

एन.के. सिंह समिति के सुझावों के आधार पर वित्त अधिनियम 2018 के माध्यम से एफआरबीएम अधिनियम की धारा 4(2) में संशोधन कर औपचारिक **एस्केप क्लॉज** को शामिल किया गया। यह धारा केंद्र सरकार को असाधारण परिस्थितियों में वार्षिक राजकोषीय घाटे के लक्ष्य से अधिकतम **0.5 प्रतिशत (50 आधार अंक)** तक के विचलन (Deviate) की विधिक अनुमति प्रदान करती है।

एस्केप क्लॉज को लागू करने के विशिष्ट वैधानिक आधार निम्नलिखित हैं:

अ) राष्ट्रीय सुरक्षा के हित अथवा युद्ध की स्थिति।

ब) राष्ट्रीय स्तर की गंभीर प्राकृतिक आपदाएं।

स) देश की कृषि उपज या उत्पादन श्रृंखला का व्यापक पतन।

द) अर्थव्यवस्था में गंभीर संरचनात्मक सुधार (Structural Reforms), जिनका अल्पकाल में अनपेक्षित राजकोषीय प्रभाव हो।

ङ) लगातार चार तिमाहियों में देश की वास्तविक जीडीपी वृद्धि दर का पिछली चार तिमाहियों के औसत से कम से कम 3 प्रतिशत अंक नीचे गिरना।

इसी प्रकार, यदि अप्रत्याशित रूप से अर्थव्यवस्था में तीव्र उछाल आता है, तो सरकार हेतु घाटे के लक्ष्य में 0.5 प्रतिशत की तीव्र कमी लाने के लिए **उलट एस्केप क्लॉज** (Buoyancy Clause) भी अधिनियम में संहिताबद्ध है।

राजकोषीय समेकन रोडमैप: वित्तीय वर्ष 2025-26 एवं 2026-27

वर्ष 2020 में कोरोना महामारी के संकट के दौरान जब संपूर्ण आपूर्ति श्रृंखलाएं बाधित हुईं, तो भारत सरकार ने महामारी प्रबंधन और कल्याणकारी व्यय हेतु राजकोषीय प्रोत्साहन प्रदान किया। इसके परिणामस्वरूप वित्तीय वर्ष 2020-21 में केंद्र सरकार का राजकोषीय घाटा बढ़कर जीडीपी के **9.2 प्रतिशत** के अभूतपूर्व स्तर पर पहुंच गया।

इस असाधारण विचलन के पश्चात केंद्रीय बजट 2021-22 में वित्त मंत्री ने एक नवीन संशोधित राजकोषीय समेकन रोडमैप की घोषणा की। इस अद्यतन ढांचे के अंतर्गत निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किए गए:

क) वित्तीय वर्ष 2025-26 तक केंद्र के राजकोषीय घाटे को घटाकर **4.5 प्रतिशत से नीचे** लाना।

ख) वित्तीय वर्ष 2025-26 के केंद्रीय बजट में राजकोषीय घाटे को 4.4 प्रतिशत के स्तर पर लक्षित किया गया, जिसे वित्तीय वर्ष 2026-27 के बजटीय आकलनों में और अधिक कम करते हुए 4.1 प्रतिशत के स्तर पर लाने का मार्ग प्रशस्त किया गया है।

ग) पूंजीगत व्यय की गुणवत्ता में वृद्धि: राजकोषीय समेकन की यह प्रक्रिया राजस्व व्यय (अनुत्पादक उपभोग) को सीमित करके तथा अवसंरचना निर्माण हेतु पूंजीगत व्यय (Capital Expenditure) को सकल घरेलू उत्पाद के 3.4 प्रतिशत से अधिक के उच्च स्तर पर बनाए रखते हुए आगे बढ़ाई जा रही है।

घ) केंद्र का ऋण-जीडीपी अनुपात, जो वर्ष 2020-21 में बढ़कर लगभग 61.5 प्रतिशत हो गया था, उसे वित्तीय वर्ष 2025-26 और 2026-27 के दौरान क्रमिक रूप से घटाकर 55 प्रतिशत के नीचे लाने की सतत रणनीति क्रियान्वित है।

घाटे का वित्तपोषण (Financing of Deficit) के आधुनिक स्रोत

सरकार अपने राजकोषीय घाटे की भरपाई हेतु निम्नलिखित वित्तीय स्रोतों का सहारा लेती है:

क) दिनांकित सरकारी प्रतिभूतियां (Dated G-Secs): भारतीय रिजर्व बैंक के माध्यम से घरेलू वित्तीय बाजार में नीलाम किए जाने वाले दीर्घकालिक बांड, जिन्हें वाणिज्यिक बैंक, बीमा कंपनियां और पेंशन फंड खरीदते हैं। यह राजकोषीय घाटे की पूर्ति का सबसे बड़ा स्रोत (लगभग 75 से 80 प्रतिशत) है।

ख) राष्ट्रीय लघु बचत निधि (NSSF): डाकघर बचत खातों, लोक भविष्य निधि (PPF) और राष्ट्रीय बचत पत्रों (NSC) से प्राप्त निधियों के विरुद्ध जारी की जाने वाली विशेष प्रतिभूतियां।

ग) बाह्य ऋण सहायता: विश्व बैंक, एशियाई विकास बैंक (ADB) और द्विपक्षीय विदेशी एजेंसियों से प्राप्त रियायती ऋण। यह कुल वित्तपोषण का 3 से 5 प्रतिशत से अधिक नहीं होता।

घ) अल्पकालिक ट्रेजरी बिल: 91-दिवसीय, 182-दिवसीय और 364-दिवसीय विनिमेय ट्रेजरी बिलों के माध्यम से बाजार से जुटाई गई निधियां।

महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली एवं अवधारणाएं

प्रभावी पूंजीगत व्यय (Effective Capital Expenditure): केंद्र सरकार के प्रत्यक्ष पूंजीगत व्यय तथा राज्यों को पूंजीगत परिसंपत्तियों के सृजन हेतु दिए जाने वाले सहायता अनुदानों का कुल योग। वित्तीय वर्ष 2025-26 और 2026-27 में इसे आर्थिक संवृद्धि का मुख्य संवाहक बनाया गया है।

क्राउडिंग-आउट प्रभाव (Crowding-out Effect): जब सरकार अपने अत्यधिक राजकोषीय घाटे की पूर्ति हेतु बाजार से भारी मात्रा में ऋण ले लेती है, तो वित्तीय प्रणाली में निजी क्षेत्र के उद्योगों के लिए ऋण योग्य निधियों की कमी हो जाती है और ब्याज दरें बढ़ जाती हैं, जिससे निजी कॉर्पोरेट निवेश हतोत्साहित होता है।

ऋण संवहनीयता (Debt Sustainability): किसी राष्ट्र की वह वित्तीय स्थिति जिसमें वह भविष्य में अपने संचित ऋणों और ब्याज का भुगतान बिना किसी अतिरिक्त पुनर्गठन, चूक (Default) अथवा आर्थिक विकास की गति को रोके नियमित रूप से करने में सक्षम होता है। डोमर ऋण मॉडल के अनुसार, यदि देश की सांकेतिक जीडीपी वृद्धि दर (g) सरकारी उधारी की वास्तविक ब्याज दर (r) से अधिक है (अर्थात $g > r$), तो सरकार का ऋण-जीडीपी अनुपात स्वतः स्थिर रहता है।

कर उछाल (Tax Buoyancy): सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में प्रतिशत परिवर्तन के प्रत्युत्तर में सकल कर राजस्व संग्रह में होने वाले आनुपातिक प्रतिशत परिवर्तन का माप। यदि कर उछाल 1 से अधिक है, तो इसका अर्थ है कि कर प्रणाली अत्यधिक दक्ष है और आर्थिक विकास की तुलना में कर संग्रहण अधिक तीव्र गति से बढ़ रहा है।

अर्थोपाय अग्रिम (Ways and Means Advances - WMA): भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 17 (5) के अंतर्गत केंद्र और राज्य सरकारों को उनकी प्राप्तियों और भुगतानों के मध्य अल्पकालिक नकदी प्रवाह के बेमेल (Mismatch) को दूर करने हेतु आरबीआई द्वारा प्रदान की जाने वाली नब्बे दिनों की अल्पकालिक ऋण सुविधा। यह बजटीय घाटे की स्थायी पूर्ति का साधन नहीं है।

ऑफ-बजट उधारी (Off-Budget Borrowings): वे वित्तीय देनदारियां जो केंद्र सरकार द्वारा सीधे अपने खातों में न लेकर अपने स्वामित्व वाले सार्वजनिक उपक्रमों (यथा एफसीआई, नाबार्ड, एनएचएआई) के माध्यम से बांड जारी करवाकर ली जाती थीं, किंतु उनके मूलधन और ब्याज का भुगतान केंद्रीय बजट से किया जाता था। वित्त वर्ष 2021-22 के पश्चात राजकोषीय पारदर्शिता सुनिश्चित करते हुए ऐसी उधारी को समाप्त कर प्रत्यक्षतः राजकोषीय घाटे के भीतर सम्मिलित कर लिया गया है।

राजकोषीय गतिहीनता (Fiscal Drag): मुद्रास्फीति के कारण जब नागरिकों की मौद्रिक आय बढ़ती है और वे बिना वास्तविक क्रय शक्ति में वृद्धि के उच्च कर स्लैब में प्रवेश कर जाते हैं, तो सरकार का कर संग्रह स्वतः बढ़ जाता है। इससे समग्र मांग में कमी आती है और आर्थिक विस्तार की गति धीमी हो जाती है।

राजकोषीय प्रोत्साहन (Fiscal Stimulus): आर्थिक मंदी अथवा संकट के समय समग्र मांग को पुनर्जीवित करने के उद्देश्य से सरकार द्वारा अपने सार्वजनिक व्यय में जानबूझकर की जाने वाली तीव्र वृद्धि तथा प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष करों में दी जाने वाली कटौती की नीति।

अध्याय 4: वस्तु एवं सेवा कर (GST) - विधिक, संस्थागत एवं प्रक्रियात्मक तंत्र

खंड A: जीएसटी की उत्पत्ति एवं संरचना

उपखंड a: ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, 101वां संविधान संशोधन अधिनियम, कैस्केडिंग प्रभाव का उन्मूलन

जीएसटी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं विकास यात्रा

भारत में अप्रत्यक्ष कर प्रणाली के संरचनात्मक सुधारों की यात्रा कई दशकों के विमर्श का परिणाम है। स्वतंत्रता के उपरांत भारतीय कराधान व्यवस्था अत्यंत जटिल, बहु-स्तरीय और विखंडित थी, जिसमें केंद्र और राज्यों के पास कराधान के पृथक-पृथक संप्रभु अधिकार थे। ऐतिहासिक विकास क्रम के प्रमुख चरण निम्नलिखित हैं:

क) एल. के. झा समिति (1976): सर्वप्रथम इस समिति ने मूल्य संवर्धित कर प्रणाली का सुझाव दिया, जिसके आधार पर 1986 में विनिर्माण स्तर पर केंद्रीय उत्पाद शुल्क को युक्तिसंगत बनाने हेतु विनिर्मित मूल्य संवर्धित कर (MODVAT) लागू किया गया।

ख) राजा जे. चेलैया समिति (1991-93): कर सुधार समिति ने व्यापक मूल्य संवर्धित कर (VAT) प्रणाली की संस्तुति की, जिसके फलस्वरूप 2000-2002 में केंद्रीय स्तर पर केंद्रीय मूल्य संवर्धित कर (CENVAT) का पूर्ण क्रियान्वयन हुआ।

ग) असीम दासगुप्ता समिति (2000): तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने वर्ष 2000 में एक एकीकृत राष्ट्रीय जीएसटी का मॉडल तैयार करने हेतु राज्यों के वित्त मंत्रियों की अधिकार प्राप्त समिति का गठन किया, जिसके अध्यक्ष पश्चिम बंगाल के वित्त मंत्री असीम दासगुप्ता बनाए गए।

घ) विजय केलकर टास्क फोर्स (2003-04): राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबंधन (FRBM) पर गठित केलकर कार्यबल ने अप्रत्यक्ष करों के पूर्ण एकीकरण हेतु राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक एकल जीएसटी ढांचे की स्पष्ट संस्तुति की।

ङ) अधिकार प्राप्त समिति का प्रथम श्वेत पत्र (2009): नवंबर 2009 में अधिकार प्राप्त समिति ने भारत में दोहरे जीएसटी मॉडल की बुनियादी रूपरेखा प्रस्तुत की।

च) 115वां संविधान संशोधन विधेयक (2011): संप्रग सरकार द्वारा लोकसभा में यह विधेयक प्रस्तुत किया गया, परंतु 15वीं लोकसभा के विघटन के कारण यह विधेयक स्वतः व्यपगत हो गया।

छ) 122वां संविधान संशोधन विधेयक (2014): 16वीं लोकसभा में दिसंबर 2014 में नवीन प्रारूप प्रस्तुत किया गया, जो संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित होने और आधे से अधिक राज्य विधानमंडलों के अनुसमर्थन के उपरांत 101वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2016 के रूप में अधिनियमित हुआ।

राष्ट्रपति द्वारा 8 सितंबर 2016 को इस ऐतिहासिक संविधान संशोधन को स्वीकृति प्रदान की गई तथा 1 जुलाई 2017 से संपूर्ण देश में (जम्मू एवं कश्मीर में 8 जुलाई 2017 से) वस्तु एवं सेवा कर औपचारिक रूप से प्रभावी हुआ।

101वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2016: प्रमुख संवैधानिक प्रावधान

पारंपरिक संवैधानिक योजना के अंतर्गत सातवीं अनुसूची में केंद्र और राज्यों के मध्य कराधान की शक्तियों का पूर्ण विभाजन था। संविधान में ऐसा कोई साझा अधिकार नहीं था जिसके तहत केंद्र और राज्य एक ही विधिक संव्यवहार पर एक साथ कर लगा सकें। 101वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारतीय राजकोषीय संघवाद में युगांतरकारी परिवर्तन किए गए:

संवैधानिक अनुच्छेद	विधिक प्रावधान एवं प्रकृति	संवैधानिक प्रभाव
अनुच्छेद 246A	वस्तु एवं सेवा कर के संबंध में विशेष उपबंध।	संसद तथा प्रत्येक राज्य के विधानमंडल को एक साथ वस्तु एवं सेवा कर लगाने की समवर्ती विधायी शक्ति। अंतर-राज्यीय व्यापार या वाणिज्य में केवल संसद को अधिकार।
अनुच्छेद 269A	अंतर-राज्यीय व्यापार या वाणिज्य में जीएसटी की उगाही एवं संग्रहण।	आईजीएसटी का संग्रहण केंद्र सरकार द्वारा किया जाएगा तथा जीएसटी परिषद की सिफारिशों के आधार पर इसे केंद्र और राज्यों के मध्य विभाजित किया जाएगा।
अनुच्छेद 279A	वस्तु एवं सेवा कर परिषद का गठन।	राष्ट्रपति को संशोधन लागू होने के 60 दिनों के भीतर एक संयुक्त संवैधानिक निकाय के रूप में जीएसटी परिषद गठित करने का अनिवार्य आदेश।

wincompete

अनुच्छेद 286 का संशोधन	वस्तुओं की बिक्री या खरीद पर कर लगाने के संबंध में प्रतिबंध।	'वस्तुओं' शब्द के स्थान पर 'वस्तुओं या सेवाओं' को प्रतिस्थापित किया गया; सेवाओं की आपूर्ति पर भी राज्य कर लगाने पर प्रतिबंध के नियम लागू।
अनुच्छेद 366 में प्रविष्टियां	नवीन पारिभाषिक शब्दावली का अंतःस्थापन।	अनुच्छेद 366(12A) द्वारा जीएसटी को परिभाषित किया गया: "मानव उपभोग के लिए अल्कोहल को छोड़कर किसी भी वस्तु या सेवा या दोनों की आपूर्ति पर लगाया जाने वाला कर।"
अनुच्छेद 268A का लोप	सेवा कर से संबंधित प्रावधान का विलोपन।	पूर्ववर्ती 88वें संशोधन द्वारा सृजित इस अनुच्छेद को समाप्त कर दिया गया क्योंकि सेवाएं अब एकीकृत जीएसटी में समाहित हो गईं।

इसके अतिरिक्त सातवीं अनुसूची की संघ सूची (सूची I) से प्रविष्टि 92 और 92C का लोप किया गया तथा प्रविष्टि 54 (राज्य सूची) को संशोधित कर राज्यों का अधिकार केवल मानव उपभोग हेतु मादक शराब, पेट्रोलियम क्रूड, हाई-स्पीड डीजल, मोटर स्पिरिट (पेट्रोल), प्राकृतिक गैस और विमानन टरबाइन ईंधन (एटीएफ) की अंतर-राज्यीय बिक्री तक सीमित कर दिया गया।

कैस्केडिंग प्रभाव (करों पर कर) की समाप्ति का तंत्र

पूर्ववर्ती अप्रत्यक्ष कर व्यवस्था की सबसे गंभीर विकृति 'कैस्केडिंग प्रभाव' (Tax on Tax) थी। पुरानी व्यवस्था में उत्पादन के विभिन्न चरणों पर अलग-अलग कर लगाए जाते थे, जिनका परस्पर इनपुट टैक्स समायोजन उपलब्ध नहीं था। उदाहरणार्थ:

क) केंद्रीय उत्पाद शुल्क (Central Excise) कारखाने के गेट पर देय होता था, जिस पर राज्य स्तर पर प्रवेश कर (Entry Tax) और मूल्य संवर्धित कर (VAT) लगाया जाता था। परिणामस्वरूप, राज्य सरकार उत्पाद शुल्क पर भी वैट वसूलती थी।

ख) सेवाओं पर केंद्रीय सेवा कर लगता था, जिसका विनिर्माण क्षेत्र के इनपुट टैक्स क्रेडिट के साथ पूर्ण निर्बाध समन्वय नहीं था।

ग) अंतर-राज्यीय बिक्री पर लगने वाला केंद्रीय बिक्री कर (CST) गैर-हस्तांतरणीय (Non-creditable) था, जो लागत में स्थायी रूप से जुड़कर मूल्य वृद्धि करता था।

जीएसटी ने आपूर्ति श्रृंखला के प्रत्येक चरण पर केवल 'मूल्य संवर्धन' (Value Addition) पर कर लगाकर और प्रत्येक पूर्ववर्ती चरण पर चुकाए गए कर की पूर्ण इनपुट टैक्स क्रेडिट (ITC) उपलब्ध कराकर कैस्केडिंग प्रभाव को पूरी तरह समाप्त कर दिया। इसके द्वारा देश में एकीकृत साझा राष्ट्रीय बाजार का निर्माण हुआ।

जीएसटी में समाहित एवं बाहर रखे गए कर

जीएसटी के लागू होने से केंद्र और राज्यों के 17 प्रमुख अप्रत्यक्ष कर और 23 उपकर समाहित (Subsumed) हो गए:

अधिकार क्षेत्र	समाहित किए गए प्रमुख कर	जीएसटी के दायरे से बाहर रखे गए कर एवं विषय
केंद्रीय स्तर पर	केंद्रीय उत्पाद शुल्क, अतिरिक्त उत्पाद शुल्क, सेवा कर, अतिरिक्त सीमा शुल्क (CVD), विशेष अतिरिक्त सीमा शुल्क (SAD), केंद्रीय अधिभार एवं उपकर।	मूल सीमा शुल्क (Basic Customs Duty), निर्यात शुल्क, तंबाकू पर केंद्रीय उत्पाद शुल्क (अतिरिक्त रूप से)।
राज्य स्तर पर	राज्य वैट/बिक्री कर, केंद्रीय बिक्री कर (CST), मनोरंजन कर (स्थानीय निकायों द्वारा लगाए गए करों को छोड़कर), विलासिता कर, लॉटरी व सट्टा कर, प्रवेश कर (ऑक्ट्रॉय)।	मानव उपभोग के लिए मादक शराब (पूर्णतः बाहर), स्थानीय निकायों द्वारा लगाया जाने वाला मनोरंजन कर, विद्युत शुल्क, स्टांप शुल्क एवं पंजीकरण शुल्क, वाहन कर।

विशेष विधिक व्यवस्था: पेट्रोलियम के पांच उत्पाद (कच्चा तेल, पेट्रोल, डीजल, प्राकृतिक गैस एवं एटीएफ) संविधान के अनुच्छेद 9(2) के अंतर्गत जीएसटी के दायरे में तो शामिल हैं, परंतु इन पर जीएसटी लगाने की तिथि का निर्णय जीएसटी परिषद की संस्तुति पर छोड़ा गया है। वर्तमान में इन पर केंद्र का उत्पाद शुल्क और राज्यों का वैट पूर्ववत लागू है।

उपखंड b: सीजीएसटी, एसजीएसटी, यूटीजीएसटी, आईजीएसटी, इनपुट टैक्स क्रेडिट तंत्र

दोहरा जीएसटी मॉडल (Dual GST Structure)

भारत की विशिष्ट संघीय व्यवस्था को दृष्टिगत रखते हुए कनाडा के समान 'दोहरा जीएसटी मॉडल' अपनाया गया है, जिसमें केंद्र और राज्य एक साथ एक ही आपूर्ति आधार पर कर अधिरोपित करते हैं। विधिक रूप से लेन-देन के भौगोलिक स्वरूप के आधार पर कराधान को दो संवर्गों में वर्गीकृत किया जाता है:

अ) अंतःराज्यीय आपूर्ति (Intra-State Supply): जब आपूर्तिकर्ता का स्थान और आपूर्ति का गंतव्य एक ही राज्य या केंद्र शासित प्रदेश के भीतर हो। ऐसे लेन-देन पर एक साथ दो घटक लागू होते हैं:

केंद्रीय वस्तु एवं सेवा कर (CGST): इसका संग्रहण केंद्र सरकार के संचित कोष में जाता है।

राज्य वस्तु एवं सेवा कर (SGST) अथवा केंद्र शासित प्रदेश वस्तु एवं सेवा कर (UTGST): इसका संग्रहण संबंधित राज्य या बिना विधानमंडल वाले केंद्र शासित प्रदेश (यथा लद्दाख, चंडीगढ़, लक्षद्वीप, अंडमान-निकोबार, दादरा एवं नगर हवेली तथा दमन एवं दीव) के खाते में जाता है।

दिल्ली, पुडुचेरी और जम्मू एवं कश्मीर जैसे विधानसभा वाले केंद्र शासित प्रदेशों में एसजीएसटी अधिनियम ही लागू होता है।

ब) अंतर-राज्यीय आपूर्ति (Inter-State Supply): जब आपूर्तिकर्ता का स्थान एक राज्य में और आपूर्ति का गंतव्य दूसरे राज्य या केंद्र शासित प्रदेश में हो, अथवा वस्तुओं/सेवाओं का आयात-निर्यात हो। ऐसे लेन-देन पर केवल एक कर लगता है:

एकीकृत वस्तु एवं सेवा कर (IGST): अनुच्छेद 269A के तहत यह केंद्र सरकार द्वारा उद्गृहीत एवं संगृहीत किया जाता है। आईजीएसटी की दर अनिवार्यतः सीजीएसटी और एसजीएसटी की दरों के कुल योग के बराबर होती है।

इनपुट टैक्स क्रेडिट (ITC) का विनियामक तंत्र

इनपुट टैक्स क्रेडिट जीएसटी प्रणाली की रीढ़ है। यह एक ऐसा तंत्र है जिसके माध्यम से किसी पंजीकृत व्यापारी या विनिर्माता को अपने आउटपुट कर दायित्व का भुगतान करते समय अपनी व्यावसायिक खरीद (इनपुट, इनपुट सेवाएं और पूंजीगत वस्तुएं) पर पहले चुकाए गए कर को घटाने की अनुमति मिलती है।

केंद्रीय वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम, 2017 की धारा 16 के तहत आईटीसी का दावा करने हेतु निम्नलिखित वैधानिक शर्तें अनिवार्य हैं:

क) करदाता के पास वैध कर इनवॉइस (Tax Invoice) या डेबिट नोट होना चाहिए।

ख) आपूर्तिकर्ता द्वारा वस्तु या सेवा की वास्तविक आपूर्ति प्राप्तकर्ता को कर दी गई हो।

ग) आपूर्तिकर्ता द्वारा संबंधित लेन-देन का विवरण फॉर्म GSTR-1 में दर्ज कर दिया गया हो और यह प्राप्तकर्ता के फॉर्म GSTR-2B में परिलक्षित हो रहा हो।

घ) आपूर्तिकर्ता द्वारा उक्त कर का वास्तविक भुगतान सरकार को नकद या आईटीसी के माध्यम से कर दिया गया हो।

ङ) प्राप्तकर्ता ने धारा 39 के तहत अपना नियमित रिटर्न (GSTR-3B) दाखिल कर दिया हो।

च) यदि प्राप्तकर्ता इनवॉइस जारी होने की तिथि से 180 दिनों के भीतर आपूर्तिकर्ता को मूल्य और कर का भुगतान करने में विफल रहता है, तो ली गई आईटीसी को ब्याज सहित आउटपुट देनदारी में जोड़ दिया जाता है।

आईटीसी उपयोग की प्राथमिकताओं का वैधानिक क्रम

सीजीएसटी अधिनियम की धारा 49, 49A और 49B तथा नियम 88A के अनुसार इनपुट टैक्स क्रेडिट के उपयोग का अनिवार्य वैधानिक क्रम निम्नलिखित है:

उपलब्ध इनपुट टैक्स क्रेडिट (ITC)	प्रथम उपयोग (आउटपुट देयता)	द्वितीय उपयोग (आउटपुट देयता)	तृतीय उपयोग (आउटपुट देयता)
आईजीएसटी क्रेडिट	आईजीएसटी देनदारी के विरुद्ध (पूर्ण उपयोग अनिवार्य)	सीजीएसटी अथवा एसजीएसटी/यूटीजीएसटी देनदारी के विरुद्ध (किसी भी अनुपात में)	—

wincompete

सीजीएसटी क्रेडिट	सीजीएसटी देनदारी के विरुद्ध	आईजीएसटी देनदारी के विरुद्ध	एसजीएसटी देनदारी के विरुद्ध उपयोग पूर्णतः वर्जित
एसजीएसटी/यूटी जीएसटी क्रेडिट	एसजीएसटी/यूटीजीएसटी देनदारी के विरुद्ध	आईजीएसटी देनदारी के विरुद्ध	सीजीएसटी देनदारी के विरुद्ध उपयोग पूर्णतः वर्जित

विशेष विधिक प्रतिबंध: सीजीएसटी की क्रेडिट का उपयोग कभी भी एसजीएसटी के भुगतान के लिए नहीं किया जा सकता और न ही एसजीएसटी की क्रेडिट का उपयोग सीजीएसटी के भुगतान के लिए किया जा सकता है। आईजीएसटी की संपूर्ण क्रेडिट समाप्त होने के उपरांत ही सीजीएसटी या एसजीएसटी की क्रेडिट का उपयोग किया जा सकता है।

अवरुद्ध क्रेडिट (Blocked Credit - धारा 17(5))
व्यावसायिक उपयोग के बावजूद निम्नलिखित व्ययों पर चुकाए गए कर की आईटीसी प्राप्त नहीं होती:

क) 13 व्यक्तियों तक की बैठने की क्षमता वाले मोटर वाहन (विशिष्ट अपवादों जैसे ड्राइविंग स्कूल, वाहनों के पुनर्विक्रय या यात्री परिवहन को छोड़कर)।

ख) खाद्य एवं पेय पदार्थ, आउटडोर कैटरिंग, सौंदर्य उपचार, स्वास्थ्य सेवाएं, प्लास्टिक सर्जरी, क्लब व फिटनेस सेंटर की सदस्यता और जीवन/स्वास्थ्य बीमा (जब तक कि नियोक्ता के लिए विधिक रूप से अनिवार्य न हो)।

ग) अचल संपत्ति के निर्माण हेतु प्राप्त वस्तुएं या सेवाएं (स्वयं के खाते पर पूंजीकरण की स्थिति में)।

घ) व्यक्तिगत उपभोग हेतु उपयोग की गई वस्तुएं या सेवाएं।

ङ) खो गई, चोरी हो गई, नष्ट हो गई, नष्ट कर दी गई या उपहार व मुफ्त नमूनों के रूप में बांटी गई वस्तुएं।

खंड B: संस्थागत ढांचा एवं चुनौतियां

उपखंड a: जीएसटी परिषद की संरचना, मतदान शक्ति, निर्णय लेने की प्रक्रिया, संवैधानिक स्थिति

जीएसटी परिषद: संवैधानिक स्थिति एवं अधिदेश

संविधान के अनुच्छेद 279A के अंतर्गत स्थापित **वस्तु एवं सेवा कर परिषद** (GST Council) भारत की प्रथम वास्तविक संघीय संस्था है। यह एक संयुक्त संवैधानिक निकाय है, जिसका उद्देश्य केंद्र और राज्यों के मध्य अप्रत्यक्ष कराधान पर सामंजस्य स्थापित करना तथा साझा राष्ट्रीय बाजार का नियमन करना है। 15 सितंबर 2016 को राष्ट्रपति के आदेश द्वारा इस परिषद की औपचारिक स्थापना की गई, जिसका स्थायी सचिवालय नई दिल्ली में स्थित है तथा केंद्रीय राजस्व सचिव इसके पदेन सचिव होते हैं।

परिषद की प्रशासनिक संरचना

अनुच्छेद 279A(2) के अनुसार परिषद का गठन निम्नलिखित सदस्यों से मिलकर होता है:

क) अध्यक्ष: केंद्रीय वित्त मंत्री (पदेन)।

ख) सदस्य (केंद्रीय): केंद्रीय वित्त राज्य मंत्री (राजस्व या वित्त के प्रभारी)।

ग) सदस्य (राज्य): प्रत्येक राज्य सरकार द्वारा नामित वित्त या कराधान मंत्री अथवा कोई अन्य मंत्री (वर्तमान में 28 राज्यों और 3 विधानसभा वाले केंद्र शासित प्रदेशों के कुल 31 सदस्य)।

घ) उपाध्यक्ष: परिषद के राज्य सदस्य अपने मध्य से किसी एक राज्य के वित्त मंत्री को एक निश्चित अवधि के लिए उपाध्यक्ष चुनते हैं।

मतदान शक्ति और निर्णय लेने की विधिक प्रक्रिया

जीएसटी परिषद की कार्यप्रणाली पूर्णतः सहयोगात्मक संघवाद पर आधारित है, जिसमें केंद्र और राज्यों के मतों का भार पूर्व-निर्धारित है:

अ) गणपूर्ति (Quorum): परिषद की किसी भी बैठक के आयोजन हेतु कुल सदस्यों के न्यूनतम पचास प्रतिशत (50%) सदस्यों की उपस्थिति अनिवार्य है।

ब) मतदान का भारित मूल्य (Weighted Voting):

केंद्र सरकार का मत भार: बैठक में डाले गए कुल वैध मतों का **एक-तिहाई (1/3 या 33.33%)**।

सभी राज्य सरकारों के मतों का संयुक्त भार: बैठक में डाले गए कुल वैध मतों का **दो-तिहाई (2/3 या 66.67%)**।

प्रत्येक राज्य का मत मूल्य समान होता है, भले ही उसकी जनसंख्या या भौगोलिक क्षेत्रफल कुछ भी हो।

स) निर्णय हेतु आवश्यक बहुमत: परिषद का प्रत्येक निर्णय उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के कम से कम **तीन-चौथाई (75%) भारित बहुमत** द्वारा ही लिया जा सकता है।

इस गणितीय संरचना का व्यावहारिक अर्थ यह है कि न तो केंद्र सरकार अकेले कोई निर्णय लागू कर सकती है (क्योंकि उसके पास केवल 33.33% मत हैं) और न ही सभी राज्य मिलकर केंद्र की सहमति के बिना कोई निर्णय ले सकते हैं (क्योंकि उनके पास अधिकतम 66.67% मत हैं, जो 75% से कम है)। अतः किसी भी प्रस्ताव के अनुमोदन हेतु केंद्र के साथ-साथ कम से कम 55% से अधिक राज्यों की सहमति अनिवार्य होती है।

जीएसटी परिषद के विधिक कार्य एवं सिफारिशी प्रकृति

अनुच्छेद 279A(4) के अनुसार परिषद निम्नलिखित विषयों पर केंद्र और राज्यों को सिफारिशें करती है:

wincompete

क) वे कर, उपकर और अधिभार जिन्हें जीएसटी में समाहित किया जाना है।

ख) वे वस्तुएं और सेवाएं जिन्हें जीएसटी से छूट दी जा सकती है।

ग) मॉडल जीएसटी कानून, लेवी के सिद्धांत, अंतर-राज्यीय आपूर्ति (IGST) के आबंटन के नियम।

घ) टर्नओवर की सीमा (थ्रेशोल्ड लिमिट), जिसके नीचे करदाताओं को छूट प्राप्त होगी (वर्तमान में वस्तुओं हेतु 40 लाख तथा सेवाओं हेतु 20 लाख रुपये)।

ङ) न्यूनतम दरों सहित जीएसटी कर की मानक दरें (Slabs)।

च) किसी प्राकृतिक आपदा या संकट के दौरान अतिरिक्त संसाधन जुटाने हेतु विशेष दरें।

छ) पूर्वोत्तर राज्यों, हिमालयी राज्यों और विशेष श्रेणी राज्यों के संबंध में विशेष प्रावधान।

सर्वोच्च न्यायालय का ऐतिहासिक निर्णय (मोहित मिनरल्स वाद, 2022):
'भारत संघ बनाम मैसर्स मोहित मिनरल्स प्राइवेट लिमिटेड' (2022) के ऐतिहासिक मामले में उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने स्पष्ट किया कि अनुच्छेद 279A के तहत जीएसटी परिषद की सिफारिशें केवल **सलाहकारी (Persuasive/Recommendatory)** प्रकृति की हैं, वे संसद और राज्य विधानमंडलों पर विधिक रूप से बाध्यकारी नहीं हैं। न्यायालय ने व्यवस्था दी कि अनुच्छेद 246A के तहत संसद और राज्य विधानमंडलों दोनों के पास कराधान की एकसमान और समवर्ती संप्रभु विधायी शक्ति है। जीएसटी परिषद वस्तुतः एक ऐसा मंच है जहां दोनों पक्ष राजनीतिक-आर्थिक संवाद द्वारा आम सहमति का निर्माण करते हैं।

उपखंड b: जीएसटी क्षतिपूर्ति उपकर, विवाद, राजस्व संग्रह की प्रवृत्तियां, ई-वे बिल, ई-चालान और कर अपवंचन नियंत्रण

जीएसटी क्षतिपूर्ति उपकर (GST Compensation Cess) और विवाद

जीएसटी लागू करते समय उत्पादक राज्यों (यथा महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु, कर्नाटक) को आशंका थी कि गंतव्य-आधारित (Destination-based) कर प्रणाली होने के कारण उन्हें भारी राजस्व हानि होगी। इस आशंका के निवारण हेतु संसद द्वारा **वस्तु एवं सेवा कर (राज्यों को क्षतिपूर्ति) अधिनियम, 2017** पारित किया गया:

क) संवैधानिक गारंटी: केंद्र सरकार ने जीएसटी लागू होने की तिथि (1 जुलाई 2017) से 5 वर्ष की अवधि (30 जून 2022 तक) के लिए राज्यों को होने वाले किसी भी राजस्व नुकसान की शत-प्रतिशत भरपाई की वैधानिक गारंटी दी।

ख) आधार वर्ष एवं अनुमानित वृद्धि: क्षतिपूर्ति की गणना हेतु वित्तीय वर्ष 2015-16 को आधार वर्ष माना गया तथा राज्यों के राजस्व में प्रतिवर्ष 14% की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (CAGR) की कल्पना की गई।

ग) क्षतिपूर्ति उपकर: क्षतिपूर्ति कोष के निर्माण हेतु विलासिता वस्तुओं (यथा महंगी कारें) और अहितकर वस्तुओं (यथा तंबाकू, सिगरेट, वातित पेय, कोयला) पर मानक जीएसटी दर के अतिरिक्त 'जीएसटी क्षतिपूर्ति उपकर' अधिरोपित किया गया।

घ) महामारी काल का वित्तीय तनाव: वर्ष 2020 में कोरोना संकट के दौरान क्षतिपूर्ति उपकर का संग्रह अत्यधिक घट गया, जिसके कारण केंद्र और राज्यों के मध्य तीखा विवाद उत्पन्न हुआ। अंततः केंद्र ने विशेष उधारी खिड़की (Special Borrowing Window) के माध्यम से आरबीआई से ऋण लेकर राज्यों को क्षतिपूर्ति राशि जारी की।

ङ) उपकर की समय-सीमा का विस्तार: यद्यपि राज्यों को क्षतिपूर्ति देने की 5 वर्षीय कानूनी बाध्यता जून 2022 में समाप्त हो गई, परंतु लिए गए ऋणों के मूलधन और ब्याज की अदायगी हेतु जीएसटी परिषद ने क्षतिपूर्ति उपकर की वसूली की अवधि को मार्च 2026 तक विस्तारित कर दिया।

राजस्व संग्रह की अद्यतन प्रवृत्तियां

जीएसटी प्रणाली के स्थिरीकरण, तकनीकी संवर्द्धन और कर अनुपालन में सुधार के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय राजस्व संग्रह में अभूतपूर्व वृद्धि दर्ज की गई है:

अ) मासिक संग्रह में सतत विस्तार: प्रारंभिक वर्षों में औसत मासिक संग्रह 90,000 करोड़ से 1,00,000 करोड़ रुपये के मध्य था, जो वित्तीय वर्ष 2024-25, 2025-26 और 2026-27 के दौरान औसतन 1.75 लाख करोड़ से 1.90 लाख करोड़ रुपये के उच्च स्तर को पार कर गया।

ब) ऐतिहासिक उच्चतम संग्रह: अप्रैल 2024 में सकल जीएसटी राजस्व संग्रह 2.10 लाख करोड़ रुपये के ऐतिहासिक रिकॉर्ड स्तर पर पहुंच गया, जो भारतीय अर्थव्यवस्था की आंतरिक मजबूती और अनुपालन दक्षता का प्रमाण है।

स) राजस्व उछाल (Tax Buoyancy): इनपुट टैक्स क्रेडिट के स्वतः मिलान और कर अपवंचन पर कठोर नियंत्रण के कारण सकल घरेलू उत्पाद की तुलना में अप्रत्यक्ष करों की वृद्धि दर उच्च बनी हुई है।

ई-वे बिल (E-Way Bill) प्रणाली

ई-वे बिल (इलेक्ट्रॉनिक वे बिल) वस्तुओं के भौतिक परिवहन हेतु जीएसटी व्यवस्था के तहत एक अनिवार्य इलेक्ट्रॉनिक विलेख है:

क) वैधानिक अधिदेश: केंद्रीय जीएसटी नियमों के नियम 138 के अनुसार, जब 50,000 रुपये से अधिक मूल्य की वस्तुओं का अंतर-राज्यीय या अंतःराज्यीय परिवहन किया जाता है, तो माल की ढुलाई से पूर्व ई-वे बिल सृजित करना कानूनी रूप से अनिवार्य है।

ख) संरचना: इसमें दो भाग होते हैं—

भाग A: इसमें प्राप्तकर्ता का जीएसटीएन (GSTIN), प्रेषण का स्थान, इनवॉइस संख्या, मूल्य और वस्तुओं का एचएसएन (HSN) कोड सम्मिलित होता है।

भाग B: इसमें वाहन संख्या और परिवहनकर्ता का विवरण होता है।

ग) वैधता अवधि: सामान्य कार्गो हेतु प्रत्येक 200 किलोमीटर की दूरी के लिए 1 दिन की वैधता निर्धारित है, जबकि ओवर-डायमेंशनल कार्गो (ODC) हेतु प्रत्येक 20 किलोमीटर के लिए 1 दिन की वैधता देय होती है।

घ) फास्टैग (FASTag) एवं आरएफआईडी (RFID) एकीकरण: ई-वे बिल प्रणाली को राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण के फास्टैग नेटवर्क से जोड़ दिया गया है, जिससे वाणिज्यिक वाहनों के वास्तविक संचलन की वाणिज्यिक कर अधिकारियों द्वारा वास्तविक समय (Real-time) में निगरानी संभव हो सकी है।

ई-चालान (E-Invoicing) प्रणाली एवं डिजिटलीकरण

व्यापार-से-व्यापार (B2B) लेन-देन में पारदर्शिता स्थापित करने हेतु चरणबद्ध रूप से ई-इनवॉइसिंग प्रणाली लागू की गई है:

अ) कार्यप्रणाली: करदाता अपने ईआरपी सिस्टम में इनवॉइस तैयार कर उसे इनवॉइस पंजीकरण पोर्टल (IRP) पर अपलोड करता है। पोर्टल इनवॉइस के डेटा का सत्यापन करके एक अद्वितीय 64-अंकीय **इनवॉइस संदर्भ संख्या (IRN)** और एक डिजिटल हस्ताक्षरित क्यूआर कोड (QR Code) सृजित करता है।

ब) टर्नओवर सीमा का क्रमिक संकुचन: वर्ष 2020 में 500 करोड़ रुपये से अधिक टर्नओवर वाली कंपनियों से प्रारंभ होकर, इसे क्रमिक रूप से घटाते हुए वर्तमान में 5 करोड़ रुपये से अधिक वार्षिक टर्नओवर वाले समस्त पंजीकृत व्यवसायों हेतु अनिवार्य कर दिया गया है।

स) लाभ: इसके लागू होने से नकली इनवॉइस (Fake Invoicing) के आधार पर फर्जी आईटीसी का दावा करने की संभावना समाप्त हो गई है, क्योंकि क्रेता के फॉर्म GSTR-2B में डेटा स्वतः प्रविष्ट हो जाता है।

कर अपवंचन नियंत्रण एवं विनियामक सुधार

जीएसटी धोखाधड़ी और कर चोरी को रोकने हेतु सरकार ने अनेक कड़े विधिक और तकनीकी उपाय किए हैं:

विनियामक साधन/उपाय	विधिक आधार एवं कार्यप्रणाली	उद्देश्य एवं प्रभाव
जीएसटी नेटवर्क (GSTN)	गैर-सरकारी, निजी-सार्वजनिक भागीदारी आधारित अत्याधुनिक आईटी अवसंरचना (अब पूर्णतः सरकारी स्वामित्व)।	करोड़ों रिटर्न और अरबों इनवॉइस का निर्बाध प्रोसेसिंग; रियल-टाइम डेटा मिलान।
जीएसटी खुफिया महानिदेशालय (DGGI)	केंद्रीय अप्रत्यक्ष कर एवं सीमा शुल्क बोर्ड (CBIC) के तहत शीर्ष जांच एजेंसी।	फर्जी कंपनियों (Shell Companies), बोगस बिलिंग और अवैध आईटीसी सिंडिकेट पर देशव्यापी छापेमारी व आपराधिक अभियोजन।
नियम 86A एवं 86B	सीजीएसटी नियमों के तहत इलेक्ट्रॉनिक क्रेडिट लेजर पर विधिक प्रतिबंध।	संदिग्ध मामलों में आईटीसी के उपयोग पर रोक; 50 लाख से अधिक मासिक टर्नओवर पर न्यूनतम 1% कर देनदारी नकद चुकाने की बाध्यता।
डेटा एनालिटिक्स और एआई	'बिजनेस इंटेलिजेंस एंड फ्रॉड एनालिटिक्स' (BIFA) सॉफ्टवेयर का प्रयोग।	आयकर (Income Tax), कॉर्पोरेट मामलों के मंत्रालय (MCA) और सीमा शुल्क के डेटा का परस्पर मिलान कर विसंगतियों की स्वचालित पहचान।
जीएसटी अपीलीय न्यायाधिकरण (GSTAT)	सीजीएसटी अधिनियम की धारा 109 के तहत राष्ट्रीय एवं राज्य पीठों का गठन।	उच्च न्यायालयों पर मुकदमों का भार कम करना तथा कर विवादों का विशेषज्ञ एवं त्वरित समाधान।

महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली एवं विधिक संकल्पनाएं

आपूर्ति (Supply): सीजीएसटी अधिनियम की धारा 7 के अनुसार, कराधान की घटना 'माल के निर्माण' या 'माल की बिक्री' के स्थान पर केवल 'आपूर्ति' है। इसमें प्रतिफल के बदले व्यवसाय के

अनुक्रम में की गई बिक्री, स्थानांतरण, वस्तु-विनिमय (Barter), लाइसेंस, किराया, पट्टा या निपटान के समस्त रूप शामिल हैं।

आपूर्ति का स्थान (Place of Supply): अंतर-राज्यीय और अंतःराज्यीय आपूर्ति का निर्धारण करने वाला विधिक मानदंड। वस्तुओं के मामले में यह वह स्थान है जहां वस्तुओं की आवाजाही समाप्त होती है, तथा सेवाओं के मामले में सामान्यतः प्राप्तकर्ता का पंजीकृत व्यावसायिक स्थान होता है।

रिवर्स चार्ज मैकेनिज्म (RCM): सामान्य व्यवस्था के विपरीत, जब कर का भुगतान करने का दायित्व आपूर्तिकर्ता के स्थान पर माल या सेवाओं के प्राप्तकर्ता पर होता है (धारा 9(3) एवं 9(4))। यह अव्यवस्थित क्षेत्रों (यथा जीटीए, वकीलों की सेवाएं) से कर संग्रह सुनिश्चित करने हेतु प्रयुक्त होता है।

कंपोजिशन लेवी (Composition Scheme): छोटे करदाताओं (1.5 करोड़ रुपये तक टर्नओवर वाले विनिर्माता/व्यापारी तथा 50 लाख रुपये तक वाले सेवा प्रदाता) हेतु एक सरलीकृत योजना। इसके तहत विस्तृत बहीखाते रखे बिना कुल टर्नओवर पर एक निश्चित न्यूनतम दर (1% से 5%) से कर चुकाया जाता है, परंतु इन्हें आईटीसी का लाभ नहीं मिलता और न ही ये ग्राहकों से कर वसूल सकते हैं।

एचएसएन (HSN) एवं एसएसी (SAC) कोड: वस्तुओं के वर्गीकरण हेतु 'हार्मोनाइज्ड सिस्टम ऑफ नोमेनक्लेचर' (8-अंकीय अंतरराष्ट्रीय कोड) तथा सेवाओं के वर्गीकरण हेतु 'सर्विसेज अकाउंटिंग कोड' (6-अंकीय कोड), जिससे प्रत्येक उत्पाद पर कर की विधिक दर निर्धारित होती है।

मुनाफाखोरी-रोधी तंत्र (Anti-Profiteering Framework): सीजीएसटी अधिनियम की धारा 171 के तहत विहित व्यवस्था, जिसके अनुसार जीएसटी दरों में कटौती या आईटीसी के लाभ को कीमतों में आनुपातिक कमी करके अंतिम उपभोक्ता तक पहुंचाना अनिवार्य है। पूर्व में इसका दायित्व राष्ट्रीय मुनाफाखोरी-रोधी प्राधिकरण (NAA) के पास था, जिसे 1 दिसंबर 2022 से **भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग (CCI)** को सौंप दिया गया है।

शून्य-रेटेड आपूर्ति (Zero-Rated Supply): माल या सेवाओं का निर्यात अथवा विशेष आर्थिक क्षेत्र (SEZ) इकाइयों को की गई आपूर्ति। यह 'कर-मुक्त आपूर्ति' (Exempt Supply) से भिन्न है, क्योंकि शून्य-रेटेड आपूर्ति में इनपुट पर चुकाए गए संपूर्ण कर की वापसी (Refund) प्राप्त होती है, जिससे निर्यात पूर्णतः कर-मुक्त रहता है।

अध्याय 5: भारतीय बैंकिंग संरचना - विकास, विनियामक तंत्र एवं एनपीए प्रबंधन

खंड A: बैंकिंग प्रणाली का विकास एवं वर्गीकरण

उपखंड a: भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना, बैंकों का राष्ट्रीयकरण, अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, सहकारी बैंक

भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं सांविधिक ढांचा

भारतीय केंद्रीय बैंकिंग प्रणाली की नींव बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में औपनिवेशिक आर्थिक संकटों के समाधान हेतु रखी गई। वर्ष 1926 में रॉयल कमीशन ऑन इंडियन करेंसी एंड फाइनेंस (हिल्टन-यंग आयोग) ने भारत में मौद्रिक स्थिरता, साख नियंत्रण एवं बैंकिंग प्रबंधन हेतु एक एकीकृत केंद्रीय बैंक की स्थापना की अनुशंसा की थी। इसके साथ ही वर्ष 1931 की केंद्रीय बैंकिंग जांच समिति ने भी इस आवश्यकता की पुनः संपुष्टि की। इन सिफारिशों के क्रियान्वयन हेतु केंद्रीय विधायिका द्वारा **भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934** पारित किया गया।

क) स्थापना एवं प्रारंभिक स्वरूप: भारतीय रिजर्व बैंक ने 1 अप्रैल 1935 से अपना विधायी परिचालन प्रारंभ किया। मूल रूप से यह 5 करोड़ रुपये की अधिकृत अंशपूंजी के साथ एक निजी शेयरधारकों का बैंक था, जिसमें 100 रुपये मूल्य के 5 लाख पूर्ण चुकता शेयर जारी किए गए थे।

ख) मुख्यालय का स्थानांतरण: बैंक का केंद्रीय कार्यालय प्रारंभ में कलकत्ता में स्थापित किया गया था, जिसे वर्ष 1937 में स्थायी रूप से बम्बई (वर्तमान मुंबई) स्थानांतरित कर दिया गया।

ग) संप्रभु राष्ट्रीयकरण: स्वतंत्रता के पश्चात स्वतंत्र मौद्रिक नीति के क्रियान्वयन एवं समाज के आर्थिक हितों की पूर्ति हेतु **सार्वजनिक स्वामित्व में अंतरण अधिनियम, 1948** पारित किया गया। इसके प्रावधानों के अधीन 1 जनवरी 1949 को भारतीय रिजर्व बैंक का पूर्ण राष्ट्रीयकरण कर दिया गया और यह शत-प्रतिशत सरकारी स्वामित्व वाला संस्थान बन गया।

घ) विनियामक शक्तियां: देश की संपूर्ण बैंकिंग व्यवस्था पर पर्यवेक्षणीय एवं विनियामक संप्रभुता प्रदान करने के उद्देश्य से संसद द्वारा **बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949** अधिनियमित किया गया। यह अधिनियम केंद्रीय बैंक को वाणिज्यिक एवं सहकारी बैंकों के लाइसेंसिंग, प्रबंधन, शाखा विस्तार, परिसंपत्ति गुणवत्ता तथा तरलता अनुपात के निर्धारण हेतु व्यापक वैधानिक अधिकार सौंपता है।

वाणिज्यिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण की विधिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि

स्वतंत्रता के प्रारंभिक दो दशकों में देश की बैंकिंग प्रणाली अत्यधिक संकेंद्रित थी। बैंक मुख्य रूप से बड़े औद्योगिक घरानों द्वारा नियंत्रित किए जाते थे तथा ग्रामीण क्षेत्रों, कृषि, लघु उद्योगों एवं प्राथमिक क्षेत्रों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ण उपेक्षा की जा रही थी। आर्थिक शक्ति के इस केंद्रीयकरण को समाप्त करने तथा संविधान के राज्य के नीति निदेशक तत्वों (विशेषकर अनुच्छेद 39(b) और 39(c)) के समाजवाद-उन्मुख उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु दो चरणों में ऐतिहासिक राष्ट्रीयकरण किया गया:

अ) प्रथम चरण (1969): तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के नेतृत्व में 19 जुलाई 1969 को 'बैंकिंग कंपनियां (उपक्रमों का अर्जन और अंतरण) अध्यादेश' प्रख्यापित किया गया, जिसने बाद में अधिनियम का रूप लिया। इसके अंतर्गत उन 14 प्रमुख निजी वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया, जिनकी कुल जमा राशि 50 करोड़ रुपये या उससे अधिक थी। इनमें सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, बैंक ऑफ इंडिया, पंजाब नेशनल बैंक, बैंक ऑफ बड़ौदा तथा केनरा बैंक जैसे शीर्ष वित्तीय संस्थान सम्मिलित थे।

ब) द्वितीय चरण (1980): 15 अप्रैल 1980 को बैंकिंग कंपनियां (उपक्रमों का अर्जन और अंतरण) अधिनियम, 1980 के माध्यम से 6 अन्य निजी बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया, जिनकी जमा देयताएं 200 करोड़ रुपये या उससे अधिक थीं। इनमें आंध्रा बैंक, कॉर्पोरेशन बैंक, न्यू बैंक ऑफ इंडिया, ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स, पंजाब एंड सिंध बैंक तथा विजया बैंक शामिल थे।

स) संवैधानिक परिप्रेक्ष्य एवं आर.सी. कूपर बनाम भारत संघ वाद (1970): बैंकों के प्रथम राष्ट्रीयकरण को सर्वोच्च न्यायालय में आर.सी. कूपर (बैंक ऑफ बड़ौदा के शेयरधारक) द्वारा चुनौती दी गई। उच्चतम न्यायालय की 11 न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने 'आर.सी. कूपर बनाम भारत संघ (1970)' मामले में अध्यादेश को संपत्ति के अधिकार (अनुच्छेद 31) के उल्लंघन तथा भेदभावपूर्ण क्षतिपूर्ति प्रणाली के आधार पर निरस्त कर दिया था। इसके पश्चात संसद ने क्षतिपूर्ति के विधिक प्रावधानों को संशोधित करते हुए नया अधिनियम पारित किया तथा 25वें संविधान संशोधन अधिनियम (1971) द्वारा अनुच्छेद 31C को अंतःस्थापित कर नीति निदेशक तत्वों के क्रियान्वयन हेतु विधिक संरक्षण प्रदान किया।

अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक (SCBs) का विनियामक विन्यास

भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 की **द्वितीय अनुसूची** में सम्मिलित बैंकों को अनुसूचित बैंक (Scheduled Banks) कहा जाता है। किसी भी बैंक को इस अनुसूची में सम्मिलित होने हेतु दो मूलभूत वैधानिक शर्तें पूर्ण करनी अनिवार्य होती हैं:

क) प्रदत्त पूंजी एवं सुरक्षित कोष का न्यूनतम मूल्य कम से कम 5 लाख रुपये होना चाहिए (आधुनिक विनियामक मानकों के अनुसार यह राशि न्यूनतम 500 करोड़ रुपये विहित है)।

ख) बैंक का कोई भी कार्यकलाप उसके जमाकर्ताओं के हितों के प्रतिकूल नहीं होना चाहिए।

अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों का वर्गीकरण एवं उनकी विनियामक विशेषताएं:

बैंक संवर्ग	स्वामित्व एवं विधायी आधार	मुख्य परिचालन विशेषताएं	प्राथमिक क्षेत्रक ऋण (PSL) लक्ष्य
सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक (PSBs)	भारत सरकार की बहुमत हिस्सेदारी (न्यूनतम 51 प्रतिशत)। राष्ट्रीयकृत बैंक एवं भारतीय स्टेट बैंक समूह।	सामाजिक बैंकिंग, सरकारी योजनाओं का क्रियान्वयन, सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक शाखा संजाल।	समायोजित निवल बैंक ऋण (ANBC) का 40 प्रतिशत।
निजी क्षेत्र के बैंक (Old & New Private Banks)	निजी शेयरधारकों एवं संस्थागत निवेशकों का स्वामित्व। बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 के अधीन विनियमित।	उच्च तकनीकी दक्षता, लाभ-उन्मुख परिचालन, महानगरीय एवं शहरी क्षेत्रों में सघन उपस्थिति।	समायोजित निवल बैंक ऋण (ANBC) का 40 प्रतिशत।
विदेशी बैंक (Foreign Banks)	विदेशी मूल के बैंक, जिनकी शाखाएं भारत में कार्यरत हैं अथवा पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनियां (WOS)।	अंतरराष्ट्रीय व्यापार वित्तपोषण, कॉर्पोरेट बैंकिंग, वैश्विक तकनीकी अवसंरचना।	20 या अधिक शाखाओं वाले बैंकों हेतु 40 प्रतिशत; 20 से कम शाखाओं वाले बैंकों हेतु 40 प्रतिशत (चरणबद्ध)।

wincompete

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का वृहद विलय (Mega-Merger): बैंकिंग क्षेत्र की वित्तीय सुदृढ़ता, परिचालन दक्षता और पैमाने की अर्थव्यवस्था (Economies of Scale) प्राप्त करने के उद्देश्य से 1 अप्रैल 2020 से 10 सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का विलय कर 4 बड़े बैंकों में रूपांतरित कर दिया गया (यथा ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स एवं यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया का पंजाब नेशनल बैंक में; सिंडिकेट बैंक का केनरा बैंक में; इलाहाबाद बैंक का इंडियन बैंक में; तथा आंध्रा बैंक व कॉर्पोरेशन बैंक का यूनियन बैंक ऑफ इंडिया में)। इसके परिणामस्वरूप देश में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की कुल संख्या घटकर 12 रह गई है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (RRBs): संस्थागत एवं संरचनात्मक ढांचा
ग्रामीण क्षेत्रों में लघु एवं सीमांत कृषकों, खेतिहर मजदूरों, कारीगरों तथा छोटे उद्यमियों तक संस्थागत ऋण की पहुंच सुनिश्चित करने हेतु एम. नरसिम्हम की अध्यक्षता वाले कार्यदल (1975) की सिफारिशों पर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की गई।

अ) विधिक स्थापना: 26 सितंबर 1975 को जारी अध्यादेश के उपरांत संसद द्वारा **क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अधिनियम, 1976** पारित किया गया। देश का पहला क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक 2 अक्टूबर 1975 को मुरादाबाद (उत्तर प्रदेश) में 'प्रथमा बैंक' के नाम से स्थापित हुआ, जिसे सिंडिकेट बैंक द्वारा प्रायोजित किया गया था।

ब) अंशपूंजी का विनियामक अनुपात: क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की प्रदत्त पूंजी में केंद्र सरकार, संबंधित राज्य सरकार तथा प्रायोजक बैंक (Sponsor Bank) का आनुपातिक हिस्सा विधिक रूप से निर्धारित है:

केंद्र सरकार की हिस्सेदारी: 50 प्रतिशत

संबंधित राज्य सरकार की हिस्सेदारी: 15 प्रतिशत

प्रायोजक वाणिज्यिक बैंक की हिस्सेदारी: 35 प्रतिशत

स) विनियामक एवं पर्यवेक्षणीय तंत्र: आरआरबी का सांविधिक विनियामक भारतीय रिजर्व बैंक है, जबकि प्रत्यक्ष वित्तीय और विकासात्मक पर्यवेक्षण **राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड)** द्वारा नाबार्ड अधिनियम, 1981 की धारा 35(6) के अधीन संपादित किया जाता है।

द) विशेष विनियामक अधिदेश: क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों हेतु प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रक ऋण (Priority Sector Lending - PSL) का लक्ष्य उनके कुल समायोजित निवल बैंक ऋण (ANBC) का **75 प्रतिशत** अनिवार्य किया गया है, जो सामान्य वाणिज्यिक बैंकों (40 प्रतिशत) की तुलना में अत्यधिक कठोर है।

सहकारी बैंकिंग संरचना: त्रि-स्तरीय ढांचा एवं विनियामक सुधार
सहकारी बैंक 'परस्पर सहायता' तथा 'लाभ नहीं-हानि नहीं' के सिद्धांत पर गठित स्वैच्छिक लोकतांत्रिक संगठन हैं, जो राज्य सहकारी समितियां अधिनियम अथवा बहु-राज्य सहकारी समितियां अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत होते हैं। भारत में सहकारी साख संरचना दो प्रमुख श्रेणियों में विभक्त है:

मुख्य श्रेणी	उप-श्रेणी / स्तर	संस्थाएं / विवरण
ग्रामीण सहकारी साख संस्थाएं	**अल्पकालिक साख संरचना (त्रि-स्तरीय)**	• राज्य सहकारी बैंक (StCBs - राज्य स्तर) • जिला मध्यवर्ती सहकारी बैंक (DCCBs - जिला स्तर)

		• प्राथमिक कृषि साख समितियां (PACS - ग्राम स्तर)
	दीर्घकालिक साख संरचना	• भूमि विकास बैंक
शहरी सहकारी बैंक	प्राथमिक सहकारी बैंक (UCBs)	शहरी क्षेत्र की सहकारी संस्थाएं

दोहरा विनियामक नियंत्रण (Dual Control) और बैंकिंग विनियमन (संशोधन) अधिनियम, 2020:
ऐतिहासिक रूप से सहकारी बैंकों पर राज्यों के सहकारिता रजिस्ट्रार (प्रशासन, चुनाव एवं लेखापरीक्षा हेतु) तथा भारतीय रिजर्व बैंक (बैंकिंग लाइसेंसिंग एवं विवेकपूर्ण मानदंडों हेतु) का दोहरा नियंत्रण था। पंजाब एंड महाराष्ट्र को-ऑपरेटिव (PMC) बैंक संकट के उपरांत विनियामक विसंगतियों को दूर करने के लिए संसद ने **बैंकिंग विनियमन (संशोधन) अधिनियम, 2020** पारित किया। इस संशोधन के प्रमुख परिणाम निम्नलिखित हैं:

क) शहरी सहकारी बैंकों (UCBs) तथा जिला/राज्य सहकारी बैंकों के संपूर्ण बैंकिंग कार्यकलापों को भारतीय रिजर्व बैंक के प्रत्यक्ष और पूर्ण विनियामक नियंत्रण के अधीन ला दिया गया।

ख) आरबीआई को बैंक प्रबंधन के पुनर्गठन, निदेशक मंडल के निलंबन तथा संकटग्रस्त बैंक के अधिस्थगन (Moratorium) के बिना ही उसके पुनरुद्धार या विलय की योजना बनाने की संप्रभु शक्ति प्राप्त हो गई।

ग) हालांकि, प्राथमिक कृषि साख समितियां (PACS) तथा वे सहकारी समितियां जिनका प्राथमिक उद्देश्य कृषि हेतु दीर्घकालिक वित्तपोषण है, इस संशोधन के दायरे से बाहर रखी गई हैं।

उपखंड b: लघु वित्त बैंक, भुगतान बैंक, गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियां और उनका विनियामक ढांचा

विभेदित बैंक (Differentiated Banks): नचिकेत मोर समिति की रूपरेखा
वित्तीय समावेशन को सुदृढ़ करने तथा बैंकिंग सेवाओं से वंचित वर्गों तक औपचारिक साख और प्रेषण (Remittance) सुविधाएं पहुंचाने के उद्देश्य से भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा गठित **नचिकेत मोर समिति (2013)** ने 'विभेदित बैंक लाइसेंसिंग' की सिफारिश की। इसके अंतर्गत दो विशिष्ट प्रकार के बैंक अस्तित्व में आए:

लघु वित्त बैंक (Small Finance Banks - SFBs)
लघु वित्त बैंक पूर्ण-सेवा बैंक (Full-service Banks) होते हैं, किंतु इनका परिचालन पैमाना और लक्षित वर्ग सीमित होता है। ये मुख्य रूप से असंगठित क्षेत्र, छोटे किसानों, सूक्ष्म व लघु उद्योगों और गैर-निगमित संस्थाओं को वित्तीय सेवाएं प्रदान करते हैं।

wincompete

अ) प्रारंभिक पूंजी आवश्यकता: न्यूनतम चुकता इक्विटी पूंजी 200 करोड़ रुपये (शहरी सहकारी बैंकों से रूपांतरण हेतु 100 करोड़ रुपये, जिसे 5 वर्षों में बढ़ाकर 200 करोड़ रुपये करना अनिवार्य है)।

ब) प्राथमिक क्षेत्रक ऋण (PSL): लघु वित्त बैंकों के लिए कुल समायोजित निवल बैंक ऋण (ANBC) का न्यूनतम **75 प्रतिशत** प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को देना अनिवार्य है।

स) ऋण आकार सीमा: इनके कुल ऋण पोर्टफोलियो का कम से कम **50 प्रतिशत** ऋण 25 लाख रुपये तक के आकार का होना विधिक रूप से अनिवार्य है।

द) शाखा विस्तार: परिचालन के प्रथम वर्ष से ही अपनी कुल शाखाओं का कम से कम 25 प्रतिशत ग्रामीण व बिना बैंक वाली शाखाओं (Unbanked Rural Centres) में खोलना अनिवार्य है।

ङ) ऑन-टैप लाइसेंसिंग: आरबीआई ने लघु वित्त बैंकों हेतु 'ऑन-टैप' (On-tap) लाइसेंसिंग व्यवस्था लागू की है, जिसके तहत पात्र संस्थाएं वर्ष भर कभी भी लाइसेंस हेतु आवेदन कर सकती हैं।

भुगतान बैंक (Payments Banks - PBs)
भुगतान बैंकों की संकल्पना छोटे बचतकर्ताओं, प्रवासी श्रमिकों और निम्न आय वर्ग को सुरक्षित जमा तथा तीव्र भुगतान/प्रेषण सेवाएं उपलब्ध कराने हेतु की गई है।

क) पूंजी आवश्यकता: न्यूनतम चुकता इक्विटी पूंजी 100 करोड़ रुपये विहित है।

ख) जमा सीमा: प्रति व्यक्तिगत ग्राहक अधिकतम शेष राशि (End-of-the-day balance) की विधिक सीमा **2 लाख रुपये** निर्धारित है (आरबीआई द्वारा इसे वर्ष 2021 में 1 लाख रुपये से बढ़ाकर 2 लाख रुपये किया गया)।

ग) ऋण देने पर पूर्ण प्रतिबंध: भुगतान बैंक किसी भी प्रकार का ऋण (Loans) या अग्रिम जारी नहीं कर सकते और न ही वे क्रेडिट कार्ड जारी करने हेतु अधिकृत हैं। ये केवल एटीएम/डेबिट कार्ड जारी कर सकते हैं।

घ) निधियों का विनियामक परिनियोजन: भुगतान बैंकों को अपनी कुल मांग जमा (Demand Deposits) का न्यूनतम **75 प्रतिशत** हिस्सा 1 वर्ष तक की परिपक्वता वाली सांविधिक तरलता अनुपात (SLR) पात्र सरकारी प्रतिभूतियों या ट्रेजरी बिलों में निवेश करना अनिवार्य है। शेष 25 प्रतिशत राशि परिचालन हेतु अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों के चालू खातों में रखी जा सकती है।

तुलनात्मक आयाम	**लघु वित्त बैंक (SFBs)**	**भुगतान बैंक (PBs)**
मूल उद्देश्य	साख आपूर्ति एवं लघु बचत संग्रहण।	प्रेषण सेवाएं एवं लघु बचत खाता।
जमा स्वीकार्यता	मांग जमा (चालू/बचत) एवं सावधि जमा (FD/RD)।	केवल मांग जमा (चालू एवं बचत खाता)। सावधि जमा पूर्णतः वर्जित।
ऋण प्रदान करने की शक्ति	सक्षम (75 प्रतिशत PSL लक्ष्य के साथ)।	पूर्णतः वर्जित। कोई ऋण या क्रेडिट कार्ड नहीं।

wincompete

न्यूनतम पूंजी आवश्यकता	200 करोड़ रुपये।	100 करोड़ रुपये।
प्रमुख उदाहरण	एयू स्मॉल फाइनेंस बैंक, उज्जीवन स्मॉल फाइनेंस बैंक।	एयरटेल पेमेंट्स बैंक, इंडिया पोस्ट पेमेंट्स बैंक (IPPB)।

गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियां (NBFCs): प्रकृति एवं चार-स्तरीय विनियामक ढांचा
कंपनी अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियां (NBFCs) वे वित्तीय संस्थाएं हैं जो ऋण देने, शेयरों/प्रतिभूतियों के अधिग्रहण, पट्टा (Leasing) और किराया-क्रय (Hire-purchase) के व्यवसाय में संलग्न होती हैं।

बैंकों और एनबीएफसी के मध्य विधिक विभेद:

अ) एनबीएफसी मांग जमा (Demand Deposits - बचत व चालू खाता) स्वीकार नहीं कर सकतीं; केवल पात्र पंजीकृत एनबीएफसी ही न्यूनतम 12 माह और अधिकतम 60 माह हेतु सावधि जमा (Term Deposits) स्वीकार कर सकती हैं।

ब) एनबीएफसी भुगतान एवं निपटान प्रणाली (Payment and Settlement System) का हिस्सा नहीं होती हैं, अतः वे स्वयं पर आहरित चेक (Cheques) जारी नहीं कर सकतीं।

स) एनबीएफसी के जमाकर्ताओं को जमा बीमा एवं प्रत्यय गारंटी निगम (DICGC) द्वारा प्रदान किया जाने वाला 5 लाख रुपये का बीमा संरक्षण उपलब्ध नहीं होता है।

आरबीआई का चार-स्तरीय स्केल-आधारित विनियामक ढांचा (SBR Framework):
आईएलएंडएफएस (IL&FS) तथा दीवान हाउसिंग फाइनेंस (DHFL) संकट के उपरांत प्रणालीगत जोखिमों के शमन हेतु भारतीय रिजर्व बैंक ने अक्टूबर 2022 से एनबीएफसी हेतु 'स्केल-आधारित विनियामक ढांचा' (Scale Based Regulation - SBR) पूर्णतः लागू किया। यह ढांचा संस्थाओं के आकार, कार्यकलापों और जोखिम स्तर के आधार पर चार संस्तरों में संरचित है:

स्तर (Layer)	संस्थागत घटक एवं सीमा	विनियामक नियंत्रण की तीव्रता
आधार स्तर (Base Layer - NBFC-BL)	1000 करोड़ रुपये से कम परिसंपत्ति आकार वाली गैर-जमा स्वीकारकर्ता एनबीएफसी, पीयर-टू-पीयर लेंडिंग प्लेटफॉर्म (P2P), खाता एग्रीगेटर (Account Aggregator)।	न्यूनतम विनियामक हस्तक्षेप, शुद्ध स्वामित्व वाली निधि (NOF) की सीमा को चरणबद्ध रूप से 10 करोड़ रुपये तक बढ़ाना।

मध्यम स्तर (Middle Layer - NBFC-ML)	समस्त जमा स्वीकारकर्ता एनबीएफसी (परिसंपत्ति आकार की परवाह किए बिना), तथा 1000 करोड़ रुपये या उससे अधिक परिसंपत्ति वाली गैर-जमा स्वीकारकर्ता एनबीएफसी, प्राथमिक डीलर।	कठोर विवेकपूर्ण मानदंड, परिसंपत्ति वर्गीकरण हेतु 90-दिवसीय एनपीए मानक, मुख्य अनुपालन अधिकारी की नियुक्ति।
उच्च स्तर (Upper Layer - NBFC-UL)	भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित विशिष्ट स्कोरिंग पद्धति के आधार पर पहचानी गई शीर्ष एनबीएफसी (प्रणालीगत रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण)।	वाणिज्यिक बैंकों के समतुल्य विनियामक मानदंड, सामान्य इक्विटी टियर-1 पूंजी आवश्यकताएं, आंतरिक पूंजी पर्याप्तता मूल्यांकन (ICAAP)।
शीर्ष स्तर (Top Layer - NBFC-TL)	यह स्तर सैद्धांतिक रूप से रिक्त रखा गया है। यदि उच्च स्तर की किसी विशिष्ट एनबीएफसी में अत्यधिक प्रणालीगत जोखिम उत्पन्न होता है, तो आरबीआई उसे इस स्तर पर स्थानांतरित कर अभूतपूर्व कठोर विनियामक नियंत्रण लागू करेगा।	उच्चतम विनियामक एवं हस्तक्षेपकारी नियंत्रण।

खंड B: बैंकिंग सुधार एवं परिसंपत्ति गुणवत्ता

उपखंड a: नरसिम्हन समितियां, बेसल मानक (I, II, III), पूंजी पर्याप्तता अनुपात

नरसिम्हन समितियां: वित्तीय प्रणाली के संरचनात्मक सुधार

भारतीय बैंकिंग इतिहास में सुधारों का पथ प्रशस्त करने का श्रेय भारतीय रिजर्व बैंक के पूर्व गवर्नर एम. नरसिम्हम की अध्यक्षता में गठित दो ऐतिहासिक समितियों को जाता है:

नरसिम्हम समिति-I (1991) - वित्तीय प्रणाली पर समिति:

वर्ष 1991 के गंभीर भुगतान संतुलन संकट के समय बैंकिंग तंत्र को सरकारी वित्तीय दमन (Financial Repression) से मुक्त कर बाजार-उन्मुख बनाने हेतु गठित इस समिति ने निम्नलिखित क्रांतिकारी सिफारिशें प्रस्तुत कीं:

क) आरक्षित अनुपातों में कमी: वैधानिक तरलता अनुपात (SLR) को तत्कालीन 38.5 प्रतिशत से घटाकर 25 प्रतिशत तथा नकद आरक्षित अनुपात (CRR) को घटाकर 3 से 5 प्रतिशत के स्तर पर लाना, ताकि बैंकों के पास उत्पादक निवेश हेतु पर्याप्त साख उपलब्ध हो सके।

ख) ब्याज दरों का अविनियमन: बैंकों को बाजार शक्तियों के आधार पर जमा और ऋण की ब्याज दरें निर्धारित करने की स्वायत्तता प्रदान करना।

ग) परिसंपत्ति वर्गीकरण एवं विवेकपूर्ण मानदंड: आय पहचान (Income Recognition), परिसंपत्ति वर्गीकरण (Asset Classification) तथा संदिग्ध ऋणों हेतु प्रावधानीकरण (Provisioning) के अंतरराष्ट्रीय 90-दिवसीय मानक लागू करना।

घ) पूंजी पर्याप्तता: अंतरराष्ट्रीय मानकों (बीआईएस) के अनुरूप चरणबद्ध रूप से 8 प्रतिशत जोखिम-भारित परिसंपत्ति अनुपात (CRAR) अनिवार्य करना।

ङ) निजी क्षेत्र का प्रवेश: बैंकिंग क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा बढ़ाने हेतु नवीन निजी घरेलू बैंकों एवं विदेशी बैंकों को लाइसेंस जारी करना।

च) चार-स्तरीय बैंकिंग संरचना: देश में 3 से 4 बड़े अंतरराष्ट्रीय बैंक, 8 से 10 राष्ट्रीय बैंक, स्थानीय बैंक और ग्रामीण बैंक स्थापित करने की योजना।

नरसिम्हम समिति-II (1998) - बैंकिंग क्षेत्रक सुधार समिति:
वित्तीय उदारीकरण के पश्चात बैंकिंग तंत्र को वैश्विक वित्तीय झटकों से सुरक्षित करने और संस्थागत सुदृढ़ीकरण हेतु गठित इस समिति की मुख्य सिफारिशें निम्नलिखित थीं:

अ) पूंजी पर्याप्तता में वृद्धि: सीआरएआर (CRAR) को न्यूनतम 8 प्रतिशत से बढ़ाकर 9 प्रतिशत (और अंततः 10 प्रतिशत) करना।

ब) गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों (NPA) में कमी: सकल एनपीए को वर्ष 2000 तक 5 प्रतिशत तथा शुद्ध एनपीए को 3 प्रतिशत के नीचे लाने का लक्ष्य।

स) कानूनी सुधार एवं परिसंपत्ति पुनर्निर्माण: संकटग्रस्त ऋणों की त्वरित वसूली हेतु परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनियों (ARCs) की स्थापना तथा ऋण वसूली न्यायाधिकरणों (DRTs) को सशक्त बनाना।

द) बैंकों की स्वायत्तता एवं दोहरे विनियमन की समाप्ति: सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के निदेशक मंडलों को परिचालन स्वायत्तता देना तथा भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा बैंकों में रखी गई अपनी शेयरधारिता को समाप्त करना।

बेसल मानक (Basel Accords): अंतरराष्ट्रीय वित्तीय सुरक्षा ढांचा
बैंक फॉर इंटरनेशनल सेटलमेंट्स (BIS) के अंतर्गत स्थापित **बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बेसल समिति (BCBS)**, जो स्विट्जरलैंड के बेसल नगर में स्थित है, वैश्विक बैंकिंग प्रणाली की वित्तीय सुदृढ़ता, तरलता और जोखिम प्रबंधन हेतु मानक निर्धारित करती है। भारत बीसीबीएस का स्थायी सदस्य होने के नाते इन मानकों को अपनी घरेलू परिस्थितियों के अनुसार कुछ अधिक कठोरता के साथ लागू करता है।

बेसल-I मानक (1988):

मुख्य फोकस: विशुद्ध रूप से **ऋण जोखिम (Credit Risk)** पर केंद्रित।

पूंजी आवश्यकता: बैंकों को अपनी जोखिम-भारित परिसंपत्तियों (RWA) का न्यूनतम **8 प्रतिशत** पूंजी के रूप में रखना अनिवार्य किया गया।

भारत में क्रियान्वयन: आरबीआई ने 1992 में नरसिम्हम समिति की सिफारिशों के आधार पर इसे लागू किया।

बेसल-II मानक (2004):
बेसल-II ने जोखिम प्रबंधन को तीन परस्पर पूरक स्तंभों (Three Pillars) के रूप में पुनर्संरचित किया:

स्तंभ 1 (न्यूनतम पूंजी आवश्यकताएं): ऋण जोखिम के अतिरिक्त **बाजार जोखिम (Market Risk)** तथा **परिचालन जोखिम (Operational Risk)** को भी पूंजी गणना में समाहित किया गया।

स्तंभ 2 (पर्यवेक्षणीय समीक्षा प्रक्रिया): केंद्रीय बैंकों को बैंकों की आंतरिक पूंजी पर्याप्तता मूल्यांकन प्रक्रिया (ICAAP) की संवीक्षा करने और अतिरिक्त पूंजी की मांग करने का अधिकार।

स्तंभ 3 (बाजार अनुशासन): वित्तीय विवरणों में परिसंपत्ति गुणवत्ता, जोखिम प्रोफाइल और पूंजी संरचना का सार्वजनिक प्रकटीकरण (Disclosures) अनिवार्य करना।

बेसल-III मानक (2010):
वर्ष 2007-08 के वैश्विक वित्तीय संकट (सबप्राइम संकट) में लेहमैन ब्रदर्स के पतन के पश्चात बैंकिंग तंत्र की तरलता और उत्तोलन (Leverage) की कमियों को दूर करने हेतु बेसल-III रूपरेखा तैयार की गई:

क) पूंजी की गुणवत्ता में संवर्धन: उच्च गुणवत्ता वाली **टियर-1 कॉमन इक्विटी (CET-1)** पर सर्वाधिक बल।

ख) पूंजी संरक्षण बफर (Capital Conservation Buffer - CCB): सामान्य आर्थिक परिस्थितियों में बैंकों को 2.5 प्रतिशत का अतिरिक्त सीईटी-1 बफर बनाना अनिवार्य, जिसे संकट के समय उपयोग किया जा सके।

ग) प्रति-चक्रीय पूंजी बफर (Countercyclical Capital Buffer - CCCB): अत्यधिक साख विस्तार (क्रेडिट बूम) के दौर में प्रणालीगत जोखिमों को कम करने हेतु 0 से 2.5 प्रतिशत तक का गतिशील बफर।

घ) तरलता मानक:

तरलता कवरेज अनुपात (Liquidity Coverage Ratio - LCR): 30 दिनों के गंभीर वित्तीय तनाव की स्थिति में शुद्ध नकदी निकासी को पूरा करने हेतु उच्च गुणवत्ता वाली तरल परिसंपत्तियां (HQLA) रखना (न्यूनतम 100 प्रतिशत)।

शुद्ध स्थिर वित्तपोषण अनुपात (Net Stable Funding Ratio - NSFR): 1 वर्ष की समयावधि में परिसंपत्तियों को वित्तपोषित करने हेतु उपलब्ध स्थिर वित्तपोषण का अनुपात (न्यूनतम 100 प्रतिशत)।

ङ) उत्तोलन अनुपात (Leverage Ratio): अत्यधिक ऋण सृजन को रोकने हेतु टियर-1 पूंजी और कुल अनावरण (Exposure) का न्यूनतम अनुपात 3.5 प्रतिशत अनिवार्य।

पूंजी पर्याप्तता अनुपात (CRAR / CAR) का गणितीय एवं विनियामक विन्यास
पूंजी पर्याप्तता अनुपात (Capital to Risk-Weighted Assets Ratio) किसी बैंक की वित्तीय क्षमता और उसकी अप्रत्याशित हानियों को सहने की सामर्थ्य का माप है।

wincompete

$$CRAR = \frac{\text{कुलपात्रविनियामकपूंजी(टियर}-1+\text{टियर}-2)}{\text{कुलजोखिम}-\text{भारितपरिसंपत्तियां}(RWA)} \times 100$$

विनियामक पूंजी के घटक:

अ) टियर-1 पूंजी (मूल पूंजी / कोर कैपिटल): यह बैंक की आंतरिक और उच्चतम गुणवत्ता वाली स्थायी पूंजी है, जो बैंक के सतत परिचालन के दौरान हानियों को अवशोषित करती है। इसमें सम्मिलित हैं:

सामान्य इक्विटी टियर-1 (CET-1): चुकता इक्विटी शेयर पूंजी, सांविधिक आरक्षित निधि, शेयर प्रीमियम और संपरीक्षित प्रतिधारित आय (Retained Earnings)।

अतिरिक्त टियर-1 (AT-1): स्थायी गैर-संचयी वरीयता शेयर और अपरिवर्तनीय स्थायी बांड (PNCPS / Additional Tier-1 Bonds), जिनमें हानियों की स्थिति में राइट-डाउन (Write-down) का विधिक प्रावधान होता है।

ब) टियर-2 पूंजी (पूरक पूंजी): यह द्वितीयक श्रेणी की पूंजी है, जो बैंक के परिसमापन (Liquidation) की स्थिति में जमाकर्ताओं को सुरक्षा प्रदान करती है। इसमें सामान्य ऋण-हानि प्रावधानीकरण (आरडब्ल्यूए का अधिकतम 1.25 प्रतिशत), संचयी वरीयता शेयर और न्यूनतम 5 वर्ष की परिपक्वता वाले अधीनस्थ ऋण (Subordinated Debt) शामिल होते हैं।

जोखिम-भारित परिसंपत्तियां (Risk-Weighted Assets - RWA):
बैंक की विभिन्न संपत्तियों को उनकी जोखिम की प्रकृति के अनुसार पूर्व-निर्धारित प्रतिशत भार (Risk Weight) दिया जाता है। उदाहरणार्थ:

सरकारी प्रतिभूतियों (G-Secs) और नकदी पर जोखिम भार = 0 प्रतिशत

आवासीय गृह ऋण पर जोखिम भार = 35 से 50 प्रतिशत

असुरक्षित उपभोक्ता ऋण एवं क्रेडिट कार्ड पर जोखिम भार = 125 से 150 प्रतिशत

विनियामक मानक	**वैश्विक बेसल-III मानक**	**भारतीय रिजर्व बैंक (वाणिज्यिक बैंक मानक)**
न्यूनतम सामान्य इक्विटी टियर-1 (CET-1)	4.5 प्रतिशत	5.5 प्रतिशत
न्यूनतम टियर-1 पूंजी अनुपात	6.0 प्रतिशत	7.0 प्रतिशत
पूंजी संरक्षण बफर (CCB)	2.5 प्रतिशत	2.5 प्रतिशत
न्यूनतम कुल पूंजी (CRAR) - बिना CCB	8.0 प्रतिशत	9.0 प्रतिशत

wincompete

न्यूनतम कुल पूंजी (CRAR) - CCB सहित	10.5 प्रतिशत	11.5 प्रतिशत

उपखंड b: गैर-निष्पादित परिसंपत्तियां (एनपीए), सकल बनाम शुद्ध एनपीए, आईबीसी 2016, एनएआरसीएल (बैड बैंक), त्वरित सुधारात्मक कार्रवाई (पीसीए) ढांचा

गैर-निष्पादित परिसंपत्तियां (NPA): विधिक वर्गीकरण एवं प्रावधानीकरण मानदंड

भारतीय रिजर्व बैंक के विवेकपूर्ण मानदंडों के अनुसार, कोई भी ऋण या अग्रिम गैर-निष्पादित परिसंपत्ति (NPA) बन जाता है जब वह बैंक हेतु आय का सृजन करना बंद कर देता है।

एनपीए की विधिक समयावधि:

क) सावधि ऋण (Term Loan): यदि मूलधन या ब्याज की किस्त देय तिथि के पश्चात लगातार **90 दिनों** तक अतिदेय (Overdue) रहती है।

ख) ओवरड्राफ्ट / कैश क्रेडिट (OD/CC): यदि खाता लगातार 90 दिनों तक 'व्यवस्थित न हो' (Out of Order), अर्थात स्वीकृत सीमा से अधिक आहरण बना रहे।

ग) कृषि ऋण:

अल्पकालिक मौसमी फसल ऋण: मूलधन या ब्याज की किस्त **2 फसल मौसमों (Crop Seasons)** तक अतिदेय रहे।

दीर्घकालिक फसल ऋण: मूलधन या ब्याज की किस्त **1 फसल मौसम** तक अतिदेय रहे।

तनावग्रस्त परिसंपत्तियों का पूर्व-वर्गीकरण (SMA श्रेणियां):

ऋण के एनपीए बनने से पूर्व बैंकों द्वारा संभावित वित्तीय तनाव की प्रारंभिक पहचान हेतु **विशेष उल्लेख खाते (Special Mention Accounts - SMA)** का अनिवार्य वर्गीकरण किया जाता है:

SMA-0: मूलधन या ब्याज भुगतान 1 से 30 दिनों तक अतिदेय।

SMA-1: मूलधन या ब्याज भुगतान 31 से 60 दिनों तक अतिदेय।

SMA-2: मूलधन या ब्याज भुगतान 61 से 90 दिनों तक अतिदेय (एनपीए बनने का चरम संकेतक)।

एनपीए का आंतरिक परिसंपत्ति वर्गीकरण एवं प्रावधानीकरण कवरेज (Provisioning):

बैंकों को अपनी वित्तीय स्थिरता बनाए रखने हेतु एनपीए के विरुद्ध अपने लाभ में से एक निश्चित राशि आरक्षित करनी होती है, जिसे प्रावधानीकरण कहा जाता है:

परिसंपत्ति श्रेणी	वर्गीकरण की समय-सीमा	विहित प्रावधानीकरण प्रतिशत (Provisioning Ratio)

मानक परिसंपत्ति (Standard Asset)	नियमित खाता, कोई डिफ़ॉल्ट नहीं।	सामान्य ऋण: 0.40 प्रतिशत; आवासीय ऋण: 0.25 प्रतिशत; वाणिज्यिक अचल संपत्ति: 1.0 प्रतिशत।
अधोमानक परिसंपत्ति (Sub-Standard)	खाता जो 12 माह या उससे कम अवधि तक एनपीए रहा हो।	सुरक्षित ऋण हेतु: 15 प्रतिशत; पूर्णतः असुरक्षित ऋण हेतु: 25 प्रतिशत।
संदिग्ध परिसंपत्ति (Doubtful - D1)	खाता जो 12 माह से अधिक किंतु 1 वर्ष तक अधोमानक रहा हो।	सुरक्षित भाग पर: 25 प्रतिशत; असुरक्षित भाग पर: 100 प्रतिशत।
संदिग्ध परिसंपत्ति (Doubtful - D2)	खाता जो 1 वर्ष से अधिक किंतु 3 वर्ष तक संदिग्ध रहा हो।	सुरक्षित भाग पर: 40 प्रतिशत; असुरक्षित भाग पर: 100 प्रतिशत।
संदिग्ध परिसंपत्ति (Doubtful - D3)	खाता जो 3 वर्ष से अधिक अवधि तक संदिग्ध श्रेणी में रहा हो।	सुरक्षित एवं असुरक्षित दोनों भागों पर: 100 प्रतिशत।
हानि परिसंपत्ति (Loss Asset)	बैंक, आंतरिक/बाह्य लेखा परीक्षकों या आरबीआई निरीक्षकों द्वारा अप्राप्य घोषित।	संपूर्ण शेष राशि पर: 100 प्रतिशत प्रावधानीकरण (अथवा बट्टे खाते डालना)।

सकल एनपीए बनाम शुद्ध एनपीए (GNPA vs NNPA)

सकल गैर-निष्पादित परिसंपत्तियां (Gross NPA):

यह बैंक के कुल ऋण पोर्टफोलियो में से उन सभी ऋणों का कुल मौद्रिक योग है जिन्हें आधिकारिक रूप से एनपीए घोषित किया जा चुका है। इसमें से बैंक द्वारा किए गए प्रावधानीकरण को घटाया नहीं जाता।

$$GNPARatio = \frac{\text{सकलएनपीएकीकुलराशि}}{\text{कुलसकलअग्रिम}(TotalGrossAdvances)} \times 100$$

शुद्ध गैर-निष्पादित परिसंपत्तियां (Net NPA):

यह बैंक के एनपीए का वह वास्तविक और शुद्ध जोखिम अंश है, जिसकी भरपाई हेतु प्रावधानीकरण उपलब्ध नहीं है। यह बैंक की वास्तविक परिसंपत्ति दुर्बलता का सटीक माप प्रस्तुत करता है।

$$\text{शुद्धएनपीए} = \text{सकलएनपीए} - \text{कुलसंचितप्रावधानीकरण}(Provisions) - \text{डीआईसीजीसी/ईसीजीसीसेप्राप्तदावे}$$

$$NNPARatio = \frac{\text{शुद्धएनपीएकीकुलराशि}}{\text{कुलनिवलअग्रिम}(TotalNetAdvances)} \times 100$$

प्रावधानीकरण कवरेज अनुपात (Provisioning Coverage Ratio - PCR):
सकल एनपीए के सापेक्ष बैंक द्वारा अलग रखी गई कुल प्रावधानित राशि का प्रतिशत अनुपात पीसीआर कहलाता है। उच्च पीसीआर (75 प्रतिशत से अधिक) बैंक की सुदृढ़ वित्तीय प्रतिरोधक क्षमता को दर्शाता है।

दिवाला एवं शोधन अक्षमता संहिता, 2016 (IBC): विधिक प्रक्रिया एवं प्रभाव
पूर्ववर्ती खंडित और अप्रभावी कानूनों (यथा एसआईसीए 1985, आरडीबीएफआई अधिनियम 1993 तथा सरफेसी अधिनियम 2002) की सीमाओं को समाप्त करने हेतु टी.के. विश्वनाथन समिति की संस्तुति पर **दिवाला एवं शोधन अक्षमता संहिता, 2016 (IBC)** अधिनियमित की गई। यह संहिता लेनदार-नियंत्रित (Creditor-in-control) व्यवस्था की स्थापना करती है।

अ) सांस्थानिक स्तंभ:

भारतीय दिवाला एवं शोधन अक्षमता बोर्ड (IBBI): शीर्ष विनियामक प्राधिकरण।

अधिनिर्णायक प्राधिकारी (Adjudicating Authority): कॉर्पोरेट मामलों हेतु **राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण (NCLT)** तथा व्यक्तियों/साझेदारियों हेतु ऋण वसूली न्यायाधिकरण (DRT)।

दिवाला समाधान पेशेवर (Insolvency Resolution Professionals - IRP): डिफ़ॉल्ट कंपनी के प्रबंधन का संचालन करने वाले स्वतंत्र विशेषज्ञ।

सूचना उपयोगिताएं (Information Utilities - IU): ऋण और डिफ़ॉल्ट के इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य का भंडार (यथा NeSL)।

ब) कॉर्पोरेट दिवाला समाधान प्रक्रिया (CIRP) की समय-सीमा:

संहिता के अनुसार किसी कॉर्पोरेट देनदार द्वारा 1 करोड़ रुपये या उससे अधिक की चूक (Default) होने पर वित्तीय लेनदार, परिचालन लेनदार या स्वयं कॉर्पोरेट देनदार एनसीएलटी में याचिका दायर कर सकता है।

सीआईआरपी पूर्ण करने की विधिक समय-सीमा **180 दिन** निर्धारित है, जिसे एनसीएलटी द्वारा अधिकतम 90 दिनों का एकमुश्त विस्तार दिया जा सकता है।

मुकदमेबाजी सहित किसी भी स्थिति में संपूर्ण प्रक्रिया की अधिकतम वैधानिक सीमा **330 दिन** निर्धारित की गई है। यदि इस अवधि में समाधान योजना स्वीकृत नहीं होती, तो कंपनी का अनिवार्य परिसमापन (Liquidation) प्रारंभ हो जाता है।

स) लेनदारों की समिति (CoC): इसमें समस्त वित्तीय लेनदार शामिल होते हैं। किसी भी समाधान योजना को पारित करने हेतु सीओसी के न्यूनतम **66 प्रतिशत** मतदान हिस्सेदारी की स्वीकृति अनिवार्य होती है।

एनएआरसीएल (NARCL - बैड बैंक) और आईडीआरसीएल (IDRCL) का ढांचा

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के बहीखातों से बड़े मूल्य के पुराने तनावग्रस्त ऋणों (विशेषकर 500 करोड़ रुपये या उससे अधिक) को एकमुश्त हटाकर उनके त्वरित समाधान हेतु केंद्रीय बजट 2021-22 की घोषणा के आधार पर 'बैड बैंक' संरचना स्थापित की गई। यह दो-इकाई संरचना (Dual Entity Model) पर आधारित है:

इकाई	मुख्य भूमिका एवं हिस्सेदारी
1. नेशनल एसेट रिकंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड (NARCL)	परिसंपत्ति अधिग्रहण (सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की 51% हिस्सेदारी)
2. इंडिया डेट रिजोल्यूशन कंपनी लिमिटेड (IDRCL)	परिसंपत्ति प्रबंधन एवं मूल्य संवर्धन (निजी क्षेत्र के बैंकों की 51% हिस्सेदारी)

क) नेशनल एसेट रिकंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड (NARCL): कंपनी अधिनियम के तहत निगमित और आरबीआई से लाइसेंस प्राप्त परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनी (ARC)। इसमें सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की बहुमत (न्यूनतम 51 प्रतिशत) इक्विटी हिस्सेदारी है (केनरा बैंक इसका मुख्य प्रायोजक बैंक है)। इसका कार्य बैंकों से गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों का अधिग्रहण करना है।

ख) इंडिया डेट रिजोल्यूशन कंपनी लिमिटेड (IDRCL): यह एक परिसंपत्ति प्रबंधन कंपनी (AMC) है, जिसमें निजी क्षेत्र के वित्तीय संस्थानों की बहुमत (न्यूनतम 51 प्रतिशत) हिस्सेदारी है। इसका कार्य अधिग्रहीत परिसंपत्तियों का परिचालन पुनर्गठन, समाधान और बाजार में परिसमापन करना है।

ग) 15:85 भुगतान विन्यास एवं सरकारी गारंटी:

एनएआरसीएल अधिग्रहीत तनावग्रस्त परिसंपत्ति के सहमत मूल्य का **15 प्रतिशत नकद (Cash)** में बैंकों को भुगतान करती है।

शेष **85 प्रतिशत राशि सुरक्षा रसीदों (Security Receipts - SRs)** के रूप में जारी की जाती है।

केंद्र सरकार ने इन सुरक्षा रसीदों के समर्थन हेतु **30,600 करोड़ रुपये की संप्रभु गारंटी** स्वीकृत की है। यदि पांच वर्षों के भीतर समाधान के पश्चात परिसंपत्ति की वास्तविक वसूली सुरक्षा रसीद के मूल्य से कम रहती है, तो अंतर की राशि की भरपाई केंद्र सरकार द्वारा की जाती है।

त्वरित सुधारात्मक कार्रवाई (PCA Framework) का अद्यतन ढांचा

कमजोर वित्तीय स्थिति वाले बैंकों को दिवालिया होने से बचाने और जमाकर्ताओं के धन की सुरक्षा हेतु भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा सर्वप्रथम वर्ष 2002 में 'त्वरित सुधारात्मक कार्रवाई' (Prompt Corrective Action - PCA) ढांचा लागू किया गया था। इस व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य वित्तीय रूप से संकटग्रस्त बैंकों में प्रारंभिक स्तर पर ही सुधारात्मक हस्तक्षेप करना है।

आरबीआई द्वारा संशोधित अद्यतन पीसीए ढांचे (जिसमें वर्ष 2022 से गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों को भी समाहित कर लिया गया है) के अंतर्गत वित्तीय स्वास्थ्य की निगरानी हेतु तीन प्राथमिक वित्तीय संकेतक निर्धारित हैं:

क) पूंजी पर्याप्तता: सीआरएआर (CRAR) तथा सामान्य इक्विटी टियर-1 (CET-1) का स्तर।

ख) परिसंपत्ति गुणवत्ता: शुद्ध गैर-निष्पादित परिसंपत्ति (Net NPA) अनुपात।

ग) उत्तोलन: टियर-1 उत्तोलन अनुपात (Leverage Ratio)।

(उल्लेखनीय है कि अद्यतन ढांचे में लाभप्रदता के पूर्व संकेतक 'परिसंपत्तियों पर प्रतिलाभ' (ROA) को एक स्वतंत्र ट्रिगर बिंदु से हटा दिया गया है)।

जोखिम सीमाएं एवं अनिवार्य सुधारात्मक उपाय:
उल्लंघन की गंभीरता के आधार पर तीन जोखिम श्रेणियां (Risk Thresholds 1, 2, और 3) निर्धारित की जाती हैं:

अ) थ्रेशोल्ड 1: लाभांश वितरण और लाभ के प्रेषण पर पूर्ण प्रतिबंध, प्रमोटरों द्वारा अतिरिक्त पूंजी लाने का निर्देश।

ब) थ्रेशोल्ड 2: थ्रेशोल्ड 1 के प्रतिबंधों के साथ-साथ शाखा विस्तार पर पूर्ण रोक तथा उच्च-जोखिम वाले ऋणों के विस्तार पर विनियामक नियंत्रण।

स) थ्रेशोल्ड 3 (चरम संकट): उपरोक्त सभी प्रतिबंधों के अतिरिक्त निदेशकों/प्रबंधन के वेतन एवं भत्तों पर रोक, नए कर्मचारियों की भर्ती पर पूर्ण प्रतिबंध तथा बैंक के अनिवार्य विलय, समामेलन अथवा अधिस्थगन की विधिक कार्यवाही।

महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली एवं विनियामक संकल्पनाएं

प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रक ऋण (Priority Sector Lending - PSL): भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा वाणिज्यिक बैंकों पर अधिरोपित एक अनिवार्य विनियामक दायित्व, जिसके तहत उन्हें अपने कुल समायोजित निवल बैंक ऋण (ANBC) का एक निश्चित प्रतिशत (घरेलू बैंकों हेतु 40 प्रतिशत) राष्ट्रीय प्राथमिकताओं से जुड़े क्षेत्रों (यथा कृषि, सूक्ष्म-लघु एवं मध्यम उद्यम, शिक्षा, आवास, निर्यात ऋण, नवीकरणीय ऊर्जा एवं सामाजिक अवसंरचना) को आबंटित करना अनिवार्य होता है।

हेयरकट (Haircut): दिवाला समाधान प्रक्रिया या तनावग्रस्त परिसंपत्ति की बिक्री के दौरान ऋणदाताओं (बैंकों) द्वारा स्वीकार की जाने वाली स्वैच्छिक कटौती। उदाहरणार्थ, यदि किसी 100 करोड़ रुपये के बकाया ऋण का समाधान 40 करोड़ रुपये में होता है, तो बैंकों द्वारा सही गई 60 करोड़ रुपये की हानि को '60 प्रतिशत का हेयरकट' कहा जाता है।

एवरग्रीनिंग ऑफ लोन्स (Evergreening of Loans): किसी संकटग्रस्त उधारकर्ता को पुराने ऋण की किस्त चुकाने हेतु नया ऋण जारी करने की गैर-विवेकपूर्ण अनैतिक बैंकिंग प्रथा, ताकि खाते को कागजों पर एनपीए बनने से रोका जा सके। भारतीय रिजर्व बैंक ऐसी प्रथाओं को गंभीर वित्तीय कदाचार मानता है और इसके विरुद्ध दंडात्मक कार्रवाई करता है।

विलफुल डिफॉल्टर (Willful Defaulter): वह ऋणी इकाई या व्यक्ति जो ऋण चुकाने की पूर्ण वित्तीय क्षमता होने के बावजूद जानबूझकर भुगतान में चूक करता है, अथवा जिसने जिस उद्देश्य हेतु ऋण लिया था उसमें न लगाकर निधियों का अन्यत्र विचलन (Diversion) या हेराफेरी (Siphoning) कर दी हो। ऐसे व्यक्तियों को किसी भी वित्तीय संस्थान से नया ऋण लेने अथवा किसी कंपनी के बोर्ड में निदेशक बनने से विधिक रूप से प्रतिबंधित कर दिया जाता है।

संपत्ति पुनर्निर्माण कंपनी (Asset Reconstruction Company - ARC): सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 3 के अंतर्गत भारतीय रिजर्व बैंक से पंजीकृत एक विशेषीकृत वित्तीय मध्यस्थ, जिसका प्राथमिक उद्देश्य बैंकों से संकटग्रस्त ऋणों का अधिग्रहण कर उनका पुनरुद्धार, प्रबंधन अथवा परिसमापन करके अधिकतम वसूली सुनिश्चित करना होता है।

द्विन बैलेंस शीट समस्या (Twin Balance Sheet Problem): भारतीय अर्थव्यवस्था में देखी गई एक दोहरी संरचनात्मक विसंगति, जिसमें एक ओर गैर-वित्तीय कॉर्पोरेट क्षेत्र अत्यधिक कर्ज के बोझ और लाभहीनता से ग्रस्त था, वहीं दूसरी ओर सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक भारी मात्रा में बढ़ते एनपीए और अवरुद्ध पूंजी के कारण नई साख सृजित करने में असमर्थ हो गए थे।

अध्याय 6: आर्थिक संवृद्धि बनाम आर्थिक विकास - सैद्धांतिक आयाम

खंड A: मूलभूत संकल्पनाएं एवं विभेद

उपखंड a: संवृद्धि की परिभाषा, मात्रात्मक प्रकृति, विकास की परिभाषा, गुणात्मक और संरचनात्मक परिवर्तन

आर्थिक संवृद्धि का सैद्धांतिक ढांचा एवं मात्रात्मक प्रकृति

आर्थिक संवृद्धि (Economic Growth) किसी देश की अर्थव्यवस्था में समयावधि के दौरान वस्तुओं और सेवाओं के वास्तविक उत्पादन में होने वाली सतत, दीर्घकालिक और मात्रात्मक वृद्धि को निर्दिष्ट करती है। यह विशुद्ध रूप से एक एकायामी, वस्तुनिष्ठ और सांख्यिकीय माप है, जिसे राष्ट्रीय आय, वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद (Real GDP) अथवा प्रति व्यक्ति वास्तविक आय (Per Capita Real Income) में प्रतिशत वृद्धि के रूप में मापा जाता है।

आर्थिक संवृद्धि की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

क) वस्तुनिष्ठ मापन: यह केवल भौतिक उत्पादन और वित्तीय आंकड़ों से संबंधित होती है, जिसके अंतर्गत देश की उत्पादन क्षमता के विस्तार का आकलन किया जाता है।

ख) प्राकृतिक संसाधनों और पूंजी का संकेंद्रण: यह उत्पादन के कारकों—भूमि, श्रम, भौतिक पूंजी और तकनीकी दक्षता—के संचयन और उनके अधिक कुशल उपयोग का प्रत्यक्ष परिणाम है।

ग) संरचनात्मक उदासीनता: संवृद्धि की दर यह स्पष्ट नहीं करती कि उत्पादित संपत्ति का समाज में वितरण किस प्रकार हो रहा है। यदि अर्थव्यवस्था का अधिकांश उत्पादन और आय समाज के केवल शीर्ष 1 प्रतिशत वर्ग के पास संकेंद्रित हो जाए, तब भी राष्ट्रीय आय में वृद्धि दर्ज होगी और संवृद्धि की दर सकारात्मक बनी रहेगी।

घ) संकीर्ण दृष्टिकोण: यह जीवन प्रत्याशा, साक्षरता, पर्यावरणीय स्थिरता, गरीबी उन्मूलन, संस्थागत सुधारों और नागरिक स्वतंत्रताओं जैसे सामाजिक-कल्याणकारी सूचकांकों की उपेक्षा करती है।

आर्थिक विकास की अवधारणा: गुणात्मक, संस्थागत और संरचनात्मक परिवर्तन

आर्थिक विकास (Economic Development) एक बहुआयामी, समग्र और मूल्य-आधारित अवधारणा है। यह न केवल आर्थिक संवृद्धि को समाहित करती है, बल्कि इसके अंतर्गत अर्थव्यवस्था की तकनीकी, संस्थागत, सामाजिक और संरचनात्मक परिस्थितियों में प्रगतिशील परिवर्तनों को भी अनिवार्य रूप से शामिल किया जाता है।

प्रख्यात अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन के **सक्षमता दृष्टिकोण** (Capability Approach) के अनुसार, आर्थिक विकास का वास्तविक अर्थ केवल वस्तुओं और सेवाओं की प्रचुरता नहीं, बल्कि मानव स्वतंत्रताओं का विस्तार और उन क्षमताओं का संवर्धन है जो व्यक्तियों को एक सार्थक, गरिमापूर्ण और स्वस्थ जीवन जीने के योग्य बनाती हैं।

माइकल टोडारो के मतानुसार, विकास को एक बहुआयामी प्रक्रिया के रूप में देखा जाना चाहिए जिसमें संपूर्ण सामाजिक प्रणाली का पुनर्गठन और पुनरभिविन्यास शामिल है। इसमें अनिवार्य रूप से निम्नलिखित तीन मूलभूत मूल्य सम्मिलित होते हैं:

अ) जीवन-यापन की बुनियादी आवश्यकताएं (Life-sustenance): भोजन, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य और सुरक्षा की सार्वभौमिक उपलब्धता।

ब) आत्मसम्मान (Self-esteem): समाज में किसी भी व्यक्ति का दोयम दर्जे का न होना, स्वाभिमान और गरिमा की सुरक्षा।

स) गुलामी से मुक्ति (Freedom from servitude): विकल्पों की स्वतंत्रता, अवसरों की समता और सामाजिक-आर्थिक परतंत्रता से मुक्ति।

आर्थिक विकास के अंतर्गत होने वाले प्रमुख संरचनात्मक परिवर्तन निम्नलिखित हैं:

क) उत्पादन संरचना में बदलाव: सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में प्राथमिक क्षेत्र (कृषि) के आनुपातिक योगदान में क्रमिक ह्रास तथा द्वितीयक क्षेत्र (विनिर्माण) एवं तृतीयक क्षेत्र (सेवा क्षेत्र) के योगदान में निरंतर वृद्धि (कॉलिन क्लार्क और साइमन कुजनेट्स का सिद्धांत)।

ख) व्यावसायिक ढांचे में रूपांतरण: कृषि क्षेत्र से श्रमबल का गैर-कृषि और औद्योगिक क्षेत्रों की ओर विस्थापन, जिससे प्रच्छन्न बेरोजगारी (Disguised Unemployment) का उन्मूलन होता है।

ग) संस्थागत और सामाजिक सुधार: वित्तीय समावेशन, विधि का शासन, संपत्ति अधिकारों का संरक्षण, लिंग भेद की समाप्ति, तथा जातिगत व सामाजिक विषमताओं का उन्मूलन।

घ) तकनीकी एवं तकनीकी-प्रबंधकीय आधुनिकीकरण: पारंपरिक उत्पादन पद्धतियों के स्थान पर नवाचार, डिजिटल अवसंरचना और सतत हरित तकनीकों का समावेशन।

तुलना का आधार	**आर्थिक संवृद्धि (Economic Growth)**	**आर्थिक विकास (Economic Development)**
प्रकृति एवं आयाम	एकायामी, संकीर्ण और विशुद्ध मात्रात्मक प्रक्रिया।	बहुआयामी, व्यापक, मात्रात्मक के साथ-साथ गुणात्मक प्रक्रिया।
प्राथमिक संकेतक	वास्तविक जीडीपी, जीएनपी और प्रति व्यक्ति आय।	मानव विकास सूचकांक (HDI), बहुआयामी गरीबी सूचकांक (MPI), गिनी गुणांक।

wincompete

संरचनात्मक परिवर्तन	आवश्यक नहीं कि उत्पादन प्रणाली या समाज में कोई ढांचागत बदलाव हो।	अनिवार्य रूप से उत्पादन संरचना, व्यावसायिक ढांचे और संस्थागत व्यवस्था में प्रगतिशील बदलाव।
आय का वितरण	आय और संपत्ति की असमानता के प्रति पूर्णतः तटस्थ।	समतामूलक वितरण, सामाजिक न्याय और अवसरों की समानता पर केंद्रित।
प्रयोग का संदर्भ	सामान्यतः विकसित अर्थव्यवस्थाओं के संदर्भ में अधिक प्रयुक्त।	विकासशील और अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के उत्थान के संदर्भ में प्रयुक्त।
अवधारणात्मक निर्भरता	विकास के बिना भी केवल प्राकृतिक संपदा के दोहन से संवृद्धि संभव है।	संवृद्धि के बिना दीर्घकालिक और टिकाऊ विकास संभव नहीं है (संवृद्धि एक आवश्यक शर्त है, परंतु पर्याप्त नहीं)।

उपखंड b: आर्थिक समृद्धि के निर्धारक, प्राकृतिक संसाधन, पूंजी निर्माण, तकनीकी प्रगति, संस्थागत कारक

आर्थिक संवृद्धि के प्राथमिक एवं द्वितीयक निर्धारक

किसी भी राष्ट्र की संवृद्धि दर और विकास की गति उसके आर्थिक और गैर-आर्थिक संसाधनों की उपलब्धता और उनके इष्टतम उपयोग की दक्षता पर निर्भर करती है। इन निर्धारकों को पांच प्रमुख आधारस्तंभों में विश्लेषित किया जाता है:

प्राकृतिक संसाधन (Natural Resources)

भूमि, जल, वन, खनिज भंडार, जीवाश्म ईंधन और भौगोलिक स्थिति किसी देश के उत्पादन की आधारभूत सीमाएं निर्धारित करते हैं।

क) प्रारंभिक औद्योगिकीकरण का आधार: 18वीं और 19वीं शताब्दी में ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिका का औद्योगिक विस्तार कोयला और लौह अयस्क के प्रचुर भंडारों पर आधारित था।

ख) संसाधन अभिशाप (Resource Curse / Dutch Disease): आधुनिक अर्थशास्त्र यह स्पष्ट करता है कि केवल प्राकृतिक संसाधनों का बाहुल्य विकास की गारंटी नहीं है। अनेक संसाधन-सम्पन्न देश (यथा वेनेजुएला, नाइजीरिया, कांगो) राजनीतिक अस्थिरता, भ्रष्टाचार और औद्योगिकीकरण की उपेक्षा के कारण पिछड़े रहे, जबकि प्राकृतिक संसाधनों से विपन्न देशों (यथा जापान, दक्षिण कोरिया, सिंगापुर) ने मानव पूंजी और नवाचार के बल पर अभूतपूर्व संवृद्धि अर्जित की।

पूंजी निर्माण (Capital Formation)

पूंजी निर्माण से आशय किसी लेखा वर्ष के दौरान भौतिक पूंजीगत परिसंपत्तियों (मशीनरी, परिवहन उपकरण, कारखाने, विद्युत संयंत्र और आधारभूत संरचना) के स्टॉक में होने वाली शुद्ध वृद्धि से है।

अ) प्रक्रियात्मक चरण: पूंजी निर्माण तीन परस्पर जुड़े चरणों पर निर्भर करता है:

घरेलू बचतों का सृजन (पारिवारिक, कॉर्पोरेट और सरकारी स्तर पर)।

वित्तीय मध्यस्थों (बैंकों, पूंजी बाजारों) द्वारा बचतों की गतिशीलता और संग्रहण।

उत्पादक परिसंपत्तियों में बचतों का वास्तविक निवेश।

ब) संवृद्धि दर से संबंध: पूंजी निर्माण की दर जितनी उच्च होगी, उत्पादन की सीमांत उत्पादकता उतनी ही अधिक होगी। इसे **वृद्धिशील पूंजी-उत्पाद अनुपात** (Incremental Capital-Output Ratio - ICOR) द्वारा मापा जाता है। निम्न ICOR पूंजी के अधिक कुशल और उत्पादक उपयोग को दर्शाता है।

तकनीकी प्रगति (Technological Progress)
प्रौद्योगिकी उत्पादन फलन (Production Function) को ऊपर की ओर विस्थापित करती है, जिससे संसाधनों की समान मात्रा से पहले की तुलना में अधिक उत्पादन संभव होता है।

क) तटस्थ तकनीकी प्रगति (Neutral Technical Progress): हिक्स-तटस्थ या हैरोड-तटस्थ तकनीकें, जहां श्रम और पूंजी दोनों की उत्पादकता एकसमान अनुपात में बढ़ती है।

ख) श्रम-बचत बनाम पूंजी-बचत तकनीकें: विकसित देशों में पूंजी-सघन और स्वचालन आधारित नवाचार होते हैं, जबकि विकासशील श्रम-आधिक्य वाली अर्थव्यवस्थाओं में श्रम-सघन प्रौद्योगिकियों की आवश्यकता होती है।

ग) सोलो अवशिष्ट (Solow Residual): आधुनिक विकास में कुल कारक उत्पादकता (Total Factor Productivity - TFP) का अधिकांश हिस्सा केवल श्रम या पूंजी की मात्रा से नहीं, बल्कि तकनीकी ज्ञान और दक्षता से संचालित होता है।

मानव पूंजी (Human Capital)
शिक्षा, कौशल प्रशिक्षण, स्वास्थ्य सेवाओं और पोषण के स्तर में निवेश से जनसंख्या की उत्पादक क्षमता में होने वाले संवर्धन को मानव पूंजी कहा जाता है।

अ) बाह्यताओं का सृजन: एक शिक्षित और स्वस्थ कार्यबल नवाचारों को शीघ्रता से अपनाता है और समाज में सकारात्मक बाह्यताएं (Positive Externalities) उत्पन्न करता है।

ब) जनांकिकीय लाभांश (Demographic Dividend): केवल युवा जनसंख्या का होना पर्याप्त नहीं है; जब तक उस कार्यबल को रोजगारपरक शिक्षा और उन्नत स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध नहीं कराई जातीं, तब तक जनांकिकीय लाभांश जनांकिकीय आपदा में परिवर्तित हो सकता है।

संस्थागत एवं राजनीतिक कारक (Institutional Factors)
डगलस नॉर्थ और डेरॉन ऐसमोग्लू के नव-संस्थागत अर्थशास्त्र (New Institutional Economics) के अनुसार, संस्थाएं समाज में 'खेल के नियम' निर्धारित करती हैं।

क) समावेशी बनाम निष्कर्षणकारी संस्थाएं (Inclusive vs Extractive Institutions): समावेशी राजनीतिक और आर्थिक संस्थाएं संपत्ति के अधिकारों की रक्षा करती हैं, विधि का शासन सुनिश्चित करती हैं, अनुबंधों का प्रवर्तन करती हैं और नए उद्यमियों को बाजार में प्रवेश की निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा देती हैं। इसके विपरीत, निष्कर्षणकारी संस्थाएं समाज के बड़े हिस्से की संपत्ति को कुछ संभ्रांत लोगों के हाथों में संकेंद्रित करती हैं, जिससे दीर्घकालिक आर्थिक पतन होता है।

ख) सुशासन और भ्रष्टाचार नियंत्रण: प्रशासनिक पारदर्शिता, नीतिगत निरंतरता और भ्रष्टाचार में कमी निवेशकों के विश्वास को सुदृढ़ करती है और व्यवसाय करने की लागत को घटाती है।

खंड B: विकास के मॉडल एवं ऐतिहासिक सिद्धांत

उपखंड a: रोस्टोव की विकास की अवस्थाएं, हेरोड-डोमार मॉडल, सोलो मॉडल, आर्थर लुईस का असीमित श्रम आपूर्ति मॉडल

रोस्टोव का ऐतिहासिक विकास का चरणबद्ध सिद्धांत

अमेरिकी आर्थिक इतिहासकार डब्ल्यू. डब्ल्यू. रोस्टोव ने वर्ष 1960 में अपनी पुस्तक *'द स्टेजेस ऑफ इकोनॉमिक ग्रोथ: ए नॉन-कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो'* में आर्थिक विकास के ऐतिहासिक विकासक्रम को पांच अनिवार्य और क्रमिक चरणों में विभाजित किया:

क) पारंपरिक समाज (The Traditional Society):

अर्थव्यवस्था मुख्यतः निर्वाह कृषि पर आधारित होती है।

उत्पादन तकनीकें आदिम और पूर्व-वैज्ञानिक होती हैं।

सामाजिक संरचना पदानुक्रमित, भाग्यवादी और कबीलाई होती है; उत्पादन और उत्पादकता की एक अधिकतम विधिक सीमा होती है।

ख) आत्म-स्फूर्ति से पूर्व की पूर्वावस्थाएं (Pre-conditions for Take-off):

वैज्ञानिक दृष्टिकोण, शिक्षा और आधुनिक विचारों का प्रसार होता है।

कृषि क्षेत्र में अधिशेष उत्पन्न होने लगता है, जिससे गैर-कृषि जनसंख्या का पोषण संभव होता है।

परिवहन, संचार और सामाजिक उपरि-पूंजी (Social Overhead Capital) का निर्माण प्रारंभ होता है।

वित्तीय संस्थाओं और बैंकों का उद्भव होता है तथा राष्ट्रीय संप्रभु राज्य का उदय होता है।

ग) आत्म-स्फूर्ति की अवस्था (The Take-off Stage):

यह विकास का सबसे महत्वपूर्ण और क्रांतिकारी चरण है, जो सामान्यतः दो से तीन दशकों तक चलता है।

शुद्ध निवेश और बचत की दर राष्ट्रीय आय के 5 प्रतिशत से बढ़कर **10 प्रतिशत या उससे अधिक** हो जाती है।

एक या दो प्रमुख विनिर्माण उद्योग (Leading Sectors) अत्यंत तीव्र गति से विकसित होते हैं।

समाज में आधुनिक संस्थागत, सामाजिक और राजनीतिक ढांचा पूरी तरह स्थापित हो जाता है, जो संवृद्धि की प्रक्रिया को स्व-पोषक बनाता है।

घ) परिपक्वता की ओर अग्रसर अवस्था (The Drive to Maturity):

अर्थव्यवस्था अपने समस्त संसाधनों पर आधुनिक तकनीक का व्यापक और कुशल प्रयोग करती है।

औद्योगिक विविधीकरण होता है; प्रमुख उद्योगों का स्थान भारी इंजीनियरिंग, रसायन और विद्युत उद्योग ले लेते हैं।

राष्ट्रीय आय का लगभग 10 से 20 प्रतिशत हिस्सा निरंतर पुनर्निवेशित किया जाता है।

अर्थव्यवस्था अंतरराष्ट्रीय व्यापार में परिपक्व निर्यातक के रूप में स्थापित होती है।

ङ) अत्यधिक जन-उपभोग की अवस्था (The Age of High Mass-Consumption):

प्रति व्यक्ति आय उस स्तर पर पहुंच जाती है जहां बुनियादी आवश्यकताओं (भोजन, वस्त्र, आवास) की चिंता समाप्त हो जाती है।

उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं (ऑटोमोबाइल, इलेक्ट्रॉनिक उपकरण) और सेवाओं की मांग में भारी उछाल आता है।

समाज कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की स्थापना और सामाजिक सुरक्षा के विस्तार पर अधिक संसाधन केंद्रित करता है।

1. पारंपरिक समाज	2. पूर्वावस्थाएं	3. आत्म-स्फूर्ति (Take-off)	4. परिपक्वता की ओर	5. अत्यधिक जन-उपभोग

हैरोड-डोमार मॉडल (Harrod-Domar Growth Model)

ब्रिटिश अर्थशास्त्री रॉय हैरोड (1939) और अमेरिकी अर्थशास्त्री एव्सी डोमार (1946) ने स्वतंत्र रूप से कीन्स के अल्पकालिक विश्लेषण को दीर्घकालिक रूप में विस्तारित करते हुए इस मॉडल का प्रतिपादन किया। यह मॉडल भारत की **प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56)** का मूल सैद्धांतिक आधार था।

अ) निवेश की दोहरी भूमिका (Dual Role of Investment):

मांग प्रभाव (Demand Effect): निवेश व्यय समग्र मांग में वृद्धि करता है ($Y = C + I$ के माध्यम से आय सृजित करता है)।

पूर्ति या क्षमता प्रभाव (Capacity Effect): निवेश पूंजीगत स्टॉक का विस्तार करता है, जिससे अर्थव्यवस्था की संभावित उत्पादन क्षमता बढ़ जाती है।

wincompete

ब) बुनियादी समीकरण:
अर्थव्यवस्था की संवृद्धि दर (g) दो मुख्य चरों पर निर्भर करती है:

संवृद्धिदर$(g) = \frac{\text{बचतदर}(s)}{\text{पूंजी–उत्पादअनुपात}(v)}$
अर्थात, यदि किसी देश की बचत दर (s) 20 प्रतिशत है और पूंजी-उत्पाद अनुपात (v या ICOR) 4 है, तो अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर 5 प्रतिशत ($20 / 4 = 5\%$) होगी।

स) हैरोड की तीन संवृद्धि दरें:

वास्तविक संवृद्धि दर (Actual Growth Rate - G): किसी वर्ष अर्थव्यवस्था द्वारा वास्तव में प्राप्त की गई वृद्धि दर।

अभीष्ट या वांछित संवृद्धि दर (Warranted Growth Rate - G_w): वह दर जिस पर उत्पादक अपनी स्थापित क्षमता के पूर्ण उपयोग से संतुष्ट होते हैं और नए निवेश हेतु प्रेरित रहते हैं ($G_w = s/C_r$)।

प्राकृतिक संवृद्धि दर (Natural Growth Rate - G_n): जनसंख्या वृद्धि और तकनीकी प्रगति द्वारा निर्धारित अधिकतम अनुमेय संवृद्धि दर, जो पूर्ण रोजगार बनाए रखने हेतु आवश्यक है।

द) छुरा-धार संतुलन (Razor-Edge Equilibrium):
हैरोड के अनुसार, पूर्ण रोजगार और मूल्य स्थिरता के साथ दीर्घकालिक संतुलन केवल तभी संभव है जब तीनों दरें समान हों ($G = G_w = G_n$)। यदि वास्तविक दर वांछित दर से जरा भी विचलित होती है ($G > G_w$ या $G < G_w$), तो अर्थव्यवस्था या तो निरंतर तीव्र मुद्रास्फीति (Boom) अथवा गंभीर अवसाद व मंदी (Depression) के भंवर में फंस जाती है। इस अस्थिर संतुलन को ही 'छुरा-धार संतुलन' कहा जाता है।

सोलो का नव-शास्त्रीय संवृद्धि मॉडल (Solow's Neoclassical Growth Model)
रॉबर्ट सोलो ने वर्ष 1956 के अपने युगांतरकारी शोधपत्र में हैरोड-डोमार मॉडल के छुरा-धार संतुलन और पूंजी-श्रम के स्थिर अनुपातों की अवास्तविक मान्यताओं को खारिज करते हुए एक लचीला मॉडल प्रस्तुत किया, जिसके लिए उन्हें वर्ष 1987 में नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया।

क) उत्पादन फलन की प्रकृति: सोलो ने कोब-डगलस उत्पादन फलन ($Y = A \cdot K^{\alpha} \cdot L^{1-\alpha}$) का प्रयोग किया, जिसमें श्रम और पूंजी के मध्य **प्रतिस्थापन की लोच इकाई के बराबर** होती है। यह फलन पैमाने के स्थिर प्रतिफल (Constant Returns to Scale) और प्रत्येक व्यक्तिगत कारक के ह्रासमान सीमांत प्रतिफल (Diminishing Marginal Returns) को प्रदर्शित करता है।

ख) स्थिर अवस्था संतुलन (Steady State Equilibrium):
चूंकि पूंजी के संचय पर सीमांत ह्रासमान प्रतिफल का नियम लागू होता है, अतः केवल पूंजीगत स्टॉक में वृद्धि करके किसी अर्थव्यवस्था को अनिश्चित काल तक उच्च संवृद्धि दर पर नहीं रखा जा सकता। एक बिंदु ऐसा आता है जहां प्रति श्रमिक नया निवेश केवल मौजूदा पूंजी के मूल्यह्रास और नई जनसंख्या को उपकरण प्रदान करने के बराबर रह जाता है। इस बिंदु को **स्थिर अवस्था** कहा जाता है, जहां प्रति व्यक्ति पूंजी और प्रति व्यक्ति उत्पादन स्थिर हो जाते हैं।

ग) बहिर्जात तकनीकी प्रगति (Exogenous Technical Progress):
सोलो मॉडल का सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि स्थिर अवस्था में प्रति व्यक्ति आय की निरंतर वृद्धि केवल और केवल **तकनीकी प्रगति** के माध्यम से ही संभव है। चूंकि इस मॉडल में तकनीकी प्रगति को

मॉडल के बाहर से निर्धारित (बहिर्जात) माना गया है, अतः इसे 'सोलो अवशिष्ट' (Solow Residual) या कुल कारक उत्पादकता (TFP) कहा जाता है।

घ) अभिसरण की परिकल्पना (Convergence Hypothesis):
सोलो मॉडल भविष्यवाणी करता है कि पूंजी पर ह्रासमान प्रतिफल के कारण, गरीब देशों (जहां पूंजी दुर्लभ है और पूंजी की सीमांत उत्पादकता अत्यधिक उच्च है) की संवृद्धि दर अमीर देशों (जहां पूंजी प्रचुर है और सीमांत उत्पादकता कम है) की तुलना में अधिक तीव्र होनी चाहिए। परिणामस्वरूप, समय के साथ गरीब देशों का जीवन स्तर अमीर देशों के स्तर के करीब पहुंच जाएगा (शर्तबद्ध अभिसरण)।

आर्थर लुईस का असीमित श्रम आपूर्ति मॉडल (Lewis Model of Unlimited Labor Supply)
सर डब्लू. आर्थर लुईस ने वर्ष 1954 में अपने शोधपत्र *'इकोनॉमिक डेवलपमेंट विद अनलिमिटेड सप्लाइज ऑफ लेबर'* में विकासशील दोहरी अर्थव्यवस्थाओं (Dual Economies) के संरचनात्मक रूपांतरण का सैद्धांतिक प्रारूप प्रस्तुत किया, जिसके लिए उन्हें वर्ष 1979 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

अ) दोहरी अर्थव्यवस्था की संरचना:

पारंपरिक निर्वाह क्षेत्र (Traditional Subsistence Sector): मुख्य रूप से ग्रामीण कृषि क्षेत्र। इस क्षेत्र में जनसंख्या का भारी दबाव होता है, पूंजीगत उपकरण नगण्य होते हैं, और **श्रम की सीमांत उत्पादकता शून्य या ऋणात्मक** होती है (प्रच्छन्न बेरोजगारी)। इस क्षेत्र में श्रमिकों को निर्वाह मजदूरी (Institutional / Subsistence Wage) दी जाती है, जो उनके औसत उत्पाद पर आधारित होती है।

आधुनिक पूंजीवादी क्षेत्र (Modern Capitalist Sector): शहरी विनिर्माण और खनन क्षेत्र। यह क्षेत्र आधुनिक पूंजी का उपयोग करता है, लाभ-उन्मुख होता है और श्रम की सीमांत उत्पादकता बहुत उच्च होती है।

ब) विकास का प्रक्रम:

पूंजीवादी क्षेत्र पारंपरिक क्षेत्र से श्रमिकों को आकर्षित करने हेतु निर्वाह मजदूरी से लगभग 30 से 50 प्रतिशत अधिक मजदूरी (पूंजीवादी मजदूरी) की पेशकश करता है।

चूंकि कृषि में श्रम की आपूर्ति असीमित (पूर्णतः लोचदार) है, अतः आधुनिक क्षेत्र बिना मजदूरी दर बढ़ाए ग्रामीण क्षेत्र से विशाल श्रमबल को अपने में समाहित करता रहता है।

आधुनिक क्षेत्र में उत्पादन के विस्तार से पूंजीपतियों को भारी अधिशेष (Capitalist Surplus) प्राप्त होता है। जब इस अधिशेष को पुनः नए संयंत्रों और मशीनों में निवेश किया जाता है, तो श्रम की मांग वक्र बाहर की ओर विस्थापित होता है।

wincompete

स) लुईस मोड़ बिंदु (Lewis Turning Point):
यह प्रक्रिया तब तक अनवरत चलती रहती है जब तक कि ग्रामीण क्षेत्र से अतिरिक्त श्रमबल पूरी तरह समाप्त नहीं हो जाता। जैसे ही कृषि से अतिरिक्त श्रम समाप्त होता है और श्रम की सीमांत उत्पादकता धनात्मक हो जाती है, वैसे ही कृषि में मजदूरी दरें बढ़ना शुरू हो जाती हैं। इस अवस्था को **लुईस मोड़ बिंदु** कहा जाता है। इसके पश्चात औद्योगिक क्षेत्र को अतिरिक्त श्रमिकों को आकर्षित करने हेतु उच्च मजदूरी देनी पड़ती है, और दोहरी अर्थव्यवस्था एक एकीकृत आधुनिक अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो जाती है।

उपखंड b: संतुलित बनाम असंतुलित विकास सिद्धांत, कुजनेट्स वक्र (आय असमानता एवं पर्यावरण)

संतुलित विकास का सिद्धांत (Theory of Balanced Growth)

संतुलित विकास की अवधारणा का प्रतिपादन मुख्य रूप से **पॉल रोसेनस्टीन-रोडन** (प्रबल धक्का सिद्धांत - Big Push Theory), **रैग्नर नर्क्स** और **आर्थर लुईस** द्वारा किया गया।

क) नर्क्स का निर्धनता का दुष्चक्र (Vicious Circle of Poverty):
अल्पविकसित देशों में गरीबी इसलिए बनी रहती है क्योंकि वहां बाजार का आकार अत्यधिक संकुचित होता है।

पूर्ति पक्ष: निम्न आय ➔ निम्न बचत ➔ निम्न पूंजी निर्माण ➔ निम्न उत्पादकता ➔ पुनः निम्न आय।

मांग पक्ष: निम्न आय ➔ निम्न क्रय शक्ति ➔ संकुचित बाजार ➔ निवेश की अल्प प्रेरणा ➔ निम्न उत्पादकता ➔ पुनः निम्न आय।

ख) सिद्धांत का मूल सार:
यदि किसी एक उद्योग (जैसे जूता उद्योग) में भारी निवेश किया जाए, तो वह सफल नहीं हो सकता क्योंकि उस उद्योग के श्रमिक अपनी संपूर्ण आय केवल जूते खरीदने पर व्यय नहीं करेंगे। अतः नर्क्स के अनुसार, विभिन्न उपभोक्ता और पूंजीगत उद्योगों की एक विस्तृत श्रृंखला में **एक साथ व्यापक निवेश** (Synchronized Application of Capital) किया जाना चाहिए।

ग) परस्पर पूरकता का सिद्धांत (Say's Law of Markets):
जब विभिन्न परस्पर जुड़े उद्योगों में एक साथ निवेश किया जाता है, तो एक उद्योग के श्रमिक दूसरे उद्योग के उत्पादों के खरीदार बन जाते हैं। इस प्रकार उद्योग एक-दूसरे के लिए बाजार का सृजन करते हैं और बाजार के आकार की सीमा टूट जाती है।

घ) सिद्धांत की सीमाएं:
यह सिद्धांत मानता है कि अविकसित देशों के पास एक साथ दर्जनों उद्योगों और विशाल अवसंरचना में लगाने हेतु प्रचुर पूंजी, प्रबंधकीय कौशल और तकनीकी क्षमता उपलब्ध है—जबकि वास्तव में इन संसाधनों का अभाव ही अविकसित होने का मूल कारण है।

असंतुलित विकास का सिद्धांत (Theory of Unbalanced Growth)

संतुलित विकास के सिद्धांत की अव्यावहारिकता की तीव्र आलोचना करते हुए अल्बर्ट ओ. हर्शमैन ने वर्ष 1958 में अपनी पुस्तक *'द स्ट्रेटेजी ऑफ इकोनॉमिक डेवलपमेंट'* में असंतुलित विकास के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इस सिद्धांत का समर्थन हंस सिंगर, सी. पी. किंडल बर्गर और डब्ल्यू. डब्ल्यू. रोस्टोव ने भी किया। भारत की **द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61)** का महालनोबिस मॉडल मूलतः असंतुलित विकास की इसी रणनीति पर आधारित था।

wincompete

अ) सिद्धांत का मूल दर्शन:
हर्शमैन का तर्क है कि विकास संतुलन स्थापित करने की नहीं, बल्कि जानबूझकर एक 'सक्रिय असंतुलन' (Deliberate Imbalance) पैदा करने की प्रक्रिया है। अल्पविकसित देशों में सबसे दुर्लभ संसाधन 'पूंजी' और 'निर्णय लेने की उद्यमिता क्षमता' है। अतः सभी क्षेत्रों में सीमित संसाधनों को बिखेरने के बजाय, कुछ रणनीतिक क्षेत्रों में भारी निवेश केंद्रित किया जाना चाहिए, जो शेष अर्थव्यवस्था को आगे खींचने हेतु शक्तिशाली प्रेरक बल उत्पन्न करें।

ब) निवेश के दो प्राथमिक क्षेत्र:

सामाजिक उपरि-पूंजी (Social Overhead Capital - SOC): सड़कें, रेलवे, बंदरगाह, विद्युत, सिंचाई और संचार जैसी बुनियादी अवसंरचना।

प्रत्यक्ष उत्पादक गतिविधियां (Directly Productive Activities - DPA): विनिर्माण कारखाने, सीमेंट, इस्पात और उपभोक्ता वस्तुओं का प्रत्यक्ष उत्पादन।

स) असंतुलन के दो मार्ग:

SOC के माध्यम से असंतुलन का मार्ग (विकास का अनुमत मार्ग): पहले सरकार बड़े पैमाने पर SOC (बिजली, परिवहन) में निवेश करती है। सस्ती बिजली और परिवहन की उपलब्धता से DPA में उत्पादन लागत घट जाती है, जिससे निजी उद्यमी कारखाने लगाने हेतु स्वतः प्रेरित होते हैं।

DPA के माध्यम से असंतुलन का मार्ग (विकास का दबाव-जनित मार्ग): पहले प्रत्यक्ष उत्पादक गतिविधियों में निवेश किया जाता है। कारखानों की स्थापना से बिजली और परिवहन की भीषण कमी और जाम की समस्या पैदा होती है, जिससे राजनीतिक और सामाजिक दबाव बनता है और सरकार SOC का निर्माण करने हेतु विवश हो जाती है।

द) अग्रगामी और पश्चगामी कड़ियां (Forward and Backward Linkages):
हर्शमैन के अनुसार निवेश उन उद्योगों में किया जाना चाहिए जिनके लिंकेज प्रभाव (संबद्धता प्रभाव) सर्वाधिक शक्तिशाली हों:

पश्चगामी कड़ी (Backward Linkage): जब किसी उद्योग की स्थापना अपने इनपुट के रूप में प्रयुक्त होने वाले प्राथमिक उद्योगों की मांग बढ़ाती है (यथा इस्पात उद्योग की स्थापना से कोयला और लौह अयस्क खनन की मांग बढ़ना)।

अग्रगामी कड़ी (Forward Linkage): जब किसी उद्योग का उत्पाद अन्य उद्योगों के उत्पादन हेतु कच्चा माल बनकर नए उद्योगों की स्थापना को सुगम बनाता है (यथा इस्पात का उत्पादन बढ़ने से ऑटोमोबाइल, रेलवे वैगन और निर्माण उद्योग का विकास होना)।

तुलना का आयाम	**संतुलित विकास सिद्धांत (Balanced Growth)**	**असंतुलित विकास सिद्धांत (Unbalanced Growth)**
प्रतिपादक	रोसेनस्टीन-रोडन, रैग्नर नर्क्स, आर्थर लुईस।	अल्बर्ट ओ. हर्शमैन, हंस सिंगर, रोस्टोव।

wincompete

निवेश की रणनीति	अर्थव्यवस्था के सभी परस्पर संबद्ध क्षेत्रों में एक साथ व्यापक निवेश।	कुछ रणनीतिक और अग्रणी उद्योगों (Leading Sectors) में सघन निवेश।
संसाधनों की मान्यता	प्रचुर पूंजी, कुशल श्रम और प्रशासनिक दक्षता की पूर्व-उपस्थिति मान ली जाती है।	पूंजी और प्रबंधकीय क्षमता की तीव्र दुर्लभता को यथार्थवादी रूप से स्वीकार करता है।
विकास का प्रेरक बल	क्षेत्रों के मध्य सामंजस्य और परस्पर मांग का सृजन।	जानबूझकर उत्पन्न तनाव, असंतुलन, अड़चनें (Bottlenecks) और लिंकेज प्रभाव।
भारतीय योजना में प्रयोग	प्रथम पंचवर्षीय योजना (कृषि, सिंचाई, विद्युत का समन्वित विकास)।	द्वितीय पंचवर्षीय योजना (महालनोबिस मॉडल - भारी व बुनियादी उद्योगों पर एकाग्रता)।

पारंपरिक कुजनेट्स वक्र: आर्थिक संवृद्धि एवं आय असमानता

नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री साइमन कुजनेट्स ने वर्ष 1955 में ऐतिहासिक आंकड़ों के आधार पर यह प्रतिपादित किया कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया में राष्ट्रीय आय की संवृद्धि और आय असमानता के मध्य एक **उल्टे 'U' आकार (Inverted U-shape)** का संबंध होता है।

क) वक्र का व्यवहार:

प्रारंभिक चरण: जब कोई पारंपरिक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था औद्योगिकीकरण और विकास के प्रारंभिक चरण में प्रवेश करती है, तो आय की असमानता में तीव्र वृद्धि होती है। ग्रामीण क्षेत्रों से केवल कुछ कुशल श्रमिक शहरों में उच्च वेतन प्राप्त करते हैं, जबकि बहुसंख्यक आबादी निर्वाह स्तर पर रहती है। पूंजीपतियों के मुनाफे बढ़ते हैं और संपत्ति संकेंद्रित होती है।

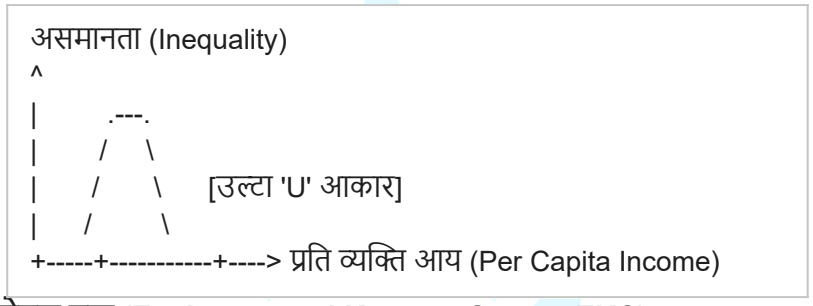
चरम बिंदु: एक निश्चित विकास स्तर पर असमानता अपने उच्चतम स्तर पर पहुंच जाती है।

उत्तरवर्ती चरण: विकास के उच्च स्तर पर पहुंचने के उपरांत असमानता में क्रमिक गिरावट प्रारंभ हो जाती है। इसके कारणों में लोकतांत्रिक संस्थाओं का सुदृढ़ीकरण, प्रगतिशील कराधान नीतियां, सामाजिक सुरक्षा व्यय, शिक्षा का सार्वभौमीकरण और श्रम संघों की सौदेबाजी क्षमता में वृद्धि सम्मिलित हैं।

ख) नीतिगत निहितार्थ: इस सिद्धांत का उपयोग कई नव-उदारवादी अर्थशास्त्रियों द्वारा यह तर्क देने हेतु किया गया कि विकासशील देशों को प्रारंभिक अवस्था में असमानता की चिंता किए बिना केवल संवृद्धि पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए, क्योंकि संवृद्धि का लाभ अंततः नीचे तक रिसकर पहुंचेगा (Trickle-Down Effect)। तथापि, आधुनिक अर्थशास्त्र (विशेषकर थॉमस पिकेटी का शोध) यह सिद्ध करता है कि असमानता में स्वतः गिरावट आना कोई प्राकृतिक नियम नहीं है, और बिना सक्रिय नीतिगत हस्तक्षेप के यह सिद्धांत विफल हो जाता है।

ख) नीतिगत निहितार्थ: इस सिद्धांत का उपयोग कई नव-उदारवादी अर्थशास्त्रियों द्वारा यह तर्क देने हेतु किया गया कि विकासशील देशों को प्रारंभिक अवस्था में असमानता की चिंता किए बिना केवल संवृद्धि पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए, क्योंकि संवृद्धि का लाभ अंततः नीचे तक रिसकर पहुंचेगा (Trickle-Down Effect)। तथापि, आधुनिक अर्थशास्त्र (विशेषकर थॉमस पिकेटी का शोध) यह सिद्ध करता है कि असमानता में स्वतः गिरावट आना कोई प्राकृतिक नियम नहीं है, और बिना सक्रिय नीतिगत हस्तक्षेप के यह सिद्धांत विफल हो जाता है।

कुजनेट्स वक्र (Kuznets Curve)



पर्यावरणीय कुजनेट्स वक्र (Environmental Kuznets Curve - EKC)

वर्ष 1990 के दशक के आरंभ में जीन ग्रॉसमैन और एलन क्रूगर ने कुजनेट्स की अवधारणा को पर्यावरणीय क्षरण और प्रति व्यक्ति आय के अंतर्संबंधों के विश्लेषण में लागू किया। यह वक्र भी **उल्टे 'U' आकार** को प्रदर्शित करता है।

अ) पैमाना प्रभाव (Scale Effect - प्रारंभिक अवस्था):
विकास के प्रारंभिक दौर में जब देश कृषि से औद्योगिकीकरण की ओर संक्रमण करता है, तो प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन होता है। प्रदूषण, वनों की कटाई और अपशिष्ट उत्पादन में तीव्र वृद्धि होती है क्योंकि समाज का मुख्य उद्देश्य केवल भौतिक अस्तित्व और रोजगार सृजन होता है; स्वच्छ पर्यावरण एक विलासिता माना जाता है।

ब) संरचना प्रभाव एवं तकनीक प्रभाव (Composition & Technique Effect - उच्च अवस्था):
जब अर्थव्यवस्था एक निश्चित उच्च आय स्तर (Turning Point) को पार कर जाती है, तो पर्यावरणीय क्षरण में गिरावट आने लगती है। इसके तीन प्रमुख कारण होते हैं:

संरचनात्मक बदलाव: अर्थव्यवस्था का झुकाव भारी प्रदूषणकारी उद्योगों से स्वच्छ सेवा क्षेत्र और ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था की ओर हो जाता है।

तकनीकी नवाचार: अधिक ऊर्जा-कुशल, अपशिष्ट-निवारक और नवीकरणीय ऊर्जा तकनीकों का प्रयोग।

जन-जागरूकता और विनियामक कठोरता: उच्च आय वाले नागरिक स्वच्छ वायु, सुरक्षित जल और बेहतर जीवन गुणवत्ता की मांग करते हैं, जिससे सरकारें कठोर पर्यावरणीय मानक और कार्बन कर लागू करने हेतु विवश होती हैं।

wincompete

स) पर्यावरणीय कुजनेट्स वक्र की आलोचनाएं:

अपरिवर्तनीय क्षति (Irreversibility): जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता की स्थायी क्षति और ओजोन परत का क्षरण ऐसे संकट हैं जिनकी भरपाई भविष्य में उच्च आय प्राप्त करके भी नहीं की जा सकती।

प्रदूषण का बाह्यीकरण (Pollution Havens Hypothesis): विकसित देश अपने घरेलू पर्यावरण को स्वच्छ तो बना लेते हैं, परंतु वे अपने प्रदूषणकारी उद्योगों को गरीब विकासशील देशों में स्थानांतरित कर देते हैं, जिससे वैश्विक स्तर पर कुल प्रदूषण कम नहीं होता।

महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली एवं प्रमुख सिद्धांत

वृद्धिशील पूंजी-उत्पाद अनुपात (ICOR): सकल घरेलू उत्पाद में उत्पादन की एक अतिरिक्त इकाई उत्पन्न करने हेतु आवश्यक अतिरिक्त पूंजीगत निवेश की मात्रा। यह अर्थव्यवस्था की पूंजीगत दक्षता का प्रत्यक्ष माप है; निम्न ICOR उच्च दक्षता का प्रतीक है, जबकि उच्च ICOR पूंजी के अपव्यय और अक्षमता को दर्शाता है।

सक्षमता दृष्टिकोण (Capability Approach): अमर्त्य सेन और मार्था नुसबाम द्वारा प्रतिपादित विकास का दार्शनिक ढांचा, जिसके अनुसार विकास का मूल्यांकन लोगों की आय या वस्तुओं के उपभोग से नहीं, बल्कि इस बात से किया जाना चाहिए कि वे क्या करने (Functionings) और क्या बनने में स्वतंत्र व सक्षम हैं।

प्रच्छन्न बेरोजगारी (Disguised Unemployment): वह स्थिति जिसमें किसी कार्य में आवश्यकता से अधिक श्रमिक लगे होते हैं। यदि इन अतिरिक्त श्रमिकों को कार्य से हटा भी दिया जाए, तो कुल उत्पादन में कोई कमी नहीं आती; अर्थात इन श्रमिकों की सीमांत भौतिक उत्पादकता शून्य होती है।

सामाजिक उपरि-पूंजी (Social Overhead Capital - SOC): वे बुनियादी सार्वजनिक सेवाएं और अवसंरचना (परिवहन, ऊर्जा, जल आपूर्ति, संचार, शिक्षा और स्वास्थ्य) जिनके बिना प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक उत्पादक गतिविधियां कुशलतापूर्वक संचालित नहीं हो सकतीं। यह प्रत्यक्ष रूप से लाभ कमाने वाली नहीं होती, परंतु समग्र अर्थव्यवस्था में भारी सकारात्मक बाह्यताएं उत्पन्न करती है।

सोलो अवशिष्ट (Solow Residual): उत्पादन वृद्धि का वह अंश जिसे श्रम और पूंजी के संचयन द्वारा नहीं समझाया जा सकता। यह तकनीकी नवाचार, प्रबंधकीय सुधारों, संस्थागत दक्षता और कार्यबल के कौशल उन्नयन के संयुक्त प्रभाव को दर्शाता है, जिसे कुल कारक उत्पादकता (TFP) भी कहा जाता है।

ट्रिकल-डाउन सिद्धांत (Trickle-Down Theory): यह रूढ़िवादी आर्थिक परिकल्पना कि संवृद्धि के प्रारंभिक लाभों को यदि उच्च आय वर्ग और कॉर्पोरेट क्षेत्र में संकेंद्रित होने दिया जाए, तो वे अधिक निवेश करेंगे, जिससे अंततः रोजगार और आय के अवसर रिस-रिसकर समाज के सबसे निचले और निर्धन वर्गों तक स्वतः पहुंच जाएंगे। आधुनिक अनुभवजन्य अध्ययनों ने इस सिद्धांत को काफी हद तक भ्रामक सिद्ध किया है।

डच रोग (Dutch Disease): अर्थशास्त्र का वह सिद्धांत जिसमें किसी देश में किसी विशिष्ट प्राकृतिक संसाधन (जैसे प्राकृतिक गैस या तेल) की खोज या भारी निर्यात के कारण देश की मुद्रा का अत्यधिक अधिमूल्यन (Appreciation) हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप देश के अन्य गैर-संसाधन विनिर्माण और कृषि निर्यात अंतरराष्ट्रीय बाजार में अप्रतिस्पर्धी होकर नष्ट हो जाते हैं।

wincompete

अध्याय 7: मानव विकास एवं बहुआयामी गरीबी के सूचकांक

खंड A: मानव विकास अवधारणा एवं मापन

उपखंड a: अमर्त्य सेन और महबूब उल हक का क्षमता दृष्टिकोण, जीवन की भौतिक गुणवत्ता सूचकांक (PQLI)

पारंपरिक आर्थिक मापदंडों से मानव-केंद्रित विकास की ओर प्रस्थान

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक आर्थिक विकास का आकलन केवल राष्ट्रीय आय, सकल घरेलू उत्पाद (GDP) अथवा प्रति व्यक्ति आय में होने वाली मात्रात्मक संवृद्धि के आधार पर किया जाता था। इस रूढ़िवादी दृष्टिकोण की यह मान्यता थी कि आर्थिक संवृद्धि के लाभ स्वतः ही समाज के निचले स्तरों तक पहुंच जाएंगे, जिसे ट्रिकल-डाउन सिद्धांत (Trickle-down Theory) कहा जाता था। तथापि, विकासशील देशों के अनुभवजन्य साक्ष्यों ने यह सिद्ध किया कि तीव्र संवृद्धि दर के बावजूद गरीबी, कुपोषण, निरक्षरता, रुग्णता तथा आय विषमता में अपेक्षित कमी नहीं आई। आर्थिक संवृद्धि साधन मात्र थी, जबकि मानव कल्याण साध्य था। इस वैचारिक विसंगति के समाधान के रूप में मानव विकास उपागम का सूत्रपात हुआ।

महबूब उल हक का दार्शनिक योगदान

पाकिस्तानी अर्थशास्त्री डॉ. महबूब उल हक ने वर्ष 1990 में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) के तत्वावधान में प्रथम **मानव विकास रिपोर्ट** (Human Development Report - HDR) का संपादन और विमोचन किया। डॉ. हक के अनुसार, विकास का वास्तविक उद्देश्य लोगों के विकल्पों का विस्तार करना है। आय का सृजन केवल इन विकल्पों को प्राप्त करने का एक साधन है, साध्य नहीं।

मानव विकास की संकल्पना चार आधारभूत स्तंभों पर टिकी है:

क) समता (Equity): सभी व्यक्तियों को उनकी जाति, लिंग, आय अथवा सामाजिक स्थिति के भेदभाव के बिना अवसरों की समान उपलब्धता सुनिश्चित करना।

ख) सततता (Sustainability): संसाधनों और अवसरों का इस प्रकार उपयोग करना कि भावी पीढ़ियों के विकल्पों का संकुचन न हो; अंतर-पीढ़ीगत और अंतरा-पीढ़ीगत न्याय की स्थापना।

ग) उत्पादकता (Productivity): मानव संसाधनों की क्षमताओं का निरंतर संवर्धन करना ताकि वे आर्थिक और सामाजिक प्रक्रियाओं में अपना सक्रिय योगदान दे सकें।

घ) सशक्तीकरण (Empowerment): लोगों को अपने जीवन को प्रभावित करने वाले निर्णयों में सक्रिय भागीदारी और चयन की स्वतंत्रता प्रदान करना।

अमर्त्य सेन का सक्षमता दृष्टिकोण (Capability Approach)

नोबेल पुरस्कार विजेता भारतीय अर्थशास्त्री प्रो. अमर्त्य सेन ने कल्याणकारी अर्थशास्त्र को एक नवीन दार्शनिक आधार प्रदान किया। सेन का दृष्टिकोण निम्नलिखित तीन परस्पर संबंधित संकल्पनाओं पर आधारित है:

अ) कार्यकरण (Functionings): व्यक्ति क्या करने में समर्थ है अथवा क्या बनने में सफल होता है। इसमें बुनियादी स्थितियां (जैसे पर्याप्त पोषण प्राप्त होना, रोगों से मुक्त रहना, साक्षर होना) से लेकर जटिल सामाजिक स्थितियां (जैसे आत्मसम्मान प्राप्त करना, समाज की गतिविधियों में भाग लेना) सम्मिलित हैं।

ब) सक्षमताएं (Capabilities): कार्यकरणों के विभिन्न वैकल्पिक संयोजनों को प्राप्त करने की वास्तविक स्वतंत्रता। सक्षमता समुच्चय (Capability Set) यह दर्शाता है कि किसी व्यक्ति के पास जीवन जीने के विभिन्न तरीकों में से चयन करने की कितनी वास्तविक स्वतंत्रता उपलब्ध है।

स) वस्तुएं एवं रूपांतरण कारक (Commodities & Conversion Factors): केवल भौतिक वस्तुओं की उपलब्धता पर्याप्त नहीं है। कोई व्यक्ति किसी वस्तु को अपनी सक्षमता में कितनी कुशलता से रूपांतरित कर पाता है, यह उसके व्यक्तिगत (आयु, स्वास्थ्य), सामाजिक (रूढ़ियां, सार्वजनिक नीतियां) और पर्यावरणीय (भौगोलिक स्थिति) रूपांतरण कारकों पर निर्भर करता है।

सेन के मतानुसार, गरीबी केवल आय का अभाव नहीं है, बल्कि **मूलभूत सक्षमताओं का वंचन** (Capability Deprivation) है। वास्तविक विकास का अर्थ व्यक्तियों को प्राप्त वास्तविक स्वतंत्रताओं का निरंतर विस्तार करना है।

जीवन की भौतिक गुणवत्ता सूचकांक (Physical Quality of Life Index - PQLI)
मानव विकास सूचकांक (HDI) के प्रादुर्भाव से पूर्व, वर्ष 1979 में ओवरसीज डेवलपमेंट काउंसिल के मोरिस डी. मोरिस ने जीवन की भौतिक गुणवत्ता को मापने हेतु PQLI का प्रतिपादन किया। यह आर्थिक विकास को केवल मौद्रिक चरों (प्रति व्यक्ति आय) से पृथक कर सामाजिक संकेतकों पर मापने का प्रथम व्यवस्थित वैश्विक प्रयास था।

PQLI के तीन घटक एवं उनकी गणना विधि:

क) 1 वर्ष की आयु पर जीवन प्रत्याशा (Life Expectancy at Age 1): इसके लिए न्यूनतम सीमा 38 वर्ष (स्कोर 1) तथा अधिकतम सीमा 77 वर्ष (स्कोर 100) निर्धारित की गई थी।

ख) शिशु मृत्यु दर (Infant Mortality Rate): इसके अंतर्गत प्रति 1000 जीवित जन्मों पर एक वर्ष से कम आयु में मरने वाले शिशुओं की संख्या मापी जाती थी। इसके लिए सबसे खराब स्थिति 229 प्रति 1000 (स्कोर 1) तथा सबसे अनुकूल स्थिति 9 प्रति 1000 (स्कोर 100) निर्धारित थी।

ग) 15 वर्ष एवं उससे अधिक आयु की मौलिक साक्षरता दर (Basic Literacy Rate): प्रतिशत साक्षरता को सीधे 1 से 100 के पैमाने पर रखा गया था।

इन तीनों संकेतकों को 1 से 100 के समरूप पैमाने पर परिवर्तित करने के उपरांत उनका **सरल अंकगणितीय माध्य** (Arithmetic Mean) निकालकर PQLI का मान निर्धारित किया जाता था:

$$PQLI = \frac{\text{जीवनप्रत्याशासूचकांक} + \text{शिशुमृत्युदरसूचकांक} + \text{साक्षरतासूचकांक}}{3}$$

तुलनात्मक आयाम	जीवन की भौतिक गुणवत्ता सूचकांक (PQLI)	मानव विकास सूचकांक (HDI)
प्रतिपादक एवं वर्ष	मोरिस डी. मोरिस (1979)।	महबूब उल हक एवं अमर्त्य सेन (1990)।

wincompete

आय का समावेशन	आय (GDP/GNI) को जानबूझकर पूर्णतः बहिष्कृत किया गया।	जीवन स्तर के मापन हेतु प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय (GNI) शामिल।
औसत निकालने की विधि	सरल अंकगणितीय माध्य (Arithmetic Mean)।	ज्यामितीय माध्य (Geometric Mean - वर्ष 2010 से प्रभावी)।
मापन का पैमाना	1 से 100 तक का पूर्णांक पैमाना।	0 से 1 तक का दशमलव पैमाना।
संकेतकों की प्रकृति	केवल भौतिक व सामाजिक उत्तरजीविता से संबद्ध।	जीवन काल, ज्ञानार्जन एवं आर्थिक क्रय शक्ति का समग्र संश्लेषण।

उपखंड b: मानव विकास सूचकांक (HDI), असमानता-समायोजित मानव विकास सूचकांक (IHDI), गणना विधि और भारत की स्थिति

मानव विकास सूचकांक (HDI) की संरचना एवं अद्यतन पद्धति

यूएनडीपी द्वारा वर्ष 1990 से प्रतिवर्ष जारी किया जाने वाला मानव विकास सूचकांक (HDI) तीन बुनियादी आयामों में किसी देश की औसत उपलब्धि का एक समग्र सांख्यिकीय माप है। वर्ष 2010 में मानव विकास रिपोर्ट की 20वीं वर्षगांठ के अवसर पर इसकी गणना पद्धति में ऐतिहासिक संशोधन किए गए, जो वर्तमान में भी प्रभावी हैं।

आयाम (Dimension)	संकेतक (Indicators)	आयामी सूचकांक (Dimension Index)
1. स्वास्थ्य आयाम (Health)	जन्म के समय जीवन प्रत्याशा	जीवन प्रत्याशा सूचकांक (LEI)
2. शिक्षा आयाम (Education)	• स्कूल अवधि के औसत वर्ष (MYS)• स्कूल अवधि के अपेक्षित वर्ष (EYS)	शिक्षा सूचकांक (EI)
3. जीवन स्तर आयाम (Standard of Living)	प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय (GNI)	आय सूचकांक (II)

आयाम, संकेतक और लक्ष्य मान (Goalposts)

सूचकांक की गणना से पूर्व प्रत्येक संकेतक को 0 से 1 के पैमाने पर सामान्यीकृत (Normalize) किया जाता है। इसके लिए यूएनडीपी द्वारा निर्धारित न्यूनतम और अधिकतम लक्ष्य मान (Goalposts) निम्नलिखित हैं:

आयाम	संकेतक	न्यूनतम मान (Minimum)	अधिकतम मान (Maximum)
दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन	जन्म के समय जीवन प्रत्याशा (वर्ष)	20 वर्ष	85 वर्ष
ज्ञान / शिक्षा	25 वर्ष व अधिक आयु के वयस्कों हेतु स्कूल अवधि के औसत वर्ष (MYS)	0 वर्ष	15 वर्ष
ज्ञान / शिक्षा	स्कूल प्रवेश आयु के बच्चों हेतु स्कूल अवधि के अपेक्षित वर्ष (EYS)	0 वर्ष	18 वर्ष
सभ्य जीवन स्तर	प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय (GNI per capita - 2017 PPP डॉलर)	100 डॉलर	75,000 डॉलर

आयामी सूचकांकों की गणना की गणितीय विधि

क) जीवन प्रत्याशा सूचकांक (Life Expectancy Index - LEI):

$$LEI = \frac{\text{वास्तविकमान} - 20}{85 - 20}$$

ख) शिक्षा सूचकांक (Education Index - EI):

सर्वप्रथम दोनों शैक्षिक संकेतकों के व्यक्तिगत उप-सूचकांक निकाले जाते हैं:

$$MYS\text{सूचकांक} = \frac{\text{वास्तविकमान} - 0}{15 - 0}$$

$$EYS\text{सूचकांक} = \frac{\text{वास्तविकमान} - 0}{18 - 0}$$

इसके उपरांत दोनों उप-सूचकांकों का अंकगणितीय माध्य लेकर समग्र शिक्षा सूचकांक प्राप्त किया जाता है:

$EI = \frac{MYS\text{सूचकांक} + EYS\text{सूचकांक}}{2}$

ग) आय सूचकांक (Income Index - II):
आय की सीमांत उपयोगिता के घटते प्रतिफल को दर्शाने के लिए आय का प्राकृतिक लघुगणक (Natural Logarithm) लिया जाता है:

$II = \frac{\ln(\text{वास्तविक} GNI) - \ln(100)}{\ln(75000) - \ln(100)}$

घ) समग्र मानव विकास सूचकांक (Composite HDI):
वर्ष 2010 से पूर्व तीनों आयामी सूचकांकों का अंकगणितीय माध्य निकाला जाता था, जिसकी आलोचना इसलिए होती थी क्योंकि वह विभिन्न आयामों के मध्य पूर्ण प्रतिस्थापन (Perfect Substitutability) मान लेता था। वर्ष 2010 से तीनों आयामी सूचकांकों का **ज्यामितीय माध्य** (Geometric Mean) निकाला जाता है:

$HDI = \sqrt[3]{LEI \times EI \times II}$

ज्यामितीय माध्य का प्रयोग यह सुनिश्चित करता है कि किसी एक आयाम में अत्यधिक पिछड़ापन समग्र सूचकांक को नीचे खींच लेता है, जिससे नीति-निर्माताओं को सभी आयामों में संतुलित विकास करने की प्रेरणा मिलती है।

मानव विकास श्रेणियों का वर्गीकरण
यूएनडीपी द्वारा देशों को उनके HDI स्कोर के आधार पर चार स्पष्ट संवर्गों में वर्गीकृत किया जाता है:

अ) अति-उच्च मानव विकास (Very High Human Development): 0.800 और उससे अधिक स्कोर।

ब) उच्च मानव विकास (High Human Development): 0.700 से 0.799 तक का स्कोर।

स) मध्यम मानव विकास (Medium Human Development): 0.550 से 0.699 तक का स्कोर।

द) निम्न मानव विकास (Low Human Development): 0.550 से कम स्कोर।

असमानता-समायोजित मानव विकास सूचकांक (Inequality-adjusted HDI - IHDI)
पारंपरिक HDI किसी देश के भीतर स्वास्थ्य, शिक्षा और आय के वितरण में विद्यमान असमानता को अनदेखा करता है। इस गंभीर सीमा को दूर करने हेतु यूएनडीपी ने वर्ष 2010 में **असमानता-समायोजित मानव विकास सूचकांक (IHDI)** प्रस्तुत किया।

क) संकल्पना: IHDI समाज के प्रत्येक आयाम में लोगों के मध्य असमानता की मात्रा के आधार पर पारंपरिक HDI के मान को नीचे समायोजित करता है। इसे 'अटकिंसन असमानता माप' के आधार पर प्रत्येक आयाम के ज्यामितीय माध्य द्वारा निकाला जाता है।

ख) अंतर्संबंध: यदि किसी देश में स्वास्थ्य, शिक्षा और आय का वितरण पूर्णतः समान हो, तो $IHDI = HDI$ होगा। समाज में असमानता जितनी अधिक होगी, IHDI का मान पारंपरिक HDI से उतना ही कम होगा।

ग) समग्र हानि (Overall Loss): पारंपरिक HDI और IHDI के बीच का प्रतिशत अंतर असमानता के कारण होने वाली मानवीय क्षमता की हानि को व्यक्त करता है:

$$\text{हानिप्रतिशत} = \left(\frac{HDI - IHDI}{HDI}\right) \times 100$$

मानव विकास सूचकांक में भारत की अद्यतन स्थिति

यूएनडीपी की नवीनतम मानव विकास रिपोर्टों (2024, 2025 तथा 2026 की अद्यतन समीक्षाओं) के अनुसार भारत की स्थिति का आधिकारिक विश्लेषण निम्नलिखित है:

अ) समग्र स्कोर एवं वैश्विक रैंक: भारत का नवीनतम HDI मान **0.644** दर्ज किया गया है, जिसके साथ भारत वैश्विक स्तर पर **134वें स्थान** (कुल 193 देशों में) पर स्थित है।

ब) श्रेणी: भारत 'मध्यम मानव विकास' (Medium Human Development) संवर्ग के अंतर्गत आता है।

स) आयामी संकेतकों का अद्यतन स्तर:

जन्म के समय जीवन प्रत्याशा: 67.7 वर्ष।

स्कूल अवधि के अपेक्षित वर्ष (EYS): 12.6 वर्ष।

25 वर्ष व अधिक आयु हेतु स्कूल अवधि के औसत वर्ष (MYS): 6.57 वर्ष।

प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय (GNI per capita - 2017 PPP): लगभग 6,951 डॉलर।

द) असमानता के कारण हानि (IHDI विश्लेषण): असमानता के समायोजन के उपरांत भारत का IHDI मान घटकर लगभग 0.478 रह जाता है, जो असमानता के कारण मानव विकास में लगभग **25.8 प्रतिशत की समग्र हानि** को प्रदर्शित करता है। भारत में सर्वाधिक असमानता आय के आयाम में तथा उसके उपरांत शिक्षा के आयाम में दर्ज की गई है।

ङ) दक्षिण एशियाई तुलना: दक्षिण एशिया में श्रीलंका (78वां स्थान) और मालदीव (87वां स्थान) 'उच्च मानव विकास' श्रेणी में भारत से काफी आगे हैं, जबकि भूटान (125वां स्थान) और बांग्लादेश (129वां स्थान) भी भारत से बेहतर पायदान पर हैं। भारत केवल नेपाल (146वां स्थान) और पाकिस्तान (164वां स्थान) से आगे है।

खंड B: गरीबी और लैंगिक सूचकांक

उपखंड a: बहुआयामी गरीबी सूचकांक (MPI) - वैश्विक एवं राष्ट्रीय नीति आयोग ढांचा, आयाम और संकेतक

बहुआयामी गरीबी की अवधारणा एवं अल्कायर-फोस्टर विधि

परंपरागत रूप से गरीबी का मापन केवल आय अथवा उपभोग व्यय की एक निश्चित न्यूनतम सीमा (गरीबी रेखा) के आधार पर किया जाता था (यथा सुरेश तेंदुलकर समिति या सी. रंगराजन समिति)। तथापि, ऑक्सफोर्ड गरीबी एवं मानव विकास पहल (OPHI) तथा यूएनडीपी ने यह प्रतिपादित किया कि गरीबी एक बहुआयामी परिघटना है, जिसमें स्वास्थ्य सेवाओं, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और बुनियादी जीवन स्तर का एक साथ अभाव शामिल होता है।

वैश्विक एवं राष्ट्रीय बहुआयामी गरीबी सूचकांक **अल्कायर-फोस्टर (Alkire-Foster - AF) पद्धति** पर आधारित है। इसमें दोहरे कट-ऑफ (Dual Cut-off) सिद्धांत का प्रयोग किया जाता है:

क) वंचन कट-ऑफ (Deprivation Cut-off): प्रत्येक व्यक्तिगत संकेतक के लिए निर्धारित न्यूनतम मानक, जिसके नीचे होने पर व्यक्ति को उस संकेतक में 'वंचित' माना जाता है।

ख) गरीबी कट-ऑफ (Poverty Cut-off - k): किसी व्यक्ति को बहुआयामी रूप से गरीब घोषित करने के लिए सभी संकेतकों के कुल भारांक का न्यूनतम **33.33 प्रतिशत (एक-तिहाई)** वंचन भार वहन करना अनिवार्य होता है। यदि किसी व्यक्ति का वंचन स्कोर 20% से 33.33% के मध्य हो, तो उसे 'बहुआयामी गरीबी की दृष्टि से संवेदनशील' (Vulnerable to Multidimensional Poverty) माना जाता है, तथा 50% से अधिक वंचन स्कोर वाले व्यक्ति 'गंभीर बहुआयामी गरीबी' (Severe Multidimensional Poverty) की श्रेणी में आते हैं।

वैश्विक एमपीआई (Global MPI) का ढांचा

वैश्विक स्तर पर यूएनडीपी और ओफी (OPHI) द्वारा जारी वैश्विक MPI में तीन समान भार वाले आयाम (प्रत्येक का भार 1/3) और कुल **10 संकेतक** सम्मिलित होते हैं:

आयाम (भार 1/3)	**संकेतक**	**संकेतक का भार**	**वंचन का विधिक/तकनीकी मानक**
स्वास्थ्य (1/3)	पोषण (Nutrition)	1/6 (16.67%)	परिवार का कोई भी सदस्य (बच्चा या वयस्क) कुपोषित हो।
स्वास्थ्य (1/3)	बाल मृत्यु दर (Child Mortality)	1/6 (16.67%)	सर्वेक्षण से पूर्व विगत 5 वर्षों में परिवार में किसी 18 वर्ष से कम आयु के बच्चे की मृत्यु हुई हो।
शिक्षा (1/3)	स्कूली शिक्षा के वर्ष	1/6 (16.67%)	परिवार के किसी भी सदस्य (10 वर्ष या अधिक) ने न्यूनतम 6 वर्ष की स्कूली शिक्षा पूर्ण न की हो।
शिक्षा (1/3)	स्कूल में उपस्थिति	1/6 (16.67%)	स्कूल जाने की आयु का कोई भी बच्चा उस कक्षा तक स्कूल नहीं जा रहा हो जहां तक उसे होना चाहिए।

wincompete

जीवन स्तर (1/3)	खाना पकाने का ईंधन	1/36 (2.78%)	परिवार खाना पकाने के लिए गोबर, लकड़ी, कोयला या चारकोल का उपयोग करता हो।
जीवन स्तर (1/3)	स्वच्छता (Sanitation)	1/36 (2.78%)	परिवार के पास बेहतर शौचालय की सुविधा न हो अथवा शौचालय अन्य परिवारों के साथ साझा हो।
जीवन स्तर (1/3)	पेयजल (Drinking Water)	1/36 (2.78%)	सुरक्षित पेयजल का स्रोत न हो अथवा घर से सुरक्षित पानी लाने में 30 मिनट से अधिक समय लगता हो।
जीवन स्तर (1/3)	बिजली (Electricity)	1/36 (2.78%)	घर में बिजली का कोई कनेक्शन न हो।
जीवन स्तर (1/3)	आवास (Housing)	1/36 (2.78%)	घर की छत, दीवार अथवा फर्श अपर्याप्त सामग्री (कच्ची मिट्टी, घास-फूस) से निर्मित हो।
जीवन स्तर (1/3)	संपत्ति (Assets)	1/36 (2.78%)	परिवार के पास रेडियो, टीवी, फोन, साइकिल आदि में से एक से अधिक संपत्ति न हो और कार/ट्रक न हो।

राष्ट्रीय बहुआयामी गरीबी सूचकांक (National MPI - नीति आयोग)

भारत सरकार के थिंक टैंक **नीति आयोग** द्वारा राष्ट्रीय बहुआयामी गरीबी सूचकांक (National MPI) तैयार किया जाता है, जो राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS) के आंकड़ों पर आधारित होता है।

राष्ट्रीय एमपीआई का विशिष्ट विन्यास:

नीति आयोग ने वैश्विक MPI के 10 संकेतकों को पूर्णतः अक्षुण्ण रखते हुए, भारत की सार्वजनिक नीति प्राथमिकताओं और राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के अनुरूप **दो अतिरिक्त संकेतक** जोड़े हैं। अतः राष्ट्रीय MPI में 3 आयामों के अंतर्गत कुल **12 संकेतक** सम्मिलित हैं:

क) प्रसवपूर्व देखभाल (Antenatal Care - स्वास्थ्य आयाम के अंतर्गत): भार = 1/12 (8.33%)। वंचन का मानक: जिस परिवार में किसी महिला ने बच्चे को जन्म दिया हो और उसने कम से कम 4 प्रसवपूर्व जांचें (ANC) प्राप्त न की हों अथवा संस्थागत प्रसव न कराया हो।

ख) बैंक खाता (Bank Account - जीवन स्तर आयाम के अंतर्गत): भार = 1/24 (4.17%)। वंचन का मानक: परिवार के किसी भी सदस्य के पास कोई सक्रिय बैंक अथवा डाकघर बचत खाता उपलब्ध न हो (प्रधानमंत्री जन धन योजना के प्रभाव का आकलन)।

आयाम (Dimension)	संकेतक एवं भारांक (Indicators & Weights)
स्वास्थ्य (Health)	पोषण (1/12) + बाल-किशोर मृत्यु दर (1/12) + प्रसवपूर्व देखभाल (1/12)
शिक्षा (Education)	स्कूली शिक्षा के वर्ष (1/6) + स्कूल में उपस्थिति (1/6)
जीवन स्तर (Standard of Living)	पकाने का ईंधन (1/24) + स्वच्छता (1/24) + पेयजल (1/24) + बिजली (1/24) + आवास (1/24) + संपत्ति (1/24) + बैंक खाता (1/24)

एमपीआई की गणितीय गणना

बहुआयामी गरीबी सूचकांक (MPI) दो प्रमुख चरों का गुणनफल होता है:

$$MPI = H \times A$$

अ) हेडकाउंट अनुपात (Headcount Ratio - H): बहुआयामी रूप से गरीब व्यक्तियों की संख्या का कुल जनसंख्या से अनुपात:

$$H = \frac{q}{n}$$

(जहाँ q बहुआयामी गरीबों की संख्या है और n कुल जनसंख्या है)।

ब) गरीबी की तीव्रता (Intensity of Poverty - A): यह दर्शाता है कि गरीब व्यक्ति औसतन कितने प्रतिशत वंचनों को एक साथ झेल रहे हैं:

$$A = \frac{\sum_{i=1}^{q} c_i}{q \times d}$$

(जहाँ c_i गरीब व्यक्ति का वंचन स्कोर है और d कुल भारित संकेतकों का योग है)।

नीति आयोग की अद्यतन रिपोर्ट (बहुआयामी गरीबी में ऐतिहासिक कमी)

नीति आयोग की नवीनतम राष्ट्रीय बहुआयामी गरीबी रिपोर्ट (NFHS-4 और NFHS-5 के तुलनात्मक विश्लेषण तथा 2024-2026 के अद्यतन संकलनों) के अनुसार:

क) राष्ट्रीय स्तर पर हेडकाउंट अनुपात (H): वर्ष 2015-16 में बहुआयामी गरीबों का अनुपात 24.85 प्रतिशत था, जो वर्ष 2019-21 में घटकर **14.96 प्रतिशत** रह गया, तथा नवीनतम आकलनों में यह घटकर लगभग **11.28 प्रतिशत** के स्तर पर आ गया है।

ख) निर्धनता से बाहर निकले लोग: विगत नौ वर्षों के अंतराल में देश के लगभग **24.82 करोड़ लोग** बहुआयामी गरीबी के दुष्चक्र से बाहर निकलने में सफल रहे हैं।

ग) राज्यों का प्रदर्शन:

सर्वाधिक तीव्र गति से गरीबी घटाने वाले राज्य: उत्तर प्रदेश (लगभग 5.94 करोड़ लोग बाहर निकले), बिहार (3.77 करोड़) तथा मध्य प्रदेश (2.30 करोड़)।

राज्यों में सापेक्ष स्थिति: बिहार में बहुआयामी गरीबी का अनुपात अभी भी राज्यों में सर्वाधिक (लगभग 33.76%) बना हुआ है, जिसके पश्चात झारखंड और मेघालय का स्थान है।

न्यूनतम गरीबी वाले राज्य: केरल (0.55 प्रतिशत के साथ देश में सबसे कम बहुआयामी गरीबी वाला राज्य), गोवा, तमिलनाडु और पंजाब।

घ) ग्रामीण बनाम शहरी विभाजन: ग्रामीण क्षेत्रों में बहुआयामी गरीबी 32.59% से घटकर 19.28% हो गई, जबकि शहरी क्षेत्रों में यह 8.65% से घटकर 5.27% रह गई।

उपखंड b: लैंगिक विकास सूचकांक (GDI), लैंगिक असमानता सूचकांक (GII), वैश्विक भुखमरी सूचकांक (GHI)

लैंगिक विकास सूचकांक (Gender Development Index - GDI)

यूएनडीपी द्वारा वर्ष 2014 की मानव विकास रिपोर्ट से प्रारंभ किया गया लैंगिक विकास सूचकांक (GDI) मानव विकास के तीन बुनियादी आयामों (स्वास्थ्य, शिक्षा और जीवन स्तर) में महिला और पुरुष उपलब्धियों के प्रत्यक्ष अनुपात को मापता है।

क) गणना विधि:
सर्वप्रथम महिलाओं हेतु पृथक महिला मानव विकास सूचकांक (HDI_f) तथा पुरुषों हेतु पृथक पुरुष मानव विकास सूचकांक (HDI_m) की गणना की जाती है। इसके उपरांत दोनों का अनुपात निकाला जाता है:

$$GDI = \frac{HDI_f}{HDI_m}$$

ख) जैविक समायोजन: जीवन प्रत्याशा में जैविक लाभ को ध्यान में रखते हुए महिलाओं हेतु लक्ष्य मान 22.5 से 87.5 वर्ष तथा पुरुषों हेतु 17.5 से 82.5 वर्ष रखे जाते हैं (महिलाओं को 5 वर्ष का प्राकृतिक जैविक लाभ)।

ग) समूह वर्गीकरण: GDI मान के आधार पर देशों को पांच समूहों (Group 1 से Group 5) में बांटा जाता है। समूह 1 में महिला और पुरुष HDI के मध्य पूर्ण समानता (निरपेक्ष विचलन 2.5% से कम) होती है, जबकि समूह 5 में अत्यधिक लैंगिक अंतराल पाया जाता है। भारत वर्तमान में **समूह 5** के अंतर्गत आता है, जहां महिलाओं का HDI मान पुरुषों की तुलना में 15 प्रतिशत से अधिक कम है।

लैंगिक असमानता सूचकांक (Gender Inequality Index - GII)

यूएनडीपी द्वारा वर्ष 2010 से जारी किया जाने वाला GII लैंगिक विषमता के कारण किसी देश में मानव विकास की संभावित उपलब्धियों में होने वाली हानि को मापता है। यह तीन महत्वपूर्ण आयामों और पांच संकेतकों पर आधारित है:

आयाम (Dimension)	संकेतक 1 (Indicator 1)	संकेतक 2 (Indicator 2)
1. प्रजनन स्वास्थ्य	मातृ मृत्यु अनुपात (MMR)	किशोर जन्म दर (ABR)
2. सशक्तीकरण	संसद में सीटों की हिस्सेदारी	माध्यमिक शिक्षा में हिस्सेदारी
3. श्रम बाजार	श्रमबल सहभागिता दर (LFPR - महिला बनाम पुरुष)	

आयाम और संकेतक विवरण:

अ) प्रजनन स्वास्थ्य:

मातृ मृत्यु अनुपात (Maternal Mortality Ratio - MMR): प्रति 1,00,000 जीवित जन्मों पर माताओं की मृत्यु।

किशोर जन्म दर (Adolescent Birth Rate - ABR): 15 से 19 वर्ष की प्रति 1000 किशोरियों पर जन्म लेने वाले शिशुओं की संख्या।

ब) सशक्तीकरण:

राष्ट्रीय संसद में महिलाओं और पुरुषों की सीटों का प्रतिशत हिस्सा।

25 वर्ष व अधिक आयु की महिलाओं और पुरुषों में कम से कम माध्यमिक शिक्षा प्राप्त आबादी का प्रतिशत।

स) श्रम बाजार:

15 वर्ष व अधिक आयु की महिलाओं और पुरुषों की श्रमबल सहभागिता दर (LFPR)।

GII की व्याख्या एवं भारत की स्थिति:

व्याख्या: GII का मान 0 से 1 के मध्य होता है। **0 का मान पूर्ण समानता** (शून्य लैंगिक हानि) का प्रतीक है, जबकि **1 का मान पूर्ण असमानता** (महिलाओं की चरम वंचना) को दर्शाता है। अतः निम्न GII मान बेहतर प्रदर्शन का सूचक है।

भारत का अद्यतन प्रदर्शन: यूएनडीपी की नवीनतम रिपोर्ट के अनुसार भारत का GII स्कोर सुधरकर **0.437** हो गया है, जिसके साथ भारत **108वें स्थान** पर पहुंच गया है (विगत रिपोर्ट के 122वें स्थान की तुलना में 14 पायदानों का उल्लेखनीय सुधार)।

प्रमुख कारण: भारत में मातृ मृत्यु अनुपात (MMR) में तीव्र गिरावट (वर्तमान में 97 से 103 प्रति लाख के स्तर पर), संस्थागत प्रसव में वृद्धि, किशोर जन्म दर में कमी तथा महिला श्रमबल सहभागिता दर (LFPR) में क्रमिक सुधार (जो आवधिक श्रमबल सर्वेक्षण - PLFS के अनुसार बढ़कर लगभग 37% से अधिक हो गई है)। संसद में महिलाओं की भागीदारी 14.4% दर्ज की गई है, जिसमें 106वें संविधान संशोधन अधिनियम (नारी शक्ति वंदन अधिनियम) के लागू होने के उपरांत व्यापक वृद्धि की संभावना है।

वैश्विक भुखमरी सूचकांक (Global Hunger Index - GHI)

वैश्विक भुखमरी सूचकांक कंसर्न वर्ल्डवाइड (आयरलैंड) तथा वेल्थुंगरलाइफ (जर्मनी) द्वारा संयुक्त रूप से प्रतिवर्ष अक्टूबर माह में जारी किया जाने वाला एक बहुआयामी सूचकांक है। यह वैश्विक, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर भुखमरी की स्थिति का व्यापक आकलन करता है।

GHI के चार संकेतक एवं भारांक प्रणाली:

GHI तीन समान भार वाले आयामों (अपर्याप्त खाद्य आपूर्ति, बाल अल्पपोषण, एवं बाल मृत्यु दर) के अंतर्गत चार संकेतकों को समाहित करता है:

आयाम	संकेतक	भारांक	परिभाषा एवं मापन
खाद्य आपूर्ति	अल्पपोषण (Undernourishment)	1/3 (33.33%)	कुल जनसंख्या का वह प्रतिशत हिस्सा जिनकी दैनिक कैलोरी अंतर्ग्रहण क्षमता न्यूनतम आवश्यकता से कम है।
बाल अल्पपोषण	चाइल्ड वेस्टिंग (Child Wasting)	1/6 (16.67%)	5 वर्ष से कम आयु के वे बच्चे जिनका वजन उनकी ऊंचाई के अनुपात में कम है (तीव्र कुपोषण का सूचक)।
बाल अल्पपोषण	चाइल्ड स्टंटिंग (Child Stunting)	1/6 (16.67%)	5 वर्ष से कम आयु के वे बच्चे जिनकी ऊंचाई उनकी उम्र के अनुपात में कम है (दीर्घकालिक कुपोषण का सूचक)।
बाल मृत्यु दर	5 वर्ष से कम बाल मृत्यु दर	1/3 (33.33%)	प्रति 1000 जीवित जन्मों पर पांच वर्ष की आयु पूर्ण करने से पूर्व मरने वाले बच्चों का अनुपात।

wincompete

GHI स्कोर की गणना और भुखमरी की गंभीरता का पैमाना:
चारों संकेतकों के मानकीकृत स्कोरों का भारित योग निकालकर 100-बिंदु पैमाने पर GHI स्कोर तैयार किया जाता है:

9.9 या उससे कम: निम्न भुखमरी (Low Hunger)

10.0 से 19.9: मध्यम भुखमरी (Moderate Hunger)

20.0 से 34.9: गंभीर भुखमरी (Serious Hunger)

35.0 से 49.9: भयावह भुखमरी (Alarming Hunger)

50.0 या उससे अधिक: अत्यंत भयावह भुखमरी (Extremely Alarming)

गंभीरता श्रेणी	निम्न (Low)	मध्यम (Moderate)	गंभीर (Serious)	भयावह से अत्यंत भयावह
GHI स्कोर सीमा	≤ 9.9	10.0 - 19.9	20.0 - 34.9	≥ 35.0 (35.0-49.9: भयावह / ≥50.0: अत्यंत भयावह)

GHI में भारत की स्थिति और पद्धतिगत विवाद:

अद्यतन रैंकिंग: नवीनतम वैश्विक भुखमरी सूचकांक में भारत का स्कोर **27.3 से 28.2** के मध्य आकलित किया गया है, जो भारत को **'गंभीर' (Serious) भुखमरी** की श्रेणी में रखता है। भारत को 125 से 127 देशों की सूची में **105वें से 111वें पायदान** के आसपास स्थान दिया गया है।

संकेतकों की स्थिति: भारत में 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों में 'चाइल्ड वेस्टिंग' (Child Wasting) की दर लगभग **18.7 प्रतिशत** दर्ज की गई है, जो विश्व में सर्वाधिक स्तरों में से एक है। चाइल्ड स्टंटिंग की दर लगभग 35.5% तथा अल्पपोषण की दर 16.6% के स्तर पर है।

भारत सरकार की आधिकारिक आपत्तियां एवं कार्यप्रणाली की आलोचना: महिला एवं बाल विकास मंत्रालय और स्वास्थ्य मंत्रालय ने GHI की पद्धति पर गंभीर आधिकारिक आपत्तियां दर्ज की हैं:

क) नमूना आकार की विसंगति: अल्पपोषण संकेतक की गणना गैलप वर्ल्ड पोल के माध्यम से किए गए मात्र 3000 व्यक्तियों के एक अत्यंत छोटे टेलीफोनिक सर्वेक्षण (ओपिनियन पोल) पर आधारित है, जो 140 करोड़ से अधिक की जनसंख्या का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता।

ख) बाल-केंद्रित पूर्वाग्रह: चार में से तीन संकेतक (वेस्टिंग, स्टंटिंग, बाल मृत्यु दर) केवल 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों से संबंधित हैं, जबकि संपूर्ण राष्ट्रीय आबादी की भुखमरी का प्रतिनिधित्व केवल बच्चों के स्वास्थ्य संकेतकों से नहीं किया जा सकता।

ग) गैर-खाद्य कारक: स्टंटिंग और वेस्टिंग केवल भोजन की अनुपलब्धता का परिणाम नहीं हैं; ये स्वच्छ जल, स्वच्छता, आनुवंशिकी, मातृ स्वास्थ्य और बार-बार होने वाले संक्रमणों जैसे जटिल पर्यावरणीय कारकों से भी प्रभावित होते हैं।

घ) पोषण ट्रैकर (Poshan Tracker) के वास्तविक डेटा की उपेक्षा: सरकार के आधिकारिक 'पोषण ट्रैकर' पोर्टल के अनुसार, जिसमें 7 करोड़ से अधिक बच्चों की वास्तविक समय (Real-time) निगरानी की जाती है, बच्चों में वेस्टिंग की दर 7 से 8 प्रतिशत के आसपास है, जो GHI के दावों से काफी कम है। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (NFSA) और प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना (PMGKAY) के तहत 81 करोड़ से अधिक नागरिकों को निःशुल्क खाद्यान्न की उपलब्धता सुनिश्चित की गई है।

महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली एवं प्रमुख अवधारणाएं

मानव पूंजी बनाम मानव विकास (Human Capital vs Human Development): मानव पूंजी दृष्टिकोण मानव को उत्पादन प्रक्रिया के एक साधन (साधन के रूप में श्रम) के रूप में देखता है; शिक्षा और स्वास्थ्य में निवेश इसलिए किया जाता है ताकि व्यक्ति की उत्पादकता और जीडीपी में योगदान बढ़ सके। इसके विपरीत, मानव विकास उपागम मानव कल्याण को स्वयं में एक साध्य मानता है; शिक्षा और स्वास्थ्य प्रत्येक व्यक्ति का बुनियादी अधिकार है, भले ही इससे उसकी मौद्रिक उत्पादकता में वृद्धि हो अथवा न हो।

क्षमता दृष्टिकोण (Capability Approach): अमर्त्य सेन द्वारा प्रतिपादित वह सिद्धांत जो कल्याण का मूल्यांकन केवल उपयोगिता (संतुष्टि) अथवा आय से नहीं, बल्कि इस बात से करता है कि व्यक्ति अपनी वास्तविक स्वतंत्रताओं के प्रयोग द्वारा क्या करने और क्या बनने में समर्थ है।

हेडकाउंट अनुपात (Headcount Ratio - H): किसी दिए गए बहुआयामी गरीबी सूचकांक अथवा गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाली जनसंख्या का कुल आबादी में प्रतिशत अनुपात। यह गरीबी के प्रसार (Incidence of Poverty) को दर्शाता है, गहराई को नहीं।

गरीबी की तीव्रता (Intensity of Poverty - A): बहुआयामी रूप से गरीब व्यक्तियों द्वारा औसतन झेले जाने वाले वंचनों का भारित प्रतिशत। यह स्पष्ट करता है कि गरीब आबादी गरीबी रेखा के कितने नीचे जीवन यापन कर रही है।

चाइल्ड स्टंटिंग (Child Stunting / बौनापन): अपनी आयु की तुलना में कम लंबाई अथवा ऊंचाई होना। यह गर्भावस्था के दौरान तथा जीवन के प्रारंभिक वर्षों में दीर्घकालिक और जीर्ण कुपोषण तथा बार-बार होने वाली बीमारियों का स्पष्ट संकेतक है।

चाइल्ड वेस्टिंग (Child Wasting / दुर्बलता): अपनी ऊंचाई अथवा लंबाई के अनुपात में अत्यधिक कम वजन होना। यह भोजन की तीव्र कमी अथवा हाल ही में हुए गंभीर संक्रामक रोग (यथा डायरिया) के कारण होने वाले तीव्र और तात्कालिक कुपोषण को दर्शाता है।

अटकिंसन असमानता माप (Atkinson Measure of Inequality): एक सामाजिक कल्याण-आधारित असमानता संकेतक, जिसका उपयोग IHDI की गणना में किया जाता है। यह मापता है कि यदि समाज में आय, स्वास्थ्य अथवा शिक्षा का वितरण पूर्णतः समान हो जाए, तो वर्तमान कल्याण स्तर को बनाए रखने के लिए कुल संसाधनों के कितने कम स्तर की आवश्यकता होगी।

wincompete

अध्याय 8: सतत विकास एवं जलवायु परिवर्तन का अर्थशास्त्र

खंड A: सतत विकास की अवधारणा एवं वैश्विक प्रयास

उपखंड a: ब्रंटलैंड आयोग रिपोर्ट, हमारा साझा भविष्य, रियो शिखर सम्मेलन, एजेंडा 21

सतत विकास की ऐतिहासिक उत्पत्ति एवं दार्शनिक आधार

औद्योगिक क्रांति के पश्चात वैश्विक आर्थिक विकास का प्रतिमान मुख्यतः जीवाश्म ईंधन के अनियंत्रित दोहन, प्राकृतिक संसाधनों के अविवेकपूर्ण उपभोग तथा पर्यावरण की वहन क्षमता (Carrying Capacity) की उपेक्षा पर आधारित था। 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पर्यावरणविदों तथा अर्थशास्त्रियों ने यह अनुभव किया कि यदि आर्थिक संवृद्धि की यही गति बनी रही, तो पारिस्थितिकीय संतुलन पूर्णतः विनष्ट हो जाएगा। इस दिशा में प्रथम बौद्धिक चेतावनी वर्ष 1968 में गठित 'क्लब ऑफ रोम' द्वारा दी गई, जिसने वर्ष 1972 में डेनिस मीडोज के नेतृत्व में **द लिमिट्स टू ग्रोथ** (The Limits to Growth) नामक प्रतिवेदन प्रकाशित किया। इस प्रतिवेदन ने कंप्यूटर सिमुलेशन मॉडल के माध्यम से स्पष्ट किया कि यदि जनसंख्या, औद्योगिकीकरण, प्रदूषण, खाद्य उत्पादन तथा संसाधन क्षरण की प्रवृत्तियां अपरिवर्तित रहीं, तो आगामी 100 वर्षों के भीतर पृथ्वी भौतिक संवृद्धि की सीमाओं को पार कर जाएगी।

इसके पश्चात संयुक्त राष्ट्र संघ ने 5 से 16 जून 1972 तक स्वीडन की राजधानी स्टॉकहोम में 'मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन' (UNCHE) आयोजित किया, जिसे स्टॉकहोम सम्मेलन 1972 के नाम से जाना जाता है। इस सम्मेलन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्थागत परिणाम **संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम** (UNEP) की स्थापना था, जिसका मुख्यालय नैरोबी (केन्या) में स्थापित किया गया।

ब्रंटलैंड आयोग (WCED) एवं 'हमारा साझा भविष्य' प्रतिवेदन (1987)

स्टॉकहोम सम्मेलन के एक दशक पश्चात भी वैश्विक स्तर पर निर्धनता तथा पर्यावरणीय क्षरण के मध्य द्वंद्व बना रहा। इस गतिरोध के समाधान हेतु संयुक्त राष्ट्र महासभा ने वर्ष 1983 में एक प्रस्ताव पारित कर **पर्यावरण एवं विकास पर विश्व आयोग** (World Commission on Environment and Development - WCED) का गठन किया। नॉर्वे की तत्कालीन पूर्व प्रधानमंत्री ग्रो हार्लेम ब्रंटलैंड को इस आयोग का अध्यक्ष तथा सूडान के मंसूर खालिद को उपाध्यक्ष नियुक्त किया गया। अतः इसे सामान्यतः **ब्रंटलैंड आयोग** कहा जाता है।

आयोग ने विश्व भर में व्यापक परामर्श एवं वैज्ञानिक अनुसंधानों के पश्चात वर्ष 1987 में अपना युगांतरकारी प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसका आधिकारिक शीर्षक **हमारा साझा भविष्य** (Our Common Future) था। इस प्रतिवेदन ने पहली बार सतत विकास (Sustainable Development) की वह परिभाषा प्रस्तुत की, जो आज भी वैश्विक विधि तथा नीति-निर्माण का आधार है:

"सतत विकास वह विकास है जो भावी पीढ़ियों की अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की क्षमता से समझौता किए बिना वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करता है।"

इस शास्त्रीय परिभाषा में दो अनिवार्य अवधारणात्मक तत्व अंतर्निहित हैं:

क) आवश्यकताओं की अवधारणा: विशेष रूप से विश्व के निर्धनतम वर्गों की अनिवार्य आवश्यकताएं, जिन्हें सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की जानी चाहिए।

ख) सीमाओं का विचार: पर्यावरण की वर्तमान तथा भावी आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता पर प्रौद्योगिकी की स्थिति तथा सामाजिक संगठन द्वारा अधिरोपित सीमाएं।

ब्रंटलैंड आयोग ने यह स्पष्ट किया कि सतत विकास केवल पर्यावरण का संरक्षण नहीं है, बल्कि इसके अंतर्गत अंतर-पीढ़ीगत समता (Inter-generational Equity) और अंतरा-पीढ़ीगत समता (Intra-generational Equity) दोनों अनिवार्य रूप से समाहित हैं। आयोग ने आर्थिक संवृद्धि, सामाजिक समावेशन तथा पर्यावरणीय संरक्षण को एक-दूसरे का पूरक माना, न कि विरोधी।

आयाम	अंतरा-पीढ़ीगत समता (Intra-generational)	अंतर-पीढ़ीगत समता (Inter-generational)
मूल केंद्र बिंदु	वर्तमान पीढ़ी के भीतर संसाधनों का न्यायसंगत वितरण।	वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के मध्य संसाधनों का संतुलन।
लक्षित उद्देश्य	अमीर और गरीब देशों तथा समाज के विभिन्न वर्गों के मध्य विषमता निवारण।	प्राकृतिक पूंजी (Natural Capital) के स्टॉक को भावी पीढ़ी हेतु अक्षुण्ण बनाए रखना।
नीतिगत उपाय	निर्धनता उन्मूलन, प्रौद्योगिकी हस्तांतरण, सामाजिक सुरक्षा।	गैर-नवीकरणीय संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग, जैव विविधता संरक्षण।

रियो पृथ्वी शिखर सम्मेलन 1992 (UNCED)

ब्रंटलैंड रिपोर्ट की संस्तुतियों को क्रियान्वित करने हेतु संयुक्त राष्ट्र ने स्टॉकहोम सम्मेलन के 20 वर्ष पूर्ण होने पर 3 से 14 जून 1992 तक ब्राजील के रियो डी जेनेरियो में **पर्यावरण एवं विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन** (UNCED) आयोजित किया। इसे व्यापक स्तर पर **पृथ्वी शिखर सम्मेलन** (Earth Summit 1992) अथवा रियो सम्मेलन कहा जाता है। इसमें 178 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

रियो सम्मेलन के परिणामस्वरूप पांच ऐतिहासिक विधिक एवं नीतिगत दस्तावेज अस्तित्व में आए:

क) रियो घोषणा-पत्र (Rio Declaration on Environment and Development): इसमें 27 मूलभूत सिद्धांत घोषित किए गए, जिनमें 'प्रदूषक भुगतान करे' का सिद्धांत (Polluter Pays Principle), 'सावधानीकारी दृष्टिकोण' (Precautionary Principle), तथा 'समान परंतु विभेदित उत्तरदायित्व' (CBDR) प्रमुख हैं।

ख) वन सिद्धांत (Forest Principles): विश्व के सभी प्रकार के वनों के संरक्षण, प्रबंधन एवं सतत विकास हेतु एक गैर-बाध्यकारी संविदात्मक सहमति।

ग) एजेंडा 21 (Agenda 21): 21वीं शताब्दी हेतु सतत विकास की वैश्विक कार्ययोजना।

घ) तीन रियो कन्वेंशन (संधियां):

अ) जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन (UNFCCC)।

ब) जैविक विविधता पर कन्वेंशन (CBD)।

स) मरुस्थलीकरण की रोकथाम हेतु संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन (UNCCD - यह 1994 में अंगीकृत हुआ)।

एजेंडा 21: संरचना एवं विधिक प्रकृति
एजेंडा 21 एक विस्तृत, 300 से अधिक पृष्ठों का 40 अध्यायों वाला व्यापक कार्ययोजना दस्तावेज है, जिसका उद्देश्य 21वीं सदी में सतत विकास प्राप्त करना था। यह कानूनी रूप से गैर-बाध्यकारी (Non-binding) है, परंतु इसका नैतिक तथा नीतिगत प्रभाव अत्यंत गहरा रहा है।

एजेंडा 21 को चार प्रमुख अनुभागों में वर्गीकृत किया गया है:

क) अनुभाग 1 - सामाजिक एवं आर्थिक आयाम: निर्धनता उन्मूलन, उपभोग के स्वरूप में परिवर्तन, जनसंख्या गतिकी का प्रबंधन, स्वास्थ्य संवर्धन तथा मानव बस्तियों का सतत नियोजन।

ख) अनुभाग 2 - विकास हेतु संसाधनों का संरक्षण एवं प्रबंधन: वायुमंडल का संरक्षण, वनों की कटाई पर नियंत्रण, मरुस्थलीकरण एवं सूखे से निपटना, जैव विविधता का संरक्षण, जल संसाधनों तथा विषाक्त अपशिष्टों का वैज्ञानिक प्रबंधन।

ग) अनुभाग 3 - प्रमुख समूहों की भूमिका को सुदृढ़ बनाना: महिलाओं, बच्चों, युवाओं, स्वदेशी लोगों, गैर-सरकारी संगठनों, स्थानीय निकायों, श्रमिकों, व्यापार एवं उद्योग, वैज्ञानिक समुदाय तथा किसानों की भागीदारी को संस्थागत रूप देना।

घ) अनुभाग 4 - क्रियान्वयन के साधन: वित्तीय तंत्र, प्रौद्योगिकी हस्तांतरण, क्षमता निर्माण, अंतरराष्ट्रीय संस्थागत व्यवस्थाएं तथा निर्णय निर्माण हेतु सूचना तंत्र।

स्थानीय एजेंडा 21 (Local Agenda 21):
एजेंडा 21 के अध्याय 28 के अंतर्गत 'स्थानीय एजेंडा 21' की परिकल्पना की गई। इसके अनुसार, चूंकि अधिकांश पर्यावरणीय समस्याएं स्थानीय स्तर पर उत्पन्न होती हैं, अतः नगरपालिकाओं, ग्राम पंचायतों तथा स्थानीय प्रशासनिक इकाइयों को अपने नागरिकों के साथ मिलकर सतत विकास की स्थानीय कार्ययोजना तैयार करने का दायित्व सौंपा गया।

उपखंड b: मिलेनियम डेवलपमेंट गोल्स (MDGs) से सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल्स (SDGs) तक की यात्रा, 17 लक्ष्य एवं 169 उप-लक्ष्य

मिलेनियम डेवलपमेंट गोल्स (MDGs: 2000-2015)
सितंबर 2000 में न्यूयॉर्क स्थित संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय में आयोजित 'मिलेनियम शिखर सम्मेलन' में 189 देशों के नेताओं ने ऐतिहासिक 'मिलेनियम घोषणा-पत्र' को अंगीकार किया। इसके आधार पर वर्ष 2015 तक प्राप्त किए जाने वाले **8 मिलेनियम डेवलपमेंट गोल्स** (सहस्राब्दि विकास लक्ष्य - MDGs) और 21 संबद्ध लक्ष्यों का निर्धारण किया गया।

wincompete

एमडीजी के 8 लक्ष्य निम्नलिखित थे:

क) लक्ष्य 1: अत्यधिक निर्धनता तथा भुखमरी का उन्मूलन।

ख) लक्ष्य 2: सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा की प्राप्ति।

ग) लक्ष्य 3: लैंगिक समानता को बढ़ावा देना तथा महिलाओं का सशक्तीकरण।

घ) लक्ष्य 4: बाल मृत्यु दर में कमी लाना।

ङ) लक्ष्य 5: मातृ स्वास्थ्य में सुधार करना।

च) लक्ष्य 6: एचआईवी/एड्स, मलेरिया तथा अन्य संक्रामक रोगों से मुकाबला।

छ) लक्ष्य 7: पर्यावरणीय संधारणीयता सुनिश्चित करना।

ज) लक्ष्य 8: विकास हेतु वैश्विक भागीदारी का विकास करना।

एमडीजी की अंतर्निहित सीमाएं एवं कमियां:
यद्यपि एमडीजी ने अत्यधिक निर्धनता को आधा करने तथा प्राथमिक शिक्षा के प्रसार में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की, परंतु इसमें कई संरचनात्मक कमियां विद्यमान थीं:

अ) केवल विकासशील देशों पर केंद्रित: यह ढांचा मुख्य रूप से अमीर दाता देशों द्वारा गरीब प्राप्तकर्ता देशों के लिए तैयार किया गया प्रतीत होता था, जिसमें विकसित देशों की घरेलू जीवनशैली व उपभोग स्वरूप पर कोई दायित्व नहीं था।

ब) असमान विकास: वैश्विक प्रगति का एक बड़ा हिस्सा अकेले चीन और भारत की आर्थिक संवृद्धि से प्रेरित था, जबकि उप-सहारा अफ्रीका के अनेक देश अत्यंत पिछड़े रहे।

स) जलवायु परिवर्तन और असमानता की उपेक्षा: इसमें आर्थिक विषमता, सुशासन, शांति, न्याय तथा जलवायु परिवर्तन के तात्कालिक संकट को समुचित स्थान नहीं दिया गया था।

रियो+20 से 2030 एजेंडा तक का संक्रमण
वर्ष 2012 में रियो डी जेनेरियो में आयोजित 'सतत विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन' (**रियो+20**) ने एमडीजी की अवधि समाप्त होने के पश्चात एक नवीन वैश्विक ढांचे की रूपरेखा तैयार करने की प्रक्रिया प्रारंभ की। रियो+20 के परिणामी दस्तावेज **द फ्यूचर वी वांट** (The Future We Want) में सदस्य देशों ने सहस्राब्दि विकास लक्ष्यों के स्थान पर सार्वभौमिक, व्यापक तथा एकीकृत **सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल्स** (SDGs) तैयार करने का संकल्प लिया।

इसके उपरांत संयुक्त राष्ट्र महासभा के 70वें सत्र में 25 सितंबर 2015 को 193 सदस्य देशों ने सर्वसम्मति से संकल्प पारित कर **ट्रांसफॉर्मिंग अवर वर्ल्ड: द 2030 एजेंडा फॉर सस्टेनेबल डेवलपमेंट** (Transforming our World: the 2030 Agenda for Sustainable Development) को अंगीकृत किया। यह 1 जनवरी 2016 से औपचारिक रूप से प्रभावी हुआ तथा इसकी समाप्ति अवधि 31 दिसंबर 2030 निर्धारित है।

तुलनात्मक आयाम	**मिलेनियम डेवलपमेंट गोल्स (MDGs)**	**सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल्स (SDGs)**
प्रभावी समयावधि	वर्ष 2000 से 2015 तक (15 वर्ष)।	वर्ष 2016 से 2030 तक (15 वर्ष)।

wincompete

लक्ष्यों का दायरा	8 लक्ष्य, 21 विशिष्ट लक्ष्य (Targets)।	17 लक्ष्य, 169 विशिष्ट लक्ष्य (Targets), 240 से अधिक संकेतक।
भौगोलिक प्रयोज्यता	केवल विकासशील तथा अल्पविकसित देश।	सार्वभौमिक (Universal) - विकसित एवं विकासशील सभी देशों पर समान रूप से लागू।
निर्माण की प्रक्रिया	शीर्ष-से-तल (Top-down) - विशेषज्ञों द्वारा निर्धारित।	सहभागितामूलक (Bottom-up) - नागरिक समाज, सरकारों और आम जनता के व्यापक विमर्श पर आधारित।
संरचनात्मक दृष्टिकोण	सामाजिक विकास के खंडित क्षेत्रों पर ध्यान।	5 'P' (People, Planet, Prosperity, Peace, Partnership) पर आधारित समग्र दृष्टिकोण।

17 सतत विकास लक्ष्य (SDGs) का विस्तृत विन्यास

एसडीजी ढांचा आर्थिक संवृद्धि, सामाजिक समावेशन तथा पर्यावरणीय स्थिरता के त्रिपक्षीय संतुलन पर निर्मित है। ये 17 लक्ष्य निम्नलिखित हैं:

आधारस्तंभ (Pillars)	संबद्ध लक्ष्य (Associated SDGs)	विवरण (Description)
सामाजिक आधारस्तंभ (People)	SDG 1, 2, 3, 4, 5, 6	शून्य निर्धनता, शून्य भुखमरी, स्वास्थ्य, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, लैंगिक समानता, स्वच्छ जल एवं स्वच्छता
आर्थिक समृद्धि (Prosperity)	SDG 7, 8, 9, 10, 11	स्वच्छ ऊर्जा, उत्कृष्ट कार्य एवं संवृद्धि, उद्योग व नवाचार, असमानताओं में कमी, संवहनीय शहर
पर्यावरणीय संतुलन (Planet)	SDG 12, 13, 14, 15	जिम्मेदारीपूर्ण उपभोग, जलवायु कार्रवाई, जल के नीचे जीवन, भूमि पर जीवन
संस्थागत तंत्र (Peace & Partnership)	SDG 16, 17	शांति, न्याय व सुदृढ़ संस्थाएं, लक्ष्यों हेतु वैश्विक भागीदारी

क) SDG 1 (शून्य निर्धनता): सभी रूपों में तथा सभी स्थानों से अत्यधिक गरीबी की समाप्ति।

ख) SDG 2 (शून्य भुखमरी): भुखमरी की समाप्ति, खाद्य सुरक्षा व बेहतर पोषण की प्राप्ति तथा टिकाऊ कृषि को बढ़ावा।

ग) SDG 3 (उत्कृष्ट स्वास्थ्य और कल्याण): सभी आयु के लोगों में स्वस्थ जीवन सुनिश्चित करना तथा कल्याण को बढ़ावा देना।

घ) SDG 4 (गुणवत्तापूर्ण शिक्षा): समावेशी व न्यायसंगत गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करना तथा सभी के लिए आजीवन सीखने के अवसरों को बढ़ावा।

ङ) SDG 5 (लैंगिक समानता): लैंगिक समानता प्राप्त करना तथा सभी महिलाओं व बालिकाओं को अधिकार संपन्न बनाना।

च) SDG 6 (स्वच्छ जल और स्वच्छता): सभी के लिए स्वच्छ जल व स्वच्छता की उपलब्धता और सतत प्रबंधन सुनिश्चित करना।

छ) SDG 7 (सस्ती और स्वच्छ ऊर्जा): सभी के लिए सस्ती, विश्वसनीय, सतत और आधुनिक ऊर्जा तक पहुंच सुनिश्चित करना।

ज) SDG 8 (उत्कृष्ट कार्य और आर्थिक संवृद्धि): निरंतर, समावेशी व सतत आर्थिक संवृद्धि, पूर्ण व उत्पादक रोजगार तथा सभी के लिए मर्यादित कार्य को बढ़ावा।

झ) SDG 9 (उद्योग, नवाचार और अवसंरचना): लचीली अवसंरचना का निर्माण, समावेशी व सतत औद्योगिकीकरण को बढ़ावा तथा नवाचार को प्रोत्साहित करना।

ञ) SDG 10 (असमानताओं में कमी): देशों के भीतर और देशों के मध्य आय व अवसरों की असमानता को कम करना।

ट) SDG 11 (संवहनीय शहर और समुदाय): शहरों और मानव बस्तियों को समावेशी, सुरक्षित, लचीला और टिकाऊ बनाना।

ठ) SDG 12 (जिम्मेदारीपूर्ण उपभोग और उत्पादन): संधारणीय उपभोग तथा उत्पादन के स्वरूप को सुनिश्चित करना।

ड) SDG 13 (जलवायु कार्रवाई): जलवायु परिवर्तन और उसके प्रभावों से निपटने के लिए तत्काल कार्रवाई करना।

ढ) SDG 14 (जल के नीचे जीवन): सतत विकास हेतु महासागरों, समुद्रों और समुद्री संसाधनों का संरक्षण तथा संधारणीय उपयोग।

ण) SDG 15 (भूमि पर जीवन): स्थलीय पारिस्थितिक तंत्रों का संरक्षण, पुनर्स्थापन व सतत उपयोग, वनों का संधारणीय प्रबंधन, मरुस्थलीकरण की रोकथाम तथा जैव विविधता की हानि को रोकना।

त) SDG 16 (शांति, न्याय और सुदृढ़ संस्थाएं): सतत विकास हेतु शांतिपूर्ण व समावेशी समाजों को बढ़ावा देना, सभी के लिए न्याय सुलभ कराना तथा सभी स्तरों पर प्रभावी, जवाबदेह व समावेशी संस्थाओं का निर्माण।

थ) SDG 17 (लक्ष्यों हेतु भागीदारी): सतत विकास हेतु कार्यान्वयन के साधनों को सुदृढ़ बनाना तथा वैश्विक भागीदारी को पुनर्जीवित करना।

wincompete

खंड B: राष्ट्रीय कार्यप्रणाली एवं पर्यावरणीय अर्थशास्त्र

उपखंड a: नीति आयोग का एसडीजी इंडिया इंडेक्स, राज्यों की रैंकिंग, प्रदर्शन संकेतक

नीति आयोग का संस्थागत ढांचा एवं अधिदेश

भारत में सतत विकास लक्ष्यों के स्थानीयकरण (Localization of SDGs), निगरानी तथा अंतर-मंत्रालयी समन्वय हेतु शीर्ष संस्थागत दायित्व **नीति आयोग** (NITI Aayog) को सौंपा गया है। नीति आयोग सांख्यिकी

और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय (MOSPI), केंद्रीय मंत्रालयों तथा राज्य सरकारों के समन्वय से राष्ट्रीय स्तर पर एसडीजी कार्यान्वयन की समीक्षा करता है।

सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय ने देश के लिए एक व्यापक **राष्ट्रीय संकेतक ढांचा** (National Indicator Framework - NIF) तैयार किया है, जिसके आधार पर प्रगति का मात्रात्मक मापन किया जाता है। नीति आयोग ने राज्यों तथा केंद्र शासित प्रदेशों के मध्य सहकारी तथा प्रतिस्पर्धी संघवाद (Cooperative and Competitive Federalism) को बढ़ावा देने के उद्देश्य से वर्ष 2018 में **एसडीजी इंडिया इंडेक्स** (SDG India Index) का प्रथम संस्करण प्रारंभ किया।

एसडीजी इंडिया इंडेक्स की कार्यप्रणाली एवं संकेतक संरचना

एसडीजी इंडिया इंडेक्स प्रत्येक राज्य और केंद्र शासित प्रदेश के लिए 0 से 100 के पैमाने पर समग्र स्कोर की गणना करता है। यदि किसी राज्य का स्कोर 100 है, तो इसका अर्थ है कि उसने वर्ष 2030 हेतु निर्धारित उस लक्ष्य को पूर्णतः प्राप्त कर लिया है।

नीति आयोग ने राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों को उनके समग्र स्कोर के आधार पर चार प्रदर्शन श्रेणियों में वर्गीकृत किया है:

प्रदर्शन श्रेणी	**स्कोर सीमा**	**स्थिति का अर्थ**
आकांक्षी (Aspirant)	0 से 49	प्रारंभिक अवस्था; अत्यधिक त्वरित हस्तक्षेप की आवश्यकता।
अच्छा प्रदर्शन करने वाले (Performer)	50 से 64	मध्यम प्रगति; लक्ष्यों की दिशा में ठोस कदम।
अग्रणी (Front Runner)	65 से 99	उच्च स्तर की प्रगति; 2030 के लक्ष्यों के अत्यंत समीप।
लक्ष्य प्राप्तकर्ता (Achiever)	100	लक्ष्य को पूर्णतः प्राप्त कर लिया गया।

राज्यों एवं केंद्र शासित प्रदेशों की अद्यतन रैंकिंग एवं प्रवृत्तियां

नीति आयोग द्वारा जारी अद्यतन एसडीजी इंडिया इंडेक्स संस्करणों (जिसमें 113 संकेतकों के आधार पर 16 लक्ष्यों का मूल्यांकन किया गया, क्योंकि लक्ष्य 17 को अंतरराष्ट्रीय स्तर का मानकर राज्यों के मूल्यांकन से पृथक रखा जाता है) के प्रमुख निष्कर्ष निम्नलिखित हैं:

क) राष्ट्रीय समग्र स्कोर: भारत का समग्र राष्ट्रीय स्कोर वर्ष 2018 के 57 से सुधरकर वर्तमान में **66 से 67** के स्तर पर पहुंच गया है, जिससे भारत आधिकारिक रूप से 'परफॉर्मर' श्रेणी से निकलकर **'फ्रंट रनर' (Front Runner)** श्रेणी में प्रविष्ट हो गया है।

ख) शीर्ष प्रदर्शन करने वाले राज्य (Top Performers):

केरल: 75 से अधिक के निरंतर उच्चतम स्कोर के साथ देश में शीर्ष स्थान पर बना हुआ है। स्वास्थ्य (SDG 3), गुणवत्तापूर्ण शिक्षा (SDG 4) तथा शून्य निर्धनता (SDG 1) में केरल का प्रदर्शन उत्कृष्ट है।

उत्तराखंड: केरल के साथ संयुक्त रूप से अथवा निकटतम प्रतिस्पर्धी के रूप में शीर्ष राज्यों में सम्मिलित।

तमिलनाडु तथा हिमाचल प्रदेश: क्रमशः तीसरे और चौथे पायदान पर सुदृढ़ स्थिति में हैं।

ग) निम्नतम प्रदर्शन करने वाले राज्य:

बिहार: लगभग 52 से 54 के स्कोर के साथ तालिका में सबसे निचले पायदान पर बना हुआ है, यद्यपि इसके स्कोर में विगत वर्षों में तीव्र सुधार देखा गया है।

झारखंड तथा असम: निचले क्रम के अन्य दो राज्य हैं, जो निर्धनता, पोषण तथा अवसंरचना के संकेतकों पर संघर्ष कर रहे हैं।

घ) केंद्र शासित प्रदेशों का प्रदर्शन:

चंडीगढ़: केंद्र शासित प्रदेशों में 70 से अधिक स्कोर के साथ शीर्ष स्थान पर काबिज है।

पुडुचेरी, लक्षद्वीप तथा दिल्ली भी 'फ्रंट रनर' श्रेणी में अग्रणी हैं।

ङ) लक्ष्यों के आधार पर राष्ट्रीय प्रदर्शन:

स्वच्छ जल और स्वच्छता (SDG 6) तथा सस्ती और स्वच्छ ऊर्जा (SDG 7) में भारत ने ऐतिहासिक प्रगति दर्ज की है, जहां राष्ट्रीय स्कोर 75 से 90 के मध्य पहुंच गया है। इसका मुख्य कारण 'स्वच्छ भारत मिशन', 'जल जीवन मिशन' तथा 'प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना' और 'सौभाग्य योजना' का सफल क्रियान्वयन है।

लैंगिक समानता (SDG 5) राष्ट्रीय स्तर पर सबसे कम स्कोर वाला क्षेत्र बना हुआ है, जहां राष्ट्रीय औसत 50 के आसपास है, जो श्रमबल में महिलाओं की सहभागिता तथा निर्णय निर्माण में भागीदारी की चुनौतियों को रेखांकित करता है।

उपखंड b: कार्बन क्रेडिट, कार्बन टैक्स, ग्रीन बॉन्ड्स, पर्यावरण लेखांकन, प्राकृतिक पूंजी

पर्यावरणीय अर्थशास्त्र के बाजार-आधारित उपकरण

पारंपरिक अर्थशास्त्र पर्यावरणीय प्रदूषण को एक **नकारात्मक बाह्यता** (Negative Externality) मानता है। आर्थर सेसिल पीगू ने यह सिद्धांत प्रतिपादित किया था कि जब किसी उत्पादक की निजी लागत (Private Cost) उसकी सामाजिक लागत (Social Cost) से कम होती है, तो बाजार विफलता उत्पन्न होती है। इस बाजार विफलता को दूर करने हेतु आधुनिक पर्यावरणीय अर्थशास्त्र में प्रत्यक्ष विनियामक नियंत्रण (Command

and Control) के स्थान पर बाजार-आधारित आर्थिक उपकरणों (Market-Based Instruments) का प्रयोग व्यापक रूप से किया जा रहा है।

कार्बन क्रेडिट एवं कार्बन उत्सर्जन व्यापार प्रणाली (ETS)
कार्बन क्रेडिट एक व्यापार योग्य विधिक परमिट या प्रमाण-पत्र है, जो इसके धारक को वायुमंडल में **एक मीट्रिक टन कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) या उसके समतुल्य ग्रीनहाउस गैस (CO_2e) उत्सर्जित करने का विधिक अधिकार** प्रदान करता है।

कार्बन क्रेडिट तंत्र की उत्पत्ति वर्ष 1997 के **क्योटो प्रोटोकॉल** के अंतर्गत हुई थी, जिसने विकसित देशों (अनुलग्नक I देश) हेतु कानूनी रूप से बाध्यकारी उत्सर्जन कटौती लक्ष्य निर्धारित किए थे। क्योटो प्रोटोकॉल ने तीन लचीले बाजार तंत्र स्थापित किए:

क) स्वच्छ विकास तंत्र (Clean Development Mechanism - CDM): विकसित देश विकासशील देशों में उत्सर्जन घटाने वाली परियोजनाओं में निवेश कर 'प्रमाणित उत्सर्जन कटौती' (Certified Emission Reductions - CERs) क्रेडिट अर्जित कर सकते थे।

ख) संयुक्त कार्यान्वयन (Joint Implementation - JI): दो विकसित देशों के मध्य क्रेडिट का अर्जन।

ग) अंतरराष्ट्रीय उत्सर्जन व्यापार (International Emissions Trading - IET)।

कैप-एंड-ट्रेड प्रणाली (Cap-and-Trade System):
यह अनिवार्य कार्बन बाजार का सबसे प्रचलित रूप है (जैसे यूरोपीय संघ की उत्सर्जन व्यापार प्रणाली - EU ETS)।

सरकार कुल अनुमेय प्रदूषण पर एक समग्र सीमा (Cap) निर्धारित करती है, जो समय के साथ घटती जाती है।

कंपनियों को इस सीमा के भीतर उत्सर्जन भत्ते (Allowances) आबंटित या नीलाम किए जाते हैं।

यदि कंपनी 'A' अपने लक्ष्य से कम उत्सर्जन करती है, तो वह अपने बचे हुए क्रेडिट उस कंपनी 'B' को बेच सकती है, जिसका उत्सर्जन विहित सीमा से अधिक हो गया है। इससे प्रदूषण कम करने का वित्तीय प्रोत्साहन उत्पन्न होता है।

भारत का कार्बन क्रेडिट ट्रेडिंग ढांचा:
संसद द्वारा पारित **ऊर्जा संरक्षण (संशोधन) अधिनियम, 2022** के माध्यम से भारत ने अपना स्वदेशी **भारतीय कार्बन बाजार** (Indian Carbon Market - ICM) स्थापित करने का वैधानिक मार्ग प्रशस्त किया है। इसके अंतर्गत ब्यूरो ऑफ एनर्जी एफिशिएंसी (BEE) तथा पर्यावरण मंत्रालय के समन्वय से चिन्हित उद्योगों (Obligated Entities) हेतु कार्बन क्रेडिट ट्रेडिंग स्कीम (CCTS) अधिसूचित की गई है, जो पूर्ववर्ती 'परफॉर्म, अचीव एंड ट्रेड' (PAT) स्कीम का स्थान ले रही है।

कार्बन टैक्स (कार्बन कर)
कार्बन टैक्स एक प्रत्यक्ष मूल्य-आधारित विनियामक राजकोषीय उपकरण है, जिसमें जीवाश्म ईंधनों (कोयला, तेल, प्राकृतिक गैस) में उपस्थित कार्बन की मात्रा के अनुपात में प्रति मीट्रिक टन उत्सर्जन पर एक निश्चित कर दर अधिरोपित की जाती है।

अ) पीगूवियन कर का रूप: यह नकारात्मक बाह्यता को सीधे उत्पादन लागत में समाहित (Internalize) करता है।

ब) मूल्य निश्चितता बनाम मात्रा निश्चितता: कार्बन टैक्स में उत्सर्जन की **कीमत पूर्व-निर्धारित और निश्चित** होती है, परंतु कुल उत्सर्जन में कितनी कमी आएगी, यह बाजार की लोच पर निर्भर करता है। इसके विपरीत, कैप-एंड-ट्रेड प्रणाली में उत्सर्जन की **मात्रा निश्चित** होती है, किंतु क्रेडिट की कीमतें बाजार में अस्थिर रहती हैं।

कार्बन सीमा समायोजन तंत्र (CBAM - Carbon Border Adjustment Mechanism):
यूरोपीय संघ (EU) द्वारा लागू किया गया सीबीएएम एक सीमा-पार कार्बन कर है। इसका उद्देश्य 'कार्बन रिसाव' (Carbon Leakage) को रोकना है—अर्थात यूरोपीय कंपनियां अपने उत्पादन को ऐसे देशों में स्थानांतरित न करें जहां पर्यावरणीय मानक शिथिल हैं। इसके तहत जनवरी 2026 से यूरोपीय संघ में आयात होने वाले सीमेंट, लोहा और इस्पात, एल्युमिनियम, उर्वरक, बिजली और हाइड्रोजन पर उस देश में चुकाए गए कार्बन मूल्य के आधार पर सीमा शुल्क अधिरोपित किया जा रहा है। इसका भारत के इस्पात तथा एल्युमिनियम निर्यात पर सीधा प्रभाव पड़ रहा है।

तुलनात्मक आयाम	**कार्बन टैक्स (Carbon Tax)**	**कैप-एंड-ट्रेड / कार्बन क्रेडिट (ETS)**
कार्यप्रणाली	सरकार प्रति टन उत्सर्जन पर एक निश्चित कर दर तय करती है।	सरकार कुल उत्सर्जन की अधिकतम सीमा तय करती है; परमिट का व्यापार होता है।
निश्चितता का प्रकार	मूल्य निश्चितता (मूल्य ज्ञात, उत्सर्जन मात्रा अनिश्चित)।	मात्रा निश्चितता (उत्सर्जन सीमा ज्ञात, परमिट मूल्य परिवर्तनशील)।
राजस्व सृजन	सरकार को प्रत्यक्ष कर राजस्व प्राप्त होता है।	यदि भत्ते नीलाम किए जाएं तो सरकार को राजस्व मिलता है, अन्यथा कंपनियों के मध्य व्यापार होता है।
प्रशासनिक जटिलता	लागू करना अपेक्षाकृत सरल; मौजूदा कर तंत्र से संभव।	जटिल; संपूर्ण उत्सर्जन की वास्तविक समय निगरानी, सत्यापन तथा रजिस्ट्री अनिवार्य।

ग्रीन बॉन्ड्स (हरित बांड)
ग्रीन बॉन्ड एक निश्चित आय वाला वित्तीय ऋण साधन (Debt Instrument) है, जिसके माध्यम से जुटाई गई संपूर्ण पूंजी का उपयोग विशेष रूप से जलवायु-अनुकूल, नवीकरणीय ऊर्जा, ऊर्जा दक्षता, प्रदूषण नियंत्रण, संधारणीय जल प्रबंधन अथवा हरित परिवहन परियोजनाओं के वित्तपोषण हेतु किया जाता है।

क) उद्भव: वर्ष 2007 में यूरोपीय निवेश बैंक (EIB) ने 'जलवायु जागरूकता बांड' के रूप में विश्व का पहला ग्रीन बॉन्ड जारी किया था।

ख) ग्रीनवॉशिंग का जोखिम (Greenwashing): किसी कंपनी द्वारा स्वयं को पर्यावरण-अनुकूल प्रदर्शित करना जबकि वास्तव में जुटाई गई राशि का उपयोग गैर-हरित कार्यों में हो रहा हो। इसे रोकने हेतु अंतरराष्ट्रीय पूंजी बाजार संघ (ICMA) के 'ग्रीन बॉन्ड सिद्धांत' (Green Bond Principles) लागू होते हैं।

ग) सॉवरेन ग्रीन बॉन्ड्स (Sovereign Green Bonds - SGrBs) - भारत:

भारत सरकार ने केंद्रीय बजट 2022-23 की घोषणा के अनुसार वित्तीय वर्ष 2022-23 में प्रथम बार सॉवरेन ग्रीन बॉन्ड जारी किए।

भारतीय रिजर्व बैंक ने जनवरी-फरवरी 2023 में 16,000 करोड़ रुपये के प्रथम चरण के सॉवरेन ग्रीन बांड नीलाम किए, जिसमें 5 वर्ष और 10 वर्ष की परिपक्वता अवधि वाले बांड सम्मिलित थे।

इन बांडों से जुटाई गई राशि को 'भारत की संचित निधि' में जमा किया जाता है और वहां से व्यय विभाग द्वारा नवीकरणीय ऊर्जा (सौर, पवन), नदी संरक्षण, तथा सार्वजनिक परिवहन (मेट्रो अवसंरचना) जैसी चिन्हित पात्र परियोजनाओं हेतु जारी किया जाता है।

पर्यावरण लेखांकन (Environmental Accounting)

पारंपरिक राष्ट्रीय आय लेखांकन (यथा GDP) प्राकृतिक संसाधनों के ह्रास तथा पर्यावरणीय क्षरण को आर्थिक लागत के रूप में दर्ज करने में विफल रहता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी देश के वनों को काटकर लकड़ी बेच दी जाए, तो जीडीपी में वृद्धि दर्ज होगी, परंतु प्राकृतिक परिसंपत्ति का जो स्थायी नुकसान हुआ, उसे घटाया नहीं जाता।

इस विसंगति के समाधान हेतु **पर्यावरणीय-आर्थिक लेखांकन प्रणाली** (System of Environmental-Economic Accounting - SEEA) विकसित की गई है, जिसे संयुक्त राष्ट्र सांख्यिकी आयोग ने एक अंतरराष्ट्रीय मानक के रूप में मान्यता दी है।

इसके प्रमुख घटक निम्नलिखित हैं:

अ) भौतिक प्रवाह खाते (Physical Flow Accounts): अर्थव्यवस्था और पर्यावरण के मध्य ऊर्जा, जल, सामग्री और अपशिष्ट के प्रवाह का भौतिक इकाइयों (टन, क्यूबिक मीटर) में मापन।

ब) पर्यावरणीय गतिविधि खाते: पर्यावरण संरक्षण और संसाधन प्रबंधन पर सरकार तथा उद्योगों द्वारा किए गए वास्तविक मौद्रिक व्यय (जैसे प्रदूषण नियंत्रण उपकरण) का लेखांकन।

स) हरित जीडीपी (Green GDP): पारंपरिक सकल घरेलू उत्पाद में से प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण (Depletion) तथा पर्यावरणीय अवक्रमण (Degradation) के मौद्रिक मूल्य को घटाने के पश्चात प्राप्त वास्तविक आर्थिक उत्पादन:

$$GreenGDP = GDP - \text{प्राकृतिकपूंजीकाह्रास} - \text{पर्यावरणीयक्षतिलागत}$$

प्राकृतिक पूंजी (Natural Capital) एवं पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएं

प्राकृतिक पूंजी पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों का वह संचित स्टॉक है जिसमें भूविज्ञान, मृदा, वायु, जल और समस्त जीवित प्राणी सम्मिलित हैं। इस प्राकृतिक पूंजी स्टॉक से मानव समाज को जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होते हैं, उन्हें **पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएं** (Ecosystem Services) कहा जाता है।

संयुक्त राष्ट्र के 'मिलेनियम इकोसिस्टम असेसमेंट' (2005) के अनुसार पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं को चार श्रेणियों में विभाजित किया गया है:

क) प्रावधानकारी सेवाएं (Provisioning Services): पर्यावरण से प्राप्त होने वाले भौतिक उत्पाद—यथा खाद्यान्न, स्वच्छ पेयजल, इमारती लकड़ी, औषधीय पादप और आनुवंशिक संसाधन।

ख) नियामक सेवाएं (Regulating Services): प्राकृतिक प्रक्रियाओं के नियमन से प्राप्त लाभ—यथा जलवायु का नियमन (वनों द्वारा कार्बन अवशोषण), बाढ़ नियंत्रण (आद्रभूमियों द्वारा जल संचयन), जल शोधन, तथा परागण (मधुमक्खियों द्वारा फसलों का परागण)।

ग) सांस्कृतिक सेवाएं (Cultural Services): गैर-भौतिक लाभ—यथा आध्यात्मिक संवर्धन, सौंदर्यपरक आनंद, मनोरंजन, इको-टूरिज्म और सांस्कृतिक पहचान।

घ) सहायक सेवाएं (Supporting Services): वे मूलभूत पारिस्थितिकीय प्रक्रियाएं जो अन्य सभी सेवाओं के अस्तित्व हेतु अनिवार्य हैं—यथा मृदा निर्माण, प्रकाश संश्लेषण, प्राथमिक उत्पादन तथा पोषक चक्र (Nutrient Cycling)।

टीईईबी पहल (TEEB - The Economics of Ecosystems and Biodiversity):
वर्ष 2007 में जी-8+5 देशों की पर्यावरण मंत्रियों की बैठक के पश्चात जर्मन अर्थशास्त्री पवन सुखदेव के नेतृत्व में 'टीईईबी' अध्ययन प्रारंभ किया गया। टीईईबी का मुख्य उद्देश्य जैव विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं के आर्थिक मूल्य को मापना तथा यह प्रदर्शित करना है कि प्रकृति के आर्थिक मूल्यांकन की उपेक्षा करने से वैश्विक अर्थव्यवस्था को प्रतिवर्ष खरबों डॉलर की अदृश्य हानि हो रही है।

महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली एवं प्रमुख अवधारणाएं

वहन क्षमता (Carrying Capacity): किसी निश्चित भौगोलिक पर्यावरण अथवा पारिस्थितिकी तंत्र की वह अधिकतम जनसंख्या अथवा जैविक भार जिसे वह संसाधनों के क्षरण या अपरिवर्तनीय क्षति के बिना अनिश्चित काल तक संपोषित कर सकता है। जब मानवीय गतिविधियां वहन क्षमता को पार कर जाती हैं, तो पारिस्थितिकीय पतन प्रारंभ होता है।

पारिस्थितिकीय पदचिह्न (Ecological Footprint): किसी व्यक्ति, नगर अथवा राष्ट्र की उपभोग जीवनशैली को बनाए रखने तथा उसके द्वारा उत्पन्न अपशिष्टों को अवशोषित करने हेतु आवश्यक उत्पादक भूमि और जल क्षेत्र का कुल माप। इसे वैश्विक हेक्टेयर (gha) में व्यक्त किया जाता है। यदि किसी देश का पारिस्थितिकीय पदचिह्न उसकी जैव-क्षमता (Biocapacity) से अधिक है, तो वह 'पारिस्थितिकीय घाटे' (Ecological Deficit) की स्थिति में होता है।

समान परंतु विभेदित उत्तरदायित्व (CBDR): रियो घोषणा-पत्र (सिद्धांत 7) तथा यूएनएफसीसीसी का वह मूलभूत विधिक सिद्धांत, जिसके अनुसार जलवायु परिवर्तन से निपटने का उत्तरदायित्व सभी देशों का साझा है, परंतु ऐतिहासिक रूप से ग्रीनहाउस गैसों के संचित उत्सर्जन हेतु विकसित देश अधिक उत्तरदायी हैं; अतः विकासशील देशों की तुलना में विकसित देशों पर उत्सर्जन कटौती तथा वित्तीय व तकनीकी सहायता प्रदान करने का अधिक कड़ा दायित्व है।

कार्बन सिंक (Carbon Sink): कोई भी प्राकृतिक अथवा कृत्रिम जलाशय जो कार्बन युक्त रासायनिक यौगिकों को अवशोषित करता है और वातावरण में मुक्त होने वाली मात्रा से अधिक कार्बन का संचय करता है। प्रमुख प्राकृतिक कार्बन सिंक वन, महासागर और मृदा हैं।

नीली अर्थव्यवस्था (Blue Economy): महासागरीय पारिस्थितिकी तंत्र के स्वास्थ्य को संरक्षित रखते हुए आर्थिक संवृद्धि, बेहतर आजीविका और रोजगार सृजन हेतु समुद्री संसाधनों का संधारणीय उपयोग।

चक्रीय अर्थव्यवस्था (Circular Economy): पारंपरिक 'लो, बनाओ, फेंको' (Take-Make-Dispose) वाले रैखिक आर्थिक मॉडल के विपरीत, एक ऐसा औद्योगिक ढांचा जो पुनर्चक्रण (Recycle), पुनरुपयोग (Reuse), मरम्मत (Repair) और नवीनीकरण के माध्यम से अपशिष्ट को न्यूनतम कर संसाधनों को उत्पादन चक्र में निरंतर बनाए रखता है।

ग्रीनवॉशिंग (Greenwashing): किसी संगठन, निगम अथवा सरकार द्वारा भ्रामक विपणन, जनसंपर्क या असत्य दावों के माध्यम से अपनी नीतियों, उत्पादों या निवेशों को वास्तविक स्थिति की तुलना में अधिक पर्यावरण-अनुकूल अथवा हरित प्रदर्शित करने की अनैतिक कार्यप्रणाली।

अध्याय 9: समावेशी विकास - आयाम, बाधाएं एवं वित्तीय समावेशन

खंड A: समावेशी विकास के मूल तत्व

उपखंड a: अवधारणा, व्यापक आधार वाली संवृद्धि, सामाजिक न्याय, क्षेत्रीय असमानताएं और उनका उन्मूलन

समावेशी विकास की दार्शनिक एवं सैद्धांतिक रूपरेखा

समावेशी विकास (Inclusive Growth) आर्थिक संवृद्धि की एक ऐसी बहुआयामी प्रक्रिया है जो न केवल तीव्र गति से संपत्ति और उत्पादन का सृजन करती है, बल्कि यह भी सुनिश्चित करती है कि उस संवृद्धि के लाभ समाज के सभी वर्गों, विशेषकर आर्थिक एवं सामाजिक रूप से वंचित, हाशिए पर स्थित समूहों तक समान रूप से पहुंचें।

पारंपरिक आर्थिक प्रतिमान 'ट्रिकल-डाउन' सिद्धांत (Trickle-down Theory) पर आधारित थे, जिनकी यह मान्यता थी कि उच्च संवृद्धि दर स्वतः ही नीचे के स्तरों तक रिसकर गरीबी का शमन कर देगी। तथापि, विकासशील देशों के अनुभवजन्य साक्ष्यों ने सिद्ध किया कि संवृद्धि की तीव्र गति के बावजूद असमानता, बेरोजगारी और बहिष्करण (Exclusion) में वृद्धि हो सकती है। समावेशी विकास संवृद्धि के इस 'पश्चात-वितरण' (Post-distribution) दृष्टिकोण को खारिज करता है और यह प्रतिपादित करता है कि वितरण की प्रक्रिया उत्पादन की प्रक्रिया में ही अंतर्निहित होनी चाहिए।

समावेशी विकास के दो परस्पर पूरक स्तंभ होते हैं:

क) संवृद्धि प्रक्रिया में सहभागिता: कार्यबल के प्रत्येक वर्ग, विशेषकर निर्धनों, महिलाओं, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अल्पसंख्यकों को उत्पादक रोजगार और आर्थिक गतिविधियों में सीधे योगदान करने का अवसर मिलना।

ख) संवृद्धि के लाभों का न्यायसंगत बँटवारा: शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण और वित्तीय सेवाओं जैसी बुनियादी सामाजिक अवसंरचना तक सार्वभौमिक पहुंच सुनिश्चित होना।

उत्पादक रोजगार एवं आर्थिक सहभागिता	→	आय एवं परिसंपत्ति सृजन	→	सामाजिक सेवाओं में निवेश	→	उत्पादकता एवं मानवीय क्षमता संवर्धन

व्यापक आधार वाली संवृद्धि (Broad-based Growth) बनाम अनन्य संवृद्धि
व्यापक आधार वाली संवृद्धि समावेशी विकास की अनिवार्य आर्थिक पूर्व-शर्त है। यदि किसी देश की संवृद्धि केवल पूंजी-सघन उद्योगों, सेवा क्षेत्र के संकीर्ण उच्च-तकनीकी संवर्गों अथवा मुट्ठी भर बड़े कॉर्पोरेट घरानों द्वारा संचालित होती है, तो उसे 'अनन्य संवृद्धि' (Exclusive Growth) कहा जाता है। इसके विपरीत, व्यापक आधार वाली संवृद्धि के विनियामक मानक निम्नलिखित हैं:

क) क्षेत्रीय विविधता (Sectoral Diversification): संवृद्धि का प्रसार कृषि, ग्रामीण गैर-कृषि उद्यमों, सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यमों (MSME) तथा विनिर्माण जैसे श्रम-सघन क्षेत्रों में होना चाहिए।

ख) भौगोलिक समावेशन: विकास के केंद्र केवल कुछ महानगरीय केंद्रों तक सीमित न रहकर द्वितीयक एवं तृतीयक श्रेणी के शहरों तथा ग्रामीण अंचलों तक विस्तृत हों।

ग) उत्पादन कारकों का लोकतंत्रीकरण: भूमि, साख, तकनीक और बाजार की सूचना पर कुछ संभ्रांत वर्गों का एकाधिकार समाप्त कर छोटे उत्पादकों को प्रतिस्पर्धी मंच प्रदान करना।

संवैधानिक दर्शन और सामाजिक न्याय का अधिदेश
भारतीय संविधान की प्रस्तावना में आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक न्याय को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है। संविधान के भाग IV में संहिताबद्ध राज्य के नीति निदेशक तत्व (DPSP) समावेशी विकास के विधिक और नीतिगत आधारस्तंभ हैं:

अ) अनुच्छेद 38: राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना और संरक्षण करेगा जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करे, तथा आय, प्रतिष्ठा, सुविधाओं और अवसरों की असमानताओं को समाप्त करने का प्रयास करेगा।

ब) अनुच्छेद 39(b): समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम साधन हो सके।

स) अनुच्छेद 39(c): आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले जिससे धन और उत्पादन के साधनों का सर्वसाधारण के अहित के लिए संकेंद्रण न हो।

द) अनुच्छेद 46: जनता के दुर्बल वर्गों, विशेषकर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से संवृद्धि करना और सामाजिक अन्याय तथा सभी प्रकार के शोषण से उनका संरक्षण करना।

क्षेत्रीय असमानताएं: ऐतिहासिक कारण, प्रवृत्तियां एवं उन्मूलन तंत्र
भारत की भौगोलिक और प्रादेशिक विविधता के मध्य राज्यों के बीच और राज्यों के भीतर विकास का स्तर अत्यधिक विषम रहा है। एक ओर पश्चिमी और दक्षिणी राज्य (यथा गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक) औद्योगिकीकरण, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) और उच्च मानव पूंजी के बल पर तीव्र संवृद्धि दर्ज कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर मध्य और पूर्वी राज्य (यथा बिहार, झारखंड, ओडिशा, उत्तर प्रदेश के कुछ भाग) उच्च बहुआयामी गरीबी, निम्न बुनियादी अवसंरचना और सीमित वित्तीय समावेशन से जूझ रहे हैं।

क्षेत्रीय विषमताओं के प्रमुख निर्धारक घटक:

क) भौगोलिक और स्थलाकृतिक बाधाएं: पहाड़ी, जनजातीय और मरुस्थलीय क्षेत्रों में परिवहन और लॉजिस्टिक्स की उच्च लागत।

ख) औपनिवेशिक विरासत: ब्रिटिश काल की 'माल-भाड़ा समानीकरण नीति' (Freight Equalization Policy - 1952 से 1993 तक प्रभावी) ने पूर्वी भारत के खनिज-संपन्न राज्यों को उनके प्राकृतिक भौगोलिक लाभ से वंचित कर दिया।

ग) संस्थागत साख का विषम प्रवाह: वाणिज्यिक बैंकों का साख-जमा अनुपात (Credit-Deposit Ratio) पश्चिमी व दक्षिणी राज्यों में 80 से 100 प्रतिशत के पार है, जबकि उत्तर-पूर्वी व पूर्वी राज्यों में यह 40 से 55 प्रतिशत के निम्न स्तर पर बना हुआ है।

क्षेत्रीय संतुलन हेतु नीतिगत एवं संवैधानिक तंत्र:

अ) वित्त आयोग की भूमिका (अनुच्छेद 280): 15वें एवं 16वें वित्त आयोग के विचारणीय विषयों (ToR) के अंतर्गत क्षैतिज हस्तांतरण (Horizontal Devolution) के फार्मूले में 'आय की दूरी' (Income Distance) को सर्वाधिक 45 प्रतिशत भार दिया गया है, ताकि पिछड़े राज्यों को अधिक वित्तीय संसाधन हस्तांतरित किए जा सकें।

ब) आकांक्षी जिला कार्यक्रम (Aspirational Districts Programme - ADP): नीति आयोग द्वारा वर्ष 2018 में प्रारंभ किया गया यह कार्यक्रम देश के 112 सर्वाधिक पिछड़े जिलों के रूपांतरण पर केंद्रित है। इसमें अभिसरण (Convergence), सहयोग (Collaboration) और प्रतिस्पर्धा (Competition) के 3Cs मॉडल पर 5 मुख्य क्षेत्रों (स्वास्थ्य व पोषण, शिक्षा, कृषि व जल संसाधन, वित्तीय समावेशन व कौशल विकास, तथा बुनियादी अवसंरचना) में वास्तविक समय (Real-time) डेटा निगरानी की जाती है।

स) आकांक्षी ब्लॉक कार्यक्रम (Aspirational Blocks Programme - ABP): जनवरी 2023 में प्रारंभ यह कार्यक्रम विकास के स्थानीयकरण को और अधिक गहन करते हुए देश के 329 जिलों के 500 सर्वाधिक पिछड़े ब्लॉकों में सेवाओं की अंतिम छोर तक आपूर्ति (Last-mile delivery) सुनिश्चित कर रहा है।

क्षेत्रीय संतुलन का पैमाना	पारंपरिक केंद्रीकृत मॉडल	नवीन आकांक्षी कार्यक्रम मॉडल
प्रशासनिक इकाई	संपूर्ण राज्य अथवा वृहद क्षेत्र।	विशिष्ट पिछड़ा जिला अथवा ब्लॉक।
निधि आबंटन	एकमुश्त बजटीय विशेष अनुदान।	मौजूदा योजनाओं का अभिसरण (Convergence)।
निगरानी तंत्र	वार्षिक एवं आवधिक समीक्षा।	डेल्टा रैंकिंग एवं मासिक रियल-टाइम डैशबोर्ड।

wincompete

सहभागिता का स्तर	शीर्ष-से-तल (Top-down) नौकरशाही।	जन-आंदोलन एवं स्थानीय प्रशासनिक अधिकारियों की प्रतिस्पर्धा।

उपखंड b: आजीविका सुरक्षा, कौशल विकास, रोजगार सृजन, अनौपचारिक अर्थव्यवस्था का औपचारिकरण

आजीविका सुरक्षा एवं महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा)

आजीविका सुरक्षा किसी भी कल्याणकारी राज्य की आधारशिला है। भारत में ग्रामीण आजीविका को विधिक अधिकार आधारित संरक्षण प्रदान करने हेतु संसद द्वारा **महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, 2005** (MGNREGA) पारित किया गया।

मनरेगा के सांविधिक एवं प्रक्रियात्मक प्रावधान:

क) विधिक रोजगार की गारंटी: प्रत्येक ग्रामीण परिवार, जिसके वयस्क सदस्य अकुशल शारीरिक श्रम करने के इच्छुक हों, को एक वित्तीय वर्ष में न्यूनतम 100 दिनों के रोजगार की विधिक गारंटी दी जाती है। सूखा या प्राकृतिक आपदा की स्थिति में इसे 150 दिनों तक बढ़ाया जा सकता है।

ख) बेरोजगारी भत्ता: आवेदन प्रस्तुत करने के 15 दिनों के भीतर कार्य उपलब्ध न कराए जाने पर राज्य सरकार द्वारा अनिवार्य बेरोजगारी भत्ता देय होता है।

ग) कार्यस्थल की शर्तें एवं महिला आरक्षण: कार्य आवेदक के निवास स्थान से 5 किलोमीटर के दायरे में होना चाहिए, अन्यथा 10 प्रतिशत अतिरिक्त मजदूरी देय होगी। कुल रोजगार में न्यूनतम **एक-तिहाई (33.33 प्रतिशत) भागीदारी महिलाओं** के लिए आरक्षित है (वास्तविक स्तर पर राष्ट्रीय औसत 55 प्रतिशत से अधिक है)।

घ) परिसंपत्ति निर्माण और मजदूरी-सामग्री अनुपात: योजना के अंतर्गत व्यय का न्यूनतम 60 प्रतिशत अकुशल मजदूरी पर तथा अधिकतम 40 प्रतिशत सामग्री एवं कुशल श्रम पर होना अनिवार्य है (60:40 अनुपात)।

ङ) अनिवार्य सामाजिक अंकेक्षण (Social Audit): धारा 17 के अनुसार ग्राम सभा द्वारा प्रत्येक छह माह में सभी परियोजनाओं का अनिवार्य सामाजिक अंकेक्षण किया जाता है।

दीनदयाल अंत्योदय योजना - राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (DAY-NRLM)

स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना का पुनर्गठन कर प्रारंभ किया गया NRLM विश्व का सबसे बड़ा महिला स्वयं सहायता समूह (SHG) संजाल है।

अ) सामाजिक एकजुटता (Social Mobilization): प्रत्येक गरीब ग्रामीण परिवार से कम से कम एक महिला सदस्य को स्वयं सहायता समूह में संगठित करना।

ब) पंचसूत्र का विनियामक अनुशासन: नियमित बैठक, नियमित बचत, नियमित आंतरिक ऋण, नियमित ऋण वापसी और अद्यतन बहीखाता संधारण।

स) बैंक-ऋण लिंकेज और ब्याज अनुदान: स्वयं सहायता समूहों को संपार्श्विक-मुक्त (Collateral-free) ऋण की सीमा को बढ़ाकर 20 लाख रुपये तक किया गया है, तथा 3 लाख रुपये तक के ऋण पर 7 प्रतिशत की दर से ब्याज अनुदान (Interest Subvention) प्रदान किया जाता है।

द) लखपति दीदी पहल: 3 करोड़ ग्रामीण महिलाओं को विविध आजीविका गतिविधियों (कृषि-संबद्ध, सूक्ष्म-उद्यम, ड्रोन दीदी, पशु सखी) से जोड़कर उनकी वार्षिक घरेलू आय को न्यूनतम 1 लाख रुपये के स्थायी स्तर तक पहुंचाना।

कौशल विकास एवं रोजगार सृजन की संस्थागत संरचना

भारत में कार्यबल के केवल एक छोटे हिस्से के पास ही औपचारिक व्यावसायिक प्रशिक्षण उपलब्ध रहा है। इस संरचनात्मक कौशल अंतराल को पाटने हेतु वर्ष 2014 में पृथक कौशल विकास एवं उद्यमिता मंत्रालय (MSDE) का गठन किया गया तथा वर्ष 2015 में **राष्ट्रीय कौशल विकास नीति** अधिसूचित की गई।

प्रमुख संस्थागत घटक:

क) राष्ट्रीय कौशल विकास निगम (NSDC): सार्वजनिक-निजी भागीदारी (PPP) आधारित गैर-लाभकारी निकाय, जो उद्योग-विशिष्ट सेक्टर स्किल काउंसिल्स (SSC) के माध्यम से राष्ट्रीय व्यावसायिक मानक (NOS) तैयार करता है।

ख) प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (PMKVY): लघु अवधि प्रशिक्षण (STT), पूर्व शिक्षण की मान्यता (Recognition of Prior Learning - RPL) और विशेष परियोजनाओं के माध्यम से युवाओं को उद्योग-प्रासंगिक कौशल प्रमाणन प्रदान करना।

ग) अप्रेंटिसशिप संवर्धन योजना (NAPS): उद्योगों में प्रत्यक्ष कार्यस्थल प्रशिक्षण (On-the-job training) को बढ़ावा देने हेतु नियोक्ताओं को वजीफे (Stipend) का आंशिक वित्तीय पुनर्भरण।

श्रम बाजार की प्रवृत्तियां एवं गीग/प्लेटफॉर्म अर्थव्यवस्था

आवधिक श्रमबल सर्वेक्षण (PLFS) के अद्यतन आकलनों के अनुसार भारत के श्रम बाजार में संरचनात्मक परिवर्तन घटित हो रहे हैं:

अ) श्रमबल सहभागिता दर (LFPR) एवं महिला भागीदारी: सामान्य स्थिति (UPSS) के अनुसार राष्ट्रीय LFPR में वृद्धि हुई है, जिसमें ग्रामीण महिला श्रमबल सहभागिता दर का 40 प्रतिशत के स्तर को पार करना एक महत्वपूर्ण संरचनात्मक रुझान है।

ब) गीग एवं प्लेटफॉर्म कार्यबल (Gig and Platform Workers): नीति आयोग के प्रतिवेदन 'बूमिंग गीग एंड प्लेटफॉर्म इकोनॉमी' के अनुसार, भारत में लगभग 77 लाख गीग श्रमिक कार्यरत हैं, जिनकी संख्या वर्ष 2029-30 तक बढ़कर 2.35 करोड़ होने का अनुमान है।

स) सामाजिक सुरक्षा संहिता, 2020: नए श्रम कानूनों के तहत पहली बार 'गीग वर्कर' और 'प्लेटफॉर्म वर्कर' को वैधानिक रूप से परिभाषित किया गया है। धारा 114 के अंतर्गत केंद्र सरकार द्वारा एक सामाजिक सुरक्षा कोष (Social Security Fund) स्थापित करने का प्रावधान है, जिसमें ऑनलाइन एग्रीगेटरों (यथा जोमैटो, स्विगी, ओला, उबर) को अपने वार्षिक टर्नओवर का 1 से 2 प्रतिशत अंशदान देना अनिवार्य होगा।

अनौपचारिक अर्थव्यवस्था का औपचारिकरण (Formalization of Economy)

भारत की कुल अर्थव्यवस्था का लगभग 80 प्रतिशत कार्यबल अनौपचारिक (Informal) क्षेत्र में कार्यरत रहा है, जहां न तो लिखित रोजगार अनुबंध होते हैं और न ही सामाजिक सुरक्षा (भविष्य निधि, पेंशन, स्वास्थ्य बीमा) की विधिक गारंटी। औपचारिकरण केवल कर आधार बढ़ाना नहीं है, बल्कि श्रमिकों को शोषण से विधिक सुरक्षा प्रदान करना है।

औपचारिकरण के प्रमुख उत्प्रेरक तंत्र:

क) ई-श्रम (e-Shram) पोर्टल: असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों (प्रवासी श्रमिक, निर्माण मजदूर, घरेलू कामगार, स्ट्रीट वेंडर्स) का पहला राष्ट्रीय डेटाबेस। इस पर 30 करोड़ से अधिक असंगठित श्रमिक पंजीकृत हो चुके हैं, जिन्हें 12-अंकीय सार्वभौमिक खाता संख्या (UAN) प्रदान की गई है। इसे राष्ट्रीय करियर सेवा (NCS) और उद्यम पोर्टल से एकीकृत किया गया है।

ख) प्रधानमंत्री स्ट्रीट वेंडर की आत्मनिर्भर निधि (पीएम स्वनिधि): रेहड़ी-पटरी वालों को साहूकारों के शोषण से मुक्त कर औपचारिक बैंकिंग प्रणाली से जोड़ने हेतु संपार्श्विक-मुक्त कार्यशील पूंजी ऋण (क्रमशः 10,000, 20,000 और 50,000 रुपये)। डिजिटल लेन-देन करने पर कैशबैक प्रोत्साहन देकर इनका औपचारिक वित्तीय क्रेडिट इतिहास (Credit History) निर्मित किया जा रहा है।

ग) कर्मचारी भविष्य निधि (EPFO) एवं ईएसआईसी कवरेज का विस्तार: आत्मनिर्भर भारत रोजगार योजना (ABRY) जैसी योजनाओं के माध्यम से नए औपचारिक रोजगार सृजित करने वाले नियोक्ताओं और कर्मचारियों के पीएफ अंशदान का सरकारी वहन।

घ) विमुद्रीकरण एवं जीएसटी का सम्मिलित प्रभाव: नकदी लेन-देन के संकुचन और इनपुट टैक्स क्रेडिट (ITC) की शृंखला के कारण आपूर्ति शृंखलाओं का औपचारिक अर्थव्यवस्था में रूपांतरण।

खंड B: वित्तीय समावेशन के उपकरण

उपखंड a: वित्तीय समावेशन की आवश्यकता, नचिकेत मोर समिति, रंगराजन समिति की सिफारिशें

वित्तीय समावेशन की अवधारणात्मक एवं विकासात्मक आवश्यकता

वित्तीय समावेशन (Financial Inclusion) का आशय कमजोर, वंचित और निम्न-आय वाले वर्गों तक औपचारिक वित्तीय सेवाओं—जिसमें बचत खाते, भुगतान व प्रेषण सेवाएं, संस्थागत ऋण, लघु बीमा और पेंशन शामिल हैं—की वहनीय लागत, निष्पक्ष, पारदर्शी और समयबद्ध पहुंच सुनिश्चित करना है।

वित्तीय बहिष्करण (Financial Exclusion) के सामाजिक-आर्थिक दुष्परिणाम:

क) अनौपचारिक ऋण जाल: संस्थागत साख के अभाव में ग्रामीण निर्धन स्थानीय साहूकारों और महाजनों से 36 से 60 प्रतिशत वार्षिक की अत्यधिक शोषक ब्याज दरों पर ऋण लेने हेतु विवश होते हैं, जिससे बंधुआ मजदूरी और पीढ़ीगत ऋणग्रस्तता उत्पन्न होती है।

ख) बचत का अनुत्पादक क्षरण: सुरक्षित बैंकिंग विकल्पों के अभाव में निम्न आय वर्ग अपनी बचत को भौतिक परिसंपत्तियों (सोना, नकदी) में रखते हैं अथवा अवैध पोंजी स्कीमों (Chit Funds) में अपनी गाढ़ी कमाई गंवा देते हैं।

ग) सरकारी कल्याणकारी योजनाओं में भारी रिसाव: नकद आधारित सहायता वितरण प्रणाली में बिचौलियों, प्रशासनिक भ्रष्टाचार और फर्जी लाभार्थियों (Ghost Beneficiaries) के कारण वास्तविक लक्षित व्यक्ति तक सहायता का एक छोटा हिस्सा ही पहुंच पाता था।

डॉ. सी. रंगराजन समिति (2008) की सिफारिशें

भारत सरकार द्वारा वर्ष 2006 में भारतीय रिजर्व बैंक के पूर्व गवर्नर डॉ. सी. रंगराजन की अध्यक्षता में 'वित्तीय समावेशन पर समिति' का गठन किया गया, जिसने जनवरी 2008 में अपना ऐतिहासिक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया।

समिति की प्रमुख वैधानिक एवं नीतिगत सिफारिशें:

क) वित्तीय समावेशन की आधिकारिक परिभाषा: समिति ने वित्तीय समावेशन को परिभाषित किया: *"कमजोर समूहों और कम आय वाले समूहों जैसे संवेदनशील समूहों के लिए वहनीय लागत पर समय पर और पर्याप्त ऋण तथा अन्य वित्तीय सेवाओं तक पहुंच सुनिश्चित करने की प्रक्रिया।"*

ख) राष्ट्रीय वित्तीय समावेशन मिशन (NMFI): समिति ने चरणबद्ध रूप से देश के सभी ग्रामीण परिवारों को औपचारिक बैंकिंग तंत्र से जोड़ने हेतु एक समर्पित राष्ट्रीय मिशन स्थापित करने की संस्तुति की।

स) दो समर्पित निधियों की स्थापना:

वित्तीय समावेशन संवर्धन कोष (Financial Inclusion Promotion Fund - FIPF): वित्तीय साक्षरता, क्षमता निर्माण और जागरूकता अभियानों हेतु।

वित्तीय समावेशन प्रौद्योगिकी कोष (Financial Inclusion Technology Fund - FITF): ग्रामीण क्षेत्रों में कोर बैंकिंग सॉल्यूशंस (CBS), बायोमेट्रिक उपकरणों और सूचना प्रौद्योगिकी अवसंरचना के विकास हेतु। (कालांतर में इन दोनों निधियों का विलय कर 'वित्तीय समावेशन कोष - FIF' बनाया गया, जिसका प्रबंधन नाबार्ड करता है)।

द) बिजनेस कॉरेस्पोंडेंट (BC) मॉडल का सुदृढ़ीकरण: बैंकों की भौतिक शाखाओं की उच्च लागत को देखते हुए स्थानीय व्यक्तियों, किराना दुकानदारों और सेवानिवृत्त शिक्षकों को बैंक मित्र/बीसी बनाकर 'शाखा-विहीन बैंकिंग' (Branchless Banking) का विस्तार करना।

डॉ. नचिकेत मोर समिति (2013-14) की दूरगामी सिफारिशें

भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा सितंबर 2013 में डॉ. नचिकेत मोर की अध्यक्षता में 'निम्न आय वर्ग के परिवारों और लघु व्यवसायों के लिए व्यापक वित्तीय सेवाओं पर समिति' गठित की गई, जिसने जनवरी 2014 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। इस समिति की सिफारिशों ने भारत के वित्तीय परिदृश्य का स्वरूप बदल दिया।

समिति की प्रमुख सिफारिशें एवं उनके दूरगामी परिणाम:

क) सार्वभौमिक इलेक्ट्रॉनिक बैंक खाता (UEBA): 1 जनवरी 2016 तक देश के प्रत्येक 18 वर्ष से अधिक आयु के नागरिक को एक पूर्ण-सेवा इलेक्ट्रॉनिक बैंक खाता उपलब्ध कराने का बाध्यकारी विनियामक लक्ष्य (जिसने कालांतर में प्रधानमंत्री जन धन योजना का आधार तैयार किया)।

ख) विभेदित बैंक लाइसेंसिंग (Differentiated Banking Licences): समिति ने तर्क दिया कि सभी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति पारंपरिक वाणिज्यिक बैंकों से संभव नहीं है। अतः विशिष्ट कार्यों हेतु दो नवीन बैंकिंग संवर्गों की सिफारिश की गई:

भुगतान बैंक (Payments Banks): केवल जमा स्वीकार करने (सावधि नहीं) और प्रेषण सेवाएं देने हेतु; ऋण देने पर पूर्ण प्रतिबंध।

लघु वित्त बैंक (Small Finance Banks): लघु ऋण और वंचित क्षेत्रों में साख आपूर्ति हेतु।

ग) आधार आधारित वित्तीय अवसंरचना: वित्तीय पहचान और केवाईसी (KYC) सत्यापन हेतु भारतीय विशिष्ट पहचान प्राधिकरण (UIDAI) के आधार प्लेटफॉर्म का अनिवार्य और निर्बाध एकीकरण।

घ) प्राथमिक क्षेत्रक ऋण (PSL) की पुनर्संरचना: क्षेत्रीय विषमताओं को दूर करने हेतु समायोजित निवल बैंक ऋण (ANBC) के लक्ष्यों को जिला स्तर के वित्तीय घनत्व के आधार पर भारित करना।

विनियामक मानक	रंगराजन समिति (2008)	नचिकेत मोर समिति (2014)
प्राथमिक दृष्टिकोण	आपूर्ति-पक्षीय हस्तक्षेप एवं ग्रामीण साख विस्तार।	मांग-पक्षीय वित्तीय अधिकार एवं प्रौद्योगिकी-आधारित पारिस्थितिकी तंत्र।
संस्थागत नवाचार	बिजनेस कॉरेस्पोंडेंट (BC) एवं नाबार्ड का सुदृढ़ीकरण।	विभेदित बैंक (पेमेंट्स बैंक एवं स्मॉल फाइनेंस बैंक)।
पहचान एवं सत्यापन	पारंपरिक दस्तावेजी प्रक्रिया एवं मतदाता पहचान पत्र।	आधार आधारित इलेक्ट्रॉनिक ई-केवाईसी (e-KYC)।
वित्तीय सेवाओं का दायरा	मुख्य रूप से बैंक खाता और कृषि साख।	खाता, साख, डिजिटल भुगतान, लघु बीमा एवं सूक्ष्म पेंशन का संपूर्ण पैकेज।

उपखंड b: प्रधानमंत्री जन धन योजना, जैम (JAM) त्रिमूर्ति, डिजिटल वित्तीय समावेशन, प्रत्यक्ष लाभ अंतरण

प्रधानमंत्री जन धन योजना (PMJDY): संरचना एवं उपलब्धियां

15 अगस्त 2014 को ऐतिहासिक घोषणा के पश्चात 28 अगस्त 2014 को **प्रधानमंत्री जन धन योजना** का औपचारिक शुभारंभ किया गया। यह विश्व का सबसे बड़ा वित्तीय समावेशन अभियान है। इसका मार्गदर्शक ध्येय वाक्य 'मेरा खाता, भाग्य विधाता' निर्धारित किया गया।

योजना के छह आधारभूत स्तंभ (Six Pillars):

क) बैंकिंग सेवाओं तक सार्वभौमिक पहुंच: प्रत्येक 5 किलोमीटर के दायरे में प्रत्येक गांव को बैंकिंग आउटलेट (शाखा अथवा बैंक मित्र/बीसी) से आच्छादित करना।

ख) बुनियादी बचत बैंक जमा (BSBD) खाते: शून्य शेष राशि (Zero Balance) की सुविधा के साथ बिना किसी न्यूनतम प्रभार के खाते खोलना।

ग) वित्तीय साक्षरता कार्यक्रम: ग्राम स्तर पर वित्तीय साक्षरता शिविरों का आयोजन।

घ) साख गारंटी कोष का सृजन: स्वीकृत ओवरड्राफ्ट सुविधाओं में होने वाली संभावित चूक की भरपाई हेतु।

ङ) सूक्ष्म बीमा एवं पेंशन: प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना (PMSBY), प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना (PMJJBY) और अटल पेंशन योजना (APY) का खातों से सीधा एकीकरण।

विशिष्ट वित्तीय एवं विनियामक लाभ:

अ) रुपे (RuPay) डेबिट कार्ड: खाताधारकों को स्वदेशी रुपे कार्ड जारी किया जाता है, जिसमें 2 लाख रुपये का इन-बिल्ट निःशुल्क दुर्घटना बीमा कवर (28 अगस्त 2018 के बाद खोले गए खातों हेतु; पूर्व में 1 लाख रुपये) उपलब्ध होता है।

ब) ओवरड्राफ्ट (OD) सुविधा: खाते के संतोषजनक परिचालन के 6 माह पश्चात प्रत्येक परिवार के एक खाते (वरीयता महिला) में **10,000 रुपये तक की ओवरड्राफ्ट सुविधा** (पूर्व में 5,000 रुपये)। 2,000 रुपये तक के ओवरड्राफ्ट हेतु किसी शर्त या संपार्श्विक की आवश्यकता नहीं होती। ऊपरी आयु सीमा को 60 वर्ष से बढ़ाकर 65 वर्ष किया गया है।

योजना की अद्यतन सांख्यिकी एवं उपलब्धियां:

वित्तीय वर्ष 2024-25, 2025-26 और 2026-27 के संकलित राष्ट्रीय आंकड़ों के अनुसार कुल जन धन खातों की संख्या **53 करोड़ के ऐतिहासिक आंकड़े को पार** कर चुकी है।

इन खातों में कुल संचित जमा शेष राशि **2.3 लाख करोड़ रुपये से अधिक** हो चुकी है, जो यह सिद्ध करती है कि ये केवल निष्क्रिय खाते नहीं हैं, बल्कि वास्तविक बचत का साधन बन चुके हैं। शून्य-शेष खातों (Zero-balance accounts) का अनुपात वर्ष 2014 के 77 प्रतिशत से घटकर 8 प्रतिशत से भी कम रह गया है।

महिला सशक्तीकरण: कुल खाताधारकों में **लगभग 55 से 56 प्रतिशत खाते महिलाओं** के नाम पर हैं।

ग्रामीण विस्तार: कुल खातों में से लगभग **67 प्रतिशत खाते ग्रामीण एवं अर्ध-शहरी क्षेत्रों** में खोले गए हैं।

जैम (JAM) त्रिमूर्ति: संस्थागत एवं तकनीकी संलयन

आर्थिक सर्वेक्षण 2014-15 में मुख्य आर्थिक सलाहकार द्वारा पहली बार 'जैम त्रिमूर्ति' (JAM Trinity) की संकल्पना प्रस्तुत की गई। JAM का पूर्ण रूप है:

J - जन धन (Jan Dhan): वित्तीय समावेशन का प्रवेश द्वार (बैंक खाता)।
A - आधार (Aadhaar): डिजिटल बायोमेट्रिक पहचान का सार्वभौमिक आधार।
M - मोबाइल (Mobile): दूरसंचार संपर्क और वित्तीय लेन-देन का इंटरफेस।

जैम त्रिमूर्ति ने भारत में 'इंडिया स्टैक' (India Stack) नामक विश्वस्तरीय डिजिटल सार्वजनिक अवसंरचना (DPI) के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया।

स्तर (Layer)	घटक एवं विवरण (Components & Details)
उपस्थिति-रहित स्तर (Presence-less Layer)	आधार प्रमाणीकरण एवं ई-केवाईसी
कागज-रहित स्तर (Paperless Layer)	डिजी लॉकर (DigiLocker) एवं ई-साइन (e-Sign)
नकदी-रहित स्तर (Cashless Layer)	एकीकृत भुगतान इंटरफेस (UPI) एवं IMPS
सहमति स्तर (Consent Layer)	खाता एग्रीगेटर (Account Aggregator Framework)

डिजिटल वित्तीय समावेशन (Digital Financial Inclusion) के प्रमुख घटक
पारंपरिक ईंट-गारे की बैंक शाखाओं के स्थान पर डिजिटल तकनीकों के माध्यम से वित्तीय सेवाओं के वितरण ने लागत को नगण्य कर दिया है:

क) एकीकृत भुगतान इंटरफेस (UPI): भारतीय राष्ट्रीय भुगतान निगम (NPCI) द्वारा वर्ष 2016 में विकसित यह प्लेटफॉर्म मोबाइल के माध्यम से 24x7 तत्काल अंतर-बैंक फंड ट्रांसफर की सुविधा देता है। भारत वर्तमान में विश्व के कुल रियल-टाइम डिजिटल भुगतानों का 46 प्रतिशत से अधिक अकेले निष्पादित करता है।

ख) आधार-सक्षम भुगतान प्रणाली (AePS): बैंक मित्र/बीसी स्तर पर बायोमेट्रिक प्रमाणीकरण के माध्यम से अंगूठा लगाकर नकदी निकासी, जमा और शेष राशि की जांच की सुविधा। इसने वृद्ध, निरक्षर और दिव्यांग नागरिकों के लिए बैंकिंग को घर-द्वार तक सुलभ बनाया है।

ग) भारत बिल भुगतान प्रणाली (BBPS) एवं राष्ट्रीय स्वचालित समाशोधन गृह (NACH): नियमित बिलों और सब्सिडी के थोक वितरण का मानकीकृत प्लेटफॉर्म।

घ) डिजिटल रुपया (e-Rupee / CBDC): भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा जारी केंद्रीय बैंक डिजिटल मुद्रा, जो वित्तीय मध्यस्थों के बिना भी ऑफ़लाइन और दूरदराज के क्षेत्रों में संप्रभु डिजिटल मुद्रा के अंतरण का विधिक आधार तैयार कर रही है।

प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT): कल्याणकारी अर्थशास्त्र का प्रशासनिक रूपांतरण
भारत सरकार द्वारा 1 जनवरी 2013 को औपचारिक रूप से प्रारंभ की गई प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (Direct Benefit Transfer - DBT) प्रणाली ने कल्याणकारी राज्य के वितरण तंत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन किया है।

डीबीटी प्रणाली की कार्यप्रणाली एवं लाभ:

क) बिचौलियों का विलोपन: सरकारी राजकोष (संचित निधि) से सहायता राशि सीधे लाभार्थी के बैंक खाते में इलेक्ट्रॉनिक रूप से अंतरित होती है, जिससे रिसाव (Leakages), कमीशनखोरी और प्रशासनिक देरी समाप्त हो गई है।

ख) फर्जी लाभार्थियों का विलोपन: आधार सीडिंग (Aadhaar Seeding) और डी-डुप्लीकेशन (De-duplication) के माध्यम से करोड़ों फर्जी राशन कार्ड, गैर-विद्यमान पेंशनभोगी और अपात्र एलपीजी कनेक्शन डेटाबेस से हटा दिए गए।

ग) वित्तीय बचत: डीबीटी मिशन के आधिकारिक आंकड़ों के अनुसार, केंद्र सरकार ने विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं (यथा पहल/एलपीजी सब्सिडी, सार्वजनिक वितरण प्रणाली, मनरेगा, पीएम-किसान) में लीकेज रोककर अब तक **3.5 लाख करोड़ रुपये से अधिक की राजकोषीय बचत** दर्ज की है।

घ) संकटकालीन सामाजिक सुरक्षा कवच: कोविड-19 महामारी के दौरान प्रधानमंत्री गरीब कल्याण पैकेज के अंतर्गत एक बटन दबाकर 24 घंटे के भीतर करोड़ों महिलाओं, विधवाओं और दिव्यांगों के खातों में हजारों करोड़ रुपये की नकद सहायता बिना किसी भौतिक संपर्क के सफलतापूर्वक पहुंचाई गई।

वित्तीय समावेशन आयाम	पूर्ववर्ती पारंपरिक स्थिति (2014 से पूर्व)	आधुनिक डीबीटी-जैम स्थिति (अद्यतन)
खाता खोलने की प्रक्रिया	अत्यधिक कागजी कार्रवाई, न्यूनतम शेष की बाध्यता, हफ्तों का समय।	ई-केवाईसी द्वारा कुछ मिनटों में शून्य-शेष जन धन खाता।
सब्सिडी वितरण का माध्यम	नकद वितरण, विभागीय चेक, अथवा वस्तु के रूप में मूल्य सब्सिडी।	सीधे बैंक खाते में इलेक्ट्रॉनिक आधार-पेमेंट ब्रिज (APB) अंतरण।
बैंकिंग पहुंच की सीमा	केवल भौतिक बैंक शाखाओं और सीमित एटीएम तक सीमित।	माइक्रो-एटीएम, बायोमेट्रिक AePS और मोबाइल यूपीआई द्वारा घर-द्वार पर।
पारदर्शिता एवं जवाबदेही	भारी रिसाव, अपवर्जन व समावेशन त्रुटियां, बिचौलियों का प्रभुत्व।	100 प्रतिशत डिजिटल ट्रेल, एंड-टू-एंड ट्रैकिंग और प्रत्यक्ष ऑडिटेबिलिटी।

महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली एवं प्रमुख संकल्पनाएं

वित्तीय समावेशन सूचकांक (FI-Index): भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा वर्ष 2021 से प्रतिवर्ष जारी किया जाने वाला एक समग्र सूचकांक, जो देश में वित्तीय समावेशन के स्तर को 0 से 100 के पैमाने पर मापता है (0 पूर्ण वित्तीय बहिष्करण तथा 100 पूर्ण वित्तीय समावेशन को दर्शाता है)। यह तीन व्यापक मापदंडों पर आधारित है: **पहुंच (Access - 35% भार)**, **उपयोग (Usage - 45% भार)**, तथा **गुणवत्ता (Quality - 20% भार)**।

बुनियादी बचत बैंक जमा खाता (BSBDA): भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा वर्ष 2012 में 'नो-फ्रिल्स' खातों के स्थान पर अधिसूचित खाता। इसमें किसी न्यूनतम शेष राशि की आवश्यकता नहीं होती, एटीएम कार्ड निःशुल्क मिलता है तथा माह में न्यूनतम चार बार निःशुल्क निकासी की अनुमति होती है।

बिजनेस कॉरेस्पोंडेंट (Business Correspondent - BC / बैंक मित्र): बैंकों द्वारा दूरदराज के क्षेत्रों में बैंकिंग सेवाएं प्रदान करने हेतु अधिकृत खुदरा एजेंट। ये माइक्रो-एटीएम और बायोमेट्रिक स्कैनर के माध्यम से नकद जमा, निकासी, खाता खोलने और धन अंतरण की सेवाएं प्रदान करते हैं।

खाता एग्रीगेटर (Account Aggregator - AA Framework): भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा विनियमित एक वित्तीय डेटा-साझाकरण प्रणाली, जो नागरिकों को उनकी स्पष्ट सहमति से अपने वित्तीय डेटा (बैंक स्टेटमेंट, निवेश, कर रिटर्न) को विभिन्न वित्तीय संस्थानों (बैंकों, ऋणदाताओं, बीमाकर्ताओं) के साथ डिजिटल और सुरक्षित रूप से साझा करने की शक्ति प्रदान करती है। यह संपार्श्विक-मुक्त साख पहुंच को अत्यंत सुगम बनाता है।

प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रक ऋण (PSL): भारतीय रिजर्व बैंक का वह विनियामक अधिदेश जिसके तहत वाणिज्यिक बैंकों को अपने कुल समायोजित निवल बैंक ऋण (ANBC) का 40 प्रतिशत अनिवार्य रूप से कृषि, एमएसएमई, शिक्षा, आवास और कमजोर वर्गों को आबंटित करना होता है (क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों एवं लघु वित्त बैंकों हेतु यह लक्ष्य 75 प्रतिशत है)।

अपवर्जन त्रुटि बनाम समावेशन त्रुटि (Exclusion Error vs Inclusion Error): कल्याणकारी योजनाओं के वितरण में दो प्रकार की विसंगतियां होती हैं। जब कोई वास्तविक पात्र गरीब व्यक्ति प्रशासनिक त्रुटियों या दस्तावेजी अभाव के कारण लाभ पाने से छूट जाता है, तो उसे 'अपवर्जन त्रुटि' (Type-I Error) कहा जाता है। इसके विपरीत, जब कोई अपात्र संपन्न व्यक्ति अनुचित साधनों से योजना का लाभ प्राप्त कर लेता है, तो उसे 'समावेशन त्रुटि' (Type-II Error) कहा जाता है।

सामाजिक अंकेक्षण (Social Audit): किसी विकासात्मक योजना या कार्यक्रम के योजना निर्माण, क्रियान्वयन और मूल्यांकन की संपूर्ण प्रक्रिया की जनता (विशेषकर लाभार्थियों) द्वारा स्वयं की जाने वाली आधिकारिक संवीक्षा। यह पारंपरिक वित्तीय अंकेक्षण से भिन्न है क्योंकि यह वित्तीय शुद्धता के साथ-साथ सामाजिक परिणामों और अधिकारों की पूर्ति की जांच करता है।

अध्याय 10: भारत एवं राजस्थान के विशेष संदर्भ में विकास रणनीतियां

खंड A: भारत में योजना निर्माण का इतिहास एवं नीति आयोग

उपखंड a: योजना आयोग का स्वरूप, पंचवर्षीय योजनाओं की उपलब्धियां एवं विफलताएं

भारत में आर्थिक नियोजन का ऐतिहासिक उद्भव

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान ही यह सहमति बन चुकी थी कि औपनिवेशिक शोषण से मुक्त होने के उपरांत देश का सामाजिक-आर्थिक पुनर्निर्माण एक सुनियोजित, राज्य-निर्देशित एवं समतामूलक आर्थिक प्रणाली के माध्यम से ही संभव होगा। भारत में नियोजित विकास की अवधारणा के प्रमुख ऐतिहासिक मील के पत्थर निम्नलिखित हैं:

क) एम. विश्वेश्वरैया की पहल (1934): प्रख्यात अभियंता एवं मैसूर के पूर्व दीवान सर एम. विश्वेश्वरैया ने अपनी ऐतिहासिक पुस्तक *'प्लांड इकोनॉमी फॉर इंडिया'* में देश के औद्योगिकीकरण तथा राष्ट्रीय आय को एक दशक में दोगुना करने हेतु दस-वर्षीय योजना का प्रथम व्यवस्थित खाका प्रस्तुत किया।

ख) राष्ट्रीय योजना समिति (1938): भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन में तत्कालीन अध्यक्ष सुभाष चंद्र बोस की पहल पर पं. जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में 'राष्ट्रीय योजना समिति' का गठन किया गया। इस समिति ने औद्योगिकीकरण और बुनियादी उद्योगों में राज्य के स्वामित्व पर बल दिया।

ग) बॉम्बे प्लान (1944): बम्बई के आठ प्रमुख उद्योगपतियों (जे.आर.डी. टाटा, घनश्याम दास बिड़ला, अर्देशिर दलाल, पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास आदि) द्वारा *'ए प्लान ऑफ इकोनॉमिक डेवलपमेंट फॉर इंडिया'* प्रस्तुत किया गया। इसमें बुनियादी अवसंरचना के विकास में भारी राज्य निवेश तथा निजी क्षेत्र के संरक्षण की संस्तुति की गई।

घ) गांधीवादी योजना (1944): श्रीमन नारायण अग्रवाल द्वारा प्रतिपादित इस योजना में कुटीर उद्योगों, कृषि के पुनरुद्धार, ग्राम-स्वराज और विकेंद्रीकृत उत्पादन पर बल दिया गया।

ङ) जन योजना (People's Plan - 1945): मार्क्सवादी विचारक एम.एन. रॉय द्वारा निर्मित इस योजना में कृषि के पूर्ण समाजीकरण तथा उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन पर ध्यान केंद्रित किया गया।

च) सर्वोदय योजना (1950): जयप्रकाश नारायण द्वारा गांधीवादी और समाजवादी मूल्यों के समन्वय से प्रस्तुत यह योजना भूमि सुधार, विकेंद्रीकरण तथा लघु व ग्रामोद्योगों के संरक्षण पर आधारित थी।

योजना आयोग का विधिक एवं प्रशासनिक स्वरूप

भारत सरकार के मंत्रिमंडल के एक कार्यकारी संकल्प द्वारा 15 मार्च 1950 को **योजना आयोग** (Planning Commission) की स्थापना की गई।

अ) सांविधानिक स्थिति: योजना आयोग न तो एक सांविधानिक (Constitutional) निकाय था और न ही एक सांविधिक (Statutory) निकाय; यह भारत सरकार का एक गैर-सांविधिक, संविधानेतर एवं परामर्शदात्री (Extra-constitutional and Advisory) अंग था।

ब) संरचना: भारत का प्रधानमंत्री इसका पदेन अध्यक्ष होता था। इसके अतिरिक्त एक पूर्णकालिक उपाध्यक्ष (कैबिनेट मंत्री का दर्जा प्राप्त), कुछ केंद्रीय मंत्री (पदेन सदस्य), तथा विशेषज्ञ पूर्णकालिक सदस्य होते थे।

स) वित्तीय शक्तियां एवं गाडगिल-मुखर्जी फार्मूला: यद्यपि यह औपचारिक रूप से परामर्शदात्री संस्था थी, परंतु कालांतर में इसने संविधान के अनुच्छेद 282 (विवेकाधीन अनुदान) के अंतर्गत केंद्र से राज्यों को दिए जाने वाले योजनागत सहायता अनुदानों और पूंजीगत आबंटनों पर निर्णायक नियंत्रण स्थापित कर लिया। राज्यों को योजनागत सहायता के वितरण हेतु चौथी पंचवर्षीय योजना (1969) में 'गाडगिल फार्मूला' लागू किया गया, जिसे बाद में राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा 'गाडगिल-मुखर्जी फार्मूले' (1991) के रूप में संशोधित किया गया।

द) राष्ट्रीय विकास परिषद (NDC): योजना निर्माण में राज्यों की सहभागिता सुनिश्चित करने और योजनाओं को अंतिम स्वीकृति प्रदान करने हेतु 6 अगस्त 1952 को मंत्रिमंडल के संकल्प द्वारा राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थापना की गई। इसमें प्रधानमंत्री (अध्यक्ष), केंद्रीय कैबिनेट मंत्री, सभी राज्यों के मुख्यमंत्री, केंद्र शासित प्रदेशों के उपराज्यपाल/प्रशासक तथा योजना आयोग के सदस्य शामिल होते थे।

पंचवर्षीय योजनाओं का ऐतिहासिक मैट्रिक्स एवं उपलब्धियां

वर्ष 1951 से 2017 के मध्य भारत में कुल बारह पंचवर्षीय योजनाएं, तीन वार्षिक योजनाएं (1966-69, योजना अवकाश), एक रोलिंग प्लान (1978-80), तथा दो वार्षिक योजनाएं (1990-92) संचालित की गईं।

पंचवर्षीय योजना	लक्षित मॉडल एवं दार्शनिक आधार	लक्षित संवृद्धि दर	वास्तविक संवृद्धि दर	प्राथमिक विनियामक फोकस एवं प्रमुख उपलब्धियां
प्रथम (1951-56)	हैरोड-डोमार मॉडल	2.1%	3.6%	कृषि, सिंचाई (भाखड़ा नांगल, दामोदर घाटी, हीराकुंड परियोजनाएं), मूल्य स्थिरता,

wincompete

				सामुदायिक विकास कार्यक्रम (1952)।
द्वितीय (1956-61)	पी.सी. महालनोबिस का चार-क्षेत्रीय मॉडल	4.5%	4.27%	भारी उद्योगों का विकास (भिलाई, राउरकेला, दुर्गापुर इस्पात संयंत्र), औद्योगिक नीति संकल्प 1956, समाजवादी समाज की स्थापना।
तृतीय (1961-66)	सुखमय चक्रवर्ती एवं जॉन सैंडी मॉडल	5.6%	2.84%	भारत-चीन युद्ध (1962), भारत-पाक युद्ध (1965) तथा भीषण सूखे के कारण विफल; बोकारो इस्पात संयंत्र एवं एफसीआई की स्थापना।
वार्षिक योजनाएं (1966-69)	योजना अवकाश (Plan Holiday)	—	—	नई कृषि रणनीति का सूत्रपात, उच्च उपज देने वाली किस्मों (HYV) का प्रयोग, भारत में हरित क्रांति का औपचारिक प्रादुर्भाव।
चतुर्थ (1969-74)	ए.एस. माने एवं अशोक रुद्र (स्थिरता के साथ संवृद्धि)	5.7%	3.3%	14 प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण (1969), प्रिवी पर्स की समाप्ति, पोखरण-I परमाणु परीक्षण (1974), सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम (DPAP)।
पंचम (1974-79)	डी.पी. धर मॉडल (गरीबी उन्मूलन एवं आत्मनिर्भरता)	4.4%	4.8%	बीस-सूत्री कार्यक्रम (1975), न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (MNP), जनता पार्टी सरकार द्वारा 1978 में एक वर्ष पूर्व ही समाप्त।

wincompete

रोलिंग प्लान (1978-80)	गुन्नार मिर्डल की चक्रीय योजना अवधारणा	—	—	अनवरत योजना; प्राथमिकताओं का वार्षिक आधार पर लचीला पुनर्मूल्यांकन।
छठी (1980-85)	निवेश मॉडल (गरीबी निवारण एवं रोजगार सृजन)	5.2%	5.66%	समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP), नाबार्ड (1982) और एक्जिम बैंक की स्थापना, 6 और वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण (1980)।
सातवीं (1985-90)	प्रणब मुखर्जी मॉडल (भोजन, काम और उत्पादकता)	5.0%	6.01%	जवाहर रोजगार योजना (1989), स्पीड पोस्ट, प्रौद्योगिकी मिशन, हिंदू संवृद्धि दर (3.5%) के ऐतिहासिक गतिरोध का पूर्ण विखंडन।
वार्षिक योजनाएं (1990-92)	राजनीतिक अस्थिरता व भुगतान संतुलन संकट	—	—	आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण (LPG सुधार) की शुरुआत, 1991 के विनियामक सुधार।
आठवीं (1992-97)	जॉन डब्ल्यू. मुलर मॉडल (मानव संसाधन विकास)	5.6%	6.68%	आधुनिक बाजार-उन्मुख नियोजन, डब्ल्यूटीओ की स्थापना (1995), प्रधानमंत्री रोजगार योजना, व्यापक संरचनात्मक समायोजन।
नौवीं (1997-2002)	सामाजिक न्याय और समानता के साथ संवृद्धि	6.5%	5.35%	पूर्वी एशियाई वित्तीय संकट और पोखरण-II के प्रतिबंधों का प्रभाव; सर्व शिक्षा अभियान, स्वर्णिम चतुर्भुज परियोजना का शुभारंभ।

wincompete

दसवीं (2002-07)	व्यापक निगरानी योग्य लक्ष्य (शासन एवं सुधार)	8.0%	7.6%	गरीबी अनुपात में 5% की कमी का लक्ष्य, शिशु मृत्यु दर घटाना, मनरेगा अधिनियम (2005) का अधिनियमन, राजकोषीय सुदृढ़ीकरण।
ग्यारहवीं (2007-12)	तीव्रतर और अधिक समावेशी संवृद्धि	9.0%	8.0%	समावेशी विकास पर स्पष्ट बल, राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन, शिक्षा का अधिकार अधिनियम (RTE 2009), वैश्विक वित्तीय संकट का प्रबंधन।
बारहवीं (2012-17)	तीव्र, अधिक समावेशी और धारणीय संवृद्धि	8.0%	—	गैर-कृषि क्षेत्र में 5 करोड़ नए रोजगार, 100% ग्रामीण विद्युतीकरण, हरित आवरण विस्तार; 2015 में नीति आयोग द्वारा प्रतिस्थापित।

पंचवर्षीय नियोजन की प्रमुख विफलताएं एवं सीमाएं

योजना आयोग के छह दशकों के कार्यकाल के विश्लेषण से कई गंभीर संरचनात्मक विसंगतियां उजागर हुईं:

क) शीर्ष-से-तल (Top-down) नौकरशाही दृष्टिकोण: योजना आयोग द्वारा राज्यों की विशिष्ट भौगोलिक, जनसांख्यिकीय और विकासात्मक वास्तविकताओं को समझे बिना 'एक ही आकार सभी के लिए उपयुक्त' (One-size-fits-all) का दृष्टिकोण थोपा गया।

ख) वित्तीय अधिशेष का केंद्रीयकरण एवं राज्यों की लाचारी: राज्यों के निर्वाचित मुख्यमंत्रियों को अपनी वार्षिक योजनाओं की वित्तीय संस्वीकृति हेतु योजना आयोग के अनिर्वाचित उपाध्यक्ष और सदस्यों के समक्ष गुहार लगानी पड़ती थी, जिसने सहकारी संघवाद की मूल भावना को आघात पहुंचाया।

ग) वित्त आयोग की सांविधानिक स्थिति का क्षरण: सांविधानिक निकाय होने के बावजूद वित्त आयोग (अनुच्छेद 280) का प्रभाव योजना आयोग के विशाल गैर-सांविधिक वित्तीय नियंत्रण के सम्मुख संकुचित हो गया था।

घ) रोजगार-विहीन संवृद्धि (Jobless Growth): आर्थिक संवृद्धि के आंकड़े तो प्राप्त हुए, परंतु विनिर्माण क्षेत्र का विस्तार न होने से कृषि से विस्थापित होने वाले विशाल कार्यबल हेतु पर्याप्त औपचारिक रोजगार सृजित नहीं हो सके।

उपखंड b: नीति आयोग की संरचना, कार्यपद्धति, सहकारी एवं प्रतिस्पर्धी संघवाद, थिंक टैंक की भूमिका

नीति आयोग की स्थापना, अधिदेश एवं वैधानिक आधार

केंद्रीय मंत्रिमंडल के संकल्प द्वारा 1 जनवरी 2015 को **नीति आयोग** (राष्ट्रीय भारत परिवर्तन संस्थान - National Institution for Transforming India) की स्थापना की गई। इसने पूर्ववर्ती योजना आयोग को पूरी तरह विस्थापित कर दिया।

अ) सांस्थानिक दर्शन: नीति आयोग एक निर्देशात्मक, रणनीतिक और तकनीकी थिंक टैंक है। इसका मूल उद्देश्य केंद्र और राज्यों को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय महत्व के नीतिगत विषयों पर उच्च स्तरीय रणनीतिक और तकनीकी परामर्श प्रदान करना है।

ब) योजना आयोग से मूलभूत विच्छेद: नीति आयोग के पास राज्यों को वित्तीय निधियां आबंटित करने की कोई विधिक शक्ति नहीं है। वित्तीय आबंटन की संप्रभु शक्ति अब पूरी तरह केंद्रीय वित्त मंत्रालय तथा सांविधानिक वित्त आयोग के पास केंद्रित हो गई है।

नीति आयोग की प्रशासनिक संरचना

नीति आयोग का प्रशासनिक विन्यास निम्नलिखित अधिकारियों एवं निकायों से निर्मित है:

क) अध्यक्ष: भारत का प्रधानमंत्री (पदेन अध्यक्ष)।

ख) शासी परिषद (Governing Council): नीति आयोग का सर्वोच्च निर्णय-निर्माता निकाय। इसमें प्रधानमंत्री (अध्यक्ष), समस्त राज्यों के मुख्यमंत्री, विधानसभा वाले केंद्र शासित प्रदेशों (दिल्ली, पुडुचेरी, जम्मू एवं कश्मीर) के मुख्यमंत्री तथा अन्य केंद्र शासित प्रदेशों के उपराज्यपाल/प्रशासक सम्मिलित होते हैं।

ग) क्षेत्रीय परिषदें (Regional Councils): विशिष्ट अंतर-राज्यीय अथवा क्षेत्रीय मुद्दों के समाधान हेतु प्रधानमंत्री के निर्देश पर एक निश्चित समयावधि के लिए गठित परिषदें, जिनकी अध्यक्षता नीति आयोग के उपाध्यक्ष या नामित व्यक्ति करते हैं।

घ) उपाध्यक्ष: प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त, जिसे कैबिनेट मंत्री का आधिकारिक दर्जा प्राप्त होता है।

ङ) पूर्णकालिक सदस्य: प्रतिष्ठित विशेषज्ञ एवं शिक्षाविद, जिन्हें राज्य मंत्री का प्रशासनिक दर्जा प्राप्त होता है।

च) पदेन सदस्य (Ex-officio Members): केंद्रीय मंत्रिपरिषद से प्रधानमंत्री द्वारा अधिकतम चार नामित मंत्री।

छ) विशेष आमंत्रित सदस्य: विभिन्न विषयगत क्षेत्रों के विशेषज्ञ, जिन्हें प्रधानमंत्री द्वारा नामित किया जाता है।

ज) मुख्य कार्यकारी अधिकारी (CEO): प्रधानमंत्री द्वारा एक निश्चित कार्यकाल के लिए नियुक्त भारत सरकार के सचिव स्तर का अधिकारी।

wincompete

तुलनात्मक आयाम	पूर्ववर्ती योजना आयोग	नीति आयोग (NITI Aayog)
प्रशासनिक दृष्टिकोण	शीर्ष-से-तल (Top-down Approach)। केंद्र से राज्यों पर नीतियां थोपना।	तल-से-शीर्ष (Bottom-up Approach)। राज्यों की सक्रिय सहभागिता।
वित्तीय शक्तियां	मंत्रालयों और राज्य सरकारों को निधियां और अनुदान आबंटित करने की संप्रभु शक्ति।	कोई वित्तीय आबंटन शक्ति नहीं; केवल रणनीतिक और ज्ञान थिंक टैंक।
राज्यों का प्रतिनिधित्व	राज्यों की भूमिका केवल अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय विकास परिषद (NDC) तक सीमित थी।	शासी परिषद (Governing Council) में सभी मुख्यमंत्री सीधे निर्णय प्रक्रिया के भागीदार।
योजना की समय-सीमा	कठोर 5-वर्षीय योजनाओं और वार्षिक योजनाओं का निर्माण।	15-वर्षीय विजन, 7-वर्षीय रणनीति तथा 3-वर्षीय कार्य एजेंडा (Action Agenda)।
विशेषज्ञता की प्रकृति	पारंपरिक सिविल सेवकों और सामान्यीकृत नौकरशाही पर अत्यधिक निर्भर।	निजी क्षेत्र, शिक्षाविदों और विशिष्ट वैश्विक विशेषज्ञों का परामर्श एवं संविदात्मक समावेशन।

सहकारी एवं प्रतिस्पर्धी संघवाद का संस्थागत संवर्धन

नीति आयोग 'टीम इंडिया' की भावना से केंद्र और राज्यों के मध्य संप्रभु साझेदारी स्थापित करता है:

अ) सहकारी संघवाद (Cooperative Federalism): शासी परिषद के माध्यम से राष्ट्रीय विकास प्राथमिकताओं का साझा विजन तैयार करना। विभिन्न उप-समितियों (जैसे मुख्यमंत्रियों के उप-समूह) का गठन कर राष्ट्रीय नीतियों (स्वच्छ भारत, कौशल विकास, डिजिटल भुगतान) का प्रारूप तैयार करना।

ब) प्रतिस्पर्धी संघवाद (Competitive Federalism): नीति आयोग ने विभिन्न सामाजिक-आर्थिक क्षेत्रों में राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के मध्य स्वस्थ प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देने हेतु सांख्यिकीय सूचकांकों का विकास किया है। ये सूचकांक राज्यों के प्रदर्शन की वस्तुनिष्ठ रैंकिंग जारी करते हैं, जिससे पिछड़ने वाले राज्यों में सुधार का तीव्र दबाव उत्पन्न होता है।

नीति आयोग द्वारा संचालित प्रमुख राष्ट्रीय सूचकांक:

क) एसडीजी इंडिया इंडेक्स (SDG India Index): 17 सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में राज्यों के प्रदर्शन की निगरानी।

ख) बहुआयामी गरीबी सूचकांक (National MPI): 12 संकेतकों के आधार पर गरीबी की बहुआयामी तीव्रता का मापन।

ग) भारत नवाचार सूचकांक (India Innovation Index): राज्यों में अनुसंधान, नवाचार और बौद्धिक संपदा पारिस्थितिकी का मूल्यांकन।

घ) राज्य ऊर्जा और जलवायु सूचकांक (SECI): स्वच्छ ऊर्जा की पहुंच, ऊर्जा दक्षता और पर्यावरणीय लचीलेपन का विश्लेषण।

ङ) स्कूल शिक्षा गुणवत्ता सूचकांक (SEQI) तथा राज्य स्वास्थ्य सूचकांक।

थिंक टैंक की विशिष्ट भूमिका एवं परिवर्तनकारी पहलें

अ) रणनीतिक अनुसंधान एवं नीतिगत परामर्श: इलेक्ट्रिक मोबिलिटी, हरित हाइड्रोजन मिशन, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की राष्ट्रीय रणनीति तथा कृषि विपणन सुधारों पर नीतिगत दिशा-निर्देश।

ब) अटल इनोवेशन मिशन (AIM): देश के विद्यालयों में नवाचार और वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा देने हेतु 10,000 से अधिक 'अटल टिंकरिंग लैब्स' (ATL) तथा उच्च शिक्षण संस्थानों में 'अटल इनक्यूबेशन सेंटर्स' (AIC) की स्थापना।

स) आकांक्षी जिला एवं ब्लॉक कार्यक्रम: 112 आकांक्षी जिलों और 500 आकांक्षी ब्लॉकों में वास्तविक समय डेटा ट्रैकिंग के माध्यम से मानव विकास संकेतकों का तीव्र रूपांतरण।

द) परिसंपत्ति मौद्रीकरण पाइपलाइन (National Monetisation Pipeline - NMP): अप्रयुक्त अथवा अल्प-प्रयुक्त सार्वजनिक अवसंरचना परिसंपत्तियों से 6 लाख करोड़ रुपये की निजी निवेश पूंजी जुटाने का रणनीतिक रोडमैप।

खंड B: राजस्थान का विकास प्रतिमान

उपखंड a: राजस्थान में आर्थिक विकास के प्रमुख संकेतक, क्षेत्रीय विषमताएं, मरुस्थलीकरण की चुनौतियां

राजस्थान की व्यापक आर्थिक रूपरेखा एवं संकेतक

राजस्थान क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का सबसे बड़ा राज्य है, जो देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का **10.41 प्रतिशत** (3,42,239 वर्ग किलोमीटर) तथा देश की कुल जनसंख्या का लगभग **5.66 प्रतिशत** धारण करता है। राज्य का आर्थिक प्रदर्शन प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रों के संरचनात्मक संतुलन पर निर्भर करता है।

राज्य की आर्थिक समीक्षा के अद्यतन वित्तीय आंकड़ों के अनुसार आर्थिक स्थिति का परिदृश्य निम्नलिखित है:

क) सकल राज्य घरेलू उत्पाद (GSDP):

प्रचलित मूल्यों पर GSDP का अग्रिम अनुमान लगभग 15.5 लाख करोड़ से 17.0 लाख करोड़ रुपये के मध्य दर्ज किया गया है।

स्थिर (2011-12) मूल्यों पर GSDP की वास्तविक वृद्धि दर लगभग 7.0 से 7.5 प्रतिशत के स्तर पर आकलित है।

ख) जीएसडीपी में क्षेत्रवार आनुपातिक योगदान (स्थिर मूल्यों पर):

कृषि एवं संबद्ध क्षेत्र: लगभग 27 से 29 प्रतिशत (राष्ट्रीय औसत से काफी अधिक, जो राज्य की अर्थव्यवस्था की कृषि-निर्भरता को दर्शाता है)।

उद्योग क्षेत्र (विनिर्माण, खनन, निर्माण, विद्युत): लगभग 27 से 28 प्रतिशत।

सेवा क्षेत्र (व्यापार, होटल, परिवहन, वित्तीय व रियल एस्टेट सेवाएं): लगभग 43 से 44 प्रतिशत।

ग) प्रति व्यक्ति आय (Per Capita Income):

प्रचलित मूल्यों पर राज्य की प्रति व्यक्ति आय लगभग 1,56,000 से 1,65,000 रुपये के स्तर पर है, जो राष्ट्रीय औसत से कुछ कम है।

स्थिर (2011-12) मूल्यों पर प्रति व्यक्ति वास्तविक आय लगभग 86,000 से 90,000 रुपये के मध्य है।

राज्य में क्षेत्रीय विषमताएं एवं भौगोलिक विभाजन

अरावली पर्वतमाला राजस्थान को दो असमान भौगोलिक और आर्थिक संभागों में विभाजित करती है:

अ) पश्चिमी मरुस्थलीय संभाग: राज्य के कुल क्षेत्रफल का लगभग **61.11 प्रतिशत** भाग थार के मरुस्थल के अंतर्गत आता है, जहां राज्य की लगभग **40 प्रतिशत** जनसंख्या निवास करती है। यह क्षेत्र अत्यधिक शुष्कता, कम वर्षा (10 से 40 सेमी), भूजल की लवणता और सीमित कृषि संभावनाओं से ग्रस्त है।

ब) पूर्वी एवं दक्षिणी-पूर्वी मैदान: चंबल, बनास और बाणगंगा बेसिन का यह उपजाऊ भूभाग अपेक्षाकृत सघन आबादी, गहन कृषि, बेहतर औद्योगिक अवसंरचना और उच्च साक्षरता दर से युक्त है।

स) दक्षिणी जनजातीय क्षेत्र (टीडीपी क्षेत्र): उदयपुर, बांसवाड़ा, डूंगरपुर और प्रतापगढ़ के अरावली पर्वतीय क्षेत्र में स्थित जनजातीय बहुल आबादी, जो छोटी जोतों, सीमित औद्योगिकीकरण और निम्न मानव विकास संकेतकों के कारण आर्थिक दृष्टि से पिछड़ी हुई है।

मरुस्थलीकरण (Desertification) की गंभीर चुनौतियां

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) के अंतरिक्ष उपयोग केंद्र (SAC) द्वारा प्रकाशित 'डेजर्टिफिकेशन एंड लैंड डिग्रेडेशन एटलस' के अनुसार, राजस्थान का लगभग **62 से 67 प्रतिशत भौगोलिक भूभाग भूमि क्षरण और मरुस्थलीकरण की प्रक्रिया से प्रभावित** है।

मरुस्थलीकरण के प्राथमिक चालक एवं प्रभाव:

क) वायु अपरदन (Wind Erosion): तीव्र आंधियों और वनस्पति आवरण के अभाव के कारण उपजाऊ शीर्ष मृदा का व्यापक विस्थापन; यह राज्य में मरुस्थलीकरण का सबसे बड़ा एकल कारक (44 प्रतिशत से अधिक) है।

ख) जल संकट और भूजल का अति-दोहन: देश के कुल सतही जल संसाधनों का मात्र **1.16 प्रतिशत** तथा भूजल का मात्र **1.72 प्रतिशत** राजस्थान में उपलब्ध है। केंद्रीय भूजल बोर्ड (CGWB) के अनुसार, राज्य के 302 भूजल ब्लॉकों में से 200 से अधिक ब्लॉक 'अति-दोहित' (Over-exploited / Dark Zones) श्रेणी में हैं।

ग) इंदिरा गांधी नहर परियोजना (IGNP) कमान क्षेत्र में जल-जमाव और लवणता: थार मरुस्थल में व्यापक नहरी सिंचाई के कारण घग्गर बेसिन तथा श्रीगंगानगर, हनुमानगढ़ और बीकानेर के निचले क्षेत्रों में 'सेम' (Waterlogging) और क्षारीयता की गंभीर समस्या उत्पन्न हो गई है, जिससे उपजाऊ भूमि बंजर में तब्दील हो रही है।

घ) मरुस्थलीकरण नियंत्रण हेतु संस्थागत पहलें:

केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (CAZRI - जोधपुर, 1959): शुष्क कृषि, बालूका स्तूप स्थिरीकरण और सौर ऊर्जा के अनुप्रयोगों पर अनुसंधान।

शुष्क वन अनुसंधान संस्थान (AFRI - जोधपुर, 1987): मरुस्थलीय वानिकी और जैव-प्रौद्योगिकी का विकास।

मरु विकास कार्यक्रम (DDP - 1977-78) तथा सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम (DPAP)।

अरावली वृक्षारोपण परियोजना: मरुस्थल के पूर्व की ओर प्रसार को रोकने हेतु हरित अवरोधक (Green Wall) का निर्माण।

उपखंड b: राजस्थान की फ्लैगशिप सामाजिक-आर्थिक योजनाएं, मानव विकास उपलब्धियां, राज्य सतत विकास लक्ष्य रोडमैप

राजस्थान की प्रमुख फ्लैगशिप सामाजिक-आर्थिक योजनाएं

राज्य सरकार ने नागरिकों को सामाजिक सुरक्षा, सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज, खाद्य संप्रभुता और आर्थिक स्वावलंबन प्रदान करने हेतु कई महत्वाकांक्षी फ्लैगशिप योजनाएं क्रियान्वित की हैं:

योजना का नाम	प्रशासनिक विभाग एवं शुभारंभ वर्ष	प्रमुख विधिक एवं वित्तीय प्रावधान	लक्षित लाभार्थी एवं प्रभाव
मुख्यमंत्री आयुष्मान आरोग्य योजना (पूर्ववर्ती चिरंजीवी)	चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग	प्रति परिवार प्रतिवर्ष 25 लाख रुपये तक का कैशलेस स्वास्थ्य बीमा, 5 लाख का दुर्घटना बीमा, देश भर के संबद्ध निजी व सरकारी अस्पतालों में जटिल उपचार।	राज्य के शत-प्रतिशत जनाधार कार्ड धारक परिवार; स्वास्थ्य पर जेब से होने वाले व्यय (OOPE) में भारी कमी।

wincompete

मुख्यमंत्री निःशुल्क दवा एवं जांच योजना	चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग (2011/2013)	सरकारी अस्पतालों में समस्त आवश्यक दवाएं, सर्जिकल सामग्री और नैदानिक जांचें (OPD/IPD) पूर्णतः निःशुल्क।	राज्य के सभी नागरिक; सार्वजनिक स्वास्थ्य केंद्रों में फुटफॉल में ऐतिहासिक वृद्धि।
राजस्थान सामाजिक सुरक्षा पेंशन योजनाएं	सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता विभाग	वृद्धजन, एकल नारी और विशेष योग्यजनों को न्यूनतम 1000 से 1150 रुपये प्रतिमाह पेंशन; राजस्थान न्यूनतम आय गारंटी अधिनियम 2023 द्वारा 15% वार्षिक स्वतः वृद्धि का विधिक अधिकार।	90 लाख से अधिक कमजोर एवं असहाय व्यक्ति।
इंदिरा रसोई योजना / श्री अन्नपूर्णा रसोई योजना	स्वायत्त शासन विभाग	शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में मात्र 8 रुपये में पौष्टिक, स्वच्छ और गरिमापूर्ण भोजन की थाली (450 ग्राम); "कोई भूखा न सोए" का संकल्प।	श्रमिक वर्ग, निर्धन एवं जरूरतमंद नागरिक।
पालहार योजना	सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता विभाग (2004)	अनाथ, निराश्रित और विधवाओं के बच्चों के पालन-पोषण, शिक्षा और वस्त्रों हेतु 1500 से 2500 रुपये प्रतिमाह की प्रत्यक्ष आर्थिक सहायता।	अनाथ एवं संकटग्रस्त परिवारों के लाखों बच्चे।
मुख्यमंत्री अनुप्रति कोचिंग योजना	जनजातीय क्षेत्रीय विकास एवं सामाजिक न्याय विभाग	व्यावसायिक पाठ्यक्रमों और प्रतियोगी परीक्षाओं की उत्कृष्ट तैयारी हेतु प्रतिष्ठित संस्थानों में पूर्णतः निःशुल्क कोचिंग और आवास भत्ता।	आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के मेधावी विद्यार्थी (वार्षिक 30,000 सीटें)।
इंदिरा गांधी शहरी रोजगार गारंटी योजना	स्वायत्त शासन विभाग (2022)	मनरेगा की तर्ज पर शहरी क्षेत्रों के अकुशल श्रमिकों को प्रतिवर्ष 125 दिनों के विधिक रोजगार की गारंटी।	शहरी क्षेत्रों के बेरोजगार और निर्धन परिवार।

wincompete

मानव विकास उपलब्धियां एवं चुनौतियां
राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-5) और भारत के महापंजीयक (RGI) के अद्यतन सांख्यिकीय बुलेटिनों के अनुसार राजस्थान के मानव विकास संकेतकों में उल्लेखनीय संरचनात्मक सुधार दर्ज हुआ है:

क) मातृ मृत्यु अनुपात (MMR): राज्य में मातृ मृत्यु अनुपात घटकर **113 प्रति 1,00,000 जीवित जन्म** पर आ गया है (जो एक दशक पूर्व 250 से अधिक था)। संस्थागत प्रसव (Institutional Deliveries) की दर बढ़कर 95 प्रतिशत से अधिक हो गई है।

ख) शिशु मृत्यु दर (IMR): वर्तमान में घटकर लगभग **32 से 35 प्रति 1000 जीवित जन्म** रह गई है।

ग) जन्म के समय लिंगानुपात (SRB): पीसीपीएनडीटी अधिनियम के कड़े क्रियान्वयन और 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' अभियान के प्रभाव से जन्म के समय लिंगानुपात सुधरकर **929 से 940 बालिकाओं प्रति 1000 बालकों** के स्तर पर पहुंच गया है (2011 की जनगणना में 888 था)।

घ) साक्षरता दर की विसंगति: 2011 की जनगणना के अनुसार राज्य की कुल साक्षरता दर 66.1 प्रतिशत थी। इसमें सबसे गंभीर चिंता का विषय **महिला साक्षरता दर का मात्र 52.1 प्रतिशत** होना था (जालौर में न्यूनतम 38.5%)। हालिया आवधिक श्रमबल सर्वेक्षणों (PLFS) में महिला साक्षरता में सुधार हुआ है, परंतु यह अभी भी राष्ट्रीय औसत से पीछे है।

राज्य सतत विकास लक्ष्य (SDG) रोडमैप: संस्थागत संरचना एवं रैंकिंग
नीति आयोग के राष्ट्रीय एसडीजी ढांचे के अनुरूप राजस्थान सरकार ने 'सतत विकास लक्ष्य क्रियान्वयन रोडमैप 2030' अंगीकार किया है:

अ) नोडल विभाग एवं समन्वय: राज्य का **आयोजना विभाग** (Planning Department) एसडीजी के क्रियान्वयन हेतु राज्य स्तर पर नोडल एजेंसी है। इसके अंतर्गत 'एसडीजी कार्यान्वयन केंद्र' (SDG Implementation Centre) स्थापित किया गया है।

ब) जिला स्तरीय निगरानी: प्रत्येक जिले में जिला कलेक्टर की अध्यक्षता में 'जिला स्तरीय एसडीजी कार्यान्वयन समिति' गठित है, जिसमें मुख्य योजना अधिकारी (CPO) सदस्य सचिव के रूप में कार्य करते हैं।

स) राजस्थान एसडीजी इंडेक्स (Rajasthan State SDG Index):

आयोजना विभाग द्वारा प्रतिवर्ष राज्य के सभी जिलों का जिला-वार एसडीजी इंडेक्स प्रकाशित किया जाता है।

इसमें 0 से 100 के पैमाने पर जिलों को चार श्रेणियों (आकांक्षी: 0-49, परफॉर्मर: 50-64, फ्रंट रनर: 65-99, अचीवर: 100) में आंका जाता है।

अद्यतन रैंकिंग प्रवृत्तियां: जयपुर, झुंझुनूं, सीकर और कोटा जैसे उत्तरी और पूर्वी जिले स्वास्थ्य, शिक्षा और स्वच्छ ऊर्जा में उत्कृष्ट प्रदर्शन के साथ 'फ्रंट रनर' श्रेणी में शीर्ष स्थान प्राप्त कर रहे हैं, जबकि बाड़मेर, जैसलमेर और जालौर जैसे मरुस्थलीय जिले तथा प्रतापगढ़ जैसे दक्षिणी जिले अधोसंरचना और जल उपलब्धता के अभाव के कारण निचले पायदानों पर हैं।

wincompete

महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली एवं रणनीतिक अवधारणाएं

रोलिंग प्लान (अनवरत योजना): गुन्नार मिर्डल द्वारा अपनी पुस्तक *'एशियन ड्रामा'* में प्रतिपादित और प्रोफेसर डी.टी. लकड़ावाला द्वारा भारत में (1978-80) लागू की गई योजना। इसमें तीन अलग-अलग योजनाएं एक साथ चलती हैं: एक चालू वर्ष का बजट, एक 3 से 5 वर्ष की मध्यम अवधि की योजना जिसका प्रतिवर्ष पुनर्मूल्यांकन होता है, तथा एक 15 से 20 वर्ष की दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य योजना।

हिंदू संवृद्धि दर (Hindu Rate of Growth): प्रख्यात भारतीय अर्थशास्त्री प्रो. राज कृष्णा द्वारा वर्ष 1978 में गढ़ा गया व्यंग्यात्मक पद, जो वर्ष 1950 से 1980 के समाजवादी नियोजन के तीन दशकों के दौरान भारत की सुस्त वार्षिक जीडीपी वृद्धि दर (औसतन 3.5%) और प्रति व्यक्ति आय की मात्र 1.3% की वृद्धि को दर्शाता है। यह पद किसी धार्मिक विश्वास का नहीं, बल्कि तत्कालीन संरक्षणवादी आर्थिक नीतियों का परिचायक था।

जनाधार (Jan Aadhaar) कार्ड प्रणाली: राजस्थान सरकार द्वारा क्रियान्वित 'एक नंबर, एक कार्ड, एक पहचान' पर आधारित एकीकृत डिजिटल डिलीवरी प्लेटफॉर्म। यह परिवार के स्तर पर सामाजिक सुरक्षा, वित्तीय समावेशन और डीबीटी योजनाओं के पारदर्शी वितरण हेतु प्राथमिक प्रशासनिक आधार के रूप में कार्य करता है, जिसमें परिवार की 18 वर्ष से अधिक आयु की महिला को अनिवार्य रूप से 'मुखिया' नामांकित किया जाता है।

मरुस्थलीकरण का अग्रगामी संचलन (Desertification Front): अरावली पर्वतमाला के विखंडित दर्रों (यथा सांभर झील गैप) के माध्यम से थार के मरुस्थल की रेतीली हवाओं और बालूका स्तूपों का पूर्वी राजस्थान (जयपुर, दौसा, अलवर) और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र की ओर होने वाला क्रमिक भौगोलिक प्रसार।

कोर-पेरिफेरी विकास मॉडल (Core-Periphery Model): जॉन फ्रीडमैन द्वारा प्रतिपादित क्षेत्रीय विकास का सिद्धांत। राजस्थान के संदर्भ में जयपुर-भिवाड़ी-अलवर औद्योगिक गलियारा आर्थिक समृद्धि का 'कोर' (केंद्र) बन गया है, जो राज्य के दूरदराज के मरुस्थलीय और जनजातीय 'पेरिफेरी' (परिधि) से श्रम और संसाधनों को आकर्षित करता है, जिससे अंतःक्षेत्रीय विषमता बढ़ती है।

राजस्थान न्यूनतम आय गारंटी अधिनियम, 2023: देश का प्रथम कानून जो राज्य के प्रत्येक परिवार को शहरी अथवा ग्रामीण क्षेत्र में प्रतिवर्ष 125 दिनों के न्यूनतम रोजगार की विधिक गारंटी तथा सभी पात्र विशेष श्रेणियों को प्रतिवर्ष 15 प्रतिशत की स्वतः वृद्धि के साथ न्यूनतम 1000 रुपये प्रतिमाह सामाजिक सुरक्षा पेंशन का कानूनी अधिकार प्रदान करता है।

सांस्थानिक साख-जमा अनुपात (Credit-Deposit Ratio - CD Ratio): किसी निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में वाणिज्यिक बैंकों द्वारा जुटाई गई कुल जमा राशि के सापेक्ष वितरित किए गए कुल ऋण का प्रतिशत अनुपात। राजस्थान में यह अनुपात पश्चिमी जिलों में राष्ट्रीय औसत की तुलना में काफी कम है, जो स्थानीय बचतों के बाहर पलायन का संकेत देता है।

wincompete

अध्याय 11: लेखांकन - मूलभूत सिद्धांत, मान्यताएं एवं दोहरा लेखा प्रणाली

खंड A: लेखांकन का परिचय एवं सैद्धांतिक ढांचा

उपखंड a: लेखांकन की परिभाषा, प्रकृति, उद्देश्य, कार्य, बुक-कीपिंग बनाम अकाउंटिंग

लेखांकन की आधिकारिक एवं वैधानिक परिभाषाएं

लेखांकन केवल वित्तीय आंकड़ों को दर्ज करने की एक यांत्रिक विधि नहीं है, अपितु यह किसी भी व्यावसायिक अथवा प्रशासनिक इकाई की आर्थिक गतिविधियों की पहचान करने, उनका मापन करने तथा सूचनाओं को संप्रेषित करने की एक सार्वभौमिक भाषा है। वैश्विक स्तर पर मान्य प्रमुख लेखांकन निकायों द्वारा इसकी परिभाषाएं निम्नलिखित रूप में स्थापित की गई हैं:

क) अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ सर्टिफाइड पब्लिक एकाउंटेंट्स (AICPA, 1941) के अनुसार: "लेखांकन व्यावसायिक लेन-देनों और घटनाओं को, जो कम से कम आंशिक रूप से वित्तीय प्रकृति के हों, मुद्रा के रूप में प्रभावपूर्ण रीति से लिखने, वर्गीकृत करने, संक्षेप में व्यक्त करने तथा उनके परिणामों का विश्लेषण एवं निर्वचन करने की एक व्यवस्थित कला है।"

ख) अमेरिकन एकाउंटिंग एसोसिएशन (AAA, 1966) के अनुसार: "लेखांकन आर्थिक सूचनाओं की पहचान करने, उन्हें मापने तथा संप्रेषित करने की वह विधिक एवं तार्किक प्रक्रिया है, जो सूचना के उपयोगकर्ताओं को सुविज्ञ निर्णय लेने तथा विवेकपूर्ण राय बनाने में सक्षम बनाती है।"

लेखांकन की प्रकृति: कला एवं विज्ञान का संश्लेषित स्वरूप

लेखांकन की प्रकृति द्विविध है, जिसमें वैज्ञानिक सिद्धांतों की कठोरता तथा व्यावहारिक कला की लचीलापन एक साथ समाहित हैं:

अ) एक विज्ञान के रूप में: लेखांकन सुव्यवस्थित, तर्कसंगत एवं पूर्व-निर्धारित नियमों तथा सार्वभौमिक सिद्धांतों (सामान्यतः स्वीकृत लेखांकन सिद्धांत - GAAP) पर आधारित है। जिस प्रकार भौतिक विज्ञान के नियम निश्चित होते हैं, उसी प्रकार दोहरा लेखा प्रणाली के नाम (डेबिट) एवं जमा (क्रेडिट) के नियम भी निश्चित एवं वैज्ञानिक हैं।

ब) एक कला के रूप में: वित्तीय लेन-देनों को दर्ज करने, उनका वर्गीकरण करने तथा उनसे सार्थक निष्कर्ष निकालने हेतु विशिष्ट व्यावसायिक कौशल, अनुभव एवं निर्णय-क्षमता की आवश्यकता होती है। विभिन्न परिस्थितियों में मूल्यह्रास की पद्धति चुनना अथवा संदिग्ध ऋणों के लिए प्रावधान करना लेखाकार के व्यावहारिक कौशल पर निर्भर करता है।

स) एक सूचना प्रणाली (AIS) के रूप में: आधुनिक संदर्भ में लेखांकन एक वित्तीय सूचना प्रणाली है जो कच्चे आर्थिक आंकड़ों (इनपुट) को ग्रहण करती है, लेखांकन चक्र के माध्यम से उनका प्रसंस्करण करती है, तथा वित्तीय विवरणियों (आउटपुट) के रूप में आंतरिक एवं बाह्य उपयोगकर्ताओं को निर्णय-निर्माण हेतु उपयोगी प्रतिवेदन उपलब्ध कराती है।

लेखांकन के प्राथमिक उद्देश्य एवं संस्थागत कार्य

लेखांकन प्रणाली किसी भी संगठन में निम्नलिखित मूलभूत उद्देश्यों और कार्यों का निष्पादन करती है:

क) वित्तीय लेन-देनों का व्यवस्थित एवं पूर्ण अभिलेखन: मानवीय स्मृति की सीमाओं के कारण व्यापार के समस्त लेन-देनों को क्रमानुसार प्राथमिक पुस्तकों (जर्नल एवं सहायक बहियों) में दर्ज करना ताकि किसी भी वित्तीय विसंगति से बचा जा सके।

ख) शुद्ध परिचालन लाभ अथवा हानि का निर्धारण: एक निश्चित लेखांकन अवधि (सामान्यतः 1 वर्ष) के अंत में व्यापारिक तथा लाभ-हानि खाता तैयार करके यह सुनिश्चित करना कि उद्यम ने शुद्ध रूप से लाभ अर्जित किया है अथवा हानि उठाई है।

ग) वित्तीय स्थिति का यथार्थ प्रकटीकरण: किसी निश्चित तिथि पर तुलन-पत्र (बैलेंस शीट) के माध्यम से व्यवसाय की कुल संपत्तियों (Assets), बाह्य देयताओं (Liabilities) तथा स्वामियों की पूंजी (Equity) की वास्तविक स्थिति प्रस्तुत करना।

घ) परिसंपत्तियों पर विधिक नियंत्रण एवं सुरक्षा: व्यवसाय के रोकड़, स्टॉक, संयंत्र, मशीनरी तथा देनदारों का सटीक बहीखाता रखकर गबन, चोरी अथवा अनधिकृत उपयोग की रोकथाम करना।

ङ) वैधानिक अनुपालन: आयकर अधिनियम 1961, कंपनी अधिनियम 2013, वस्तु एवं सेवा कर (GST) अधिनियम 2017 तथा विभिन्न श्रम संहिताओं के तहत विहित कर निर्धारण, अंकेक्षण (Audit) तथा विनियामक विवरणी दाखिल करने हेतु कानूनी साक्ष्य उपलब्ध कराना।

च) उपयोगकर्ताओं को सूचना संप्रेषण: वित्तीय प्रतिवेदनों के माध्यम से आंतरिक उपयोगकर्ताओं (प्रबंधन, संचालक मंडल) तथा बाह्य उपयोगकर्ताओं (निवेशक, बैंक, वित्तीय संस्थान, लेनदार, शोधकर्ता, सरकार एवं कर प्राधिकारी) को सटीक वित्तीय स्थिति से अवगत कराना।

बुक-कीपिंग, अकाउंटिंग एवं एकाउंटेंसी के मध्य संरचनात्मक विभेद

व्यावसायिक जगत में बुक-कीपिंग (पुस्तपालन) और अकाउंटिंग (लेखांकन) को प्रायः एक-दूसरे का पर्याय मान लिया जाता है, परंतु तकनीकी एवं व्यावहारिक दृष्टि से इनके मध्य स्पष्ट सीमा-रेखा विद्यमान है। एकाउंटेंसी (लेखाकर्म) इन दोनों को समाहित करने वाला संपूर्ण ज्ञान क्षेत्र है।

तुलना का आधार	**पुस्तपालन (Book-keeping)**	**लेखांकन (Accounting)**
कार्यक्षेत्र एवं परिधि	यह केवल वित्तीय लेन-देनों की पहचान करने, उन्हें मापने, प्रारंभिक पुस्तकों में लिखने तथा लेजर में खतौनी करने तक सीमित है।	इसका कार्यक्षेत्र विस्तृत है; यह तलपट बनाने, अंतिम खाते तैयार करने, परिणामों का विश्लेषण करने तथा संप्रेषित करने से संबंधित है।
प्रक्रियात्मक चरण	यह लेखांकन चक्र का प्राथमिक (Primary) एवं बुनियादी चरण है।	यह पुस्तपालन के समाप्त होने के पश्चात प्रारंभ होने वाला द्वितीयक (Secondary) चरण है।
प्रकृति एवं जटिलता	यह नियमित, लिपिकीय (Clerical) तथा यांत्रिक प्रकृति का कार्य है जिसमें गहन बौद्धिक विश्लेषण की आवश्यकता नहीं होती।	यह विश्लेषणात्मक, व्याख्यात्मक तथा उच्च निर्णय-क्षमता से युक्त प्रबंधकीय कार्य है।

wincompete

संबंधित दायित्व	यह कार्य सामान्यतः कनिष्ठ कर्मचारियों (Junior Staff) अथवा बुक-कीपर्स द्वारा निष्पादित किया जाता है।	यह कार्य वरिष्ठ एवं योग्य लेखाकारों (Senior Accountants / Chartered Accountants) द्वारा किया जाता है।
उद्देश्य	वित्तीय लेन-देनों का शुद्ध, क्रमबद्ध तथा पूर्ण अभिलेख तैयार करना।	परिचालन परिणामों (लाभ-हानि) तथा शुद्ध वित्तीय स्थिति का निर्धारण कर निर्णय-निर्माण में सहायता करना।

उपखंड b: लेखांकन की मूलभूत अवधारणाएं - व्यापारिक अस्तित्व, मुद्रा मापन, चालू व्यवसाय, लेखांकन अवधि, उपार्जन अवधारणा

सामान्यतः स्वीकृत लेखांकन सिद्धांत (GAAP) का वैधानिक महत्व

वित्तीय विवरणियों की विश्वसनीयता, एकरूपता, प्रासंगिकता एवं तुलनीयता सुनिश्चित करने हेतु जिन आधारभूत नियमों, प्रथाओं एवं मान्यताओं का पालन किया जाता है, उन्हें सामान्यतः स्वीकृत लेखांकन सिद्धांत कहा जाता है। भारत में भारतीय सनदी लेखाकार संस्थान (ICAI) द्वारा जारी 'लेखांकन मानक' (AS) तथा कंपनी अधिनियम 2013 की धारा 133 के तहत अधिसूचित 'भारतीय लेखा मानक' (Ind AS) इन्हीं सिद्धांतों पर आधारित हैं।

व्यापारिक अस्तित्व की संकल्पना (Business Entity Concept)

इस अवधारणा के अनुसार, व्यापार का वैधानिक एवं लेखांकन अस्तित्व उसके स्वामी (प्रोपराइटर/साझेदार/अंशधारक) से पूर्णतः पृथक एवं स्वतंत्र माना जाता है।

अ) लेखांकन दृष्टिकोण: बहीखातों में समस्त लेन-देनों को 'व्यापार' के दृष्टिकोण से लिखा जाता है, न कि 'स्वामी' के दृष्टिकोण से।

ब) पूंजी का देयता स्वरूप: स्वामी द्वारा व्यवसाय में लगाई गई पूंजी (Capital) को व्यवसाय के बहीखातों में आंतरिक देयता (Internal Liability) के रूप में दर्शाया जाता है, क्योंकि व्यवसाय अपने स्वामी का ऋणी होता है। इसी कारण पूंजी पर ब्याज व्यवसाय हेतु व्यय माना जाता है।

स) आहरण (Drawings) का समायोजन: जब स्वामी अपने व्यक्तिगत उपयोग हेतु व्यवसाय से नकद अथवा माल निकालता है, तो उसे व्यवसाय का व्यय न मानकर स्वामी के पूंजी खाते में से घटाया जाता है।

द) ऐतिहासिक विधिक संपुष्टि: कंपनी विधि में सोलोमन बनाम सोलोमन एंड कंपनी लिमिटेड (1897) के ऐतिहासिक वाद में इस सिद्धांत को 'पृथक विधिक अस्तित्व' (Separate Legal Entity) के रूप में सर्वोच्च मान्यता प्रदान की गई थी।

मुद्रा मापन की संकल्पना (Money Measurement Concept)

इस सिद्धांत के अनुसार, लेखांकन की बहियों में केवल और केवल उन्हीं लेन-देनों, घटनाओं और तथ्यों को दर्ज किया जा सकता है जिन्हें मुद्रा (रुपये अथवा किसी आधिकारिक राष्ट्रीय मुद्रा) के रूप में संख्यात्मक एवं वस्तुनिष्ठ रूप से व्यक्त किया जा सके।

क) गैर-मौद्रिक तथ्यों का अपवर्जन: यदि कोई घटना व्यवसाय के लिए कितनी भी महत्वपूर्ण क्यों न हो, यदि उसका मौद्रिक मूल्यांकन संभव नहीं है, तो उसे वित्तीय बहियों में दर्ज नहीं किया जाएगा। उदाहरणार्थ: मुख्य कार्यकारी अधिकारी (CEO) तथा प्रबंध निदेशक के मध्य का गंभीर विवाद,

कर्मचारियों की कार्यकुशलता, ईमानदारी, उच्च कोटि की तकनीकी विशेषज्ञता अथवा प्रतिस्पर्धी बाजार में उत्पन्न हड़ताल।

ख) सीमाएं: यह अवधारणा मुद्रा के क्रय-शक्ति मूल्य में होने वाले परिवर्तनों (मुद्रास्फीति अथवा अपस्फीति) की पूर्ण उपेक्षा करती है। 1980 में खरीदा गया भूमि का टुकड़ा और 2026 में खरीदी गई समान भूमि को उनके ऐतिहासिक लागत मूल्य पर ही दर्ज किया जाता है, जिससे कभी-कभी वित्तीय विवरण वास्तविक बाजार मूल्य से भटक जाते हैं।

चालू व्यवसाय की मान्यता (Going Concern Concept)
इस मूलभूत मान्यता के अनुसार, यह मान लिया जाता है कि व्यावसायिक इकाई एक अनिश्चित काल तक निरंतर कार्य करती रहेगी और निकट भविष्य (कम से कम आगामी 1 लेखा वर्ष) में न तो उसके परिसमापन (Liquidation) की कोई संभावना है और न ही उसके परिचालन के पैमाने को अत्यंत सीमित करने की कोई विवशता है।

अ) परिसंपत्तियों का वर्गीकरण: इसी अवधारणा के आधार पर संपत्तियों को अल्पकालिक (चालू संपत्तियां) तथा दीर्घकालिक (स्थिर संपत्तियां) में विभाजित किया जाता है।

ब) ऐतिहासिक लागत पर मूल्यांकन: स्थिर परिसंपत्तियों (मशीनरी, भवन आदि) को उनके वर्तमान शुद्ध वसूली योग्य बाजार मूल्य (Net Realizable Value) पर दर्ज न करके, उनके ऐतिहासिक क्रय मूल्य में से संचित मूल्यह्रास घटाकर दिखाया जाता है। यदि चालू व्यवसाय की मान्यता न हो, तो समस्त परिसंपत्तियों को उनके तत्काल विक्रय योग्य (Break-up / Forced Sale) मूल्य पर दिखाना अनिवार्य हो जाएगा।

स) स्थगित आयगत व्यय: विज्ञापन अथवा शोध एवं विकास पर किए गए भारी व्ययों को कई वर्षों में अपलेखित (Amortize) करने का विधिक आधार यही मान्यता प्रदान करती है।

लेखांकन अवधि की संकल्पना (Accounting Period Concept)
यद्यपि चालू व्यवसाय की अवधारणा के अनुसार व्यवसाय का जीवन अनिश्चित एवं अंतहीन होता है, परंतु अनिश्चित काल तक व्यवसाय के वास्तविक लाभ अथवा हानि जानने की प्रतीक्षा नहीं की जा सकती। अतः व्यवसाय के संपूर्ण जीवन-काल को छोटे-छोटे समान अंतरालों में विभाजित कर दिया जाता है, जिसे 'लेखांकन अवधि' कहते हैं।

क) वैधानिक समयावधि: सामान्यतः यह अवधि 12 माह की होती है। आयकर अधिनियम 1961 की धारा 3 के अनुसार, भारत में प्रत्येक करदाता हेतु वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल से प्रारंभ होकर 31 मार्च को समाप्त होना कानूनी रूप से बाध्यकारी है।

ख) समय-सीमा का महत्व: इस अवधि के अंत में वित्तीय विवरणियां तैयार की जाती हैं ताकि कर देनदारियों का निर्धारण हो सके, स्वामियों को लाभांश वितरित किया जा सके तथा प्रबंधन विगत वर्षों के प्रदर्शन की तुलना कर सके।

उपार्जन की संकल्पना (Accrual Concept)
उपार्जन अवधारणा आधुनिक लेखांकन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण तकनीकी आधारशिला है। इसके अनुसार, आय और व्यय को उस समय दर्ज किया जाना चाहिए जब वे 'उपार्जित' (Earned) अथवा 'देय' (Incurred) होते हैं, न कि उस समय जब वास्तविक नकद प्राप्त होता है अथवा नकद भुगतान किया जाता है।

अ) आय की पहचान (Revenue Recognition): यदि माल का स्वामित्व अथवा सेवाओं का लाभ चालू वर्ष में ग्राहक को हस्तांतरित कर दिया गया है, तो उसे चालू वर्ष की आय माना जाएगा, भले ही ग्राहक से राशि आगामी वर्ष में प्राप्त हो (प्राप्य आय / Accrued Income)।

ब) व्यय का मिलान: यदि चालू वर्ष में किसी सेवा (यथा कार्यालय किराया अथवा कर्मचारी वेतन) का उपयोग कर लिया गया है, तो उसे चालू वर्ष के लाभ-हानि खाते में व्यय के रूप में डेबिट किया जाएगा, भले ही उसका वास्तविक नकद भुगतान अगले वर्ष किया जाए (अदत्त व्यय / Outstanding Expenses)।

स) लेखांकन की दो प्रणालियां:

रोकड़ प्रणाली (Cash System): लेन-देन तभी दर्ज होते हैं जब वास्तविक नकद आता या जाता है (सरकारी लेखांकन तथा पेशेवरों जैसे डॉक्टरों/वकीलों द्वारा आंशिक उपयोग)।

उपार्जन प्रणाली (Accrual / Mercantile System): लेन-देन उनके घटित होने के समय दर्ज होते हैं (कंपनी अधिनियम 2013 की धारा 128(1) के तहत सभी पंजीकृत कंपनियों हेतु यह अनिवार्य प्रणाली है)।

अन्य संबद्ध सहायक सिद्धांत

क) लागत संकल्पना (Cost Concept): परिसंपत्तियों को हमेशा उनके अधिग्रहण मूल्य (ऐतिहासिक लागत) पर ही बहियों में दर्ज किया जाना चाहिए।

ख) मिलान संकल्पना (Matching Concept): किसी निश्चित अवधि के शुद्ध लाभ के निर्धारण हेतु उस अवधि की समस्त आयों का मिलान उसी आय को अर्जित करने में किए गए समस्त व्ययों से किया जाना अनिवार्य है।

ग) रूढ़िवादिता / विवेकशीलता की संकल्पना (Prudence / Conservatism): भविष्य में होने वाली समस्त संभावित हानियों और दायित्वों के लिए बहीखातों में तुरंत प्रावधान (Provision) किया जाना चाहिए, परंतु किसी भी अप्रत्याशित या असंभावित लाभ को तब तक दर्ज नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि वह वास्तव में प्राप्त न हो जाए। इसी नियम के आधार पर अंतिम स्टॉक (Closing Stock) का मूल्यांकन **'लागत मूल्य अथवा बाजार मूल्य, दोनों में से जो भी कम हो'** पर किया जाता है।

घ) पूर्ण प्रकटीकरण की परिपाटी (Full Disclosure): वित्तीय विवरणों में उन समस्त महत्वपूर्ण सूचनाओं का स्पष्ट, निष्पक्ष तथा पूर्ण प्रकटीकरण होना चाहिए जो उपयोगकर्ताओं के आर्थिक निर्णयों को प्रभावित कर सकती हैं। इसी कारण न्यायालयों में विचाराधीन वादों को तुलन-पत्र के नीचे 'संभावित देयताओं' (Contingent Liabilities) के रूप में पाद-टिप्पणी (Footnote) में दर्शाया जाता है।

ङ) सारता की संकल्पना (Materiality): यह पूर्ण प्रकटीकरण का एक व्यावहारिक अपवाद है। इसमें केवल महत्वपूर्ण (सारवान) तथ्यों को ही पृथक रूप से दर्ज किया जाता है। नगण्य मूल्य की मदों (यथा 50 रुपये की स्टेपलर पिन अथवा रबर) को परिसंपत्ति न मानकर सीधे उस वर्ष का कार्यालय व्यय मान लिया जाता है।

च) एकरूपता की परिपाटी (Consistency): लेखांकन की चयनित नीतियों और पद्धतियों (यथा मूल्यह्रास की सीधी रेखा पद्धति अथवा क्रमागत ह्रास पद्धति) का वर्ष-दर-वर्ष निरंतर पालन किया जाना चाहिए ताकि विभिन्न वर्षों के वित्तीय परिणामों की सार्थक तुलना संभव हो सके।

खंड B: दोहरा लेखा प्रणाली एवं प्रक्रिया

उपखंड a: खातों के प्रकार (व्यक्तिगत, वास्तविक, नाममात्र), नाम (डेबिट) और जमा (क्रेडिट) के नियम

दोहरा लेखा प्रणाली (Double Entry System) की उत्पत्ति एवं आधारभूत दर्शन
दोहरा लेखा प्रणाली के जनक इटली के वेनिस नगर के गणितज्ञ **ल्युकास पैसियोली** (Lucas Pacioli) माने जाते हैं। उन्होंने वर्ष 1494 में अपनी प्रसिद्ध गणितीय कृति *'डी कम्प्यूटिस एट स्क्रिप्चरिस'* (De Computis et Scripturis) में सर्वप्रथम इस वैज्ञानिक प्रणाली के आधारभूत सिद्धांतों का प्रतिपादन किया था।

प्रणाली का मूल सिद्धांत:
यह प्रणाली इस सार्वभौमिक सत्य पर आधारित है कि प्रत्येक व्यावसायिक लेन-देन के अनिवार्य रूप से **दो पक्ष (Two Aspects)** होते हैं। यदि कोई इकाई कुछ प्राप्त करती है, तो उसके बदले में उसे कुछ देना भी पड़ता है।

एक पक्ष मूल्य ग्रहण करने वाला (नाम / डेबिट) होता है।

दूसरा पक्ष मूल्य प्रदान करने वाला (जमा / क्रेडिट) होता है।
प्रत्येक नाम (Debit) के समतुल्य एक समान राशि का जमा (Credit) होना अनिवार्य है। इसी संतुलन के आधार पर **लेखांकन समीकरण** (Accounting Equation) की रचना होती है:

$$\text{संपत्तियां}(Assets) = \text{देयताएं}(Liabilities) + \text{पूंजी}(Capital)$$

खातों का पारम्परिक (गोल्डन) वर्गीकरण एवं उनके विधिक नियम
लेखांकन में लेन-देनों को व्यवस्थित करने हेतु खातों को तीन प्रमुख श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है। इन्हें लेखांकन के 'स्वर्ण नियम' (Golden Rules of Accounting) कहा जाता है:

खातों का वर्गीकरण (Classification of Accounts)

खातों का वर्गीकरण
├── 1. व्यक्तिगत खाते (Personal Accounts)
│ ├── प्राकृतिक व्यक्तिगत खाते (Natural Persons)
│ ├── कृत्रिम/विधिक व्यक्तिगत खाते (Artificial Persons)
│ └── प्रतिनिधिक व्यक्तिगत खाते (Representative Personal Accounts)
├── 2. वास्तविक खाते (Real Accounts)
│ ├── मूर्त वास्तविक खाते (Tangible Real Accounts)
│ └── अमूर्त वास्तविक खाते (Intangible Real Accounts)
└── 3. नाममात्र / अवास्तविक खाते (Nominal Accounts)
├── व्यय एवं हानियों के खाते (Expenses & Losses)
└── आय एवं लाभों के खाते (Incomes & Gains)

wincompete

क्र.सं.	मुख्य खाता प्रकार (Account Type)	उप-श्रेणियां एवं विवरण (Sub-categories & Description)
1	व्यक्तिगत खाते (Personal Accounts)	• प्राकृतिक व्यक्तिगत खाते (राम, सीता आदि) • कृत्रिम/विधिक व्यक्तिगत खाते (कंपनियां, बैंक, संस्थाएं) • प्रतिनिधिक व्यक्तिगत खाते (अदत्त व्यय, पूर्वदत्त आय)
2	वास्तविक खाते (Real Accounts)	• मूर्त वास्तविक खाते (भवन, मशीनरी, नकद) • अमूर्त वास्तविक खाते (ख्याति, पेटेंट, ट्रेडमार्क)
3	नाममात्र / अवास्तविक खाते (Nominal Accounts)	• व्यय एवं हानियों के खाते (वेतन, किराया, हानि) • आय एवं लाभों के खाते (प्राप्त कमीशन, प्राप्त ब्याज)

1. व्यक्तिगत खाते (Personal Accounts)
ये खाते किसी व्यक्ति, फर्म, कंपनी, बैंक अथवा वैधानिक संस्था से संबंधित होते हैं:

क) प्राकृतिक व्यक्तिगत खाते: जीवित मानवों के खाते (यथा राम का खाता, श्याम का खाता, प्रोप्राइटर का पूंजी खाता तथा आहरण खाता)।

ख) कृत्रिम अथवा विधिक व्यक्तिगत खाते: कानून की दृष्टि में स्वतंत्र अस्तित्व रखने वाली संस्थाएं (यथा भारतीय स्टेट बैंक, रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड, कोई पंजीकृत क्लब, विश्वविद्यालय अथवा फर्म)।

ग) प्रतिनिधिक व्यक्तिगत खाते: वे खाते जो किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब किसी नाममात्र खाते के पूर्व या पश्चात कोई उपसर्ग या प्रत्यय (यथा अदत्त, पूर्वदत्त, उपार्जित) जुड़ जाता है, तो वह व्यक्तिगत खाता बन जाता है:

अदत्त वेतन खाता (Outstanding Salary Account - उन कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व करता है जिनका वेतन देय हो चुका है किंतु भुगतान नहीं हुआ)।

पूर्वदत्त बीमा खाता (Prepaid Insurance Account)।

अनुपार्जित किराया खाता (Unearned Rent Account)।

wincompete

व्यक्तिगत खाते का स्वर्ण नियम:

पाने वाले को नाम करो (Debit the Receiver)

देने वाले को जमा करो (Credit the Giver)

2. वास्तविक खाते (Real Accounts)
ये खाते व्यवसाय की उन संपत्तियों और अधिकारों से संबंधित होते हैं जिनका मौद्रिक मूल्य मापा जा सकता है और जो व्यवसाय के स्वामित्व में होती हैं (देनदारों को छोड़कर, क्योंकि देनदार व्यक्तिगत खाते होते हैं):

क) मूर्त वास्तविक खाते: वे संपत्तियां जिन्हें भौतिक रूप से छुआ, देखा और अनुभव किया जा सकता है (यथा रोकड़ खाता, भवन खाता, मशीनरी खाता, फर्नीचर खाता, स्टॉक खाता)।

ख) अमूर्त वास्तविक खाते: वे संपत्तियां जिनका कोई भौतिक आकार नहीं होता, परंतु उनका मौद्रिक मूल्य होता है और वे व्यवसाय में लाभार्जन क्षमता बढ़ाती हैं (यथा ख्याति / Goodwill, पेटेंट, कॉपीराइट, ट्रेडमार्क, कंप्यूटर सॉफ्टवेयर)।

वास्तविक खाते का स्वर्ण नियम:

जो वस्तु व्यवसाय में आए, उसे नाम करो (Debit what comes in)

जो वस्तु व्यवसाय से बाहर जाए, उसे जमा करो (Credit what goes out)

3. नाममात्र / अवास्तविक खाते (Nominal Accounts)
ये खाते किसी भौतिक वस्तु या व्यक्ति का प्रतिनिधित्व नहीं करते, अपितु व्यवसाय के विभिन्न व्ययों, हानियों, आयों तथा लाभों के नाम मात्र के प्रतीक होते हैं:

क) व्यय एवं हानियों के खाते: वेतन खाता, किराया खाता, मजदूरी खाता, बिजली व्यय, अशोध्य ऋण (Bad Debts), अग्नि से हानि, बट्टा दिया (Discount Allowed)।

ख) आय एवं लाभों के खाते: प्राप्त कमीशन, प्राप्त ब्याज, प्राप्त बट्टा, प्राप्त लाभांश, विनियोगों की बिक्री पर लाभ।

ग) अवधि समाप्ति पर प्रभाव: नाममात्र के खातों का शेष कभी भी अगले वर्ष आगे नहीं ले जाया जाता; लेखांकन वर्ष के अंत में इन्हें लाभ-हानि खाते में अंतरित करके पूर्णतः बंद (Close) कर दिया जाता है।

नाममात्र खाते का स्वर्ण नियम:

समस्त व्ययों एवं हानियों को नाम करो (Debit all expenses and losses)

समस्त आयों एवं लाभों को जमा करो (Credit all incomes and gains)

wincompete

खाते की श्रेणी	उप-प्रकार एवं व्यावहारिक उदाहरण	स्वर्ण नियम (डेबिट का नियम)	स्वर्ण नियम (क्रेडिट का नियम)
व्यक्तिगत खाता	राम (प्राकृतिक), टाटा मोटर्स (कृत्रिम), अदत्त किराया (प्रतिनिधिक)।	**पाने वाले को नाम (Debit the Receiver)**	**देने वाले को जमा (Credit the Giver)**
वास्तविक खाता	रोकड़, भूमि (मूर्त); ख्याति, ट्रेडमार्क (अमूर्त)।	**जो व्यापार में आए उसे नाम (Debit what comes in)**	**जो व्यापार से जाए उसे जमा (Credit what goes out)**
नाममात्र खाता	वेतन, मजदूरी, ह्रास (व्यय); ब्याज, कमीशन (आय)।	**समस्त व्ययों व हानियों को नाम (Debit all expenses & losses)**	**समस्त आयों व लाभों को जमा (Credit all incomes & gains)**

आधुनिक (अमेरिकी) दृष्टिकोण: परिसंपत्ति-देयता मॉडल

आधुनिक लेखांकन में खातों को उनके वित्तीय विवरण स्वरूप के आधार पर पांच संवर्गों में वर्गीकृत किया जाता है:

क) परिसंपत्तियां (Assets): जब परिसंपत्ति में वृद्धि हो तो **डेबिट (+)** करें; जब कमी हो तो **क्रेडिट (-)** करें।

ख) व्यय / हानियां (Expenses/Losses): जब व्यय में वृद्धि हो तो **डेबिट (+)** करें; जब कमी हो तो **क्रेडिट (-)** करें।

ग) देयताएं (Liabilities): जब देयता में कमी हो तो **डेबिट (-)** करें; जब वृद्धि हो तो **क्रेडिट (+)** करें।

घ) पूंजी (Capital/Equity): जब पूंजी में कमी हो तो **डेबिट (-)** करें; जब वृद्धि हो तो **क्रेडिट (+)** करें।

ङ) आगम / आय (Revenue/Income): जब आय में कमी हो तो **डेबिट (-)** करें; जब वृद्धि हो तो **क्रेडिट (+)** करें।

उपखंड b: जर्नल प्रविष्टियां, लेजर पोस्टिंग, ट्रायल बैलेंस (तलपट), प्रारंभिक त्रुटियां और उनका सुधार

जर्नल (रोजनामचा): प्राथमिक प्रविष्टि की पुस्तक

जर्नल लेखांकन की वह मौलिक पुस्तक है जिसमें व्यापारिक लेन-देनों को उनके घटित होने के कालक्रमानुसार (Chronological Order) सर्वप्रथम दर्ज किया जाता है। इसे 'मूल प्रविष्टि की पुस्तक' (Book of Original Entry) भी कहा जाता है।

जर्नल का विधिक प्रारूप एवं स्तंभ:
जर्नल के प्रारूप में पांच अनिवार्य स्तंभ होते हैं:

क) दिनांक (Date): जिस तिथि को लेन-देन संपन्न हुआ।

ख) विवरण (Particulars): नाम (डेबिट) किए जाने वाले खाते का नाम (प्रथम पंक्ति में अंत में 'Dr.' लिखकर), अगली पंक्ति में थोड़ा स्थान छोड़कर जमा (क्रेडिट) किए जाने वाले खाते का नाम ('To' से प्रारंभ करके), तथा उसके नीचे लेन-देन का संक्षिप्त व्याख्यात्मक विवरण जिसे **नरेशन** (Narration) कहा जाता है।

ग) खाता-पृष्ठ संख्या (Ledger Folio - L.F.): लेजर के उस पृष्ठ की संख्या जहां इस खाते की खतौनी की गई है।

घ) नाम राशि (Debit Amount): डेबिट खाते की मुद्रा राशि।

ङ) जमा राशि (Credit Amount): क्रेडिट खाते की समतुल्य मुद्रा राशि।

जर्नल प्रविष्टियों के प्रकार:

अ) सरल प्रविष्टि (Simple Entry): जिसमें केवल एक खाता डेबिट तथा एक ही खाता क्रेडिट होता है।

ब) संयुक्त प्रविष्टि (Compound Entry): जब किसी एक ही तिथि पर होने वाले कई लेन-देनों में दो या अधिक खाते डेबिट होते हों और एक क्रेडिट होता हो, अथवा एक डेबिट और कई क्रेडिट होते हों (यथा एक ही दिन मजदूरी, वेतन और किराया चुकाना)।

स) प्रारंभिक प्रविष्टि (Opening Entry): नए वित्तीय वर्ष के आरंभ में विगत वर्ष के तुलन-पत्र की परिसंपत्तियों और देयताओं को चालू वर्ष की बहियों में लाने हेतु की जाने वाली प्रविष्टि (समस्त परिसंपत्तियों को डेबिट तथा समस्त देयताओं व पूंजी को क्रेडिट किया जाता है)।

सहायक बहियां (Subsidiary Books)
व्यापार का आकार बड़ा होने पर समस्त लेन-देनों को केवल एक ही जर्नल में लिखना व्यावहारिक नहीं होता। अतः जर्नल को कई विशेषीकृत उप-पुस्तकों में विभाजित कर दिया जाता है:

क) रोकड़ बही (Cash Book): समस्त नकद प्राप्तियों और नकद भुगतानों का लेखा। (यह जर्नल और लेजर दोनों का कार्य करती है)।

ख) क्रय बही (Purchases Book): केवल **उधार खरीदे गए व्यापारिक माल** का लेखा। (नकद खरीद रोकड़ बही में जाती है तथा परिसंपत्तियों की उधार खरीद मुख्य जर्नल में दर्ज होती है)।

ग) विक्रय बही (Sales Book): केवल **उधार बेचे गए व्यापारिक माल** का लेखा।

घ) क्रय वापसी बही (Purchases Return / Return Outward Book): आपूर्तिकर्ताओं को लौटाए गए माल का लेखा। इसके साथ **डेबिट नोट** (Debit Note) जारी किया जाता है।

ङ) विक्रय वापसी बही (Sales Return / Return Inward Book): ग्राहकों द्वारा लौटाए गए माल का लेखा। इसके लिए **क्रेडिट नोट** (Credit Note) जारी किया जाता है।

च) मुख्य जर्नल (Journal Proper): वे विशिष्ट लेन-देन जो उपरोक्त किसी भी सहायक बही में दर्ज नहीं हो सकते (यथा प्रारंभिक प्रविष्टियां, अंतिम समायोजन प्रविष्टियां, भूल-सुधार प्रविष्टियां तथा स्थिर संपत्तियों का उधार क्रय-विक्रय)।

लेजर (खाता-बही): अंतिम प्रविष्टि की मुख्य पुस्तक
लेजर लेखांकन की 'प्रधान पुस्तक' (Principal Book) है। इसमें समस्त लेन-देनों को छांटकर संबंधित अलग-अलग खातों में वर्गीकृत रूप में दर्ज किया जाता है।

खतौनी की प्रक्रिया (Process of Posting):
जर्नल अथवा सहायक बहियों से लेन-देनों को लेजर के संबंधित खातों में स्थानांतरित करने की प्रक्रिया को **खतौनी** (Posting) कहा जाता है। लेजर का प्रत्येक खाता पारंपरिक रूप से 'T' आकार का होता है, जिसके दो पक्ष होते हैं—बायां पक्ष 'डेबिट' (Dr.) तथा दायां पक्ष 'क्रेडिट' (Cr.)।

अ) डेबिट पक्ष में प्रविष्टि करते समय विवरण स्तंभ में क्रेडिट होने वाले खाते का नाम 'To' लगाकर लिखा जाता है।

ब) क्रेडिट पक्ष में प्रविष्टि करते समय विवरण स्तंभ में डेबिट होने वाले खाते का नाम 'By' लगाकर लिखा जाता है।

खातों को संतुलित करना (Balancing of Accounts):
निश्चित अवधि (माह अथवा वर्ष) के अंत में प्रत्येक खाते के दोनों पक्षों का योग किया जाता है:

यदि डेबिट पक्ष का योग क्रेडिट पक्ष से अधिक हो, तो अंतर को क्रेडिट पक्ष में 'By Balance c/d' (आगे ले जाया गया) लिखकर दोनों पक्षों को बराबर कर दिया जाता है। इसे **डेबिट शेष** (Debit Balance) कहा जाता है। (समस्त संपत्तियों और व्ययों के खातों का हमेशा डेबिट शेष होता है)।

यदि क्रेडिट पक्ष का योग डेबिट पक्ष से अधिक हो, तो अंतर को डेबिट पक्ष में 'To Balance c/d' लिखा जाता है। इसे **क्रेडिट शेष** (Credit Balance) कहा जाता है। (समस्त देयताओं, पूंजी और आय के खातों का हमेशा क्रेडिट शेष होता है)।

ट्रायल बैलेंस (तलपट): अंकगणितीय शुद्धता की जांच
तलपट किसी विशिष्ट तिथि पर लेजर के समस्त खातों के डेबिट और क्रेडिट शेषों (Balances) को दर्शाने वाली एक सूची (विवरण-पत्र) है। यह कोई खाता (Account) नहीं है, बल्कि एक विवरणी (Statement) है।

तलपट निर्माण के उद्देश्य एवं विधियां:

क) उद्देश्य: लेजर में की गई खतौनी की **अंकगणितीय शुद्धता** (Arithmetical Accuracy) की जांच करना तथा वित्तीय वर्ष के अंत में अंतिम खाते (व्यापारिक, लाभ-हानि खाता और तुलन-पत्र) तैयार करने हेतु एक संक्षिप्त आधार प्रदान करना।

ख) निर्माण की विधियां:

शेष विधि (Balance Method - सर्वाधिक प्रचलित एवं वैज्ञानिक विधि)।

योग विधि (Total Method)।

योग एवं शेष विधि (संयुक्त विधि)।

wincompete

यदि दोहरा लेखा प्रणाली के नियमों का सही पालन किया गया है, तो तलपट के डेबिट पक्ष का कुल योग अनिवार्य रूप से क्रेडिट पक्ष के कुल योग के बराबर होना चाहिए। तथापि, तलपट का मिल जाना इस बात का पूर्ण और निर्णायक प्रमाण नहीं है कि बहियां पूर्णतः त्रुटिहीन हैं।

प्रारंभिक लेखांकन त्रुटियों का वर्गीकरण
लेखांकन त्रुटियों को मुख्य रूप से दो व्यापक श्रेणियों में विभाजित किया जाता है:
लेखांकन त्रुटियों को मुख्य रूप से दो व्यापक श्रेणियों में विभाजित किया जाता है:

लेखांकन त्रुटियों की वर्गीकरण संरचना (Classification of Accounting Errors)

📊 लेखांकन त्रुटियों का द्विशाखन

क्र.सं.	1. तलपट को प्रभावित न करने वाली त्रुटियां (Trial Balance Agrees)	2. तलपट को प्रभावित करने वाली त्रुटियां (Trial Balance Disagrees)
1	पूर्ण लोप की त्रुटियां (Errors of Omission)	आंशिक लोप की त्रुटि (Partial Omission)
2	सैद्धांतिक त्रुटियां (Errors of Principle)	खतौनी की गलत पक्ष में प्रविष्टि (Wrong Side Posting)
3	क्षतिपूरक त्रुटियां (Compensating Errors)	खातों के शेष निकालने में त्रुटि (Error in Balancing)
4	गलत नामकरण / मूल पुस्तक की त्रुटियां (Errors of Commission in Original Book)	तलपट में गलत राशि लिखना (Wrong Amount in Trial Balance)
5	—	सहायक बहियों के जोड़ में त्रुटि (Casting Errors)

1. वे त्रुटियां जो तलपट के मिलान को प्रभावित नहीं करती हैं
ये अत्यंत सूक्ष्म और गंभीर त्रुटियां होती हैं, क्योंकि इनके विद्यमान रहने पर भी तलपट का दोनों पक्षों का योग पूर्णतः मिल जाता है:

क) पूर्ण लोप की त्रुटि (Error of Complete Omission): जब किसी लेन-देन को प्रारंभिक लेखा बहियों (जर्नल) में दर्ज करने से ही पूरी तरह छोड़ दिया जाए। उदाहरण: राम से 10,000 रुपये नकद प्राप्त हुए, किंतु इसका कोई भी लेखा नहीं हुआ।

ख) सैद्धांतिक त्रुटि (Error of Principle): जब लेखांकन के मूलभूत सिद्धांतों की अवहेलना करते हुए पूंजीगत व्यय को आयगत व्यय मान लिया जाए, अथवा आयगत व्यय को पूंजीगत व्यय मान लिया जाए। उदाहरण: नई मशीनरी की स्थापना हेतु चुकाई गई मजदूरी (जो पूंजीगत व्यय है और मशीनरी खाते में डेबिट होनी चाहिए) को सामान्य 'मजदूरी खाते' में डेबिट कर दिया गया। (चूंकि डेबिट और क्रेडिट दोनों हुए हैं, अतः तलपट मिल जाएगा, परंतु लाभ-हानि खाता और तुलन-पत्र गलत हो जाएंगे)।

ग) क्षतिपूरक त्रुटियां (Compensating Errors): जब दो या दो से अधिक त्रुटियां इस प्रकार घटित हों कि एक त्रुटि का प्रभाव दूसरी त्रुटि द्वारा पूर्णतः निष्प्रभावी (संतुलित) हो जाए। उदाहरण: राम के खाते को 500 रुपये से कम डेबिट किया गया, और उसी समय श्याम के खाते को भी 500 रुपये से कम क्रेडिट कर दिया गया।

घ) गलत खाते में खतौनी की त्रुटि (Error of Commission - Wrong Account): सही पक्ष और सही राशि के साथ गलत व्यक्ति के खाते में प्रविष्टि करना। उदाहरण: मोहन से प्राप्त 2,000 रुपये को मोहन के स्थान पर सोहन के खाते में क्रेडिट कर दिया गया।

2. वे त्रुटियां जो तलपट के मिलान को प्रभावित करती हैं
इन त्रुटियों के कारण तलपट के डेबिट और क्रेडिट स्तंभों का योग समान नहीं आता:

क) आंशिक लोप: लेन-देन के केवल एक पक्ष की खतौनी लेजर में की गई, दूसरे पक्ष की छोड़ दी गई।

ख) गलत जोड़ (Casting Error): क्रय बही का जोड़ 50,000 के स्थान पर 55,000 लगा दिया गया।

ग) गलत पक्ष में खतौनी: किसी खाते को क्रेडिट करने के स्थान पर डेबिट कर दिया गया।

उचंत खाता (Suspense Account) एवं त्रुटियों का सुधार
जब तलपट का मिलान नहीं होता और वार्षिक वित्तीय विवरणियों को अंतिम रूप देना अनिवार्य हो, तो लेखाकार अस्थायी रूप से अंतर की राशि को एक कृत्रिम खाते में डालकर तलपट का योग मिला देता है। इस अस्थायी खाते को **उचंत खाता** (Suspense Account) कहा जाता है।

यदि डेबिट पक्ष का योग कम हो, तो अंतर उचंत खाते के डेबिट पक्ष में लिखा जाता है (यह तुलन-पत्र के संपत्ति पक्ष में दिखाया जाता है)।

यदि क्रेडिट पक्ष का योग कम हो, तो अंतर उचंत खाते के क्रेडिट पक्ष में लिखा जाता है (यह तुलन-पत्र के देयता पक्ष में दिखाया जाता है)।

सुधार की प्रक्रिया:

अ) एक-पक्षीय त्रुटियों का सुधार (तलपट बनने से पूर्व): बिना किसी जर्नल प्रविष्टि के, सीधे संबंधित लेजर खाते में आवश्यक राशि लिखकर 'To' अथवा 'By' के साथ विवरण देकर सुधार किया जाता है।

ब) द्विपक्षीय त्रुटियों का सुधार: सदैव एक सुधारात्मक जर्नल प्रविष्टि (Rectifying Journal Entry) के माध्यम से किया जाता है।

स) तलपट बनने के पश्चात उचंत खाते के माध्यम से सुधार: एक-पक्षीय त्रुटियों को दूर करने हेतु प्रभावित खाते के साथ उचंत खाते (Suspense Account) को डेबिट अथवा क्रेडिट किया जाता है। जब समस्त त्रुटियों का पता लगाकर उनका सुधार कर दिया जाता है, तो उचंत खाता स्वतः बंद (Nil Balance) हो जाता है।

त्रुटि का नाम	त्रुटि की प्रकृति एवं उदाहरण	क्या तलपट का योग मिलेगा?	सुधार की तकनीकी विधि
सैद्धांतिक त्रुटि	भवन निर्माण की सामग्री को क्रय खाते में डेबिट कर दिया गया।	**हाँ (तलपट मिल जाएगा)**	सुधारात्मक प्रविष्टि: भवन खाता Dr. / क्रय खाते से Cr.
पूर्ण लोप	5,000 रुपये का फर्नीचर खरीदा, कोई प्रविष्टि नहीं की गई।	**हाँ (तलपट मिल जाएगा)**	सामान्य मूल प्रविष्टि: फर्नीचर खाता Dr. / रोकड़ खाते से Cr.
क्षतिपूरक त्रुटि	एक खाता 100 रु से अधिक डेबिट, दूसरा 100 रु से अधिक क्रेडिट।	**हाँ (तलपट मिल जाएगा)**	दोनों खातों के आधिक्य को विपरीत प्रविष्टि द्वारा समाप्त करना।
गलत जोड़ (Casting)	विक्रय बही का जोड़ 1,000 रुपये कम लगाया गया।	**नहीं (तलपट नहीं मिलेगा)**	तलपट के बाद: उचंत खाता Dr. / विक्रय खाते से Cr.
आंशिक खतौनी	रोकड़ बही से केवल मोहन के खाते में खतौनी छूट गई।	**नहीं (तलपट नहीं मिलेगा)**	तलपट के बाद: मोहन का खाता Dr. / उचंत खाते से Cr.

महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली एवं विधिक संकल्पनाएं

प्रमाणक (Voucher): किसी भी व्यावसायिक लेन-देन के संपादन का प्राथमिक लिखित एवं वैधानिक दस्तावेजी साक्ष्य (यथा नकद रसीद, बीजक, बैंक पे-इन-स्लिप, डेबिट नोट)। अंकेक्षण की संपूर्ण प्रक्रिया प्रमाणकों के भौतिक एवं विधिक सत्यापन (Vouching) पर आधारित होती है।

बट्टा (Discount) का वर्गीकरण:

wincompete

व्यापारिक बट्टा (Trade Discount): माल के अंकित सूची मूल्य (List Price) पर बिक्री बढ़ाने हेतु दिया जाने वाला सामान्य बट्टा। इसे बहीखातों में कभी भी दर्ज नहीं किया जाता; शुद्ध मूल्य पर ही प्रविष्टि होती है।

नकद बट्टा (Cash Discount): ग्राहकों से नियत समय के भीतर त्वरित भुगतान (Prompt Payment) प्राप्त करने हेतु दिया जाने वाला वित्तीय प्रोत्साहन। इसे बहियों में 'बट्टा दिया' (व्यय के रूप में डेबिट) अथवा 'बट्टा मिला' (आय के रूप में क्रेडिट) के रूप में अनिवार्यतः दर्ज किया जाता है।

संभावित देयताएं (Contingent Liabilities): वे वित्तीय दायित्व जिनका अस्तित्व किसी अनिश्चित भविष्य की घटना के घटित होने अथवा न होने पर निर्भर करता है (यथा न्यायालय में विचाराधीन क्षतिपूर्ति का दावा अथवा भुनाए गए विपत्रों पर दायित्व)। इन्हें तुलन-पत्र के आंतरिक योग में सम्मिलित नहीं किया जाता, अपितु पूर्ण प्रकटीकरण के सिद्धांत के अनुसार नीचे पाद-टिप्पणी में दर्शाया जाता है।

पूंजीगत व्यय बनाम आयगत व्यय (Capital vs Revenue Expenditure):

पूंजीगत व्यय: वह व्यय जिसका लाभ व्यवसाय को दीर्घकाल (एक से अधिक लेखा वर्ष) तक प्राप्त होता है और जो उत्पादन क्षमता का विस्तार करता है (यथा मशीनरी का क्रय)। इसे तुलन-पत्र में परिसंपत्ति माना जाता है।

आयगत व्यय: वह व्यय जिसका लाभ चालू लेखांकन वर्ष में ही समाप्त हो जाता है और जो व्यवसाय के दैनिक संचालन तथा मौजूदा परिसंपत्तियों की कार्यक्षमता बनाए रखने हेतु किया जाता है (यथा वेतन, किराया, मशीनों की नियमित मरम्मत)। इसे लाभ-हानि खाते में व्यय माना जाता है।

स्थगित आयगत व्यय (Deferred Revenue Expenditure): वह भारी आयगत व्यय जिसका लाभ चालू वर्ष से आगे भी कई वर्षों (सामान्यतः 3 से 5 वर्ष) तक प्राप्त होने की संभावना होती है (यथा किसी नए उत्पाद के प्रक्षेपण पर किया गया भारी विज्ञापन व्यय)। इसके एक आनुपातिक हिस्से को चालू वर्ष के लाभ-हानि खाते में अपलेखित किया जाता है तथा अवशिष्ट भाग को तुलन-पत्र के संपत्ति पक्ष में दिखाया जाता है।

अशोध्य ऋण एवं संदिग्ध ऋणों हेतु प्रावधान (Bad Debts & Provision for Doubtful Debts): देनदारों से अप्राप्य हो चुकी धनराशि को 'अशोध्य ऋण' (हानि) के रूप में लाभ-हानि खाते में डेबिट किया जाता है। रूढ़िवादिता की परिपाटी के अनुसार, भविष्य में होने वाले संभावित अशोध्य ऋणों की पूर्ति हेतु चालू वर्ष के लाभों में से देनदारों पर एक निश्चित प्रतिशत से जो अग्रिम संचिति बनाई जाती है, उसे संदिग्ध ऋणों का प्रावधान कहा जाता है।

अध्याय 12: वित्तीय विवरणियां - निर्माण, विश्लेषण एवं प्रशासनिक महत्व

खंड A: अंतिम खातों का निर्माण

उपखंड a: व्यापारिक खाता (ट्रेडिंग अकाउंट), सकल लाभ/हानि की गणना, लाभ-हानि खाता (प्रॉफिट एंड लॉस अकाउंट)

वित्तीय विवरणियों की वैधानिक एवं सैद्धांतिक रूपरेखा

वित्तीय विवरणियां किसी व्यावसायिक उपक्रम, निगम अथवा सार्वजनिक प्राधिकरण के वित्तीय निष्पादन और स्थिति का औपचारिक अभिलेख प्रस्तुत करती हैं। कंपनी अधिनियम 2013 की धारा 2(40) के अंतर्गत वित्तीय विवरणियों के विधिक संघटकों को परिभाषित किया गया है। इसके अनुसार किसी निगमित संस्था की वित्तीय विवरणियों में सम्मिलित हैं:

क) वित्तीय वर्ष के अंत में तैयार किया गया तुलन पत्र (बैलेंस शीट)।

ख) उक्त वित्तीय वर्ष हेतु लाभ-हानि खाता (अथवा गैर-लाभकारी संस्थाओं के संदर्भ में आय-व्यय खाता)।

ग) वित्तीय वर्ष के लिए रोकड़ प्रवाह विवरण (कैश फ्लो स्टेटमेंट)।

घ) इक्विटी में परिवर्तनों का विवरण (यदि लागू हो)।

ङ) वित्तीय विवरणियों के साथ संलग्न कोई भी व्याख्यात्मक विवरणिका अथवा पाद-टिप्पणियां।

कंपनी अधिनियम 2013 की धारा 129(1) यह अनिवार्य करती है कि वित्तीय विवरणियां कंपनी की वित्तीय स्थिति का सही एवं निष्पक्ष चित्रण (True and Fair View) प्रस्तुत करें, धारा 133 के तहत अधिसूचित भारतीय लेखा मानकों (Ind AS) का अनुपालन करें तथा अधिनियम की अनुसूची III में विहित प्रपत्र के अनुरूप तैयार की जाएं।

व्यापारिक खाता (Trading Account): संरचना एवं उद्देश्य

व्यापारिक खाता किसी लेखांकन अवधि के दौरान माल के क्रय, निर्माण एवं विक्रय से संबंधित प्रत्यक्ष परिणामों को दर्शाने वाला प्रारंभिक वित्तीय सारांश है। यह नाममात्र खाते (Nominal Account) की प्रकृति का होता है। इसका प्राथमिक उद्देश्य प्रत्यक्ष परिचालन से जनित **सकल लाभ (Gross Profit)** अथवा **सकल हानि (Gross Loss)** का निर्धारण करना है।

प्रत्यक्ष मदों का विन्यास:

अ) प्रारंभिक स्टॉक (Opening Stock): लेखांकन वर्ष के प्रारंभ में बिना बिका माल (कच्चा माल, अर्ध-निर्मित माल एवं निर्मित माल)।

ब) शुद्ध क्रय (Net Purchases): वर्ष के दौरान क्रय किए गए माल की कुल लागत में से आपूर्तिकर्ताओं को वापस किए गए माल (क्रय वापसी / Purchases Return) को घटाकर शुद्ध मान।

स) प्रत्यक्ष व्यय (Direct Expenses): वे समस्त व्यय जो माल को खरीदने, कारखाने तक लाने अथवा उसे विक्रय-योग्य स्थिति में रूपांतरित करने हेतु अनिवार्य रूप से किए जाते हैं। इनमें प्रमुख हैं:

आवक गाड़ी भाड़ा एवं चुंगी (Carriage Inward / Freight / Octroi)।

प्रत्यक्ष मजदूरी (Direct Wages / Productive Wages)।

कारखाना व्यय: कारखाने का किराया, प्रकाश, ईंधन, शक्ति (Power & Fuel), गैस, जल तथा उपभोज्य भंडार (Consumable Stores)।

निर्माण व्यय एवं रॉयल्टी (उत्पादन पर आधारित)।

wincompete

द) शुद्ध विक्रय (Net Sales): वर्ष के दौरान बेचे गए माल के कुल मूल्य में से ग्राहकों द्वारा वापस लौटाए गए माल (विक्रय वापसी / Sales Return) को घटाकर शुद्ध मूल्य।

ङ) अंतिम स्टॉक (Closing Stock): लेखा वर्ष के अंत में अवशिष्ट बिना बिका माल। लेखांकन परिपाटी के अनुसार इसका मूल्यांकन **लागत मूल्य अथवा शुद्ध वसूली योग्य बाजार मूल्य, दोनों में से जो भी कम हो**, उस पर किया जाता है।

सकल लाभ अथवा सकल हानि की गणना विधि
सकल लाभ व्यापार के प्राथमिक माल व्यापार परिचालन की दक्षता को मापता है। यह शुद्ध विक्रय और बेचे गए माल की लागत (Cost of Goods Sold - COGS) के मध्य का धनात्मक अंतर है:

बेचे गए माल की लागत (COGS) = प्रारंभिक स्टॉक + शुद्ध क्रय + प्रत्यक्ष व्यय - अंतिम स्टॉक

सकल लाभ (Gross Profit) = शुद्ध विक्रय - बेचे गए माल की लागत (COGS)

यदि बेचे गए माल की लागत शुद्ध विक्रय की राशि से अधिक हो जाती है, तो अंतर की राशि **सकल हानि (Gross Loss)** कहलाती है। व्यापारिक खाते के शेष को अगले चरण में लाभ-हानि खाते में अंतरित कर दिया जाता है।

लाभ-हानि खाता (Profit and Loss Account): परिचालन एवं शुद्ध परिणाम
व्यापारिक खाते से सकल लाभ अथवा सकल हानि प्राप्त होने के उपरांत लाभ-हानि खाता तैयार किया जाता है। यह भी नाममात्र (Nominal) प्रकृति का खाता है, जो एक निश्चित लेखांकन अवधि के दौरान उद्यम के समग्र वित्तीय परिचालन से उत्पन्न **शुद्ध लाभ (Net Profit)** अथवा **शुद्ध हानि (Net Loss)** की विधिक गणना करता है।

मदों का द्वि-पक्षीय वर्गीकरण:

अ) नाम पक्ष (Debit Side - अप्रत्यक्ष व्यय एवं हानियां):

प्रशासनिक एवं प्रबंधकीय व्यय: कार्यालय कर्मचारियों का वेतन, कार्यालय किराया, दरें एवं कर, डाक व तार व्यय, छपाई व स्टेशनरी, टेलीफोन व्यय, विधिक व्यय तथा लेखापरीक्षा शुल्क (Audit Fees)।

विक्रय एवं वितरण व्यय: जावक गाड़ी भाड़ा (Carriage Outward), विज्ञापन व्यय, विक्रय प्रतिनिधियों का कमीशन, शोरूम व्यय, पैकिंग व्यय तथा यात्रा व्यय।

वित्तीय व्यय: ऋणों पर देय ब्याज, बैंक प्रभार, बट्टा दिया (Discount Allowed)।

परिसंपत्ति ह्रास एवं प्रावधान: संयंत्र व मशीनरी पर मूल्यह्रास (Depreciation), अशोध्य ऋण (Bad Debts), संदिग्ध ऋणों हेतु संचय (Provision for Doubtful Debts)।

असाधारण हानियां: अग्नि अथवा चोरी से हुई हानि, स्थिर परिसंपत्तियों के विक्रय पर हानि।

ब) जमा पक्ष (Credit Side - अप्रत्यक्ष आय एवं लाभ):

सकल लाभ (व्यापारिक खाते से अंतरित)।

परिचालन आय: प्राप्त कमीशन, प्राप्त बट्टा (Discount Received)।

wincompete

गैर-परिचालन आय: प्राप्त किराया, बाह्य प्रतिभूतियों पर प्राप्त ब्याज एवं लाभांश, बैंक जमा पर ब्याज।

असाधारण लाभ: संपत्तियों के विक्रय पर लाभ, पूर्व में बट्टे खाते डाले गए अशोध्य ऋणों की वसूली (Bad Debts Recovered)।

जब जमा पक्ष का कुल योग नाम पक्ष के कुल योग से अधिक होता है, तो अंतर **शुद्ध लाभ (Net Profit)** कहलाता है। इसके विपरीत स्थिति में अंतर **शुद्ध हानि (Net Loss)** कहलाती है। इस शुद्ध लाभ अथवा हानि को अंततः स्वामियों के पूंजी खाते (अथवा कंपनी के संदर्भ में संचित अधिशेष / Retained Earnings) में अंतरित कर दिया जाता है।

तुलनात्मक आयाम	**व्यापारिक खाता (Trading Account)**	**लाभ-हानि खाता (Profit & Loss Account)**
खाते का स्तर	अंतिम खातों का प्रथम एवं प्राथमिक चरण।	अंतिम खातों का द्वितीय चरण (व्यापारिक खाते के बाद)।
निर्धारित परिणाम	सकल लाभ (Gross Profit) अथवा सकल हानि।	शुद्ध लाभ (Net Profit) अथवा शुद्ध हानि।
व्ययों का समावेश	केवल प्रत्यक्ष व्यय (कारखाना व उत्पादन संबंधी)।	केवल अप्रत्यक्ष व्यय (प्रशासनिक, विक्रय व वित्तीय)।
शेष का अंतरण	इसका शेष लाभ-हानि खाते में ले जाया जाता है।	इसका शेष पूंजी खाते अथवा अधिशेष में अंतरित होता है।

उपखंड b: तुलन पत्र (बैलेंस शीट), संपत्तियों और देनदारियों का वर्गीकरण, पूंजीगत बनाम राजस्व व्यय का समायोजन

तुलन पत्र (बैलेंस शीट) की विधिक एवं संरचनात्मक प्रकृति

तुलन पत्र कोई 'खाता' (Account) नहीं है, अपितु यह एक निश्चित तिथि (प्रायः वित्तीय वर्ष की समाप्ति तिथि, 31 मार्च) पर किसी व्यावसायिक इकाई की वित्तीय स्थिति को प्रकट करने वाला एक औपचारिक **विवरण-पत्र (Statement)** है। यह दोहरा लेखा प्रणाली के मौलिक लेखांकन समीकरण पर आधारित होता है:

लेखांकन समीकरण (Accounting Equation)
कुल संपत्तियां (Total Assets) = वाह्य देयताएं (Liabilities) + शेयरधारक पूंजी (Equity)

कंपनी अधिनियम 2013 की अनुसूची III (Schedule III) के भाग I के अंतर्गत कंपनियों हेतु तुलन पत्र का ऊर्ध्वाधर प्रारूप (Vertical Format) वैधानिक रूप से अनिवार्य किया गया है। गैर-निगमित संस्थाओं (एकल स्वामित्व व साझेदारी) हेतु यह क्षैतिज प्रारूप (Horizontal Format) में तैयार किया जाता है, जिसके बाएं पक्ष में 'देयताएं' तथा दाएं पक्ष में 'संपत्तियां' प्रदर्शित की जाती हैं।

देयताओं (Liabilities) का विधिक वर्गीकरण

देयताओं से आशय उन समस्त वित्तीय दायित्वों एवं ऋणों से है जिनका भुगतान व्यवसाय को भविष्य में बाह्य पक्षों अथवा स्वामियों को करना है:

क) अंशधारक निधियां / पूंजी (Shareholders' Funds / Capital): स्वामियों द्वारा विनियोजित अंशपूंजी (Share Capital), सुरक्षित कोष एवं अधिशेष (Reserves and Surplus)।

ख) गैर-चालू देयताएं (दीर्घकालिक देयताएं / Non-Current Liabilities): वे ऋण अथवा वित्तीय दायित्व जिनकी परिपक्वता अवधि तुलन पत्र की तिथि से 12 माह अथवा एक सामान्य परिचालन चक्र (Operating Cycle) से अधिक होती है। उदाहरणार्थ: डिबेंचर (ऋणपत्र), बैंकों से लिए गए सावधि ऋण (Term Loans), सार्वजनिक जमाएं तथा आस्थगित कर देयताएं (Deferred Tax Liabilities)।

ग) चालू देयताएं (अल्पकालिक देयताएं / Current Liabilities): वे दायित्व जिनका निपटान सामान्य परिचालन चक्र अथवा तुलन पत्र की तिथि से 12 माह के भीतर किया जाना अपेक्षित है। इनमें शामिल हैं:

व्यापारिक देय (Trade Payables / लेनदार एवं देय विपत्र)।

अल्पकालिक उधारी (बैंक ओवरड्राफ्ट, कैश क्रेडिट)।

अन्य चालू देयताएं (अदत्त व्यय, अग्रिम प्राप्त आय, न चुकाया गया लाभांश)।

अल्पकालिक प्रावधान (करों हेतु प्रावधान, प्रस्तावित लाभांश)।

संपत्तियों (Assets) का विधिक वर्गीकरण

संपत्तियों से तात्पर्य व्यवसाय के स्वामित्व वाले उन समस्त आर्थिक संसाधनों एवं अधिकारों से है जिनका मौद्रिक मूल्य होता है तथा जिनसे भविष्य में आर्थिक लाभ प्रवाहित होने की संभावना होती है:

क) गैर-चालू संपत्तियां (Non-Current Assets): वे संपत्तियां जो दीर्घकाल तक व्यवसाय के संचालन एवं उत्पादन क्षमता को बनाए रखने हेतु धारित की जाती हैं, न कि तत्काल पुनर्विक्रय हेतु:

स्थायी मूर्त संपत्तियां (Property, Plant and Equipment): भूमि, भवन, संयंत्र, मशीनरी, फर्नीचर व वाहन (इन्हें ऐतिहासिक लागत में से संचित मूल्यह्रास घटाकर दिखाया जाता है)।

अमूर्त संपत्तियां (Intangible Assets): भौतिक आकार रहित विधिक अधिकार, यथा ख्याति (Goodwill), पेटेंट, ट्रेडमार्क, कॉपीराइट, कंप्यूटर सॉफ्टवेयर व बौद्धिक संपदा।

पूंजीगत कार्य प्रगति पर (Capital Work-in-Progress): निर्माणाधीन भवन अथवा संयंत्र।

गैर-चालू विनियोग: दीर्घकालिक सरकारी प्रतिभूतियों अथवा अन्य कंपनियों के शेयरों में निवेश।

wincompete

ख) चालू संपत्तियां (Current Assets): वे तरल संसाधन जो रोकड़ रूप में हैं अथवा जिन्हें सामान्य परिचालन चक्र या 12 माह के भीतर रोकड़ में परिवर्तित किए जाने की संभावना है:

चालू विनियोग (अल्पकालिक विपणन योग्य प्रतिभूतियां)।

स्टॉक / माल-सूची (कच्चा माल, कार्य-प्रगति, तैयार माल)।

व्यापारिक प्राप्य (Trade Receivables / देनदार एवं प्राप्य विपत्र - संदिग्ध ऋणों हेतु प्रावधान घटाकर)।

रोकड़ एवं रोकड़ समतुल्य (हाथ में नकद, बैंक शेष, मांग जमाएं)।

अल्पकालिक ऋण एवं अग्रिम (आपूर्तिकर्ताओं को दिए गए अग्रिम)।

अन्य चालू संपत्तियां (पूर्वदत्त व्यय, उपार्जित आय)।

पूंजीगत बनाम राजस्व व्यय का समायोजन (Adjustments of Capital vs Revenue)
अंतिम खातों के निर्माण में पूंजीगत और राजस्व व्ययों का सटीक पृथक्करण अत्यंत महत्वपूर्ण है। यदि किसी पूंजीगत व्यय को गलती से राजस्व व्यय मान लिया जाए, तो चालू वर्ष का लाभ कृत्रिम रूप से घट जाएगा और परिसंपत्तियां कम मूल्य पर प्रदर्शित होंगी। इसके विपरीत, यदि किसी राजस्व व्यय को पूंजीगत बना दिया जाए, तो लाभ अनुचित रूप से बढ़ा हुआ दिखेगा।

अंतिम खातों को अंतिम रूप देते समय निम्नलिखित प्रमुख समायोजनों का विन्यास किया जाता है:

अ) अदत्त व्यय (Outstanding Expenses): वे व्यय जो चालू वर्ष में देय हो चुके हैं किंतु भुगतान नहीं हुआ। इन्हें लाभ-हानि खाते में संबंधित व्यय में जोड़ा जाता है तथा तुलन पत्र में चालू देयता के रूप में दिखाया जाता है।

ब) पूर्वदत्त व्यय (Prepaid Expenses): आगामी अवधि के व्यय जिनका अग्रिम भुगतान चालू वर्ष में हो गया। इन्हें लाभ-हानि खाते में संबंधित व्यय में से घटाया जाता है तथा तुलन पत्र में चालू संपत्ति के रूप में दिखाया जाता है।

स) उपार्जित आय (Accrued Income): चालू वर्ष में अर्जित आय जो अभी प्राप्त नहीं हुई। इसे लाभ-हानि खाते में संबंधित आय में जोड़ा जाता है तथा तुलन पत्र में चालू संपत्ति के रूप में दर्ज किया जाता है।

द) अनुपार्जित आय (Unearned Income): आगामी अवधि की आय जो चालू वर्ष में अग्रिम प्राप्त हो गई। इसे संबंधित आय में से घटाया जाता है तथा चालू देयता माना जाता है।

ङ) मूल्यह्रास (Depreciation): स्थिर परिसंपत्तियों के उपयोग, टूट-फूट व समय बीतने से हुआ मूल्य क्षरण। इसे लाभ-हानि खाते में नाम (डेबिट) किया जाता है तथा तुलन पत्र में संबंधित संपत्ति की लागत में से घटाया जाता है।

च) संदिग्ध ऋणों हेतु प्रावधान (Provision for Doubtful Debts): रूढ़िवादिता के सिद्धांत के तहत संभावित देनदार हानियों हेतु लाभ से बनाया गया संचय। इसे लाभ-हानि खाते में डेबिट किया जाता है तथा देनदारों में से घटाया जाता है।

मद	पूंजीगत व्यय (Capital Expenditure)	राजस्व व्यय (Revenue Expenditure)
प्रयोजन एवं प्रकृति	स्थायी परिसंपत्ति के अर्जन, विस्तार अथवा उत्पादन क्षमता बढ़ाने हेतु।	व्यवसाय के दैनिक संचालन तथा मौजूदा संपत्तियों के सामान्य रखरखाव हेतु।
लाभ की अवधि	इसका आर्थिक लाभ दीर्घकाल (एक से अधिक लेखा वर्ष) तक प्राप्त होता है।	इसका लाभ केवल चालू लेखांकन अवधि (1 वर्ष के भीतर) तक सीमित रहता है।
वित्तीय विवरण में स्थान	तुलन पत्र (बैलेंस शीट) के संपत्ति पक्ष में दर्ज किया जाता है।	व्यापारिक अथवा लाभ-हानि खाते के नाम पक्ष में दर्ज किया जाता है।
क्षमता पर प्रभाव	यह उपक्रम की लाभार्जन क्षमता (Earning Capacity) में प्रत्यक्ष वृद्धि करता है।	यह लाभार्जन क्षमता को बनाए रखने (Maintaining Capacity) में सहायक होता है।

खंड B: वित्तीय विवरणियों का विश्लेषण

उपखंड a: अनुपात विश्लेषण (Ratio Analysis) - तरलता अनुपात, शोधन क्षमता अनुपात, लाभप्रदता अनुपात, आवर्त अनुपात

अनुपात विश्लेषण का सैद्धांतिक आधार एवं प्रशासनिक उपयोगिता

वित्तीय विवरणियों में प्रस्तुत निरपेक्ष वित्तीय आंकड़े (Absolute Figures) स्वतः कोई स्पष्ट निष्कर्ष नहीं देते। जब दो परस्पर संबंधित वित्तीय मदों के मध्य गणितीय संबंध स्थापित किया जाता है, तो उसे 'वित्तीय अनुपात' कहते हैं। अनुपात विश्लेषण वित्तीय विश्लेषण का सर्वाधिक परिष्कृत उपकरण है, जो प्रबंधकों, वित्तीय संस्थानों, निवेशकों एवं सार्वजनिक प्रशासकों को किसी उपक्रम की वित्तीय सुदृढ़ता, परिचालन दक्षता, तरलता एवं शोधन क्षमता का तुलनात्मक मूल्यांकन करने में सक्षम बनाता है।

भारतीय लेखा मानकों तथा वित्तीय प्रबंधन के सिद्धांतों के अनुरूप अनुपातों को चार मुख्य संवर्गों में वर्गीकृत किया जाता है:

wincompete

अनुपात संवर्ग (Ratio Category)	प्रमुख वित्तीय अनुपात (Key Ratios)
1. तरलता अनुपात (Liquidity Ratios)	चालू अनुपात, त्वरित अनुपात, पूर्ण नकदी अनुपात
2. शोधन क्षमता अनुपात (Solvency Ratios)	ऋण-इक्विटी, कुल संपत्ति-ऋण, ब्याज आवरण अनुपात
3. आवर्त / गतिविधि अनुपात (Turnover Ratios)	स्टॉक आवर्त, देनदार आवर्त, कुल संपत्ति आवर्त
4. लाभप्रदता अनुपात (Profitability Ratios)	सकल लाभ, शुद्ध लाभ, नियोजित पूंजी पर प्रत्यय (ROCE)

1. तरलता अनुपात (Liquidity Ratios)
तरलता अनुपात किसी व्यावसायिक उपक्रम की अपनी अल्पकालिक देयताओं (Current Liabilities) को उनकी देय तिथि पर चुकाने की तात्कालिक क्षमता का परीक्षण करते हैं।

अ) चालू अनुपात (Current Ratio / Working Capital Ratio):
यह कुल चालू संपत्तियों और कुल चालू देयताओं के मध्य संबंध स्थापित करता है:

चालू अनुपात (Current Ratio) = चालू संपत्तियां (Current Assets) / चालू देयताएं (Current Liabilities)

मानक एवं आदर्श स्तर: वित्तीय प्रबंधन में इसका **आदर्श अनुपात 2:1** माना जाता है। यदि अनुपात 2:1 से काफी अधिक है, तो यह कार्यशील पूंजी के अनुत्पादक अवरोधन (निष्क्रिय नकदी या आवश्यकता से अधिक स्टॉक) को दर्शाता है। यदि यह 1:1 से नीचे चला जाए, तो उपक्रम पर अल्पकालिक दिवालियापन का संकट उत्पन्न हो सकता है।

ब) त्वरित अनुपात / तरल अनुपात / एसिड टेस्ट अनुपात (Quick Ratio / Liquid Ratio):
यह चालू अनुपात की तुलना में अधिक कठोर तरलता परीक्षण है। इसमें चालू संपत्तियों में से उन मदों को हटा दिया जाता है जिन्हें तत्काल बिना मूल्य हानि के नकदी में नहीं बदला जा सकता (अर्थात स्टॉक और पूर्वदत्त व्यय):

त्वरित अनुपात (Quick Ratio) = त्वरित संपत्तियां (Quick Assets) / चालू देयताएं (Current Liabilities)

त्वरित संपत्तियां (Quick Assets) = चालू संपत्तियां - (अंतिम स्टॉक + पूर्वदत्त व्यय)

मानक एवं आदर्श स्तर: इसका **आदर्श अनुपात 1:1** माना जाता है। यह इंगित करता है कि व्यवसाय बिना किसी माल की बिक्री की प्रतीक्षा किए अपने प्रत्येक 1 रुपये की अल्पकालिक देयता के बदले 1 रुपये की तुरंत उपलब्ध तरल संपत्ति रखता है।

2. शोधन क्षमता अनुपात (Solvency Ratios / Leverage Ratios)
शोधन क्षमता अनुपात उपक्रम की दीर्घकालिक वित्तीय सुदृढ़ता और उसके दीर्घकालिक ऋणों (मूलधन एवं ब्याज) को चुकाने की क्षमता का विश्लेषण करते हैं।

\क) ऋण-इक्विटी अनुपात (Debt-Equity Ratio):
यह अनुपात व्यवसाय में बाह्य दीर्घकालिक ऋणदाताओं द्वारा लगाई गई पूंजी तथा स्वामियों की अपनी पूंजी (इक्विटी) के अनुपात को मापता है:
ऋण-इक्विटी अनुपात का गणितीय सूत्र

ऋण-इक्विटी अनुपात = दीर्घकालिक ऋण (Long-term Debt) / शेयरधारक निधियां (Shareholders' Equity)

मानक एवं आदर्श स्तर: औद्योगिक उपक्रमों हेतु इसका **पारंपरिक आदर्श अनुपात 2:1** माना जाता है। उच्च ऋण-इक्विटी अनुपात उच्च वित्तीय जोखिम (Financial Risk) का सूचक है, क्योंकि मंदी के समय ब्याज का स्थायी भार उपक्रम को दिवालिया बना सकता है।

ख) स्वामित्व अनुपात (Proprietary Ratio):
यह कुल परिसंपत्तियों में स्वामियों की पूंजी के प्रतिशत हिस्से को दर्शाता है:

स्वामित्व अनुपात विश्लेषण (Proprietary Ratio)

📊 **मुख्य सूत्र: स्वामित्व अनुपात = शेयरधारक निधियां (Shareholders' Equity) / कुल संपत्तियां (Total Assets)**

क्र.सं.	वित्तीय घटक (Financial Metric)	विवरण एवं आयाम (Description & Dimension)
1	शेयरधारक निधियां (Shareholders' Funds)	स्वामियों की अपनी कुल पूंजी, शेयर पूंजी, संचित कोष एवं अधिशेष का योग
2	कुल संपत्तियां (Total Assets)	व्यवसाय के स्वामित्व वाली समस्त गैर-चालू एवं चालू संपत्तियों का कुल योग

ग) ब्याज आवरण अनुपात (Interest Coverage Ratio - ICR):
यह अनुपात दर्शाता है कि कंपनी का परिचालन लाभ उसके दीर्घकालिक ऋणों पर देय ब्याज दायित्वों को कितनी बार कवर करता है:

ब्याज आवरण अनुपात विश्लेषण (Interest Coverage Ratio)

📊 **मुख्य सूत्र: ब्याज आवरण अनुपात = ब्याज एवं कर पूर्व लाभ (EBIT) / दीर्घकालिक ब्याज प्रभार (Interest Expense)**

क्र.सं.	वित्तीय घटक (Financial Metric)	विवरण एवं आयाम (Description & Dimension)
1	ब्याज एवं कर पूर्व लाभ (EBIT)	Earnings Before Interest and Tax (कंपनी की वह आय जिससे ऋणों के ब्याज और करों का भुगतान किया जाता है)
2	दीर्घकालिक ब्याज प्रभार (Interest Expense)	कुल दीर्घकालिक ऋणों पर देय ब्याज दायित्व

महत्व: बैंक एवं वित्तीय संस्थान नए ऋण जारी करते समय इस अनुपात की गहन संवीक्षा करते हैं। 2.5 गुना से कम का अनुपात ऋण शोधन क्षमता पर गंभीर प्रश्नचिह्न खड़ा करता है।

3. आवर्त अथवा गतिविधि अनुपात (Turnover / Activity Ratios)
यह अनुपात उपक्रम द्वारा अपनी विभिन्न परिसंपत्तियों और संसाधनों के कुशल उपयोग की गति और आवृत्ति को मापते हैं। इन्हें सामान्यतः 'गुणा' (Times) में व्यक्त किया जाता है:

अ) स्टॉक आवर्त अनुपात (Inventory Turnover Ratio - ITR):
यह मापता है कि वर्ष के दौरान माल-सूची औसतन कितनी बार बेची गई और पुनः प्रतिस्थापित की गई:

स्टॉक आवर्त अनुपात और औसत स्टॉक विश्लेषण (Inventory Turnover Ratio)

wincompete

📊 **मुख्य सूत्र: स्टॉक आवर्त अनुपात = बेचे गए माल की लागत (COGS) / औसत स्टॉक (Average Inventory)**

क्र.सं.	वित्तीय घटक (Financial Metric)	सूत्र / गणना विधि (Formula & Description)
1	**स्टॉक आवर्त अनुपात (Inventory Turnover Ratio)**	बेचे गए माल की लागत (COGS) ÷ औसत स्टॉक (Average Inventory) *(यह दर्शाता है कि वर्ष में कितनी बार स्टॉक बेचा और बदला गया है)*
2	**औसत स्टॉक (Average Inventory)**	(प्रारंभिक स्टॉक + अंतिम स्टॉक) ÷ 2 *(वर्ष की शुरुआत और अंत के स्टॉक का औसत मूल्य)*

उच्च अनुपात माल के त्वरित संचलन और कुशल बिक्री प्रबंधन का प्रतीक है, जबकि निम्न अनुपात अप्रचलित अथवा मृत स्टॉक (Dead Stock) के संचय को दर्शाता है।

ब) व्यापारिक प्राप्य आवर्त अनुपात (Debtors / Receivables Turnover Ratio):
यह उधार बिक्री से नकदी वसूली की गति को मापता है:

व्यापारिक प्राप्य आवर्त अनुपात एवं औसत वसूली अवधि

प्राप्य आवर्त अनुपात = शुद्ध उधार विक्रय (Net Credit Sales) / औसत व्यापारिक प्राप्य

औसत वसूली अवधि (दिनों में) = 365 / प्राप्य आवर्त अनुपात

स) कार्यशील पूंजी आवर्त अनुपात (Working Capital Turnover Ratio):
यह मापता है कि शुद्ध कार्यशील पूंजी (चालू संपत्तियां - चालू देयताएं) का बिक्री सृजन में कितना दक्ष उपयोग हुआ है:

कार्यशील पूंजी आवर्त अनुपात = शुद्ध विक्रय (Net Revenue) / शुद्ध कार्यशील पूंजी

4. लाभप्रदता अनुपात (Profitability Ratios)
लाभप्रदता अनुपात उपक्रम की पूंजी और संसाधनों के नियोजन से लाभ अर्जित करने की समग्र दक्षता का मूल्यांकन करते हैं। इन्हें सामान्यतः प्रतिशत (%) में व्यक्त किया जाता है:

क) सकल लाभ अनुपात (Gross Profit Ratio):

सकल लाभ अनुपात = (सकल लाभ / शुद्ध विक्रय) × 100

ख) शुद्ध लाभ अनुपात (Net Profit Ratio):

शुद्ध लाभ अनुपात = (कर पश्चात शुद्ध लाभ / शुद्ध विक्रय) × 100

ग) नियोजित पूंजी पर प्रत्यय (Return on Capital Employed - ROCE):
यह उपक्रम में विनियोजित कुल दीर्घकालिक पूंजी पर अर्जित समग्र प्रतिलाभ को मापता है। यह प्रबंधन की समग्र परिचालन दक्षता का सर्वोत्तम पैमाना है:

नियोजित पूंजी पर प्रत्यय (ROCE) संरचना

ROCE (%) = [ब्याज एवं कर पूर्व लाभ (EBIT) / कुल नियोजित पूंजी (Capital Employed)] × 100

नियोजित पूंजी (Capital Employed) = शेयरधारक निधियां + गैर-चालू देयताएं
(अथवा कुल संपत्तियां - चालू देयताएं)

घ) प्रति अंश आय (Earnings Per Share - EPS):
यह इक्विटी शेयरधारकों को प्रति शेयर मिलने वाले शुद्ध लाभ को दर्शाता है (कंपनी अधिनियम के तहत इसका प्रकटीकरण अनिवार्य है):

प्रति अंश आय (EPS) = इक्विटी शेयरधारकों हेतु उपलब्ध शुद्ध लाभ / बकाया इक्विटी शेयरों की संख्या

अनुपात संवर्ग	प्रमुख प्रतिनिधि अनुपात	सामान्य आदर्श मानक	प्रशासनिक एवं प्रबंधकीय महत्व
तरलता अनुपात	चालू अनुपात (Current Ratio)	2:1	अल्पकालिक ऋण शोधन क्षमता एवं कार्यशील पूंजी की पर्याप्तता।

wincompete

तरलता अनुपात	त्वरित अनुपात (Quick Ratio)	1:1	बिना स्टॉक बेचे तात्कालिक देनदारियों के भुगतान की क्षमता।
शोधन क्षमता	ऋण-इक्विटी (Debt-Equity)	2:1 (उद्योगानुसार परिवर्तनशील)	पूंजी संरचना में वित्तीय जोखिम तथा उत्तोलन का स्तर।
शोधन क्षमता	ब्याज आवरण (Interest Coverage)	न्यूनतम 3 से 4 गुना	ऋणदाता सुरक्षा; ब्याज भुगतान में चूक की संभावना का अभाव।
आवर्त अनुपात	स्टॉक आवर्त (Inventory Turnover)	उच्चतर बेहतर	माल-सूची प्रबंधन दक्षता; पूंजी के अनुत्पादक जाम होने की रोकथाम।
लाभप्रदता	नियोजित पूंजी पर प्रत्यय (ROCE)	पूंजी की लागत से उच्चतर	संपूर्ण व्यावसायिक संसाधनों के इष्टतम उपयोग का वैश्विक माप।

उपखंड b: फंड फ्लो विश्लेषण, कैश फ्लो विश्लेषण, वित्तीय विवरणियों की सीमाएं

फंड फ्लो विश्लेषण (कोष प्रवाह विवरण - Fund Flow Statement)

फंड फ्लो विवरण दो तुलन पत्रों की तिथियों के मध्य किसी उपक्रम की शुद्ध कार्यशील पूंजी (Working Capital) में होने वाले परिवर्तनों तथा कोषों के विभिन्न स्रोतों (Sources) और अनुप्रयोगों (Applications) का एक गतिशील सारांश है।

कोष की अवधारणा एवं नियम:

लेखांकन में 'फंड' का पारंपरिक आशय **शुद्ध कार्यशील पूंजी (चालू संपत्तियां - चालू देयताएं)** से होता है। कोष प्रवाह का एक बुनियादी नियम यह है कि:

अ) जब एक मद चालू (Current) हो और दूसरी मद गैर-चालू (Non-Current) हो, तभी कोष का वास्तविक प्रवाह घटित होता है।

ब) दो चालू मदों के मध्य होने वाले लेन-देन (यथा देनदारों से नकद मिलना) से कार्यशील पूंजी में कोई परिवर्तन नहीं होता, अतः कोई कोष प्रवाह नहीं माना जाता।

स) दो गैर-चालू मदों के मध्य होने वाले लेन-देन (यथा डिबेंचरों के बदले शेयर जारी करना) से भी कार्यशील पूंजी अप्रभावित रहती है।

कोष विवरण की संरचना:

क) कोषों के स्रोत (Sources of Funds): परिचालन से प्राप्त कोष (Funds from Operations), दीर्घकालिक ऋणों का आहरण, नए शेयरों/डिबेंचरों का निर्गमन, तथा स्थिर संपत्तियों अथवा दीर्घकालिक विनियोगों की बिक्री से प्राप्त राशि।

ख) कोषों के अनुप्रयोग (Applications of Funds): परिचालन में हुई हानि, स्थिर परिसंपत्तियों का नकद क्रय, दीर्घकालिक ऋणों एवं डिबेंचरों का पुनर्भुगतान, वरीयता शेयरों का शोधन, लाभांश व करों का वास्तविक भुगतान।

ग) कार्यशील पूंजी में परिवर्तन का विवरण (Schedule of Changes in Working Capital): यह विवरण अलग से बनाया जाता है, जिसमें चालू संपत्तियों में वृद्धि या चालू देयताओं में कमी कार्यशील पूंजी को बढ़ाती है, तथा विपरीत स्थिति इसे घटाती है।

रोकड़ प्रवाह विश्लेषण (कैश फ्लो स्टेटमेंट - Cash Flow Statement)
कैश फ्लो स्टेटमेंट एक निश्चित लेखांकन अवधि के दौरान किसी इकाई में **रोकड़ एवं रोकड़ समतुल्यों (Cash and Cash Equivalents)** के अंतर्वाह (Inflows) और बहिर्वाह (Outflows) का एक अत्यंत सटीक और वस्तुनिष्ठ विवरण प्रस्तुत करता है।

वैधानिक ढांचा एवं भारतीय लेखा मानक 7 (Ind AS 7):
कंपनी अधिनियम 2013 के अनुसार सभी कंपनियों (एक-व्यक्ति कंपनी, लघु कंपनी एवं निष्क्रिय कंपनी को छोड़कर) हेतु वित्तीय विवरणियों के अनिवार्य अंग के रूप में Ind AS 7 (अथवा AS 3) के अनुरूप रोकड़ प्रवाह विवरण तैयार करना विधिक रूप से बाध्यकारी है।

Ind AS 7 के अनुसार संपूर्ण नकदी प्रवाह को तीन सुस्पष्ट परिचालन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाना अनिवार्य है:

गतिविधि का प्रकार	नाम (English Name)	मुख्य विवरण एवं उद्देश्य
1. परिचालन गतिविधियां	Operating Activities	मुख्य व्यावसायिक राजस्व उत्पादक गतिविधियां
2. निवेश गतिविधियां	Investing Activities	दीर्घकालिक संपत्तियों व विनियोगों का क्रय-विक्रय
3. वित्तीय गतिविधियां	Financing Activities	पूंजी संरचना व उधारी से संबंधित गतिविधियां

1. परिचालन गतिविधियों से रोकड़ प्रवाह (Cash Flow from Operating Activities):
यह उपक्रम की मुख्य राजस्व-उत्पादक (Principal Revenue-generating) गतिविधियों से संबंधित नकदी प्रवाह है:

अंतर्वाह: ग्राहकों से माल व सेवाओं की बिक्री से नकद प्राप्ति, रॉयल्टी, फीस, कमीशन से प्राप्तियां।

बहिर्वाह: माल व सेवाओं के आपूर्तिकर्ताओं को नकद भुगतान, कर्मचारियों को मजदूरी व वेतन का नकद भुगतान, आयकर का नकद भुगतान (जब तक कि वह निवेश या वित्तीय गतिविधि से न जुड़ा हो)।

गणना पद्धति: इसे 'प्रत्यक्ष विधि' (Direct Method) अथवा 'अप्रत्यक्ष विधि' (Indirect Method - शुद्ध लाभ में गैर-रोकड़ मदों जैसे मूल्यह्रास को जोड़कर तथा कार्यशील पूंजी परिवर्तनों को समायोजित करके) से तैयार किया जाता है।

2. निवेश गतिविधियों से रोकड़ प्रवाह (Cash Flow from Investing Activities):
यह दीर्घकालिक परिसंपत्तियों तथा अन्य विनियोगों के अधिग्रहण और निपटान से संबंधित है जो रोकड़ समतुल्यों में शामिल नहीं हैं:

अंतर्वाह: स्थिर परिसंपत्तियों (संयंत्र, भवन) की बिक्री से नकद प्राप्ति, अन्य कंपनियों के शेयरों/बांडों की बिक्री से प्राप्ति, दिए गए ऋणों की मूलधन वसूली, प्राप्त ब्याज और लाभांश।

बहिर्वाह: स्थिर परिसंपत्तियों (मूर्त व अमूर्त दोनों) के क्रय हेतु नकद भुगतान, अनुसंधान व विकास का पूंजीकरण, अन्य उपक्रमों की प्रतिभूतियों को खरीदने हेतु भुगतान।

3. वित्तीय गतिविधियों से रोकड़ प्रवाह (Cash Flow from Financing Activities):
यह उन गतिविधियों से संबंधित है जिनके परिणामस्वरूप उपक्रम की स्वामियों की पूंजी (इक्विटी) तथा उसकी उधारी के आकार और संरचना में परिवर्तन होता है:

अंतर्वाह: इक्विटी अथवा वरीयता अंशों के नए निर्गमन से नकद प्राप्ति, डिबेंचर, बांड, बैंक ऋण व बंधक ऋण जारी करने से प्राप्त नकद।

बहिर्वाह: लिए गए ऋणों के मूलधन का पुनर्भुगतान, डिबेंचरों का शोधन, अपनी ही प्रतिभूतियों की पुनर्खरीद (Buy-back of Shares), शेयरधारकों को लाभांश का नकद भुगतान, वित्तीय उधारी पर ब्याज का नकद भुगतान।

तुलनात्मक आयाम	**कोष प्रवाह विवरण (Fund Flow Statement)**	**रोकड़ प्रवाह विवरण (Cash Flow Statement)**
संकल्पनात्मक आधार	कार्यशील पूंजी (Working Capital) की व्यापक अवधारणा पर आधारित।	विशुद्ध संकीर्ण नकदी (रोकड़ एवं बैंक शेष) की अवधारणा पर आधारित।
वैधानिक अनिवार्यता	विधिक रूप से अनिवार्य नहीं; आंतरिक प्रबंधकीय उपकरण के रूप में प्रयुक्त।	कंपनी अधिनियम 2013 एवं Ind AS 7 के तहत विधिक रूप से अनिवार्य।

wincompete

विश्लेषण की प्रकृति	मध्यम एवं दीर्घकालिक वित्तीय योजना तथा कोषों के स्रोतों को दर्शाता है।	अल्पकालिक तरलता, तात्कालिक भुगतान क्षमता व नकदी प्रबंधन का विश्लेषण।
लेखांकन प्रणाली	उपार्जन लेखांकन (Accrual Accounting) के सिद्धांतों से प्रभावित।	पूर्णतः नकद लेखांकन (Cash Basis of Accounting) पर आधारित।
गतिविधियों का विभाजन	स्रोतों एवं अनुप्रयोगों (Sources & Applications) के रूप में द्विपक्षीय विभाजन।	तीन अनिवार्य श्रेणियों (परिचालन, निवेश एवं वित्तीय) में वैज्ञानिक वर्गीकरण।

वित्तीय विवरणियों की अंतर्निहित सीमाएं (Limitations of Financial Statements)

वित्तीय विवरणियां यद्यपि किसी इकाई के वित्तीय स्वास्थ्य का सर्वाधिक प्रामाणिक दस्तावेज हैं, तथापि उनकी अपनी कुछ अपरिहार्य सीमाएं होती हैं जिनकी अनदेखी करने पर भ्रामक निष्कर्ष निकल सकते हैं:

क) ऐतिहासिक लागत पर आधारित (Historical Cost Bias): संपत्तियों को उनके मूल क्रय मूल्य पर दर्ज किया जाता है, जो समय के साथ मुद्रास्फीति (Inflation) के प्रभाव के कारण वर्तमान वास्तविक बाजार मूल्य का प्रतिनिधित्व नहीं करते।

ख) गैर-मौद्रिक गुणात्मक कारकों की पूर्ण उपेक्षा: वित्तीय विवरणियों में केवल उन्हीं तथ्यों का समावेश होता है जिन्हें मुद्रा में मापा जा सके। मानव संसाधन की गुणवत्ता, प्रबंधन की दूरदर्शिता, श्रमिक-प्रबंधन संबंध, ग्राहक निष्ठा, ट्रेड यूनियन विवाद तथा तकनीकी पेटेंट की वास्तविक शक्ति जैसे महत्वपूर्ण घटक इसमें प्रतिबिंबित नहीं होते।

ग) लेखांकन नीतियों एवं अनुमानों की व्यक्तिपरकता: लाभ एवं परिसंपत्ति मूल्य कई व्यक्तिपरक अनुमानों पर निर्भर करते हैं; जैसे मूल्यह्रास की पद्धति (सीधी रेखा बनाम क्रमागत ह्रास), परिसंपत्तियों का अनुमानित उपयोगी जीवनकाल, तथा संदिग्ध ऋणों हेतु प्रावधान की दर। विभिन्न कंपनियों द्वारा भिन्न-भिन्न नीतियां अपनाने से उनकी तुलनात्मकता बाधित होती है।

घ) विडो ड्रेसिंग (कृत्रिम सजावट / Window Dressing) का जोखिम: कई उपक्रम वित्तीय वर्ष के अंत में जानबूझकर अपनी वित्तीय स्थिति को वास्तविक स्थिति की तुलना में अधिक आकर्षक दिखाने हेतु लेन-देनों में हेरफेर करते हैं (यथा वर्ष के अंतिम दिन अल्पकालिक ऋण लेकर बैंक शेष बढ़ाना अथवा अंतिम स्टॉक का अत्यधिक मूल्यांकन करना)।

ङ) अंतरिम अवधियों की अपूर्णता: लेखांकन अवधि की मान्यता के कारण 1 वर्ष के कृत्रिम अंतराल पर तैयार विवरणियां अंतिम नहीं होतीं; किसी व्यवसाय का वास्तविक और अचूक लाभ केवल उसके संपूर्ण जीवन चक्र की समाप्ति (परिसमापन) पर ही ज्ञात हो सकता है।

महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली एवं प्रमुख अवधारणाएं

परिचालन चक्र (Operating Cycle): किसी व्यवसाय द्वारा उत्पादन प्रक्रिया हेतु कच्चे माल के क्रय से लेकर, उसके विनिर्माण, तैयार माल के विक्रय तथा अंतिम रूप से ग्राहकों से नकद वसूली के मध्य

व्यतीत होने वाला कुल औसत समय अंतराल। इसे कार्यशील पूंजी चक्र (Working Capital Cycle) भी कहा जाता है।

ईबीआईटीडीए (EBITDA): ब्याज, कर, मूल्यह्रास और परिशोधन पूर्व लाभ (Earnings Before Interest, Taxes, Depreciation, and Amortization)। यह किसी इकाई के पूंजीगत ढांचे, ऋण स्तर और लेखांकन नीतियों के प्रभाव को हटाकर विशुद्ध मुख्य व्यावसायिक परिचालन से नकदी अर्जन क्षमता को मापने वाला वैश्विक पैमाना है।

गियरिंग अनुपात / वित्तीय उत्तोलन (Gearing Ratio / Financial Leverage): किसी उपक्रम की कुल पूंजी संरचना में स्थिर ब्याज वाली बाह्य उधारी (Debt) का इक्विटी पूंजी के सापेक्ष अनुपात। 'उच्च गियरिंग' वाली कंपनी को बूम अवधि में अधिक लाभ होता है, परंतु मंदी में उसके दिवालिया होने का जोखिम अत्यधिक बढ़ जाता है।

रोकड़ समतुल्य (Cash Equivalents): अल्पकालिक, अत्यधिक तरल विनियोग जिन्हें तत्काल एक ज्ञात नकद राशि में परिवर्तित किया जा सकता है और जिनके मूल्य में परिवर्तन का जोखिम नगण्य होता है (यथा 91-दिवसीय ट्रेजरी बिल, वाणिज्यिक पत्र तथा मुद्रा बाजार फंड)।

संभावित देयताएं (Contingent Liabilities): वे दायित्व जिनका अस्तित्व किसी अनिश्चित भविष्य की घटना के घटित होने अथवा न होने पर निर्भर करता है (यथा न्यायालय में विचाराधीन क्षतिपूर्ति वाद, कर्मचारियों के बोनस विवाद अथवा भुनाए गए विपत्रों पर दायित्व)। इन्हें तुलन पत्र के योग में न जोड़कर पाद-टिप्पणी में दर्शाया जाता है।

अमूर्त परिसंपत्तियों का परिशोधन (Amortization): जिस प्रकार भौतिक स्थायी संपत्तियों (यथा मशीनरी) पर 'मूल्यह्रास' (Depreciation) लगाया जाता है, उसी प्रकार अमूर्त परिसंपत्तियों (यथा पेटेंट, कॉपीराइट, सॉफ्टवेयर लाइसेंस) की लागत को उनके उपयोगी जीवनकाल में क्रमिक रूप से लाभ-हानि खाते में अपलेखित करने की प्रक्रिया को परिशोधन कहा जाता है।

मुक्त रोकड़ प्रवाह (Free Cash Flow - FCF): परिचालन से प्राप्त कुल नकदी प्रवाह में से परिसंपत्तियों के रखरखाव व विस्तार हेतु आवश्यक पूंजीगत व्यय (CapEx) को घटाने के बाद बची हुई शुद्ध नकदी। यह वह वास्तविक नकदी है जो शेयरधारकों को लाभांश देने अथवा ऋण अदायगी हेतु पूर्णतः स्वतंत्र होती है।

अध्याय 13: प्रबंधन लेखांकन - लागत नियंत्रण एवं निर्णय प्रक्रिया

खंड A: लागत लेखांकन के तत्व

उपखंड a: लागत की अवधारणा, सामग्री, श्रम और उपरिव्यय, स्थिर बनाम परिवर्तनशील लागत

लागत एवं लागत लेखांकन का सैद्धांतिक ढांचा

लागत (Cost) से आशय किसी वस्तु के उत्पादन अथवा सेवा के निष्पादन हेतु दिए गए मौद्रिक प्रतिफल अथवा व्यय किए गए वास्तविक या आकलित आर्थिक संसाधनों के योग से है। चार्टर्ड इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट अकाउंटेंट्स (CIMA, लंदन) के अनुसार, "लागत किसी निश्चित वस्तु या सेवा पर किए गए या उससे संबंधित व्यय की वह राशि है, जिसे मुद्रा के रूप में मापा जा सकता है।"

प्रबंधन लेखांकन के अंतर्गत 'लागत लेखांकन' (Cost Accounting) वह विशिष्ट विधा है जिसका उपयोग लागत के संकलन, वर्गीकरण, आबंटन, नियंत्रण तथा अंतिम रूप से प्रबंधन को रणनीतिक निर्णय लेने हेतु उपयोगी वित्तीय सूचनाएं उपलब्ध कराने के लिए किया जाता है। यह वित्तीय लेखांकन की ऐतिहासिक सीमाओं से आगे बढ़कर अग्रगामी और पूर्व-नियंत्रण आधारित प्रबंधकीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

लागत के मूलभूत तत्व (Elements of Cost)

किसी भी उत्पाद अथवा सेवा की कुल उत्पादन लागत को तीन आधारभूत और अविभाज्य तत्वों में वर्गीकृत किया जाता है: सामग्री, श्रम तथा अन्य प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष व्यय। प्रत्येक तत्व को पुनः दो श्रेणियों (प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष) में विभाजित किया जाता है:

लागत के तत्व (Elements of Cost)	प्रत्यक्ष घटक (Direct Component)	अप्रत्यक्ष घटक (Indirect Component)
1. सामग्री लागत (Material Cost)	प्रत्यक्ष सामग्री (Direct Material)	अप्रत्यक्ष सामग्री (Indirect Material)
2. श्रम लागत (Labor Cost)	प्रत्यक्ष श्रम (Direct Labor)	अप्रत्यक्ष श्रम (Indirect Labor)
3. व्यय (Expenses)	प्रत्यक्ष व्यय (Direct Expenses)	अप्रत्यक्ष व्यय / उपरिव्यय (Overheads)

क) सामग्री लागत (Material Cost):

प्रत्यक्ष सामग्री (Direct Material): वह कच्चा माल जो सीधे उत्पादन प्रक्रिया में प्रयुक्त होता है और जो अंतिम उत्पाद का एक अभिन्न, भौतिक और मापने योग्य अंग बन जाता है। उदाहरणार्थ: फर्नीचर निर्माण में लकड़ी, वस्त्र निर्माण में धागा या कपड़ा, तथा वाहन निर्माण में स्टील।

अप्रत्यक्ष सामग्री (Indirect Material): वह सहायक सामग्री जो उत्पादन प्रक्रिया को सुगम बनाती है किंतु भौतिक रूप से अंतिम उत्पाद में सीधे स्पष्ट नहीं होती अथवा जिसका प्रति इकाई मूल्य नगण्य होता है। उदाहरणार्थ: मशीनों का लुब्रिकेंट ऑयल, ग्रीस, सफाई का कपड़ा, सैंडपेपर तथा पैकिंग सामग्री।

ख) श्रम लागत (Labor Cost):

प्रत्यक्ष श्रम (Direct Labor): उत्पादन कार्य में सीधे लगे हुए उन श्रमिकों का पारिश्रमिक जो कच्चे माल को तैयार माल में परिवर्तित करने का भौतिक कार्य करते हैं। उदाहरणार्थ: मशीन ऑपरेटर, वेल्डर, बढ़ई तथा असेंबली लाइन कर्मी।

अप्रत्यक्ष श्रम (Indirect Labor): वे कर्मचारी जो सीधे उत्पादन नहीं करते किंतु उत्पादन परिवेश का प्रबंधन, सुरक्षा और रखरखाव करते हैं। उदाहरणार्थ: कारखाना फोरमैन का वेतन, सुरक्षा गार्ड का पारिश्रमिक, स्टोर कीपर का वेतन, तथा समय-पाल (Time-keeper) का वेतन।

ग) अन्य प्रत्यक्ष व्यय (Direct Expenses / Chargeable Expenses):

वे विशिष्ट व्यय (सामग्री और श्रम को छोड़कर) जो किसी विशेष जॉब, बैच अथवा उत्पाद के लिए सीधे किए जाते हैं। उदाहरणार्थ: किसी विशेष उत्पाद के डिजाइन हेतु भुगतान की गई रॉयल्टी, विशेष सांचों (Molds/Dies) का किराया, तथा किसी अनुबंध हेतु आर्किटेक्ट शुल्क।

मूल लागत (Prime Cost) एवं उपरिव्यय (Overheads) का विन्यास
उत्पादन लागत की शास्त्रीय संरचना के अनुसार:

लागत घटक (Cost Component)	गणितीय संयोजन (Formula)
मूल लागत (Prime Cost)	प्रत्यक्ष सामग्री + प्रत्यक्ष श्रम + प्रत्यक्ष व्यय
उपरिव्यय (Overheads)	अप्रत्यक्ष सामग्री + अप्रत्यक्ष श्रम + अप्रत्यक्ष व्यय
कारखाना लागत (Factory Cost)	मूल लागत + कारखाना उपरिव्यय
कुल उत्पादन लागत (Cost of Production)	कारखाना लागत + कार्यालय एवं प्रशासनिक उपरिव्यय
बिक्री लागत (Cost of Sales)	कुल उत्पादन लागत + विक्रय एवं वितरण उपरिव्यय

उपरिव्यय (Overheads) का कार्यात्मक वर्गीकरण:

अ) कारखाना उपरिव्यय (Works / Factory Overheads): उत्पादन स्थल (कारखाने) से जुड़े समस्त अप्रत्यक्ष व्यय। यथा: कारखाने का किराया, बिजली व शक्ति (Power & Fuel), संयंत्र का मूल्यह्रास, अप्रत्यक्ष मजदूरी तथा संयंत्र की मरम्मत।

ब) कार्यालय एवं प्रशासनिक उपरिव्यय (Office & Administration Overheads): उपक्रम के समग्र नियंत्रण, प्रबंधन और दिशा-निर्देशन से जुड़े व्यय। यथा: निदेशक मंडल का वेतन, कानूनी शुल्क, सामान्य कार्यालय किराया, कार्यालय स्टेशनरी तथा टेलीफोन व्यय।

स) विक्रय एवं वितरण उपरिव्यय (Selling & Distribution Overheads): उत्पादों की मांग सृजित करने, ग्राहकों को बनाए रखने तथा तैयार माल को कारखाने से उपभोक्ता तक पहुंचाने से जुड़े व्यय। यथा: विज्ञापन व्यय, विक्रय प्रतिनिधियों का कमीशन, जावक गाड़ी भाड़ा (Carriage Outward), शोरूम का किराया, तथा वितरण वाहनों का रखरखाव।

व्यवहार्यता (Behavior) के आधार पर लागत का वर्गीकरण
उत्पादन की मात्रा (Volume of Output) में होने वाले परिवर्तनों के प्रति लागत के व्यवहार के आधार पर इसे तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है:

लागत का संवर्ग	परिभाषा एवं परिचालन व्यवहार	प्रति इकाई लागत पर प्रभाव	व्यावहारिक उदाहरण
स्थिर लागत (Fixed Cost / Period Cost)	वह लागत जो अल्पकाल में उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन होने पर भी कुल योग में पूर्णतः अपरिवर्तित रहती है।	उत्पादन बढ़ने पर प्रति इकाई स्थिर लागत घटती है; उत्पादन घटने पर बढ़ती है।	कारखाने का मासिक किराया, स्थायी प्रबंधकीय वेतन, भवन का वार्षिक बीमा।
परिवर्तनशील लागत (Variable Cost / Product Cost)	वह लागत जो उत्पादन की मात्रा के अनुपात में प्रत्यक्ष और प्रत्यक्षतः घटती-बढ़ती है।	प्रति इकाई परिवर्तनशील लागत सदैव स्थिर बनी रहती है।	प्रत्यक्ष कच्चा माल, प्रत्यक्ष श्रम (टुकड़ा मजदूरी), उत्पादन पर रॉयल्टी, विद्युत शक्ति।
अर्ध-परिवर्तनशील लागत (Semi-Variable Cost)	वह मिश्रित लागत जिसका एक भाग उत्पादन की मात्रा से स्वतंत्र (स्थिर) होता है तथा दूसरा भाग उत्पादन के साथ बदलता है।	उत्पादन बढ़ने पर प्रति इकाई लागत घटती है, किंतु स्थिर लागत जितनी तीव्र गति से नहीं।	टेलीफोन बिल (निश्चित किराया + कॉल शुल्क), मशीनों का अनुरक्षण व्यय, पर्यवेक्षकों का वेतन।

उपखंड b: सीमांत लागत (Marginal Costing), सम-विच्छेद बिंदु विश्लेषण (Break-Even Analysis), सुरक्षा का अंतर (Margin of Safety)

सीमांत लागत की अवधारणा एवं सैद्धांतिक दर्शन

सीमांत लागत (Marginal Costing) निर्णय-निर्माण की एक अत्यंत वैज्ञानिक और परिष्कृत तकनीक है। अर्थशास्त्र के अनुसार, उत्पादन की एक अतिरिक्त इकाई का निर्माण करने से कुल लागत में जो शुद्ध वृद्धि होती है, उसे 'सीमांत लागत' कहते हैं।

प्रबंधन लेखांकन में सीमांत लागत तकनीक की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

क) लागत का द्वि-विभाजन: समस्त लागतों को अनिवार्य रूप से केवल दो भागों में बांटा जाता है—स्थिर लागत और परिवर्तनशील लागत। अर्ध-परिवर्तनशील लागतों को उनके घटकों में पृथक कर दिया जाता है।

ख) स्टॉक का मूल्यांकन: निर्मित माल तथा अर्ध-निर्मित माल (WIP) के अंतिम स्टॉक का मूल्यांकन **केवल परिवर्तनशील (सीमांत) लागत** पर किया जाता है; स्थिर लागतों को स्टॉक में कभी भी शामिल नहीं किया जाता।

ग) स्थिर लागत का कालावधि व्यय (Period Cost) स्वरूप: स्थिर लागत को उत्पाद की लागत न मानकर उस विशिष्ट कालावधि का व्यय माना जाता है और उसे सीधे उस अवधि के लाभ-हानि खाते में अंशदान से अपलेखित किया जाता है।

घ) अवशोषण लागत (Absorption Costing) से भिन्नता: पारंपरिक अवशोषण लागत प्रणाली में स्थिर और परिवर्तनशील दोनों लागतों को उत्पाद की प्रति इकाई लागत में शामिल किया जाता है, जिससे उत्पादन का स्तर बदलने पर लाभ के आंकड़े विकृत हो जाते हैं। सीमांत लागत इस विकृति को समाप्त करती है।

अंशदान (Contribution) की केंद्रीय संकल्पना

सीमांत लागत प्रणाली में लाभ की सीधी गणना करने के स्थान पर सर्वप्रथम 'अंशदान' निकाला जाता है। अंशदान बिक्री मूल्य और सीमांत (परिवर्तनशील) लागत के मध्य का आधिक्य है:

संबंध / सूत्र (Relation / Formula)	गणितीय समीकरण (Mathematical Equation)
1. अंशदान (विक्रय व लागत)	अंशदान (C) = बिक्री मूल्य (S) - परिवर्तनशील लागत (V)
2. अंशदान (स्थिर लागत व लाभ)	अंशदान (C) = स्थिर लागत (F) + लाभ (P)
3. शुद्ध लाभ की गणना	लाभ (P) = अंशदान (C) - स्थिर लागत (F)

यदि किसी उत्पाद का अंशदान उसकी स्थिर लागत से अधिक है, तो व्यवसाय को शुद्ध लाभ प्राप्त होता है। यदि अंशदान स्थिर लागत के ठीक बराबर है, तो न लाभ होता है और न हानि। यदि अंशदान स्थिर लागत से कम है, तो व्यवसाय को शुद्ध हानि उठानी पड़ती है।

लाभ-मात्रा अनुपात (Profit-Volume Ratio / P/V Ratio)

लाभ-मात्रा अनुपात (P/V Ratio) बिक्री की मात्रा में होने वाले परिवर्तनों के प्रत्युत्तर में अंशदान के अर्जन की दर को मापता है। इसे 'अंशदान अनुपात' भी कहा जाता है:

P/V अनुपात का रूप	गणितीय सूत्र (Mathematical Formula)
1. मूल अंशदान विधि	(अंशदान / बिक्री) × 100
2. लागत घटक विधि	[(बिक्री - परिवर्तनशील लागत) / बिक्री] × 100
3. लाभ परिवर्तन विधि	(लाभों में परिवर्तन / बिक्री में परिवर्तन) × 100
4. अंशदान परिवर्तन विधि	(अंशदान में परिवर्तन / बिक्री में परिवर्तन) × 100

प्रबंधकीय महत्व: उच्च P/V अनुपात यह दर्शाता है कि उत्पाद अत्यधिक लाभप्रद है और बिक्री में थोड़ी सी वृद्धि भी लाभ में तीव्र वृद्धि लाएगी। ऐसे उत्पादों को पूंजी और विपणन में उच्च प्राथमिकता दी जाती है।

सम-विच्छेद बिंदु विश्लेषण (Break-Even Analysis)

सम-विच्छेद बिंदु (Break-Even Point - BEP) उत्पादन अथवा बिक्री का वह विशिष्ट स्तर है जिस पर उपक्रम को **न तो कोई लाभ होता है और न ही कोई हानि (No Profit, No Loss)**। इस बिंदु पर व्यवसाय का कुल

राजस्व उसकी कुल लागत (स्थिर + परिवर्तनशील) के ठीक बराबर होता है, अर्थात कुल अंशदान कुल स्थिर लागत को पूर्णतः अवशोषित कर लेता है।

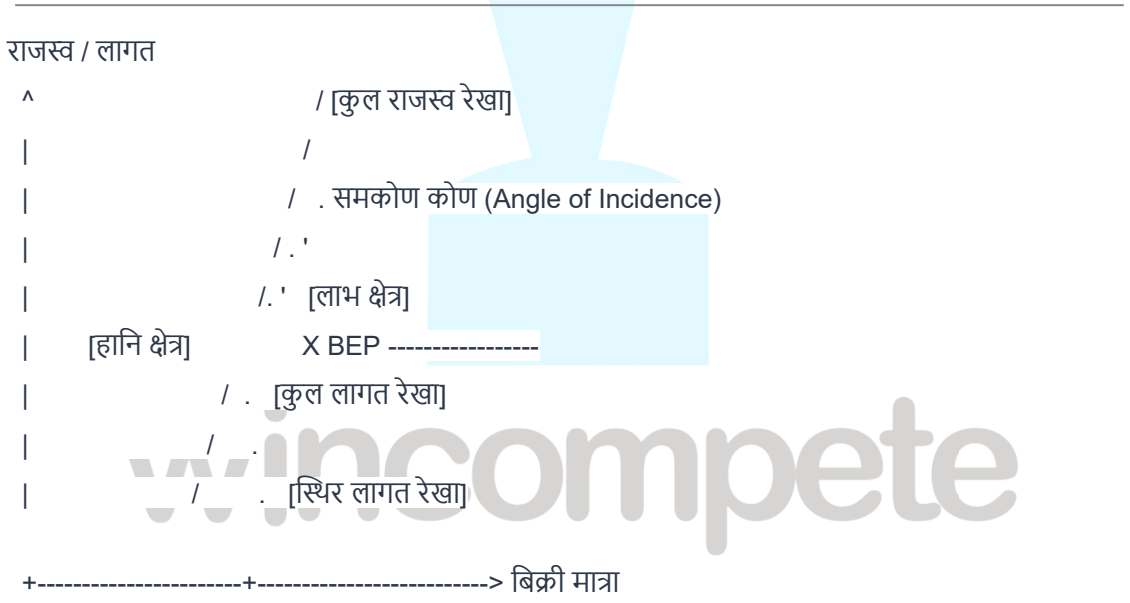
सम-विच्छेद बिंदु (BEP) का प्रकार	गणितीय सूत्र (Mathematical Formula)
1. इकाइयों में (In Units)	कुल स्थिर लागत (F) / प्रति इकाई अंशदान (S - V)
2. मौद्रिक मूल्य में (In Rupees)	कुल स्थिर लागत (F) / P/V अनुपात
3. क्षमता प्रतिशत में (Capacity %)	(सम-विच्छेद बिक्री / कुल स्थापित क्षमता) × 100

सम-विच्छेद चार्ट (Break-Even Chart) एवं समकोण कोण (Angle of Incidence):
सम-विच्छेद चार्ट पर कुल राजस्व रेखा और कुल लागत रेखा जिस बिंदु पर एक-दूसरे को काटती हैं, वह सम-विच्छेद बिंदु कहलाता है। इस बिंदु के दाईं ओर इन दोनों रेखाओं के मध्य बनने वाले कोण को **समकोण कोण (Angle of Incidence)** कहा जाता है।

एक बड़ा कोण यह इंगित करता है कि सम-विच्छेद बिंदु के पार होने के उपरांत कंपनी अत्यंत तीव्र गति से उच्च लाभ अर्जित कर रही है।

एक छोटा संकीर्ण कोण यह दर्शाता है कि सम-विच्छेद बिंदु के पार होने के बाद भी लाभ अर्जन की गति धीमी है।

सम-विच्छेद बिंदु और लागत-वॉल्यूम-लाभ विश्लेषण (Break-Even Analysis)



क्र.सं.	घटक / क्षेत्र (Component / Zone)	आर्थिक विवरण एवं निहितार्थ (Economic Description)
1	हानि क्षेत्र (Loss Zone)	BEP से कम बिक्री मात्रा जहाँ कुल लागत कुल राजस्व से अधिक होती है।
2	सम-विच्छेद बिंदु (BEP)	वह बिंदु जहाँ कुल राजस्व और कुल लागत एक-दूसरे के बराबर होते हैं (न लाभ, न हानि)।
3	लाभ क्षेत्र (Profit Zone)	BEP के बाद का क्षेत्र जहाँ कुल राजस्व कुल लागत से अधिक होता है।
4	समकोण कोण (Angle of Incidence)	राजस्व रेखा और लागत रेखा के बीच का कोण, जो लाभार्जन की दर को दर्शाता है।

सुरक्षा का अंतर (Margin of Safety - MoS)
सुरक्षा का अंतर वास्तविक (अथवा बजटेड) बिक्री और सम-विच्छेद बिक्री के मध्य का आधिक्य है। यह उस सीमा को प्रकट करता है जहां तक यदि व्यवसाय की बिक्री गिर भी जाए, तब भी उपक्रम को हानि नहीं उठानी पड़ेगी।

सुरक्षा का अंतर (Margin of Safety - MoS) के मुख्य सूत्र

मापन का रूप	गणितीय सूत्र
रुपयों में (अंतर विधि)	वास्तविक बिक्री - सम-विच्छेद बिक्री
रुपयों में (लाभ एवं P/V विधि)	शुद्ध लाभ / P/V अनुपात
इकाइयों में	वास्तविक बिक्री इकाइयां - सम-विच्छेद इकाइयां
प्रतिशत में	[(वास्तविक बिक्री - सम-विच्छेद बिक्री) / वास्तविक बिक्री] × 100

प्रबंधकीय विश्लेषण: एक उच्च सुरक्षा अंतर उपक्रम की मजबूत वित्तीय स्थिति और सुरक्षा कवच को प्रदर्शित करता है। यदि किसी कंपनी का सुरक्षा अंतर कम है, तो स्थिर लागतों में कटौती करके, बिक्री मूल्य बढ़ाकर अथवा परिवर्तनशील लागतों को नियंत्रित करके इसे बढ़ाया जा सकता है।

सीमांत लागत संकल्पना	परिभाषा एवं सूत्र	मुख्य प्रबंधकीय उपयोगिता
अंशदान (Contribution)	$C = S - V$ अथवा $C = F + P$	स्थिर लागतों की वसूली तथा लाभ सृजन का वास्तविक पैमाना।
P/V अनुपात	$(C/S) \times 100$	विभिन्न उत्पादों, संयंत्रों एवं विभागों की सापेक्ष लाभप्रदता की तुलना।
सम-विच्छेद बिंदु (BEP)	$F/(S - V)$ (इकाई) अथवा $F/(P/V)$ (मूल्य)	न्यूनतम परिचालन स्तर का निर्धारण जिसके नीचे कंपनी हानि में चली जाएगी।
सुरक्षा का अंतर (MoS)	वास्तविकबिक्री $-$ BEPबिक्री अथवा $P/(P/V)$	बाजार में मंदी अथवा मांग में गिरावट को सहन करने की वित्तीय प्रतिरोधक क्षमता।

खंड B: प्रबंधकीय निर्णय एवं नियंत्रण

उपखंड a: मेक और बाय निर्णय, मूल्य निर्धारण निर्णय, उत्पाद मिश्रण निर्णय

अल्पकालिक प्रबंधकीय निर्णयों में प्रासंगिक लागत (Relevant Cost) का सिद्धांत

प्रबंधन लेखांकन का प्राथमिक कार्य विभिन्न वैकल्पिक कार्ययोजनाओं के मध्य इष्टतम विकल्प का चयन करना है। निर्णय-निर्माण में केवल 'प्रासंगिक लागतों' को ही संज्ञान में लिया जाता है:

क) प्रासंगिक लागतें (Relevant Costs): वे भावी लागतें जो एक विकल्प से दूसरे विकल्प में जाने पर परिवर्तित होती हैं (यथा अतिरिक्त परिवर्तनशील लागत तथा परिहार्य स्थिर लागत)।

ख) निमग्न लागतें (Sunk Costs): वे ऐतिहासिक लागतें जो अतीत में व्यय की जा चुकी हैं और जिन्हें वर्तमान या भावी निर्णय द्वारा किसी भी प्रकार बदला नहीं जा सकता (यथा पूर्व में खरीदी गई पुरानी मशीन का बही-मूल्य)। निमग्न लागतें निर्णय-निर्माण में पूर्णतः अप्रासंगिक होती हैं।

ग) अवसर लागत (Opportunity Cost): किसी एक विकल्प को चुनने के कारण दूसरे सर्वोत्तम त्यागे गए विकल्प से होने वाले संभावित लाभ का मौद्रिक मूल्य।

wincompete

1. मेक और बाय निर्णय (Make or Buy Decisions)

जब किसी विनिर्माण उपक्रम को किसी घटक, कलपुर्जे अथवा उप-संयोजन (Sub-assembly) की आवश्यकता होती है, तो प्रबंधन को यह निर्णय लेना होता है कि उस घटक का निर्माण कारखाने के भीतर स्वयं किया जाए अथवा उसे बाह्य आपूर्तिकर्ता से सीधे क्रय किया जाए।

निर्णय के वित्तीय मापदंड:

अ) यदि बाह्य क्रय मूल्य घटक के **आंतरिक विनिर्माण की सीमांत लागत (परिवर्तनशील लागत)** से कम है, तो घटक को बाहर से खरीदना लाभप्रद होगा।

ब) यदि आंतरिक सीमांत लागत बाह्य क्रय मूल्य से कम है, तो घटक का निर्माण स्वयं कारखाने में करना चाहिए।

स) स्थिर लागत की परिहार्यता: यदि घटक का निर्माण बंद करने से कोई विशिष्ट स्थिर लागत (यथा पर्यवेक्षक का वेतन या मशीन का किराया) प्रत्यक्ष रूप से बचाई जा सकती है, तो उस परिहार्य स्थिर लागत (Avoidable Fixed Cost) को भी सीमांत लागत में जोड़कर बाह्य मूल्य से तुलना की जाती है।

द) गैर-वित्तीय रणनीतिक विचार: केवल लागत अंतर पर्याप्त नहीं होता; प्रबंधन को उत्पाद की गुणवत्ता में निरंतरता, आपूर्तिकर्ता की विश्वसनीयता, कारखाने की अतिरिक्त अप्रयुक्त क्षमता (Idle Capacity) की उपलब्धता तथा तकनीकी गोपनीयता के जोखिमों का भी समानांतर मूल्यांकन करना अनिवार्य होता है।

2. मूल्य निर्धारण निर्णय (Pricing Decisions)

बाजार की विभिन्न परिस्थितियों में उत्पादों का मूल्य तय करते समय सीमांत लागत विश्लेषण महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करता है:

क) सामान्य बाजार दशाएं: सामान्य दीर्घकाल में बिक्री मूल्य इतना होना चाहिए जो कुल लागत (स्थिर + परिवर्तनशील) को पूर्णतः कवर करे और वांछित पूंजीगत प्रतिलाभ (ROI) प्रदान करे।

ख) मंदी अथवा अवसाद के दौरान मूल्य निर्धारण: भयंकर आर्थिक मंदी के समय यदि उत्पाद की मांग गिर जाती है, तो कारखाने को बंद करने के स्थान पर प्रबंधन अस्थाई रूप से अपने उत्पाद को **कुल लागत से कम किंतु सीमांत लागत से अधिक** मूल्य पर बेचने का निर्णय ले सकता है। जब तक बिक्री मूल्य से सीमांत लागत की वसूली हो रही है और स्थिर लागत की आंशिक भरपाई हेतु थोड़ा सा भी अंशदान प्राप्त हो रहा है, तब तक उत्पादन जारी रखना कारखाने को बंद करने की तुलना में कम नुकसानदेह होता है।

ग) विशेष ऑर्डर अथवा निर्यात मूल्य निर्धारण: जब किसी उपक्रम के पास अप्रयुक्त स्थापित क्षमता उपलब्ध हो और उसे घरेलू बाजार के मूल्य से कम दर पर एक विशेष निर्यात ऑर्डर प्राप्त हो, तो प्रबंधन इस ऑर्डर को स्वीकार कर सकता है यदि:

निर्यात मूल्य उत्पाद की सीमांत लागत से अधिक हो।

यह घरेलू बाजार के मूल्य स्तर को प्रभावित न करे।

अतिरिक्त स्थिर लागत शून्य हो।

wincompete

3. उत्पाद मिश्रण निर्णय एवं प्रमुख सीमित कारक (Key Factor / Limiting Factor)

जब कोई उपक्रम एक से अधिक उत्पादों (Multi-product Firm) का निर्माण करता है, तो प्रबंधन को यह तय करना होता है कि अधिकतम लाभ प्राप्त करने हेतु प्रत्येक उत्पाद की कितनी मात्रा का उत्पादन किया जाए।

सीमित कारक (Limiting Factor / Governing Factor) का नियम:
सीमित कारक वह आर्थिक संसाधन है जो किसी विशिष्ट समय में उपक्रम के उत्पादन या परिचालन के स्तर को सीमित करता है। यह कारक हो सकता है: कच्चे माल की सीमित आपूर्ति, कुशल श्रम घंटों की कमी, मशीनी घंटों की सीमा अथवा उत्पाद की बाजार मांग का अभाव।

निर्णय का नियम: जब कोई सीमित कारक उपस्थित न हो, तो उत्पादों को उनके **P/V अनुपात** के आधार पर प्राथमिकता दी जाती है।

जब कोई सीमित कारक उपस्थित हो, तो उत्पादों की लाभप्रदता का निर्धारण उनके सामान्य P/V अनुपात से नहीं, बल्कि **प्रति इकाई सीमित कारक पर अंशदान (Contribution per unit of Limiting Factor)** के आधार पर किया जाता है:

प्रति इकाई सीमित कारक पर अंशदान = प्रति इकाई अंशदान / प्रति इकाई आवश्यक सीमित संसाधन की मात्रा

उपक्रम को उस उत्पाद के उत्पादन को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी चाहिए जो सीमित संसाधन (यथा प्रति मशीन घंटा अथवा प्रति किलोग्राम कच्चा माल) की प्रति इकाई पर सर्वाधिक अंशदान उत्पन्न करता है।

उपखंड b: बजटीय नियंत्रण, मानक लागत निर्धारण (Standard Costing) और विचरण विश्लेषण (Variance Analysis)

बजटीय नियंत्रण (Budgetary Control): प्रणाली एवं कार्यप्रणाली
बजटीय नियंत्रण प्रबंधन की वह तकनीक है जिसके अंतर्गत पूर्व-निर्धारित लक्ष्यों के अनुरूप विभिन्न विभागों के बजट (वित्तीय और भौतिक योजनाएं) तैयार किए जाते हैं, वास्तविक निष्पादन की निरंतर बजट से तुलना की जाती है, तथा विचलनों को सुधारने हेतु सुधारात्मक प्रशासनिक कार्रवाई की जाती है।

बजटों का वर्गीकरण:

अ) समय के आधार पर: अल्पकालिक बजट (1 वर्ष तक), दीर्घकालिक बजट (3 से 5 वर्ष) तथा चालू बजट।

ब) कार्यों के आधार पर: बिक्री बजट, उत्पादन बजट, सामग्री क्रय बजट, श्रम बजट, अनुसंधान व विकास बजट तथा मास्टर बजट (सभी कार्यात्मक बजटों का एकीकृत सारांश)।

स) क्षमता एवं लोचशीलता के आधार पर:

स्थिर बजट (Fixed Budget): वह बजट जो उत्पादन अथवा गतिविधि के केवल एक निश्चित और पूर्व-निर्धारित स्तर के लिए तैयार किया जाता है। यदि वास्तविक उत्पादन स्तर बदल जाता है, तो यह बजट तुलना हेतु अनुपयोगी हो जाता है।

लोचदार बजट (Flexible Budget): वह बजट जो गतिविधि के विभिन्न संभावित स्तरों (यथा 60%, 80%, और 100% क्षमता) के लिए लागतों के स्थिर, परिवर्तनशील और अर्ध-परिवर्तनशील व्यवहार को ध्यान में रखकर तैयार किया जाता है। निष्पादन मूल्यांकन हेतु यह सर्वाधिक वैज्ञानिक उपकरण है।

मानक लागत निर्धारण (Standard Costing): अवधारणा एवं प्रक्रिया
मानक लागत निर्धारण लागत नियंत्रण की एक पूर्व-निर्धारित प्रणाली है जिसमें उत्पादन प्रारंभ होने से पूर्व ही कुशल परिचालन परिस्थितियों के अंतर्गत प्रति इकाई उत्पादन की एक वैज्ञानिक 'मानक लागत' (Standard Cost) निर्धारित कर दी जाती है।

प्रक्रिया के चार अनिवार्य चरण:

क) मानकों की पूर्व-स्थापना: इंजीनियरिंग अध्ययनों, समय एवं गति अध्ययनों (Time and Motion Study) तथा बाजार प्रवृत्तियों के आधार पर सामग्री, श्रम और उपरिव्यय के मात्रात्मक और मूल्य मानक निर्धारित करना।

ख) वास्तविक लागत का अभिलेखन: उत्पादन प्रक्रिया संपन्न होने के उपरांत वास्तविक उपभोग और व्ययों को दर्ज करना।

ग) विचलनों की गणना: मानक लागत और वास्तविक लागत की तुलना करके दोनों के मध्य के अंतर (विचरनों) को ज्ञात करना।

घ) अपवाद द्वारा प्रबंधन (Management by Exception): प्रबंधन केवल उन विचलनों पर अपना ध्यान केंद्रित करता है जो पूर्व-निर्धारित सहनशीलता सीमा (Tolerance Limit) से अधिक होते हैं, ताकि उपचारात्मक कदम तुरंत उठाए जा सकें।

विचरण विश्लेषण (Variance Analysis)
मानक लागत और वास्तविक लागत के मध्य के गणितीय अंतर को 'विचरण' (Variance) कहा जाता है।

अनुकूल विचरण (Favorable Variance - F): जब वास्तविक लागत मानक लागत से **कम** होती है (यह लाभ में वृद्धि करती है)।

प्रतिकूल विचरण (Adverse / Unfavorable Variance - A): जब वास्तविक लागत मानक लागत से **अधिक** होती है (यह लाभ को घटाती है)।

1. सामग्री विचरण (Material Variances)
सामग्री की कुल लागत में होने वाले विचलन को दो प्राथमिक घटकों (मूल्य और उपयोग) में विभाजित किया जाता है:

सामग्री लागत विचरण (MCV)	उप-घटक / विवरण
सामग्री मूल्य विचरण (MPV)	दरों/मूल्य में परिवर्तन का प्रभाव
सामग्री उपयोग विचरण (MUV)	सामग्री मिश्रण विचरण (MMV)
	सामग्री उपज विचरण (MYV)

अ) सामग्री लागत विचरण (Material Cost Variance - MCV):
मानक सामग्री लागत और वास्तविक सामग्री लागत का अंतर:

$$MCV = (SQ \times SP) - (AQ \times AP)$$

(जहाँ SQ = वास्तविक उत्पादन हेतु मानक मात्रा, SP = मानक दर, AQ = वास्तविक मात्रा, AP = वास्तविक दर)

ब) सामग्री मूल्य विचरण (Material Price Variance - MPV):
सामग्री की वास्तविक खरीद दर और पूर्व-निर्धारित मानक दर के अंतर के कारण उत्पन्न विचरण:

$$MPV = AQ \times (SP - AP)$$

उत्तरदायित्व: यह क्रय विभाग (Purchase Manager) की कार्यकुशलता या बाजार में कच्चे माल के मूल्य परिवर्तनों का परिणाम होता है।

स) सामग्री उपयोग विचरण (Material Usage Variance - MUV):
उत्पादन में सामग्री की वास्तविक प्रयुक्त मात्रा और अनुमेय मानक मात्रा के अंतर के कारण उत्पन्न विचरण:

$$MUV = SP \times (SQ - AQ)$$

उत्तरदायित्व: यह उत्पादन विभाग (Production Manager) के तकनीकी नियंत्रण, संयंत्र की खराबी अथवा श्रमिकों की लापरवाही पर निर्भर करता है।

सत्यापन सूत्र:

$$MCV = MPV + MUV$$

2. श्रम विचरण (Labor Variances)
श्रम लागत के विचलनों का विश्लेषण मजदूरी दरों और कार्यकुशलता के आधार पर किया जाता है:

श्रम लागत विचरण घटक	उप-घटक
श्रम दर विचरण (LRV)	भुगतान दर में भिन्नता
श्रम कार्यकुशलता विचरण (LEV)	श्रम मिश्रण विचरण (LMV)
	कार्यहीन समय विचरण (ITV)

अ) श्रम लागत विचरण (Labor Cost Variance - LCV):
मानक श्रम लागत और वास्तविक श्रम लागत का अंतर:

$$LCV = (SH \times SR) - (AH \times AR)$$

(जहाँ SH = मानक श्रम घंटे, SR = मानक मजदूरी दर, AH = वास्तविक श्रम घंटे, AR = वास्तविक मजदूरी दर)

ब) श्रम दर विचरण (Labor Rate Variance - LRV):
भुगतान की गई वास्तविक मजदूरी दर और मानक दर के अंतर का माप:

$$LRV = AH \times (SR - AR)$$

उत्तरदायित्व: कार्मिक विभाग (HR) द्वारा अकुशल श्रमिकों को कुशल दर पर लगाना अथवा बाजार मजदूरी दरों में वृद्धि।

स) श्रम कार्यकुशलता विचरण (Labor Efficiency Variance - LEV):
उत्पादन में लगे वास्तविक कार्य घंटों और अनुमत मानक घंटों के अंतर का माप:

$$LEV = SR \times (SH - AH)$$

उत्तरदायित्व: उत्पादन पर्यवेक्षक, खराब मशीनरी अथवा घटिया कच्चे माल के कारण श्रमिकों का धीमा कार्य।

द) कार्यहीन समय विचरण (Idle Time Variance - ITV):
बिजली विफलता, मशीन ब्रेकडाउन अथवा कच्चे माल की अनुपलब्धता के कारण व्यर्थ गए कार्य घंटों की लागत:

$$ITV = \text{कार्यहीनघंटे} \times SR$$

विशेष नियम: कार्यहीन समय विचरण **सदैव प्रतिकूल (Adverse)** होता है।

सत्यापन सूत्र:

$$LCV = LRV + LEV + ITV$$

3. उपरिव्यय विचरण (Overhead Variances)
उपरिव्यय विचलनों को स्थिर और परिवर्तनशील श्रेणियों में विभाजित किया जाता है:

क) परिवर्तनशील उपरिव्यय विचरण: यह मुख्य रूप से वास्तविक घंटों और अवशोषित उपरिव्यय दरों के अंतर पर निर्भर करता है (परिवर्तनशील व्यय विचरण + परिवर्तनशील दक्षता विचरण)।

ख) स्थिर उपरिव्यय विचरण: इसमें स्थिर उपरिव्यय बजट विचरण तथा स्थिर उपरिव्यय आयतन विचरण (Volume Variance) सम्मिलित होते हैं। आयतन विचरण यह मापता है कि बजटेड उत्पादन स्तर की तुलना में वास्तविक उत्पादन कम या अधिक होने से स्थिर उपरिव्यय का अवशोषण किस प्रकार प्रभावित हुआ।

विचरण का प्रकार	गणितीय सूत्र	प्राथमिक उत्तरदायी विभाग/अधिकारी	मुख्य संभावित कारण
सामग्री मूल्य विचरण (MPV)	$AQ \times (SP - AP)$	क्रय प्रबंधक (Purchase Manager)	बाजार दरों में उतार-चढ़ाव, थोक छूट की हानि, गलत क्रय निर्णय।
सामग्री उपयोग विचरण (MUV)	$SP \times (SQ - AQ)$	उत्पादन प्रबंधक (Production Manager)	खराब गुणवत्ता का कच्चा माल, श्रमिकों की लापरवाही, मशीन की खराबी।
श्रम दर विचरण (LRV)	$AH \times (SR - AR)$	कार्मिक/मानव संसाधन प्रबंधक	ओवरटाइम भुगतान, कुशल श्रमिकों की कमी, मजदूरी समझौतों में बदलाव।
श्रम कार्यकुशलता विचरण (LEV)	$SR \times (SH - AH)$	उत्पादन पर्यवेक्षक (Shop-floor Supervisor)	अपर्याप्त प्रशिक्षण, घटिया कार्य दशाएं, उपकरणों का बार-बार रुकना।
कार्यहीन समय विचरण (ITV)	कार्यहीनघंटे $\times SR$	रखरखाव/संयंत्र प्रबंधन (Maintenance)	विद्युत आपूर्ति ठप होना, समय पर कच्चे माल की आपूर्ति न होना।

महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली एवं प्रमुख अवधारणाएं

लागत केंद्र (Cost Centre): किसी संगठन का वह विशिष्ट स्थान, व्यक्ति, उपकरण अथवा गतिविधियों का समूह जिसके संबंध में लागतों का पृथक रूप से निर्धारण और संकलन किया जा सकता है। यह 'उत्पादन लागत केंद्र' (यथा मशीन शॉप) अथवा 'सेवा लागत केंद्र' (यथा बॉयलर हाउस, कैंटीन) हो सकता है।

लाभ केंद्र (Profit Centre): संगठन का वह स्वतंत्र स्वायत्त विभाग या खंड जिसके प्रबंधक न केवल लागत नियंत्रण हेतु उत्तरदायी होते हैं, बल्कि राजस्व सृजन और शुद्ध लाभप्रदता हेतु भी प्रत्यक्ष रूप से जवाबदेह होते हैं।

निवेश केंद्र (Investment Centre): किसी निगम का वह शीर्ष-स्तरीय केंद्र जिसके प्रबंधन के पास लागत और राजस्व के साथ-साथ अपनी परिसंपत्तियों में नई पूंजी के निवेश और परिसंपत्तियों के निपटान का संप्रभु अधिकार होता है। इसका निष्पादन 'नियोजित पूंजी पर प्रत्यय' (ROCE) अथवा 'आर्थिक मूल्य वर्धन' (EVA) द्वारा मापा जाता है।

अवशोषण लागत प्रणाली (Absorption Costing): पारंपरिक लागत निर्धारण पद्धति जिसके अंतर्गत स्थिर और परिवर्तनशील दोनों प्रकार के निर्माण उपरिव्ययों को उत्पादन लागत का अंग मानकर प्रति इकाई लागत में अवशोषित (आवंटित) किया जाता है। इसे 'पूर्ण लागत निर्धारण' (Full Costing) भी कहते हैं।

अपवाद द्वारा प्रबंधन (Management by Exception - MBE): प्रबंधन का वह सिद्धांत जिसके अनुसार उच्च प्रबंधकों को अपना बहुमूल्य समय और ध्यान केवल उन असाधारण विचलनों अथवा समस्याओं पर केंद्रित करना चाहिए जो सामान्य स्वीकार्य सीमाओं से बाहर हैं; सामान्य और योजनानुसार चलने वाले कार्यों को अधीनस्थों के विवेक पर छोड़ देना चाहिए।

उत्तरदायित्व लेखांकन (Responsibility Accounting): प्रबंधन नियंत्रण की वह आधुनिक प्रणाली जिसके अंतर्गत संगठन को विभिन्न उत्तरदायित्व केंद्रों (लागत केंद्र, लाभ केंद्र, निवेश केंद्र) में विभक्त कर दिया जाता है और प्रत्येक केंद्र के निष्पादन तथा विचलनों हेतु संबंधित प्रबंधक को व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहराया जाता है।

शट-डाउन बिंदु (Shut-down Point): उत्पादन का वह न्यूनतम स्तर जिसके नीचे बिक्री मूल्य गिरने पर कारखाने के परिचालन को तात्कालिक रूप से बंद कर देना ही न्यूनतम हानि का मार्ग होता है। जब बिक्री मूल्य से प्रति इकाई परिवर्तनशील लागत की भी वसूली नहीं हो पाती और अपरिहार्य स्थिर लागत (Unavoidable Fixed Cost) का नुकसान होने लगता है, तो शट-डाउन बिंदु आ जाता है:

$$\text{शट} - \text{डाउनबिंदु(इकाइयोंमें)} = \frac{\text{परिहार्यस्थिरलागत}}{\text{प्रतिइकाईअंशदान}}$$

अध्याय 14: सरकारी लेखांकन - प्रशासनिक उपयोग, निष्पादन एवं शून्य-आधारित बजटिंग

खंड A: सरकारी लेखांकन प्रणाली

उपखंड a: सरकारी लेखांकन बनाम व्यावसायिक लेखांकन, रोकड़ आधार बनाम उपार्जन आधार

सरकारी लेखांकन का वैधानिक एवं प्रशासनिक स्वरूप

सरकारी लेखांकन से आशय उस विधिक, औपचारिक एवं मानकीकृत प्रक्रिया से है जिसके माध्यम से संप्रभु शासन के वित्तीय लेन-देनों, सार्वजनिक आगमों, संचित कोषों से किए जाने वाले संवितरणों तथा ऋण देयताओं का व्यवस्थित संकलन, वर्गीकरण, अभिलेखन एवं प्रतिवेदन तैयार किया जाता है। आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था में यह कार्यपालिका की विधायिका के प्रति वित्तीय जवाबदेही (Financial Accountability) सुनिश्चित करने का प्राथमिक वैधानिक तंत्र है।

संविधान का अनुच्छेद 150 यह स्पष्ट रूप से विहित करता है कि संघ और राज्यों के लेखाओं को ऐसे प्रारूप में रखा जाएगा जो भारत का राष्ट्रपति, भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की सलाह पर विहित करे। यह सांविधानिक आदेश सरकारी लेखांकन को व्यावसायिक लेखांकन की तुलना में एक विशिष्ट संप्रभु स्वरूप प्रदान करता है।

सरकारी लेखांकन बनाम व्यावसायिक लेखांकन: संरचनात्मक तुलना

सरकारी लेखांकन और व्यावसायिक (निजी) लेखांकन के उद्देश्य, संचालन दर्शन तथा प्रक्रियात्मक सिद्धांतों में मूलभूत विभेद पाया जाता है:

क) प्राथमिक उद्देश्य का विभेद: व्यावसायिक लेखांकन का चरम उद्देश्य किसी निश्चित लेखांकन अवधि में स्वामी अथवा अंशधारकों के लिए शुद्ध लाभ अथवा हानि का निर्धारण करना तथा तुलन-पत्र (Balance Sheet) के माध्यम से पूंजीगत परिसंपत्ति स्थिति को प्रकट करना होता है। इसके विपरीत, सरकारी लेखांकन का प्राथमिक उद्देश्य लाभ अर्जन न होकर सार्वजनिक निधियों के व्यय में विधायी नियंत्रण, बजटीय अनुशासन तथा संप्रभु लोक-कल्याणकारी नीतियों का पारदर्शी क्रियान्वयन सुनिश्चित करना है।

ख) बजटीय नियंत्रण से आबद्धता: सरकारी लेखांकन प्रणाली पूर्णतः विधायिका द्वारा पारित विनियोग अधिनियम (Appropriation Act) से बंधी होती है। इसमें कोई भी सार्वजनिक व्यय तब तक वैध नहीं माना जा सकता जब तक कि उसे संसद अथवा राज्य विधानमंडल द्वारा अनुदान मांगों के अंतर्गत स्पष्ट रूप से प्राधिकृत न किया गया हो। व्यावसायिक लेखांकन में प्रबंधन लाभप्रदता और परिचालन गतिशीलता के आधार पर व्यय प्राथमिकताओं को बदलने हेतु स्वतंत्र होता है।

ग) स्वामित्व एवं पूंजी की अवधारणा: व्यावसायिक उपक्रमों में स्वामियों की शेयर पूंजी, सुरक्षित कोष तथा अधिशेष की अवधारणा केंद्रीय होती है। सरकारी लेखांकन में संप्रभु राज्य की संचित निधियां, लोक लेखा तथा आकस्मिकता निधियां कार्य करती हैं, जहां सरकार केवल जनता के धन की एक विधिक न्यासी (Trustee) होती है।

घ) निधियों का विखंडन: सरकारी लेखांकन अनिवार्य रूप से 'निधि लेखांकन' (Fund Accounting) प्रणाली पर कार्य करता है, जिसमें प्रत्येक संवैधानिक निधि के अंतर्गत लेन-देनों का पृथक खाता रखा जाता है।

तुलनात्मक आयाम	**सरकारी लेखांकन (Government Accounting)**	**व्यावसायिक लेखांकन (Commercial Accounting)**
सर्वोपरि उद्देश्य	बजटीय अनुपालन, विधिक औचित्य एवं वित्तीय जवाबदेही।	परिचालन दक्षता, लाभप्रदता एवं परिसंपत्ति मूल्य संवर्धन।
वैधानिक स्रोत	संविधान के अनुच्छेद 150, 266, 267 एवं लोक वित्त नियम।	कंपनी अधिनियम 2013 एवं लेखांकन मानक (AS/Ind AS)।

wincompete

लेखांकन की आधारशिला	ऐतिहासिक रूप से रोकड़ आधार (Cash Basis)।	अनिवार्य रूप से उपार्जन आधार (Accrual Basis)।
अंतिम उत्पाद (आउटपुट)	विनियोग लेखे (Appropriation Accounts) एवं वित्त लेखे।	लाभ-हानि खाता एवं तुलन-पत्र (Balance Sheet)।
मूल्यह्रास का समायोजन	सामान्यतः स्थिर सार्वजनिक परिसंपत्तियों पर मूल्यह्रास नहीं।	परिसंपत्तियों के आर्थिक जीवनकाल पर अनिवार्य मूल्यह्रास।

रोकड़ आधार (Cash Basis) बनाम उपार्जन आधार (Accrual Basis)

लेखांकन प्रणाली में वित्तीय लेन-देनों की पहचान और प्रविष्टि के समय को लेकर दो प्राथमिक पद्धतियां प्रचलित हैं:

लेखांकन का आधार (Basis)	मुख्य विशेषता (Key Feature)	उपयोग / अनुप्रयोग (Application)
1. रोकड़ आधार (Cash Basis)	केवल वास्तविक नकद प्राप्ति एवं भुगतान होने पर ही प्रविष्टि की जाती है।	पारंपरिक सरकारी लेखांकन तथा छोटे व्यक्तिगत व्यवसायों में प्रयुक्त।
2. उपार्जन आधार (Accrual Basis)	अधिकार तथा दायित्व के उत्पन्न होते ही प्रविष्टि दर्ज की जाती है, भले ही नकद भुगतान न हुआ हो।	व्यावसायिक लेखांकन, आधुनिक निगमित क्षेत्र तथा आधुनिक स्थानीय निकायों में अनिवार्य।
3. संशोधित रोकड़/उपार्जन प्रणाली (Hybrid/Modified System)	रोकड़ और उपार्जन दोनों प्रणालियों के सिद्धांतों का व्यावहारिक प्रशासनिक समन्वय।	संक्रमणकालीन सरकारी वित्तीय प्रणालियों तथा बजटीय प्रकटीकरण में प्रयुक्त।

क) रोकड़ आधार (Cash Basis of Accounting):

इस प्रणाली में किसी वित्तीय लेन-देन को केवल और केवल उसी समय बहीखातों में दर्ज किया जाता है जब वास्तविक नकद राशि प्राप्त होती है अथवा नकद भुगतान किया जाता है।

यदि किसी वित्तीय वर्ष में सामग्री प्राप्त हो गई है किंतु उसका बिल आगामी वर्ष में चुकाया जाता है, तो व्यय का अंकन आगामी वर्ष में ही होगा।

गुण: यह अत्यंत सरल, वस्तुनिष्ठ और सार्वजनिक बजट के तात्कालिक नकदी प्रबंधन हेतु अनुकूल है। यह वित्तीय वर्ष की समाप्ति पर संसद को यह स्पष्ट दिखाती है कि सरकार की तिजोरी में कितना नकद आया और कितना बाहर गया।

दोष: यह सरकार की वास्तविक देनदारियों (यथा संचित पेंशन दायित्व, अदत्त सब्सिडी) तथा भविष्य की प्राप्य आय को छिपा देती है। इसमें सार्वजनिक परिसंपत्तियों के मूल्यह्रास का कोई लेखांकन नहीं होता, जिससे अवसंरचना के वास्तविक स्वास्थ्य का आकलन नहीं हो पाता।

ख) उपार्जन आधार (Accrual Basis of Accounting):
इस प्रणाली में लेन-देनों का अभिलेखन उस समय किया जाता है जब राजस्व अर्जित किया जाता है अथवा व्यय का दायित्व उत्पन्न होता है, भले ही वास्तविक नकदी का प्रवाह किसी भी समय हो।

गुण: यह सरकार की संपूर्ण वित्तीय स्थिति, चालू परिसंपत्तियों, देनदारियों, पूंजीगत परियोजनाओं की वास्तविक लागत और भविष्य के राजकोषीय दायित्वों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है।

दोष: यह प्रणाली अत्यधिक जटिल है, इसके लिए विस्तृत परिसंपत्ति रजिस्टरों (Asset Registers) के संधारण की आवश्यकता होती है तथा यह अल्पकालिक नकदी प्रवाह की निगरानी हेतु पर्याप्त नहीं होती।

भारतीय सार्वजनिक वित्त में उपार्जन लेखांकन की ओर संक्रमण
भारत में पारंपरिक रूप से सरकारी लेखांकन पूर्णतः रोकड़ आधार पर संचालित होता रहा है। तथापि, राजकोषीय पारदर्शिता में वृद्धि और आधुनिक वित्तीय प्रबंधन हेतु इसमें सुधार की सतत प्रक्रिया चल रही है:

अ) बारहवें वित्त आयोग की सिफारिशें: आयोग ने यह स्पष्ट संस्तुति की थी कि केंद्र और राज्यों को अपनी लेखा प्रणाली को रोकड़ आधार से उपार्जन आधार में परिवर्तित करना चाहिए।

ब) सरकारी लेखांकन मानक सलाहकार बोर्ड (GASAB): भारत के सीएजी के अंतर्गत वर्ष 2002 में स्थापित गैसाब ने सरकारी क्षेत्र हेतु 'भारतीय सरकारी वित्तीय प्रतिवेदन मानक' (IGFRS) तैयार किए हैं, जो उपार्जन आधारित लेखांकन के क्रमिक क्रियान्वयन हेतु मार्गदर्शक हैं।

स) स्थानीय निकायों में सुधार: चौदहवें और पंद्रहवें वित्त आयोग के अनुदानों की शर्तों के तहत देश की अधिकांश शहरी स्थानीय निकायों (नगर निगमों) में 'राष्ट्रीय नगर निगम लेखांकन नियमावली' (NMAM) के आधार पर उपार्जन आधारित दोहरा लेखा प्रणाली को सफलतापूर्वक अनिवार्य कर दिया गया है।

द) केंद्र सरकार की हाइब्रिड स्थिति: वर्तमान में संघ स्तर पर मुख्य खाते रोकड़ आधार पर ही रखे जाते हैं, परंतु बजट दस्तावेजों में कई उपार्जन-आधारित प्रकटीकरण विवरणियां (यथा परिसंपत्ति रजिस्टर, संचित देयताओं की विवरणी, कर व्यय विवरण) जोड़ी जाने लगी हैं।

उपखंड b: भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG) की संवैधानिक स्थिति, कार्य, लेखा और लेखापरीक्षा का पृथक्करण

नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG) की संवैधानिक स्थिति

डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने संविधान सभा में उद्घोषणा की थी कि "नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक भारत के संविधान के तहत संभवतः सबसे महत्वपूर्ण अधिकारी होगा। वह उन चार प्रमुख लोकतांत्रिक स्तंभों में से एक है जिन पर भारतीय लोकतंत्र टिका हुआ है (अन्य तीन: उच्चतम न्यायालय, संघ लोक सेवा आयोग तथा निर्वाचन आयोग)।"

wincompete

संवैधानिक प्रावधान एवं संस्थागत सुरक्षा कवच:

क) नियुक्ति एवं शपथ (अनुच्छेद 148): भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा की जाती है। वह संविधान की तीसरी अनुसूची के अनुसार राष्ट्रपति के समक्ष निष्ठा की शपथ ग्रहण करता है।

ख) कार्यकाल एवं पदमुक्ति: सीएजी का कार्यकाल 6 वर्ष अथवा 65 वर्ष की आयु (दोनों में से जो भी पहले हो) निर्धारित है। उसे उसके पद से उसी रीति से और उन्हीं आधारों पर हटाया जा सकता है जिस रीति और आधारों पर उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश को हटाया जाता है (अनुच्छेद 124(4) के तहत संसद के दोनों सदनों द्वारा विशेष बहुमत से पारित समावेदन पर साबित कदाचार या असमर्थता के आधार पर)।

ग) स्वतंत्रता के सुरक्षात्मक विन्यास:

पदत्याग के उपरांत भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन किसी अन्य लाभ के पद का पात्र न होना (अनुच्छेद 148(4))।

सीएजी के वेतन, भत्ते, पेंशन और प्रशासनिक व्यय भारत की संचित निधि पर भारित (Charged) होते हैं, जिन पर संसद में मतदान नहीं कराया जा सकता (अनुच्छेद 148(6))।

कार्यकाल के दौरान उसके अधिकारों, वेतन और सेवा शर्तों में कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

सीएजी के कार्य, कर्तव्य और शक्तियां अधिनियम, 1971 (DPC Act)

संविधान के अनुच्छेद 149 के अनुसरण में संसद द्वारा 'नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा शर्तें) अधिनियम, 1971' पारित किया गया। इस अधिनियम के तहत सीएजी के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं:

क) संचित निधि का लेखापरीक्षण: भारत की संचित निधि, प्रत्येक राज्य की संचित निधि तथा विधानमंडल वाले केंद्र शासित प्रदेशों की संचित निधि से किए गए समस्त व्ययों की विधिक संवीक्षा करना।

ख) आकस्मिकता एवं लोक लेखा का परीक्षण: भारत तथा राज्यों की आकस्मिकता निधि और लोक लेखा से जुड़े समस्त लेन-देनों की लेखापरीक्षा करना।

ग) व्यापारिक एवं निर्माण लेखे: केंद्र और राज्यों के सभी विभागों द्वारा संचालित व्यापारिक, विनिर्माण, लाभ-हानि खातों तथा स्टोर एवं स्टॉक के बहीखातों का परीक्षण करना।

घ) सार्वजनिक उपक्रम एवं निगमित निकाय: सरकारी कंपनियों (कंपनी अधिनियम 2013 के तहत जहां सरकारी हिस्सेदारी 51% या अधिक हो) तथा सांविधिक निगमों का संपूरक अथवा मुख्य लेखापरीक्षण करना।

ङ) वित्तीय सहायता प्राप्त संस्थाएं: उन सभी प्राधिकरणों और निकायों का अंकेक्षण करना जो सरकार से पर्याप्त वित्तीय अनुदान या ऋण (सामान्यतः कुल व्यय का 75% या 1 करोड़ से अधिक) प्राप्त करते हैं।

संवैधानिक प्रतिवेदन एवं संसदीय समितियां

अनुच्छेद 151 के अनुसार, सीएजी संघ के खातों से संबंधित अपने प्रतिवेदन राष्ट्रपति को प्रस्तुत करता है, जो उन्हें संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाता है। इसी प्रकार, राज्यों के खातों से संबंधित प्रतिवेदन राज्यपाल को प्रस्तुत किए जाते हैं, जो उन्हें राज्य विधानमंडल के समक्ष रखवाते हैं।

संसद में सीएजी के इन प्रतिवेदनों की विस्तृत जांच **लोक लेखा समिति** (Public Accounts Committee - PAC) द्वारा की जाती है। इस प्रक्रिया में सीएजी लोक लेखा समिति के "मित्र, दार्शनिक और मार्गदर्शक"

(Friend, Philosopher and Guide) के रूप में सक्रिय भूमिका निभाता है। इसी प्रकार सार्वजनिक उपक्रमों से जुड़े प्रतिवेदनों की संवीक्षा **सार्वजनिक उपक्रम समिति** (COPU) करती है।

लेखा और लेखापरीक्षा का ऐतिहासिक पृथक्करण (1976)
ऐतिहासिक रूप से ब्रिटिश औपनिवेशिक काल से ही भारत में सीएजी का कार्यालय खातों को 'तैयार करने' (Accounting) तथा उन्हीं खातों की 'जांच करने' (Auditing) दोनों का दोहरा दायित्व वहन करता था।

वित्तीय प्रशासन के सार्वभौमिक सिद्धांत के अनुसार, जो संस्था धन का आहरण और खातों का संधारण करती है, वही संस्था अपना स्वयं का अंकेक्षण नहीं कर सकती, क्योंकि इससे हितों का गंभीर टकराव उत्पन्न होता है। प्रशासनिक सुधार आयोग (ARC) की सिफारिशों के आधार पर वर्ष 1976 में एक ऐतिहासिक विधिक पुनर्गठन किया गया:

अ) 1976 का संशोधन अधिनियम: 'सीएजी (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा शर्तें) संशोधन अधिनियम, 1976' द्वारा केंद्र सरकार के स्तर पर सीएजी को 'लेखांकन' (बहीखाता तैयार करने) के दायित्व से पूर्णतः मुक्त कर दिया गया।

ब) लेखा महानियंत्रक (CGA) का प्रादुर्भाव:

केंद्र सरकार के मंत्रालयों के स्तर पर विभागीय लेखांकन प्रणाली (Departmentalized Accounting System) लागू की गई।

वित्त मंत्रालय के व्यय विभाग के अंतर्गत **लेखा महानियंत्रक** (Controller General of Accounts - CGA) के पद का सृजन किया गया।

वर्तमान में केंद्र सरकार के मंत्रालयों के मासिक एवं वार्षिक लेखे तैयार करने, सार्वजनिक वित्तीय प्रबंधन प्रणाली (PFMS) का संचालन करने तथा समेकित खातों को अंतिम रूप देने का कार्य लेखा महानियंत्रक (CGA) करता है, जो एक गैर-सांविधानिक तकनीकी प्रशासनिक पद है।

स) सीएजी की वर्तमान भूमिका: केंद्र स्तर पर सीएजी अब केवल **विशुद्ध लेखापरीक्षा (Auditing)** की संप्रभु भूमिका निभाता है।

द) राज्यों की स्थिति (महत्वपूर्ण अपवाद): राज्यों के स्तर पर यह पृथक्करण पूर्णतः लागू नहीं हो सका। वर्तमान में भी अधिकांश राज्यों (गोवा और कुछ पूर्वोत्तर राज्यों को छोड़कर) के वित्त लेखे और विनियोग लेखे तैयार करने (लेखांकन) तथा उनका अंकेक्षण करने दोनों का कार्य सीएजी के राज्य स्थित प्रधान महालेखाकार (AG) कार्यालयों द्वारा ही संपादित किया जाता है।

तुलनात्मक आयाम	**नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG)**	**लेखा महानियंत्रक (CGA)**
संवैधानिक स्थिति	अनुच्छेद 148 के तहत एक स्वतंत्र संवैधानिक प्राधिकारी।	वित्त मंत्रालय के व्यय विभाग के अधीन एक प्रशासनिक अधिकारी।

मूल दायित्व	केंद्र एवं राज्यों के व्यय का स्वतंत्र बाह्य अंकेक्षण (Audit)।	केंद्र सरकार के लेखों का संकलन, तैयारी एवं आंतरिक प्रबंधन।
जवाबदेही	सीधे संसद और भारत के राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी।	कार्यपालिका (केंद्रीय वित्त मंत्री) के प्रशासनिक नियंत्रण में।
संसदीय रिपोर्ट	अनुच्छेद 151 के तहत संसद के पटल पर आधिकारिक रिपोर्ट।	सरकार के आंतरिक उपयोग और मासिक वित्तीय बुलेटिन तैयार करना।

खंड B: उन्नत बजटीय तकनीकें

उपखंड a: निष्पादन बजटिंग (Performance Budgeting) - उद्भव, प्रक्रिया, प्रशासनिक दक्षता में भूमिका

पारंपरिक बजटीय प्रणाली की कमियां एवं निष्पादन बजटिंग की आवश्यकता

पारंपरिक बजट प्रणाली को 'लाइन-आइटम बजटिंग' (Line-Item Budgeting) अथवा 'मद-वार बजटिंग' कहा जाता है। इसमें बजट का संपूर्ण ध्यान इस बात पर संकेंद्रित रहता था कि किस विभाग को किस विशिष्ट वस्तु (यथा वेतन, कार्यालय व्यय, यात्रा भत्ता, स्टेशनरी) पर कितना धन व्यय करने की अनुमति दी गई है।

पारंपरिक लाइन-आइटम बजटिंग की गंभीर प्रशासनिक विकृतियां:

क) वित्तीय व्यय बनाम भौतिक परिणाम का विच्छेद: यह प्रणाली केवल यह देखती थी कि आवंटित धन स्वीकृत नियमों के अनुसार व्यय हुआ या नहीं; यह इस बात की पूर्ण उपेक्षा करती थी कि उस व्यय से वास्तव में क्या भौतिक परिणाम (Physical Results) प्राप्त हुए।

ख) मार्च रश (March Rush): वित्तीय वर्ष की समाप्ति पर अप्रयुक्त धन के व्यपगत (Lapse) होने के भय से मार्च माह में अंधाधुंध और गैर-उत्पादक व्यय किया जाता था।

ग) नीतिगत प्रभावहीनता: इसमें यह जानना असंभव था कि किसी विशिष्ट सार्वजनिक नीति (यथा प्राथमिक शिक्षा या स्वास्थ्य सुधार) पर खर्च किए गए धन से समाज को क्या वास्तविक लाभ मिला।

निष्पादन बजटिंग का ऐतिहासिक उद्भव

निष्पादन बजटिंग (Performance Budgeting) का उद्भव संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ।

अ) प्रथम हूवर आयोग (First Hoover Commission, 1949): पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति हर्बर्ट हूवर की अध्यक्षता में गठित आयोग ने सर्वप्रथम 'परफॉर्मेंस बजट' शब्द का प्रयोग किया। आयोग ने संस्तुति की कि बजट को इस आधार पर नहीं बनाया जाना चाहिए कि सरकार क्या खरीदती है, बल्कि इस आधार पर बनाया जाना चाहिए कि सरकार क्या कार्य निष्पादित करती है।

ब) भारत में अंगीकरण:

प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग (ARC, 1966-70) ने अपनी रिपोर्ट में भारत में निष्पादन बजटिंग को चरणबद्ध रूप से लागू करने की प्रबल सिफारिश की।

वर्ष 1968-69 के केंद्रीय बजट से भारत सरकार के कुछ चुनिंदा मंत्रालयों में निष्पादन बजट प्रस्तुत करने की शुरुआत हुई, जिसे बाद में सभी विकासात्मक मंत्रालयों तक विस्तारित किया गया।

निष्पादन बजटिंग की संरचनात्मक प्रक्रिया एवं चरण

निष्पादन बजटिंग एक कार्यक्रम-उन्मुख दृष्टिकोण है, जो निधियों के आबंटन को प्राप्त किए जाने वाले विशिष्ट कार्यों और भौतिक लक्ष्यों से सीधे जोड़ता है। इसके तीन अनिवार्य संरचनात्मक चरण होते हैं:

चरन (Step)	मुख्य घटक (Component)	विवरण (Description)
चरण 1	**कार्यक्रम संरचना का निर्माण**	कार्यों का तार्किक एवं व्यावहारिक विभाजन
चरण 2	**लेखांकन एवं वित्तीय वर्गीकरण**	व्यय को विशिष्ट उद्देश्यों एवं कार्यक्रमों से जोड़ना
चरण 3	**निष्पादन मापन एवं संकेतक**	लागत-लाभ का मूल्यांकन एवं भौतिक लक्ष्यों का निर्धारण

क) कार्यक्रम एवं गतिविधि संरचना (Program Structure): मंत्रालय के व्यापक उद्देश्यों को मुख्य कार्यक्रमों, उप-कार्यक्रमों और विशिष्ट गतिविधियों में विभाजित किया जाता है। उदाहरणार्थ: 'शिक्षा मंत्रालय' का मुख्य कार्यक्रम 'समग्र शिक्षा अभियान', उसका उप-कार्यक्रम 'माध्यमिक शिक्षा का सुदृढ़ीकरण' तथा गतिविधि 'नए विज्ञान प्रयोगशालाओं का निर्माण' हो सकती है।

ख) कार्यात्मक लेखांकन वर्गीकरण: वित्तीय खातों को इस प्रकार पुनर्गठित किया जाता है कि प्रत्येक व्यय को सीधे संबंधित कार्यक्रम और गतिविधि के साथ पहचाना जा सके।

ग) निष्पादन मापन एवं कार्य मानक (Work Measurement): इनपुट (व्यय किया गया धन) और आउटपुट (निर्मित भौतिक संपत्तियां अथवा प्रदत्त सेवाएं) के मध्य संबंध स्थापित करने हेतु वैज्ञानिक मानकों (यथा प्रति किलोमीटर सड़क निर्माण लागत, प्रति छात्र शिक्षा लागत) का निर्धारण करना।

प्रशासनिक दक्षता में निष्पादन बजटिंग की भूमिका

अ) प्रबंधन नियंत्रण का सशक्तिकरण: प्रशासनिक अधिकारियों को न केवल वित्तीय नियमों के पालन हेतु, बल्कि पूर्व-निर्धारित भौतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु भी व्यक्तिगत रूप से जवाबदेह बनाया जाता है।

ब) विधायी संवीक्षा की गुणवत्ता में सुधार: संसद सदस्य केवल वित्तीय आंकड़ों पर बहस करने के स्थान पर यह देख पाते हैं कि करदाताओं के धन से वास्तव में कितने विद्यालयों, अस्पतालों या नहरों का निर्माण हुआ।

स) प्राथमिकताओं का तर्कसंगत निर्धारण: विभिन्न सार्वजनिक कार्यक्रमों की लागत-प्रभावशीलता (Cost-effectiveness) की तुलना करके अधिक उत्पादक कार्यक्रमों को वरीयता दी जा सकती है।

उपखंड b: शून्य-आधारित बजटिंग (ZBB) - अवधारणा, चरण, लाभ, सीमाएं, परिणामोन्मुख बजटिंग (Outcome Budgeting)

शून्य-आधारित बजटिंग (Zero-Base Budgeting - ZBB) की अवधारणा

पारंपरिक बजट निर्माण प्रक्रिया 'वृद्धिशील बजटिंग' (Incremental Budgeting) के सिद्धांत पर कार्य करती है। इसमें पिछले वर्ष के बजट को एक स्वीकृत और निर्विवाद आधार मान लिया जाता है और आगामी वर्ष के लिए उसमें मुद्रास्फीति या विस्तार के नाम पर 5 से 10 प्रतिशत की अतिरिक्त वृद्धि जोड़ दी जाती है। इस प्रक्रिया में अप्रचलित, अनुपयोगी और व्यर्थ हो चुके ऐतिहासिक कार्यक्रमों की कभी समीक्षा नहीं होती और वे अनवरत चलते रहते हैं।

शून्य-आधारित बजटिंग इस ऐतिहासिक आधार को पूर्णतः ध्वस्त कर देती है।

अ) मूल दर्शन: प्रत्येक बजट चक्र के प्रारंभ में प्रत्येक कार्यक्रम का आधार 'शून्य' (Zero) माना जाता है।

ब) औचित्य का भार: प्रबंधक या विभागाध्यक्ष को यह मानकर चलना होता है कि उसके पास कोई पूर्व-स्वीकृत बजट नहीं है। उसे अपने विभाग की प्रत्येक पुरानी और नई गतिविधि के अस्तित्व और उसके लिए आवश्यक प्रत्येक रुपये का नए सिरे से पूर्ण औचित्य (Justification) सिद्ध करना होता है।

स) उद्भव का इतिहास: इस तकनीक का विकास वर्ष 1969 में अमेरिका की टेक्सास इंस्ट्रूमेंट्स कंपनी में **पीटर ए. पायर** (Peter A. Phyrr) द्वारा किया गया। उन्होंने 1973 में अपनी पुस्तक *'जीरो-बेस बजटिंग'* में इसे विस्तार से प्रतिपादित किया। अमेरिकी राष्ट्रपति जिमी कार्टर ने वर्ष 1977 में इसे अमेरिकी संघीय सरकार के बजट में अनिवार्य रूप से लागू किया।

द) भारत में प्रयोग: भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा 1983 में इसका प्रायोगिक प्रयोग किया गया। तत्पश्चात वर्ष 1986-87 के केंद्रीय बजट में तत्कालीन वित्त मंत्री वी.पी. सिंह द्वारा सरकारी व्यय को नियंत्रित करने हेतु शून्य-आधारित बजटिंग के सिद्धांतों को औपचारिक रूप से लागू करने के निर्देश जारी किए गए।

शून्य-आधारित बजटिंग के चार अनिवार्य प्रक्रियात्मक चरण

चरण 1	चरण 2	चरण 3	चरण 4
निर्णय इकाइयों की पहचान	निर्णय पैकेजों का निर्माण	पैकेजों का मूल्यांकन एवं श्रेणीकरण	बजट आवंटन

चरण 1: निर्णय इकाइयों की पहचान (Identification of Decision Units):
संगठन को छोटी-छोटी स्वतंत्र और प्रबंधनीय परिचालन इकाइयों में विभाजित किया जाता है, जिनके कार्यों, लागतों और परिणामों का पृथक रूप से विश्लेषण किया जा सके। यह कोई विभाग, विशिष्ट परियोजना, संयंत्र अथवा सेवा प्रभाग हो सकता है।

चरण 2: निर्णय पैकेजों का निर्माण (Formulation of Decision Packages):
प्रत्येक निर्णय इकाई का प्रबंधक एक औपचारिक दस्तावेज तैयार करता है, जिसे **निर्णय पैकेज** (Decision Package) कहा जाता है। इसमें निम्नलिखित विवरण अनिवार्य होते हैं:

गतिविधि का विशिष्ट उद्देश्य एवं सामाजिक-आर्थिक लाभ।

यदि गतिविधि को पूरी तरह बंद कर दिया जाए, तो उसके क्या परिणाम होंगे।

कार्य को निष्पादित करने के वैकल्पिक तरीके (कम लागत वाले विकल्प)।

परिचालन के विभिन्न स्तर (न्यूनतम आवश्यक स्तर, वर्तमान स्तर तथा उन्नत स्तर) और प्रत्येक स्तर से जुड़ी लागतें।

चरण 3: निर्णय पैकेजों का मूल्यांकन एवं श्रेणीकरण (Ranking of Decision Packages):
शीर्ष प्रबंधन सभी निर्णय इकाइयों से प्राप्त पैकेजों का लागत-लाभ विश्लेषण (Cost-Benefit Analysis) करता है और संगठन के समग्र लक्ष्यों के सापेक्ष उनकी महत्ता के अनुसार 1, 2, 3... के क्रम में प्राथमिकता श्रेणी (Ranking) निर्धारित करता है।

चरण 4: संसाधनों का आबंटन (Allocation of Resources):
उपलब्ध वित्तीय संसाधनों की सीमा तक उच्चतम प्राथमिकता वाले पैकेजों को निधियां आवंटित की जाती हैं। जिस बिंदु पर उपलब्ध बजट समाप्त हो जाता है, वहां एक कट-ऑफ रेखा खींच दी जाती है और उससे नीचे के सभी पैकेज स्वतः निरस्त माने जाते हैं।

शून्य-आधारित बजटिंग के लाभ एवं व्यावहारिक सीमाएं

क) प्रमुख लाभ:

अप्रचलित और अनुपयोगी योजनाओं की स्वतः पहचान और समाप्ति।

सार्वजनिक व्यय में अपव्यय पर कठोर अंकुश तथा राजकोषीय घाटे का प्रभावी नियंत्रण।

संसाधनों का प्राथमिकताओं के आधार पर इष्टतम पुनराबंटन।

कनिष्ठ प्रबंधकों की निर्णय प्रक्रिया में प्रत्यक्ष भागीदारी।

ख) गंभीर प्रशासनिक सीमाएं:

अत्यधिक कागजी कार्रवाई और समय की भारी बर्बादी।

सरकारी सेवाओं में गुणात्मक लाभों (यथा कानून-व्यवस्था, न्याय, प्राथमिक स्वास्थ्य) का वस्तुनिष्ठ परिमाणीकरण कठिन होना।

प्रतिबद्ध व्ययों की विवशता: सरकार के बजट का एक विशाल हिस्सा वेतन, पेंशन, ऋणों के ब्याज भुगतान तथा रक्षा व्यय जैसे प्रतिबद्ध व्ययों (Committed Expenditures) में बंधा होता है, जिन्हें शून्य मानकर समाप्त करना राजनीतिक और विधिक रूप से असंभव होता है।

wincompete

बजटीय तकनीक	दार्शनिक आधार	व्यय का औचित्य	प्राथमिक केंद्र बिंदु
पारंपरिक वृद्धिशील बजटिंग	पूर्व वर्ष का व्यय निर्विवाद सत्य है।	केवल अतिरिक्त प्रस्तावित वृद्धि का औचित्य।	इनपुट और वैधानिक नियम अनुपालन।
निष्पादन बजटिंग	व्यय को भौतिक लक्ष्यों से जोड़ना।	कार्यक्रमों के भौतिक लक्ष्यों का औचित्य।	इनपुट और आउटपुट के मध्य संबंध।
शून्य-आधारित बजटिंग	प्रत्येक चक्र में आधार पूर्ण शून्य है।	संपूर्ण आधारभूत व्यय का नए सिरे से औचित्य।	लागत-लाभ विश्लेषण एवं प्राथमिकताओं का श्रेणीकरण।
परिणामोन्मुख बजटिंग	अंतिम सामाजिक-आर्थिक प्रभाव मापना।	वास्तविक परिणामों और गुणवत्ता का औचित्य।	आउटपुट से आगे बढ़कर 'आउटकम' (अंतिम प्रभाव)।

परिणामोन्मुख बजटिंग (Outcome Budgeting): भारत का आधुनिक अनुभव

यद्यपि निष्पादन बजटिंग ने इनपुट और आउटपुट के मध्य संबंध स्थापित किया, परंतु इसने इस बात की जांच नहीं की कि उस आउटपुट का समाज पर अंतिम प्रभाव क्या पड़ा। उदाहरणार्थ:

इनपुट: प्राथमिक शिक्षा हेतु 100 करोड़ रुपये का आवंटन।

आउटपुट: 50 नए विद्यालय भवनों का निर्माण तथा 500 शिक्षकों की नियुक्ति।

आउटकम (Outcome): क्या वास्तव में बच्चों की सीखने की क्षमता (Learning Outcomes), साक्षरता दर और उपस्थिति में गुणात्मक सुधार हुआ?

भारत में औपचारिक शुरुआत एवं प्रक्रिया:

अ) वर्ष 2005-06 के केंद्रीय बजट में तत्कालीन वित्त मंत्री पी. चिदंबरम द्वारा भारत का प्रथम **परिणामी बजट (Outcome Budget)** संसद में प्रस्तुत किया गया।

ब) नीति आयोग और वित्त मंत्रालय का समन्वय: वर्ष 2017-18 के ऐतिहासिक बजटीय सुधारों (योजनागत और गैर-योजनागत व्यय के भेद की समाप्ति तथा बजट प्रस्तुति की तिथि को 1 फरवरी करना) के उपरांत परिणामी बजट को अत्यधिक परिष्कृत रूप में **आउटपुट-आउटकम मॉनिटरिंग फ्रेमवर्क** (Output-Outcome Monitoring Framework - OOMF) के रूप में रूपांतरित कर दिया गया।

स) वर्तमान व्यवस्था (अद्यतन बजटीय प्रक्रियाएं):

केंद्रीय बजट के साथ वित्त मंत्रालय अब अनिवार्य रूप से समस्त केंद्रीय क्षेत्र की योजनाओं (CS Schemes) तथा केंद्र प्रायोजित योजनाओं (CSS Schemes) का 'आउटपुट-आउटकम मॉनिटरिंग फ्रेमवर्क' दस्तावेज संसद के पटल पर प्रस्तुत करता है।

इसे नीति आयोग के **विकास निगरानी और मूल्यांकन कार्यालय** (Development Monitoring and Evaluation Office - DMEO) द्वारा तैयार किए गए वस्तुनिष्ठ संकेतकों के आधार पर ट्रैक किया जाता है।

प्रत्येक योजना हेतु स्पष्ट रूप से मापने योग्य संकेतक (KPIs) निर्धारित किए जाते हैं, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि संसद द्वारा स्वीकृत सार्वजनिक निधियों का प्रत्येक रुपया अंतिम नागरिक के जीवन में वास्तविक गुणात्मक परिवर्तन ला सके।

महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली एवं विधिक संकल्पनाएं

विनियोग लेखे (Appropriation Accounts): संसद अथवा राज्य विधानमंडल द्वारा विनियोग अधिनियम के तहत स्वीकृत अनुदानों की तुलना में किए गए वास्तविक व्यय को दर्शाने वाले आधिकारिक वार्षिक लेखे। ये लेखे सीएजी द्वारा तैयार/परीक्षित किए जाते हैं और लोक लेखा समिति को सौंपे जाते हैं ताकि अनधिकृत या अतिरिक्त व्यय (Excess Expenditure) की पहचान की जा सके।

वित्त लेखे (Finance Accounts): सरकार के वार्षिक वित्तीय लेन-देनों का संपूर्ण और समेकित विवरण, जिसमें संपूर्ण राजस्व प्राप्तियां, पूंजीगत प्राप्तियां, ऋण, देनदारियां तथा भारत की संचित निधि, लोक लेखा और आकस्मिकता निधि के अंतिम शेष शामिल होते हैं।

औचित्य लेखापरीक्षा (Propriety Audit): सीएजी द्वारा की जाने वाली वह उन्नत लेखापरीक्षा जो केवल नियमों और कानूनों के तकनीकी पालन की जांच नहीं करती, बल्कि यह भी देखती है कि क्या सार्वजनिक धन को खर्च करते समय अधिकारियों ने उतनी ही निष्ठा, विवेक, मितव्ययिता और सावधानी बरती जितनी कि एक सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति अपने स्वयं के धन को खर्च करते समय बरतता।

सार्वजनिक वित्तीय प्रबंधन प्रणाली (PFMS): वित्त मंत्रालय के लेखा महानियंत्रक (CGA) द्वारा संचालित एक अत्याधुनिक वेब-आधारित ऑनलाइन वित्तीय प्रबंधन अनुप्रयोग। यह केंद्र सरकार की सभी योजनाओं के तहत निधियों के वास्तविक समय (Real-time) प्रवाह, अंतिम छोर तक ट्रैकिंग और प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT) के भुगतान की रीढ़ की हड्डी है।

निर्णय पैकेज (Decision Package): शून्य-आधारित बजटिंग का वह बुनियादी दस्तावेज जो किसी विशिष्ट गतिविधि के उद्देश्यों, लागतों, प्रदर्शन मानकों, विकल्पों तथा गतिविधि को न करने के संभावित दुष्परिणामों का व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

मार्च रश (March Rush): वित्तीय वर्ष की अंतिम तिमाही (विशेषकर मार्च माह) में बजटीय निधियों के व्यपगत (Rule of Lapse) होने से बचने के लिए सरकारी विभागों द्वारा नियमों की अनदेखी करके किया जाने वाला अत्यधिक और अनियोजित व्यय।

व्यपगत का नियम (Rule of Lapse): संसदीय वित्तीय प्रणाली का वह सांविधानिक नियम जिसके अनुसार संसद द्वारा किसी विशिष्ट वित्तीय वर्ष हेतु स्वीकृत अनुदान की कोई भी अप्रयुक्त राशि उस

वित्तीय वर्ष की समाप्ति (31 मार्च की मध्यरात्रि) पर स्वतः निरस्त हो जाती है और सरकार उसे अगले वित्तीय वर्ष में उपयोग नहीं कर सकती।

अध्याय 15: अंकेक्षण (Auditing) एवं सामाजिक अंकेक्षण - लोक प्रशासन में जवाबदेही

खंड A: अंकेक्षण के आधारभूत सिद्धांत

उपखंड a: अंकेक्षण का अर्थ, उद्देश्य, आंतरिक अंकेक्षण, बाह्य अंकेक्षण, सांविधिक अंकेक्षण

अंकेक्षण की व्युत्पत्ति, परिभाषा एवं वैधानिक संकल्पना

अंकेक्षण (Auditing) शब्द लैटिन भाषा के मूल शब्द **'ऑडायर' (Audire)** से व्युत्पन्न हुआ है, जिसका शाब्दिक अर्थ 'सुनना' होता है। मध्यकालीन युग में वित्तीय लेन-देनों की सत्यता परखने हेतु लेखाकार प्राधिकृत अधिकारियों के सम्मुख बहीखाते मौखिक रूप से पढ़ते थे, जिसे सुनकर अधिकारी अपनी संपुष्टि देते थे। आधुनिक संदर्भ में अंकेक्षण एक अत्यंत वैज्ञानिक, निष्पक्ष, संहिताबद्ध तथा स्वतंत्र जांच प्रक्रिया है।

क) अंतरराष्ट्रीय अंकेक्षण एवं आश्वासन मानक बोर्ड (IAASB) के अनुसार: "अंकेक्षण किसी इकाई की वित्तीय सूचना की एक स्वतंत्र जांच है, चाहे वह लाभ-उन्मुख हो अथवा नहीं, और उसका आकार या विधिक स्वरूप कुछ भी हो, जब ऐसी जांच उस पर एक सुविचारित राय व्यक्त करने के उद्देश्य से की जाती है।"

ख) भारतीय सनदी लेखाकार संस्थान (ICAI) के मानक SA-200 के अनुसार: स्वतंत्र अंकेक्षक का समग्र उद्देश्य इस बात का यथोचित आश्वासन प्राप्त करना है कि वित्तीय विवरणियां समग्र रूप से कपट या त्रुटि के कारण होने वाले किसी सारवान गलत बयान (Material Misstatement) से मुक्त हैं, जिससे वह यह रिपोर्ट दे सके कि क्या विवरणियां सभी सारवान संदर्भों में एक सत्य एवं निष्पक्ष चित्रण (True and Fair View) प्रस्तुत करती हैं।

अंकेक्षण का मूल दर्शन यह स्थापित करता है कि अंकेक्षक कोई जांच अधिकारी (Investigator) या संसूचक नहीं है; वह न्यायमूर्तियों द्वारा प्रख्यापित प्रसिद्ध ऐतिहासिक वाद **किंग्स्टन कॉटन मिल्स कंपनी (1896)** के निर्णय के अनुसार "एक चौकस कुत्ता (Watchdog) है, न कि खूंखार शिकारी कुत्ता (Bloodhound)।" उसका प्राथमिक कार्य संदेह करना नहीं, बल्कि निष्पक्ष प्रमाणकों के आधार पर राय स्थापित करना है, जब तक कि कपट का कोई सुस्पष्ट आधार सामने न आए।

अंकेक्षण के प्राथमिक एवं गौण उद्देश्य

अंकेक्षण के उद्देश्यों को दो प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया जाता है:

अंकेक्षण का प्रकार (Category)	मुख्य उद्देश्य (Key Points)
प्राथमिक उद्देश्य (Primary Objective)	वित्तीय विवरणियों के 'सत्य एवं निष्पक्ष चित्रण' पर स्वतंत्र राय व्यक्त करना
गौण / सहायक उद्देश्य (Secondary Objectives)	• त्रुटियों (Errors) का पता लगाना एवं निवारण • कपट व गबन (Frauds) का पता लगाना एवं रोकथाम

अ) प्राथमिक उद्देश्य: वित्तीय वर्ष के अंत में तैयार किए गए लाभ-हानि खाते, तुलन-पत्र (बैलेंस शीट) तथा रोकड़ प्रवाह विवरण की विधिक वैधता, अंकगणितीय शुद्धता एवं भारतीय लेखा मानकों (Ind AS) के अनुपालन की जांच कर उस पर एक स्वतंत्र अंकेक्षण प्रतिवेदन प्रस्तुत करना।

ब) गौण उद्देश्य:

लिपिकीय त्रुटियों (भूल-चूक, गलत खतौनी, गलत जोड़) का उद्घाटन।

सैद्धांतिक त्रुटियों (पूंजीगत व्यय को आयगत अथवा आयगत को पूंजीगत मानना) की पहचान।

नकदी का गबन (Misappropriation of Cash) तथा माल का गबन (Misappropriation of Goods)।

बहीखातों में हेराफेरी (Window Dressing / Manipulation of Accounts), जो प्रायः शीर्ष प्रबंधन द्वारा कर चोरी अथवा कृत्रिम लाभ प्रदर्शित करने हेतु की जाती है।

आंतरिक अंकेक्षण (Internal Audit): संस्थागत नियंत्रण एवं विधिक अधिदेश

आंतरिक अंकेक्षण किसी संगठन के भीतर उसके प्रबंधन द्वारा स्थापित एक स्वतंत्र, वस्तुनिष्ठ आश्वासन एवं परामर्शदात्री गतिविधि है, जिसका उद्देश्य संगठन के परिचालनों में मूल्य संवर्धन करना और आंतरिक नियंत्रण प्रणाली को सुदृढ़ बनाना है।

कंपनी अधिनियम 2013 की **धारा 138** तथा कंपनी (लेखा) नियम 2014 के नियम 13 के अंतर्गत आंतरिक अंकेक्षण को निम्नलिखित संस्थाओं हेतु सांविधिक रूप से अनिवार्य किया गया है:

क) प्रत्येक सूचीबद्ध कंपनी (Listed Company)।

ख) प्रत्येक गैर-सूचीबद्ध सार्वजनिक कंपनी, यदि उसने पूर्ववर्ती वित्तीय वर्ष में:

50 करोड़ रुपये या उससे अधिक की चुकता शेयर पूंजी धारित की हो; अथवा

200 करोड़ रुपये या उससे अधिक का टर्नओवर प्राप्त किया हो; अथवा

बैंकों या सार्वजनिक वित्तीय संस्थानों से किसी भी समय 100 करोड़ रुपये से अधिक का बकाया ऋण प्राप्त किया हो; अथवा

किसी भी समय 25 करोड़ रुपये से अधिक की बकाया सार्वजनिक जमाएं (Deposits) रखी हों।

ग) प्रत्येक निजी कंपनी, जिसका पूर्ववर्ती वर्ष में टर्नओवर 200 करोड़ रुपये या उससे अधिक हो, अथवा बकाया ऋण 100 करोड़ रुपये से अधिक हो।

आंतरिक अंकेक्षक के रूप में एक सनदी लेखाकार (Chartered Accountant), लागत लेखाकार (Cost Accountant), अथवा कंपनी के निदेशक मंडल द्वारा निर्धारित कोई अन्य पेशेवर नियुक्त किया जा सकता है। यह अंकेक्षक कंपनी का नियमित कर्मचारी भी हो सकता है।

wincompete

बाह्य अंकेक्षण (External Audit / Independent Audit)
बाह्य अंकेक्षण किसी स्वतंत्र, बाह्य और निष्पक्ष पेशेवर अंकेक्षक द्वारा किया जाता है, जिसका संगठन के प्रबंधन अथवा दैनिक परिचालन से कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हित-संबंध नहीं होता।

अ) नियुक्ति एवं निष्पक्षता: यह सामान्यतः संस्था के स्वामियों (अंशधारकों), सरकार अथवा नियामकों द्वारा नियुक्त किया जाता है।

ब) दायित्व का केंद्र: बाह्य अंकेक्षक प्रबंधन के प्रति नहीं, बल्कि कंपनी के स्वामियों (अंशधारकों), ऋणदाताओं, वित्तीय संस्थानों, निवेशकों तथा कर प्राधिकारियों के प्रति कानूनी रूप से उत्तरदायी होता है।

स) प्रतिवेदन का स्वरूप: यह अपना अंकेक्षण प्रतिवेदन सीधे वार्षिक साधारण सभा (AGM) में अंशधारकों को प्रस्तुत करता है।

सांविधिक अंकेक्षण (Statutory Audit): विधिक दायित्व एवं प्रक्रिया
सांविधिक अंकेक्षण वह अंकेक्षण है जो किसी विशिष्ट संसदीय अथवा विधायी कानून (Statute) के प्रावधानों के अंतर्गत अनिवार्य किया गया हो। संस्था का प्रबंधन चाहे या न चाहे, कानून द्वारा निर्धारित समयावधि में यह अंकेक्षण कराना अनिवार्य होता है।

प्रमुख सांविधिक अंकेक्षण संवर्ग:

क) कंपनी अधिनियम 2013 की धारा 139 के तहत सभी निगमित कंपनियों का वार्षिक अंकेक्षण (केवल ICAI के सेवारत सनदी लेखाकार द्वारा)।

ख) बैंकिंग विनियमन अधिनियम 1949 के तहत बैंकिंग कंपनियों का सांविधिक अंकेक्षण।

ग) बीमा अधिनियम 1938 के तहत बीमा कंपनियों का अंकेक्षण।

घ) आयकर अधिनियम 1961 की धारा 44AB के तहत कर अंकेक्षण (Tax Audit - निर्दिष्ट व्यावसायिक टर्नओवर सीमा पार करने पर)।

ङ) सहकारी समितियां अधिनियम के तहत सहकारी बैंकों एवं सोसायटियों का अंकेक्षण।

तुलनात्मक आयाम	आंतरिक अंकेक्षण (Internal Audit)	बाह्य / सांविधिक अंकेक्षण (Statutory Audit)
वैधानिक अनिवार्यता	कंपनी अधिनियम 2013 की धारा 138 के तहत विहित सीमाओं में अनिवार्य; अन्यथा स्वैच्छिक।	कानून द्वारा प्रत्येक कंपनी तथा विशिष्ट संस्थाओं हेतु पूर्णतः अनिवार्य।
नियुक्ति का प्राधिकारी	कंपनी के निदेशक मंडल (Board of Directors) अथवा प्रबंधन द्वारा।	कंपनी के अंशधारकों द्वारा वार्षिक साधारण सभा (AGM) में।

wincompete

अंकेक्षक की योग्यता	सनदी लेखाकार, लागत लेखाकार अथवा कोई आंतरिक कर्मचारी।	अनिवार्य रूप से सीए अधिनियम 1949 के तहत सेवारत स्वतंत्र सनदी लेखाकार (CA)।
कार्यक्षेत्र एवं सीमाएं	प्रबंधन द्वारा स्वयं निर्धारित किया जाता है; परिचालन दक्षता पर बल।	संबंधित कानून (अधिनियम) द्वारा विहित; प्रबंधन कार्यक्षेत्र को सीमित नहीं कर सकता।
प्रतिवेदन किसको देय	सीधे शीर्ष प्रबंधन अथवा अंकेक्षण समिति (Audit Committee) को।	अंशधारकों (Shareholders), संसद, अथवा विनियामक प्राधिकरणों को।
अंकेक्षण का मुख्य केंद्र	आंतरिक नियंत्रण की प्रभावशीलता, प्रक्रियाओं की दक्षता एवं रोकथाम।	वित्तीय विवरणियों की वैधानिक सत्यता, निष्पक्षता एवं लेखा मानकों का अनुपालन।

उपखंड b: औचित्य अंकेक्षण (Propriety Audit), वित्तीय अंकेक्षण, दक्षता अंकेक्षण

वित्तीय एवं विनियामक अंकेक्षण (Financial and Compliance Audit)

सार्वजनिक और कॉर्पोरेट वित्तीय प्रशासन में वित्तीय अंकेक्षण सबसे बुनियादी और पारंपरिक संस्तर है। इसे 'नियम अंकेक्षण' (Legality Audit) भी कहा जाता है।

इसके प्रमुख घटक निम्नलिखित हैं:

क) विधिक वैधता (Legality): क्या व्यय की गई धनराशि उस विशिष्ट उद्देश्य हेतु प्राधिकृत थी जिसके लिए विधायिका अथवा सक्षम प्राधिकारी ने स्वीकृति दी थी?

ख) नियमों का अनुपालन (Regulatory Compliance): क्या व्यय करते समय सामान्य वित्तीय नियमों (GFR), विभागीय संहिताओं तथा राजकोषीय प्रक्रियाओं का अक्षरशः पालन किया गया?

ग) प्रमाणन एवं वाउचिंग (Vouching): क्या प्रत्येक व्यय के समर्थन में पर्याप्त, वैध और प्राधिकृत दस्तावेजी प्रमाणक (रसीदें, चालान, स्वीकृति आदेश) उपलब्ध हैं?

घ) अंकगणितीय सटीकता: खातों के जोड़ों, खतौनी तथा शेषों का पूर्ण मिलान सुनिश्चित करना।

सीमाएं: यह अंकेक्षण केवल यह देखता है कि "क्या नियमों का पालन हुआ?" यह इस बात की जांच नहीं कर सकता कि क्या वह नियम-सम्मत व्यय वास्तव में आवश्यक था, अथवा क्या उतनी ही राशि से अधिक बेहतर परिणाम प्राप्त किए जा सकते थे।

औचित्य अंकेक्षण (Propriety Audit): लोक वित्त का नैतिक एवं विवेकपूर्ण संस्तर

औचित्य अंकेक्षण वित्तीय अंकेक्षण के संकीर्ण यांत्रिक दायरे से आगे बढ़कर व्यय के अंतर्निहित विवेक, नैतिकता, औचित्य और लोकहित की संवीक्षा करता है। यह नियमों के शाब्दिक अनुपालन के स्थान पर "नियमों की आत्मा" की जांच करता है।

औचित्य के सिद्धांत (Canons of Financial Propriety):
भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG) द्वारा प्रख्यापित और सामान्य वित्तीय नियम (GFR) में संहिताबद्ध वित्तीय औचित्य के चार सार्वभौमिक सिद्धांत निम्नलिखित हैं:

अ) सामान्य विवेकशीलता का नियम: प्रत्येक सार्वजनिक अधिकारी को जनता के धन का व्यय करते समय उतनी ही सतर्कता, विवेकशीलता, मितव्ययिता और सावधानी बरतनी चाहिए, जितनी कि एक सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति अपने स्वयं के निजी धन को खर्च करते समय बरतता है।

ब) आत्म-लाभ पर प्रतिबंध: किसी भी प्राधिकारी को अपनी वित्तीय शक्तियों का प्रयोग ऐसे आदेश पारित करने हेतु नहीं करना चाहिए जिससे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उसका स्वयं का व्यक्तिगत लाभ होता हो।

स) विशिष्ट वर्ग का अनुचित पोषण नहीं: सार्वजनिक निधियों का उपयोग किसी विशिष्ट व्यक्ति, संभ्रांत समूह अथवा समुदाय के लाभ हेतु नहीं किया जाना चाहिए, जब तक कि वह किसी सुविचारित सार्वजनिक नीति या मान्यता प्राप्त विधि के अनुसार न हो।

द) व्यक्तिगत भत्तों की सीमा: किसी विशिष्ट उद्देश्य हेतु स्वीकृत किए जाने वाले भत्ते (यथा यात्रा भत्ता, आवास भत्ता) संबंधित अधिकारी हेतु लाभ का स्रोत (Source of Profit) नहीं बनने चाहिए; उनका आकार वास्तविक व्यय की भरपाई तक ही सीमित होना चाहिए।

औचित्य अंकेक्षण का एक उत्कृष्ट उदाहरण यह है कि यदि कोई प्रशासनिक विभाग वित्तीय वर्ष के अंतिम दिन मार्च रश (March Rush) के दबाव में नियमों का पालन करते हुए बाजार मूल्य से दोगुनी दर पर कार्यालय सामग्री क्रय कर लेता है, तो यह वित्तीय अंकेक्षण में तो 'वैध' होगा, परंतु औचित्य अंकेक्षण में इसे 'गंभीर अपव्यय और अनुचित व्यय' मानकर दोषी ठहराया जाएगा।

दक्षता अंकेक्षण (Efficiency Audit)
दक्षता अंकेक्षण यह जांच करता है कि क्या किसी सार्वजनिक योजना, उद्यम अथवा परियोजना के संचालन में संसाधनों (श्रम, सामग्री, पूंजी, समय) का इष्टतम उपयोग किया गया है।

क) इनपुट-आउटपुट अनुपात: यह मापता है कि क्या न्यूनतम संभव इनपुट के माध्यम से अधिकतम संभावित आउटपुट प्राप्त किया गया।

ख) समय और लागत की अतिवृद्धि (Time and Cost Overruns): क्या परियोजना निर्धारित समय-सीमा और बजटीय अनुमानों के भीतर पूर्ण हुई? यदि किसी जल विद्युत परियोजना का निर्माण 5 वर्ष के स्थान पर 10 वर्ष में हुआ और लागत 500 करोड़ से बढ़कर 1500 करोड़ हो गई, तो दक्षता अंकेक्षण इस विफलता के कारणों और नुकसान की पड़ताल करता है।

ग) अप्रयुक्त क्षमता की पहचान: क्या सरकारी कारखानों, अस्पतालों अथवा विश्वविद्यालयों की स्थापित क्षमता का पूर्ण उपयोग हो रहा है अथवा मशीनें और मानव संसाधन निष्क्रिय पड़े हैं?

निष्पादन अंकेक्षण (Performance Audit / 3Es Audit)
आधुनिक लोकतांत्रिक लोक प्रशासन में भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG) तथा वैश्विक अंकेक्षण निकायों द्वारा निष्पादन अंकेक्षण को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। इसे व्यापक रूप से **'3Es अंकेक्षण'** कहा जाता है, क्योंकि यह तीन प्रमुख पैमानों पर केंद्रित होता है:

स्तंभ (Pillar)	मुख्य सिद्धांत	व्याख्या
1. मितव्ययिता (Economy)	इनपुट की लागत को न्यूनतम रखना	सही वस्तु, सही मूल्य पर प्राप्त करना
2. दक्षता (Efficiency)	इनपुट और आउटपुट का इष्टतम अनुपात	काम को सही तरीके से करना
3. प्रभावशीलता (Effectiveness)	आउटपुट और अंतिम प्रभाव/आउटकम का मिलान	सही काम करना

अ) मितव्ययिता (Economy): संसाधनों की प्राप्ति में लागत को न्यूनतम करना, परंतु गुणवत्ता से समझौता किए बिना। यह 'व्यय की लागत' (Cost of Inputs) का परीक्षण है।

ब) दक्षता (Efficiency): उपलब्ध संसाधनों से अधिकतम उत्पादन प्राप्त करना अथवा एक निश्चित उत्पादन को न्यूनतम संसाधनों से प्राप्त करना। यह 'प्रक्रिया की उत्पादकता' (Productivity of Process) का परीक्षण है।

स) प्रभावशीलता (Effectiveness): किसी योजना या नीति के घोषित सामाजिक-आर्थिक उद्देश्यों की वास्तविक प्राप्ति का मूल्यांकन। यह 'अंतिम प्रभाव' (Outcome/Impact) का परीक्षण है। उदाहरणार्थ: यदि सरकार 10,000 प्राथमिक विद्यालय भवनों का निर्माण मितव्ययिता और दक्षता से कर भी लेती है, परंतु उसके बाद भी बच्चों में साक्षरता और सीखने की क्षमता में कोई सुधार नहीं होता, तो योजना 'प्रभावशीलता' के स्तर पर विफल मानी जाएगी।

अंकेक्षण का प्रकार	**मुख्य जांच प्रश्न**	**विधिक/प्रबंधकीय बल**	**प्राथमिक उदाहरण**
वित्तीय / विनियामक	क्या व्यय स्वीकृत नियमों एवं बजट सीमाओं के अनुरूप था?	विधिक अनुपालन, प्राधिकार एवं प्रमाणक मिलान।	टेंडर प्रक्रिया के विहित नियमों का पालन सुनिश्चित करना।
औचित्य अंकेक्षण	क्या व्यय सार्वजनिक विवेक, ईमानदारी एवं लोकहित के अनुकूल था?	नैतिक मानक, वित्तीय समझदारी एवं अपव्यय निवारण।	वीआईपी वाहनों की विलासितापूर्ण खरीद पर नियमों के बावजूद आपत्ति।
दक्षता अंकेक्षण	क्या संसाधनों का उपयोग बिना किसी बर्बादी के समय पर किया गया?	इनपुट-आउटपुट अनुपात, समय एवं लागत नियंत्रण।	सड़क निर्माण में देरी तथा संविदात्मक दावों के नुकसान की जांच।

wincompete

निष्पादन अंकेक्षण	क्या नीति ने अपने वास्तविक सामाजिक-आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त किया?	3Es (मितव्ययिता, दक्षता एवं प्रभावशीलता का संश्लेषण)।	आयुष्मान भारत या मनरेगा के वास्तविक स्वास्थ्य/आजीविका प्रभावों का अंकेक्षण।

खंड B: सामाजिक अंकेक्षण (Social Audit)

उपखंड a: सामाजिक अंकेक्षण की अवधारणा, उद्भव, पारंपरिक अंकेक्षण से भिन्नता, जनसहभागिता

सामाजिक अंकेक्षण की अवधारणात्मक एवं दार्शनिक पृष्ठभूमि

सामाजिक अंकेक्षण (Social Audit) किसी सार्वजनिक कार्यक्रम, योजना अथवा संस्था के क्रियान्वयन का मूल्यांकन करने की एक ऐसी सहभागी, लोकतांत्रिक एवं पारदर्शी प्रक्रिया है, जिसमें योजना के **वास्तविक लाभार्थियों (जनता)** द्वारा योजना के आधिकारिक अभिलेखों की भौतिक धरातल पर प्रत्यक्ष संवीक्षा की जाती है।

पारंपरिक अंकेक्षण वित्तीय बहीखातों में यह देखता है कि "धन कैसे खर्च हुआ", जबकि सामाजिक अंकेक्षण यह परीक्षण करता है कि "जो धन खर्च हुआ, उसका वास्तविक मानवीय और सामाजिक प्रभाव क्या पड़ा, क्या वह सही व्यक्ति तक पहुंचा और क्या विकास कार्यों से समुदाय के जीवन की गुणवत्ता में वास्तविक सुधार हुआ?"

सामाजिक अंकेक्षण के पांच आधारभूत स्तंभ:

क) पारदर्शिता (Transparency): योजना से जुड़े समस्त अभिलेखों, मस्टर रोल, वाउचरों, मापन पुस्तिकाओं (MB) और स्वीकृति आदेशों की स्थानीय भाषा में जनता के सम्मुख सार्वजनिक उपलब्धता।

ख) जनसहभागिता (Participation): निर्णय-निर्माण, क्रियान्वयन और मूल्यांकन में समुदाय के सबसे कमजोर, वंचित वर्गों की प्रत्यक्ष उपस्थिति।

ग) सामूहिक जवाबदेही (Accountability): क्रियान्वयनकारी अधिकारियों एवं कर्मचारियों की ग्राम सभा अथवा जनसुनवाई के मंच पर सीधे जनता के प्रश्नों के प्रति उत्तरदेहिता।

घ) सामाजिक प्रभाव का मापन (Social Impact Assessment): वित्तीय व्यय से परे जीवन स्तर, स्वास्थ्य, आजीविका और मानवीय गरिमा पर पड़े प्रभाव की पड़ताल।

ङ) सुधारात्मक कार्रवाई (Redressal): पाई गई अनियमितताओं, भ्रष्टाचार और गबन पर तत्काल विधिक व प्रशासनिक वसूली और दंडात्मक कार्यवाही।

सामाजिक अंकेक्षण का वैश्विक एवं भारतीय उद्भव

अ) वैश्विक पृष्ठभूमि: सामाजिक अंकेक्षण की संकल्पना का प्रारंभिक प्रयोग 1950 के दशक में कॉर्पोरेट जगत में देखा गया, जहां हॉवर्ड बोवेन (1953) ने कंपनियों की सामाजिक जिम्मेदारियों के मूल्यांकन पर बल दिया। 1970 के दशक में पश्चिमी देशों में कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (CSR) और नैतिक अंकेक्षण (Ethical Audit) के रूप में इसका विस्तार हुआ।

ब) भारत में ऐतिहासिक उद्भव:

भारत में सामाजिक अंकेक्षण का प्रादुर्भाव किसी सरकारी आदेश से नहीं, बल्कि राजस्थान के ग्रामीण अंचलों में उपजे एक ऐतिहासिक जमीनी जनांदोलन से हुआ।

1990 के दशक में अरुणा रॉय, निखिल डे, शंकर सिंह और साथी कार्यकर्ताओं द्वारा स्थापित **मजदूर किसान शक्ति संगठन (MKSS)** ने मध्य राजस्थान के देवडूंगरी (राजसमंद) क्षेत्र में न्यूनतम मजदूरी के भुगतान और अकाल राहत कार्यों में व्याप्त भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष प्रारंभ किया।

एमकेएसएस ने प्रसिद्ध नारा दिया: *"हमारा पैसा, हमारा हिसाब"* तथा *"जानने का अधिकार, जीने का अधिकार"*।

एमकेएसएस ने **'जनसुनवाई' (Public Hearing)** की अभिनव पद्धति का आविष्कार किया। इसमें ग्राम पंचायतों के निर्माण कार्यों के बिल, वाउचर और मस्टर रोल प्राप्त कर सार्वजनिक चौपालों पर पूरे गांव के सामने जोर से पढ़कर सुनाया जाता था। जब मस्टर रोल पढ़े जाते, तो जीवित व्यक्ति यह देखकर चौंक जाते कि उन्हें कागजों पर 'मृत' दिखाकर उनके नाम से फर्जी मजदूरी निकाली जा रही थी, अथवा ऐसे विद्यालयों और सड़कों का पूरा भुगतान उठा लिया गया था जिनका धरातल पर कोई अस्तित्व ही नहीं था।

इस जनांदोलन ने कालांतर में राजस्थान में सूचना का अधिकार कानून (2000) तथा राष्ट्रीय स्तर पर **सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 (RTI Act)** के अधिनियमन की आधारशिला रखी।

पारंपरिक अंकेक्षण बनाम सामाजिक अंकेक्षण: विधिक एवं प्रक्रियात्मक अंतर

तुलनात्मक आयाम	**पारंपरिक / वित्तीय अंकेक्षण (Financial Audit)**	**सामाजिक अंकेक्षण (Social Audit)**
अंकेक्षक की पहचान	बाहरी पेशेवर विशेषज्ञ (सीए, कैग के लेखापरीक्षक)।	प्राथमिक हितधारक एवं वास्तविक लाभार्थी (आम नागरिक, ग्राम सभा)।
मूल दस्तावेज	लेजर, जर्नल, बैंक समाधान विवरण, आधिकारिक वाउचर।	मस्टर रोल, जॉब कार्ड, कार्यस्थल की भौतिक स्थिति, प्रत्यक्ष जन-साक्ष्य।
अंकेक्षण का केंद्र	वित्तीय शुद्धता, विधिक प्रक्रिया, नियमों का औपचारिक पालन।	सामाजिक उपयोगिता, अधिकारों की पूर्ति, लाभार्थियों का वास्तविक सशक्तिकरण।

wincompete

प्रक्रिया की प्रकृति	बंद कमरों में, अत्यधिक गोपनीय, पेशेवर एवं एकांतिक जांच।	खुली सार्वजनिक चौपालों (जनसुनवाई) में, पूर्णतः पारदर्शी एवं लोकतांत्रिक।
जवाबदेही का स्वरूप	पदानुक्रमित एवं ऊपर की ओर (कार्यपालिका ➔ संसद/विधानसभा)।	क्षैतिज एवं सीधे नीचे की ओर (प्रशासन ➔ ग्राम सभा/जनता)।
साक्ष्य का प्रकार	केवल लिखित दस्तावेजी साक्ष्य एवं मुहरें।	दस्तावेजों के साथ-साथ ग्रामीणों की मौखिक गवाही और भौतिक सत्यापन।

लोक प्रशासन में जनसहभागिता का लोकतांत्रिक आयाम

सामाजिक अंकेक्षण पारंपरिक 'प्रतिनिधिक लोकतंत्र' (Representative Democracy) को वास्तविक 'सहभागितामूलक लोकतंत्र' (Participatory Democracy) में रूपांतरित करता है। यह नागरिकों को पांच वर्ष में केवल एक बार वोट देने वाले मूक मतदाता के स्थान पर विकास प्रक्रिया के सतत सतर्क पहरेदार (Active Citizenry) का दर्जा प्रदान करता है। इससे प्रशासनिक संस्कृति में 'जनता पर शासन' के औपनिवेशिक मिजाज के स्थान पर 'जनता के प्रति जवाबदेही' की लोकतांत्रिक भावना स्थापित होती है।

उपखंड b: मनरेगा में सामाजिक अंकेक्षण, संस्थागत ढांचा, राजस्थान सामाजिक अंकेक्षण जवाबदेही और पारदर्शिता सोसायटी, चुनौतियां

मनरेगा अधिनियम, 2005 में सामाजिक अंकेक्षण का सांविधिक अधिदेश

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (MGNREGA), 2005 भारत का प्रथम राष्ट्रीय विधान है जिसने सामाजिक अंकेक्षण को एक **अनिवार्य विधिक दायित्व** के रूप में स्थापित किया।

अधिनियम के विधिक प्रावधान:

क) धारा 17(1): ग्राम सभा ग्राम पंचायत के भीतर निष्पादित की जा रही सभी परियोजनाओं के निष्पादन की निगरानी करेगी।

ख) धारा 17(2): ग्राम सभा ग्राम पंचायत के भीतर निष्पादित किए गए सभी कार्यों का सामाजिक अंकेक्षण करेगी, जिसके लिए ग्राम पंचायत का यह विधिक दायित्व होगा कि वह सामाजिक अंकेक्षण करने हेतु सभी प्रासंगिक दस्तावेज, जिनमें मस्टर रोल, बिल, वाउचर, मापन पुस्तिकाएं (MB), मंजूरी आदेश आदि शामिल हैं, ग्राम सभा को उपलब्ध कराएगी।

ग) आवधिक समय-सीमा: विधिक नियमों के अनुसार प्रत्येक ग्राम पंचायत में **प्रत्येक छह माह में कम से कम एक बार** सामाजिक अंकेक्षण का आयोजन अनिवार्य है।

सामाजिक अंकेक्षण मानक नियम, 2011 (Audit of Scheme Rules, 2011):

केंद्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय ने भारत के सीएजी के परामर्श से वर्ष 2011 में सामाजिक अंकेक्षण के राष्ट्रीय नियम अधिसूचित किए। इन नियमों ने यह अनिवार्य किया कि सामाजिक अंकेक्षण का निष्पादन क्रियान्वयनकारी एजेंसी (ग्राम पंचायत या ब्लॉक प्रशासन) द्वारा नहीं किया जाएगा, बल्कि इसके लिए प्रत्येक राज्य में एक पूर्णतः स्वतंत्र और स्वायत्त **सामाजिक अंकेक्षण इकाई (Social Audit Unit - SAU)** की स्थापना की जाएगी, ताकि हितों का टकराव समाप्त हो सके।

सामाजिक अंकेक्षण की चरणबद्ध प्रक्रिया (Step-by-step Process)

मनरेगा सामाजिक अंकेक्षण का प्रक्रियात्मक चक्र

सामाजिक अंकेक्षण का मुख्य चक्र

├── 1. प्रारम्भिक चरण ——————▶ अभिलेखों की प्राप्ति एवं अंकेक्षकों का चयन व प्रशिक्षण

├── 2. धरातलीय सत्यापन ——————▶ घर-घर जाकर 100% सत्यापन व कार्यस्थल का भौतिक निरीक्षण

├── 3. साक्ष्य-परीक्षण ——————▶ साक्ष्यों का मिलान व प्राथमिक रिपोर्ट की तैयारी

├── 4. जनसुनवाई ——————————▶ ग्राम सभा में सार्वजनिक वाचन एवं साक्ष्य-परीक्षण

└── 5. कार्यवाही चरण ——————▶ अंतिम अंकेक्षण प्रतिवेदन एवं अनुवर्ती कार्यवाही (ATR)

चरण	प्रक्रियात्मक चरण	मुख्य गतिविधियां एवं दायित्व
1	अभिलेख प्राप्ति व तैयारी	ब्लॉक प्रशासन से मस्टर रोल, वाउचर, जॉब कार्ड एवं मापन पुस्तिकाओं की प्रतियां प्राप्त करना
2	घर-घर जाकर सत्यापन	श्रमिकों के जॉब कार्ड का मस्टर रोल व बैंक खातों से 100% प्रत्यक्ष मिलान
3	भौतिक कार्यस्थल निरीक्षण	स्वीकृत निर्माण स्थल पर जाकर नाप-जोल, गुणवत्ता व उपस्थिति की धरातलीय जांच
4	सार्वजनिक जनसुनवाई	ग्राम सभा में साक्ष्यों का सार्वजनिक वाचन, अधिकारियों का स्पष्टीकरण व गवाही
5	रिपोर्ट व कार्यवाही (ATR)	जिला प्रशासन द्वारा वित्तीय वसूली, अनुशासनात्मक कार्रवाई व प्राथमिकी (FIR) दर्ज कराना

चरण 1: अभिलेखों की प्राप्ति: सामाजिक अंकेक्षण दल ब्लॉक प्रशासन से कार्यवार मस्टर रोल, सामग्री वाउचर, जॉब कार्ड रजिस्टर और मापन पुस्तिकाओं की सत्यापित प्रतियां प्राप्त करता है।

चरण 2: घर-घर जाकर सत्यापन (Door-to-door Verification): अंकेक्षक दल गांव के प्रत्येक श्रमिक के घर जाकर उसके जॉब कार्ड की प्रविष्टियों का मिलान आधिकारिक मस्टर रोल से करता है।

यह जांचा जाता है कि क्या श्रमिक को वास्तव में काम मिला, क्या पूरे 100 दिन मिले, क्या मजदूरी सीधे उसके बैंक खाते में पहुंची, और क्या किसी बिचौलिए ने उसका पासबुक/एटीएम जब्त तो नहीं कर रखा।

चरण 3: कार्यस्थल का भौतिक सत्यापन (Site Inspection): दल स्वीकृत निर्माण स्थल पर जाकर मापता है कि क्या नाडी, तालाब, सड़क अथवा मेड़बंदी वास्तव में धरातल पर निर्मित हुई है, क्या उसकी माप सरकारी मापन पुस्तिका के अनुरूप है, और क्या निर्माण की गुणवत्ता मानकों के अनुकूल है।

चरण 4: ग्राम सभा में जनसुनवाई (Public Hearing): पूर्व-निर्धारित तिथि पर पूरे गांव की खुली बैठक (जनसुनवाई) आयोजित की जाती है, जिसकी अध्यक्षता किसी स्वतंत्र वरिष्ठ नागरिक द्वारा की जाती है। कार्यक्रम के क्रियान्वयन से जुड़े समस्त अधिकारी (ग्राम विकास अधिकारी, कनिष्ठ तकनीकी सहायक, रोजगार सहायक, सरपंच) अनिवार्य रूप से मंच पर उपस्थित रहते हैं।

चरण 5: साक्ष्यों का वाचन एवं साक्ष्य-परीक्षण: अंकेक्षण दल पाई गई विसंगतियों, फर्जी हाजिरी और घटिया सामग्री के प्रमाणों को जनता के सम्मुख सार्वजनिक रूप से पढ़ता है। श्रमिकों को माइक पर अपनी बात रखने का अवसर मिलता है और अधिकारियों को तत्काल स्पष्टीकरण देना होता है।

चरण 6: अंतिम अंकेक्षण प्रतिवेदन एवं कार्रवाई (ATR): जनसुनवाई के निर्णयों को संहिताबद्ध कर जिला कार्यक्रम समन्वयक (जिला कलेक्टर) को सौंपा जाता है, जिसका विधिक दायित्व गबन की गई राशि की वसूली करना तथा संबंधित दोषियों पर अनुशासनात्मक व आपराधिक (FIR) कार्रवाई करना होता है।

राजस्थान सामाजिक अंकेक्षण जवाबदेही और पारदर्शिता सोसायटी (SSAAT)

राजस्थान सरकार ने सामाजिक अंकेक्षण के सांविधिक अधिदेश को संस्थागत रूप देने हेतु राजस्थान सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1958 के अंतर्गत एक स्वायत्तशासी संस्था के रूप में **राजस्थान सामाजिक अंकेक्षण जवाबदेही और पारदर्शिता सोसायटी** (Social Audit Accountability and Transparency Society - SSAAT) का गठन किया।

सोसायटी का प्रशासनिक एवं संस्थागत विन्यास:

क) शीर्ष नेतृत्व: सोसायटी का संचालन एक शासी परिषद (Governing Body) द्वारा किया जाता है, जिसके अध्यक्ष राज्य के अतिरिक्त मुख्य सचिव / प्रमुख शासन सचिव (ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज) होते हैं।

ख) निदेशक: सोसायटी का प्रशासनिक प्रमुख एक पूर्णकालिक निदेशक (Director) होता है, जो सिविल सेवा का वरिष्ठ अधिकारी अथवा सामाजिक अंकेक्षण क्षेत्र का प्रख्यात विशेषज्ञ होता है।

ग) त्रि-स्तरीय संवर्ग ढांचा:

wincompete

राज्य स्तर: राज्य संसाधन व्यक्ति (State Resource Persons - SRPs)।

जिला स्तर: जिला संसाधन व्यक्ति (District Resource Persons - DRPs), जो जिले भर में अंकेक्षण का समन्वय करते हैं।

ब्लॉक स्तर: ब्लॉक संसाधन व्यक्ति (Block Resource Persons - BRPs)।

ग्राम स्तर: ग्राम संसाधन व्यक्ति (Village Resource Persons - VRPs), जिनका चयन उसी गांव के साक्षर युवाओं, स्वयं सहायता समूह (SHG) की महिलाओं अथवा मनरेगा श्रमिकों के परिवारों से किया जाता है।

घ) कार्यक्षेत्र का विस्तार: SSAAT केवल मनरेगा तक सीमित नहीं है; राजस्थान में यह राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (NFSA/PDS), प्रधानमंत्री आवास योजना (PMAY-G), स्वच्छ भारत मिशन (SBM-G), तथा 15वें वित्त आयोग के पंचायती राज अनुदानों का भी नियमित सामाजिक अंकेक्षण करती है।

राजस्थान जवाबदेही कानून (Accountability Bill) का ऐतिहासिक संदर्भ

राजस्थान देश का प्रथम राज्य बनने की दिशा में अग्रसर रहा है जिसने सरकारी सेवाओं की आपूर्ति में अधिकारियों की व्यक्तिगत जवाबदेही तय करने हेतु 'सामाजिक जवाबदेही विधेयक' (Social Accountability Bill) का प्रारूप तैयार किया।

न्यायमूर्ति ए.एस. भल्ला समिति: राज्य सरकार ने सामाजिक जवाबदेही कानून का विधिक प्रारूप तैयार करने हेतु पूर्व न्यायाधीश ए.एस. भल्ला की अध्यक्षता में उच्च स्तरीय समिति का गठन किया था।

मुख्य प्रावधान: इसके अंतर्गत प्रत्येक नागरिक को समयबद्ध सार्वजनिक सेवा का अधिकार, शिकायत निवारण की विधिक गारंटी, विकेंद्रीकृत सामाजिक अंकेक्षण तथा सेवा में विफलता पर संबंधित दोषी अधिकारी पर वित्तीय दंड एवं वेतन कटौती का कठोर प्रावधान प्रस्तावित किया गया।

सामाजिक अंकेक्षण के क्रियान्वयन में विद्यमान संरचनात्मक चुनौतियां

संवैधानिक और विधिक प्रावधानों के बावजूद धरातल पर सामाजिक अंकेक्षण प्रणाली कई गंभीर बाधाओं से जूझ रही है:

क) अनुवर्ती कार्रवाई (Action Taken Report - ATR) का गंभीर अभाव: सामाजिक अंकेक्षण में भ्रष्टाचार और फर्जीवाड़े के स्पष्ट प्रमाण मिलने के बावजूद दोषी अधिकारियों और स्थानीय जनप्रतिनिधियों के विरुद्ध वास्तविक दंडात्मक कार्रवाई अथवा गबन की गई राशि की वसूली अत्यंत नगण्य रहती है, जिससे व्यवस्था के प्रति जन-विश्वास घटता है।

ख) सामाजिक अंकेक्षण इकाइयों की वित्तीय एवं प्रशासनिक पराधीनता: यद्यपि नियमों के अनुसार सामाजिक अंकेक्षण इकाइयां स्वतंत्र होनी चाहिए, परंतु उनके बजट, मानदेय और वाहनों की व्यवस्था हेतु वे उसी ग्रामीण विकास विभाग पर निर्भर रहती हैं जिसका उन्हें अंकेक्षण करना होता है।

ग) स्थानीय राजनीतिक दबाव एवं हिंसा का जोखिम: ग्रामीण अंचलों में प्रभावशाली सरपंचों, ठेकेदारों और नौकरशाहों के गठजोड़ द्वारा ग्राम संसाधन व्यक्तियों (VRPs) तथा शिकायत करने वाले निर्धन श्रमिकों को डराना, धमकाना अथवा सामाजिक बहिष्कार की धमकियां दी जाती हैं।

घ) ग्राम सभाओं में निम्न जन-उपस्थिति: कई स्थानों पर जनसुनवाई की पूर्व सूचना का समुचित प्रचार-प्रसार नहीं किया जाता, जिससे ग्राम सभाओं में कोरम का अभाव रहता है अथवा वे केवल औपचारिक कागजी कार्रवाई बनकर रह जाती हैं।

ङ) डिजिटल अंतराल (Digital Divide): ऑनलाइन मस्टर रोल (NMMS ऐप द्वारा मोबाइल से दिन में दो बार लाइव फोटो आधारित उपस्थिति) और डिजिटल भुगतान प्रणाली के लागू होने के पश्चात तकनीकी जटिलताओं के कारण आम ग्रामीणों हेतु अभिलेखों की स्वतंत्र जांच करना कठिन हो गया है।

चुनौती का क्षेत्र	वास्तविक प्रशासनिक समस्या	संस्थागत एवं विधिक समाधान
कार्रवाई का अभाव	जनसुनवाई के निष्कर्षों पर जिलों द्वारा एफआईआर या वसूली न करना।	स्वतंत्र 'सामाजिक अंकेक्षण लोकपाल' (Ombudsman) को सीधी दंडात्मक शक्तियां सौंपना।
स्वायत्तता का संकट	बजट हेतु प्रशासनिक विभाग पर निर्भरता।	सीएजी के समान संचित निधि से पृथक स्वतंत्र बजट शीर्ष (Budget Head) का प्रावधान।
अंकेक्षकों की सुरक्षा	स्थानीय बाहुबलियों एवं राजनेताओं द्वारा दबाव व हिंसा।	व्हिसलब्लोअर संरक्षण तंत्र तथा अंकेक्षण के दौरान अनिवार्य पुलिस उपस्थिति।
जन-जागरूकता की कमी	अधिकारों और मस्टर रोल नियमों की जानकारी न होना।	नागरिक सूचना पट्टों (CIB) का सुदृढ़ीकरण तथा सतत वित्तीय साक्षरता अभियान।

महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली एवं प्रमुख संकल्पनाएं

जनसुनवाई (Public Hearing): सामाजिक अंकेक्षण का वह खुला लोकतांत्रिक मंच जहां किसी बंद कार्यालय के स्थान पर पूरे गांव, हितधारकों, मीडिया और प्रशासनिक अधिकारियों के सम्मुख सार्वजनिक रूप से अभिलेखों का वाचन किया जाता है और गवाहियों का प्रत्यक्ष आमना-सामना कराया जाता है।

मस्टर रोल (Muster Roll): मनरेगा तथा अन्य सार्वजनिक निर्माण कार्यों में श्रमिकों की दैनिक उपस्थिति, किए गए कार्य का माप तथा देय मजदूरी का प्राथमिक विधिक उपस्थिति पत्रक। सामाजिक अंकेक्षण का 80 प्रतिशत ध्यान इसी दस्तावेज के भौतिक सत्यापन पर केंद्रित होता है।

कार्यस्थल सूचना पट्ट (Citizen Information Board - CIB): प्रत्येक निर्माण कार्य स्थल पर सीमेंट-कंक्रीट से निर्मित वह स्थायी सूचना बोर्ड जिस पर योजना का नाम, स्वीकृत राशि, सामग्री व मजदूरी का अनुपात, कार्य प्रारंभ व समाप्ति की तिथि तथा तकनीकी स्वीकृति का विवरण स्पष्ट रूप से लिखा होना विधिक रूप से अनिवार्य है।

जॉब कार्ड (Job Card): ग्राम पंचायत द्वारा प्रत्येक पात्र ग्रामीण परिवार को निःशुल्क जारी किया जाने वाला एक वैधानिक अधिकार विलेख। इसमें परिवार के सभी वयस्क सदस्यों के नाम, उनकी तस्वीरें तथा उनके द्वारा मांगे गए व किए गए कार्य और भुगतान की गई मजदूरी का पूर्ण विवरण दर्ज होता है।

व्हिसलब्लोअर (संसूचक / Whistleblower): वह व्यक्ति (प्रायः कोई कर्मचारी अथवा सतर्क नागरिक) जो किसी संगठन, विभाग अथवा सार्वजनिक परियोजना में चल रहे भ्रष्टाचार, धोखाधड़ी,

वित्तीय अनियमितताओं अथवा गैर-कानूनी गतिविधियों की जानकारी सार्वजनिक मंच अथवा जांच एजेंसियों के समक्ष उजागर करता है।

सामाजिक प्रभाव आकलन (Social Impact Assessment - SIA): किसी विकासात्मक या अवसंरचनात्मक परियोजना (यथा बांध, राजमार्ग, कारखाना) के प्रारंभ होने से पूर्व समुदाय की भूमि, आजीविका, संस्कृति, पर्यावरण तथा मानव अधिकारों पर पड़ने वाले संभावित दुष्प्रभावों का वैज्ञानिक एवं सहभागी अध्ययन। भूमि अधिग्रहण अधिनियम 2013 के तहत यह विधिक रूप से अनिवार्य है।

अनुवर्ती कार्रवाई प्रतिवेदन (Action Taken Report - ATR): सामाजिक अंकेक्षण अथवा किसी जांच रिपोर्ट में उजागर की गई कमियों, वित्तीय अनियमितताओं और शिकायतों के निवारण हेतु संबंधित प्रशासनिक प्राधिकारी द्वारा उठाए गए वास्तविक कदमों (वसूली, निलंबन, एफआईआर) का औपचारिक विधिक प्रतिवेदन। इसके बिना कोई भी अंकेक्षण प्रक्रिया पूर्ण नहीं मानी जाती।

अध्याय 16: भारतीय मुद्रा बाजार - उपकरण, प्रतिभागी एवं विनियामक ढांचा

खंड A: मुद्रा बाजार का स्वरूप एवं घटक

उपखंड a: मुद्रा बाजार की परिभाषा, पूंजी बाजार से भिन्नता, संगठित बनाम असंगठित क्षेत्र

मुद्रा बाजार की सैद्धांतिक एवं संस्थागत परिभाषा

वित्तीय प्रणाली के समग्र विन्यास में मुद्रा बाजार (Money Market) अल्पकालिक वित्तीय आस्तियों के लेनदेन का वह औपचारिक एवं अनौपचारिक तंत्र है, जिसके अंतर्गत एक वर्ष या उससे कम अवधि की परिपक्वता (Maturity) वाली मौद्रिक परिसंपत्तियों का क्रय-विक्रय किया जाता है। भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) के अनुसार, मुद्रा बाजार एक ऐसा तंत्र है जो अल्पकालिक अधिशेष निधियों को उन वित्तीय इकाइयों तक पहुंचाने का कार्य करता है जो अल्पकालिक तरलता घाटे का सामना कर रही हैं। यह बाजार विशुद्ध रूप से 'निकट-मुद्रा' (Near-Money Assets) के लेनदेन का केंद्र है। निकट-मुद्रा से आशय उन वित्तीय प्रपत्रों से है जिनमें अत्यधिक तरलता (High Liquidity) विद्यमान होती है, जिनका विनिमय मूल्य स्थिर रहता है तथा जिन्हें बिना किसी सारवान मूल्य-हानि के तत्काल नकदी में परिवर्तित किया जा सकता है।

मुद्रा बाजार का प्राथमिक आर्थिक कार्य अर्थव्यवस्था में तरलता का इष्टतम संतुलन (Liquidity Balancing) बनाए रखना है। यह वाणिज्यिक बैंकों को अपनी सांविधिक आवश्यकताओं, जैसे नकद आरक्षित अनुपात (CRR) और वैधानिक तरलता अनुपात (SLR) की दैनिक और पाक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने का मंच प्रदान करता है, वहीं दूसरी ओर केंद्रीय बैंक को अपनी मौद्रिक नीति के संचरण (Monetary Policy Transmission) का प्राथमिक माध्यम उपलब्ध कराता है।

मुद्रा बाजार बनाम पूंजी बाजार: संरचनात्मक एवं विनियामक विभेद

वित्तीय बाजार को परिपक्वता अवधि, जोखिम की मात्रा, प्रयुक्त उपकरणों और विनियामक संस्थाओं के आधार पर दो स्पष्ट संवर्गों में विभाजित किया जाता है: मुद्रा बाजार और पूंजी बाजार (Capital Market)।

तुलनात्मक आयाम	मुद्रा बाजार (Money Market)	पूंजी बाजार (Capital Market)
परिपक्वता समयावधि	केवल अल्पकालिक निधियां (1 दिन से अधिकतम 1 वर्ष तक)।	मध्यम एवं दीर्घकालिक निधियां (1 वर्ष से अधिक, 10-30 वर्ष या स्थायी)।
प्राथमिक आर्थिक उद्देश्य	कार्यशील पूंजी (Working Capital) एवं अल्पकालिक तरलता समायोजन।	स्थायी पूंजी निर्माण, औद्योगिक संयंत्र, अवसंरचना एवं दीर्घकालिक निवेश।
प्रयुक्त प्रमुख वित्तीय उपकरण	ट्रेजरी बिल, वाणिज्यिक पत्र, जमा प्रमाण पत्र, मांग मुद्रा, रेपो।	इक्विटी शेयर, वरीयता शेयर, डिबेंचर, सरकारी विकास ऋण (SDLs), बॉन्ड।
वित्तीय जोखिम का स्तर	अत्यधिक निम्न साख जोखिम (Credit Risk) एवं नगण्य बाजार जोखिम।	उच्च बाजार मूल्य जोखिम, प्रतिफल में उतार-चढ़ाव एवं डिफ़ॉल्ट का जोखिम।
परिसंपत्तियों की तरलता	अत्यधिक उच्च तरलता; द्वितीयक बाजार में त्वरित नकदी रूपांतरण।	तुलनात्मक रूप से कम; बाजार परिस्थितियों और मांग पर निर्भर।
प्रतिभागियों की प्रकृति	मुख्य रूप से संस्थागत प्रतिभागी (आरबीआई, बैंक, प्राथमिक डीलर, म्यूचुअल फंड)।	व्यक्तिगत खुदरा निवेशक, संस्थागत निवेशक, कॉर्पोरेट घराने, पेंशन फंड।
सर्वोच्च विनियामक संस्था	भारतीय रिजर्व बैंक (RBI)।	भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (SEBI)।

wincompete

भारतीय मुद्रा बाजार का द्वैध स्वरूप: संगठित बनाम असंगठित क्षेत्र

भारतीय मुद्रा बाजार की एक ऐतिहासिक और संरचनात्मक विशेषता इसका द्वैध (Dualistic) स्वरूप है। यह बाजार दो समानांतर क्षेत्रों में विभक्त रहा है:

क) संगठित क्षेत्र (Organized Sector):

यह क्षेत्र पूर्णतः संहिताबद्ध, आधुनिक, वित्तीय रूप से परिष्कृत तथा भारतीय रिजर्व बैंक के प्रत्यक्ष विनियामक और पर्यवेक्षणीय नियंत्रण के अधीन कार्य करता है।

इसके अंतर्गत भारतीय रिजर्व बैंक, अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक (सार्वजनिक, निजी एवं विदेशी बैंक), क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, लघु वित्त बैंक, अखिल भारतीय विकास वित्तीय संस्थान (AIFIs), प्राथमिक डीलर (Primary Dealers) तथा गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियां (NBFCs) सम्मिलित हैं।

यहां ब्याज दरें बाजार शक्तियों, आरबीआई के चलनिधि समायोजन सुविधा (LAF) कॉरिडोर, रेपो रेट और वित्तीय मांग-आपूर्ति द्वारा पारदर्शी रूप से निर्धारित होती हैं।

प्रयुक्त उपकरणों के मानक और प्रक्रियाएं वैधानिक नियमों (जैसे आरबीआई के मास्टर डायरेक्शंस) द्वारा कड़ाई से नियंत्रित होती हैं।

ख) असंगठित क्षेत्र (Unorganized Sector):

यह क्षेत्र किसी औपचारिक बैंकिंग विनिमय या केंद्रीय बैंक के विनियामक दायरे से बाहर रहकर अनौपचारिक रूप से संचालित होता है।

इसके मुख्य घटक देशी बैंकर (Indigenous Bankers - जैसे मारवाड़ी, गुजराती, चेत्तियार सर्राफ), स्थानीय साहूकार, महाजन, चिट फंड और गैर-पंजीकृत वित्तीय मध्यस्थ हैं।

इस क्षेत्र में वित्तीय लेन-देन व्यक्तिगत संबंधों, मौखिक समझौतों अथवा पारंपरिक विलेखों (जैसे पारंपरिक 'हुंडी' - दर्शनी या मुद्दती हुंडी) पर आधारित होते हैं।

ब्याज दरें अत्यधिक शोषक, अपारदर्शी और अत्यधिक उच्च (प्रायः 24% से 60% वार्षिक तक) होती हैं।

यद्यपि वित्तीय समावेशन और डिजिटल भुगतान प्रणालियों (UPI, AePS) के विस्तार से असंगठित क्षेत्र का हिस्सा निरंतर सिकुड़ रहा है, तथापि ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों के अनौपचारिक व्यवसायों में इसकी उपस्थिति अब भी एक आर्थिक चुनौती बनी हुई है।

वाघुल समिति (1987) और चक्रवर्ती समिति (1985) के ऐतिहासिक सुधार

स्वतंत्रता के पश्चात कई दशकों तक भारतीय मुद्रा बाजार अत्यधिक संकुचित, अल्प-विकसित और मूल्य-नियंत्रित था। 1980 के दशक में भारतीय मुद्रा बाजार के आधुनिकीकरण हेतु दो मील के पत्थर समितियां गठित की गईं:

अ) सुखमय चक्रवर्ती समिति (1985): इसने मौद्रिक प्रणाली के संचालन पर अपनी रिपोर्ट में ब्याज दरों को विनियामक नियंत्रण से मुक्त करने और मौद्रिक प्रबंधन हेतु बाजार-आधारित उपकरणों के प्रयोग की संस्तुति की।

ब) एन. वाघुल समिति (1987): 'मुद्रा बाजार पर कार्यदल' (वाघुल समिति) ने भारतीय मुद्रा बाजार के आधुनिक संस्थागत ढांचे की वास्तविक नींव रखी। समिति की प्रमुख सिफारिशों के आधार पर:

1988 में **भारतीय डिस्काउंट और फाइनेंस हाउस (DFHI)** की स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य अल्पकालिक मुद्रा बाजार उपकरणों को द्वितीयक बाजार में तरलता प्रदान करना था।

1989 में वाणिज्यिक पत्रों (CP) और जमा प्रमाण पत्रों (CD) को नवीन विनिमेय उपकरणों के रूप में प्रारंभ करने का मार्ग प्रशस्त हुआ।

अंतर-बैंक मांग मुद्रा बाजार में गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं की सहभागिता के नियम निर्धारित किए गए।

ब्याज दरों पर लगी ऊपरी सीमा (Ceiling) को क्रमिक रूप से समाप्त कर दिया गया।

उपखंड b: प्रतिभागी - आरबीआई, वाणिज्यिक बैंक, प्राथमिक डीलर, वित्तीय संस्थान, म्यूचुअल फंड

प्रतिभागियों का संस्थागत वर्गीकरण एवं उनकी बाजार भूमिका

भारतीय मुद्रा बाजार अत्यधिक संस्थागत रूप से केंद्रित है। इसमें भाग लेने वाली संस्थाओं के वित्तीय उद्देश्य, संसाधन और विनियामक शक्तियां भिन्न-भिन्न हैं। प्रमुख प्रतिभागियों की भूमिका निम्नलिखित रूप से संरचित है:

मुद्रा बाजार के प्रमुख प्रतिभागी (Key Participants of Money Market)

मुद्रा बाजार के प्रमुख प्रतिभागी

├── 1. शीर्ष विनियामक एवं तरलता प्रदाता ——► भारतीय रिजर्व बैंक (RBI)

├── 2. प्राथमिक उधारकर्ता एवं ऋणदाता ————► अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक एवं सहकारी बैंक

├── 3. बाजार निर्माता (Market Makers) ————► प्राथमिक डीलर (Primary Dealers)

├── 4. संस्थागत निवेशक (तरलता आपूर्तिकर्ता) —► लिक्विड म्यूचुअल फंड, बीमा कंपनियां

└── 5. कॉर्पोरेट एवं विकास संस्थान ————► अखिल भारतीय वित्तीय संस्थान (NABARD, SIDBI, EXIM)

wincompete

क्र.सं.	प्रतिभागी श्रेणी (Category)	प्रमुख इकाइयां एवं भूमिका (Key Entities & Role)
1	शीर्ष विनियामक एवं तरलता प्रदाता	भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) - मौद्रिक नीति नियंत्रण व सर्वोच्च तरलता प्रबंधन
2	प्राथमिक उधारकर्ता एवं ऋणदाता	अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक एवं सहकारी बैंक - बाजार के मुख्य लेन-देनकर्ता
3	बाजार निर्माता (Market Makers)	प्राथमिक डीलर (Primary Dealers) - सरकारी प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय को सुगम बनाना
4	संस्थागत निवेशक	लिक्विड म्यूचुअल फंड, बीमा कंपनियां - बाजार में अतिरिक्त तरलता आपूर्ति
5	कॉर्पोरेट एवं विकास संस्थान	अखिल भारतीय वित्तीय संस्थान [NABARD, SIDBI, EXIM] - विशिष्ट वित्तीय आवश्यकताएं

1. भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) की केंद्रीय भूमिका

आरबीआई मुद्रा बाजार का संप्रभु विनियामक, पर्यवेक्षक और संकटकालीन ऋणदाता (Lender of Last Resort) है।

क) तरलता का नियमन: केंद्रीय बैंक यह सुनिश्चित करता है कि अर्थव्यवस्था में न तो अत्यधिक तरलता रहे (जिससे मुद्रास्फीति भड़के) और न ही तरलता का संकुचन हो (जिससे आर्थिक वृद्धि बाधित हो)।

ख) मौद्रिक नीति का संचालन: आरबीआई चलनिधि समायोजन सुविधा (LAF) के अंतर्गत दैनिक और सावधि रेपो (Repo), स्थायी जमा सुविधा (SDF), सीमांत स्थायी सुविधा (MSF) तथा खुले बाजार की कार्रवाइयों (OMO) के माध्यम से मुद्रा बाजार की ब्याज दरों को अपनी लक्षित नीतिगत दर (Policy Repo Rate) के आसपास बनाए रखता है।

ग) विनियामक आदेश: आरबीआई विभिन्न मुद्रा बाजार उपकरणों की पात्रता, न्यूनतम मूल्य वर्ग (Denomination), निर्गमन प्रक्रिया, रेटिंग आवश्यकताएं और रिपोर्टिंग नियम तय करता है।

2. अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक (Scheduled Commercial Banks)
वाणिज्यिक बैंक मुद्रा बाजार के सबसे बड़े और सबसे सक्रिय प्रतिभागी हैं।

अ) दोहरी भूमिका: बैंक अपनी दैनिक नकदी स्थिति के आधार पर मुद्रा बाजार में एक साथ ऋणदाता (Lenders) और उधारकर्ता (Borrowers) दोनों की भूमिका निभाते हैं।

ब) सांविधिक अनुपालन: बैंकों को आरबीआई अधिनियम, 1934 की धारा 42 के तहत नकद आरक्षित अनुपात (CRR) बनाए रखना अनिवार्य होता है। इस दैनिक और पाक्षिक आरक्षित आवश्यकता को पूरा करने के लिए बैंक अंतर-बैंक मांग मुद्रा (Call Money) बाजार के सबसे बड़े उपयोगकर्ता हैं।

स) तरलता आधिक्य का निवेश: अधिशेष निधियों वाले बैंक ट्रेजरी बिलों, वाणिज्यिक पत्रों और रिवर्स रेपो/एसडीएफ में अपनी निधियों को अल्पकाल के लिए पार्क करते हैं।

3. प्राथमिक डीलर (Primary Dealers - PDs)
प्राथमिक डीलर वे विशेषीकृत गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थाएं अथवा बैंकों की समर्पित सहायक इकाइयां हैं, जिन्हें भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों और मुद्रा बाजार के प्राथमिक और द्वितीयक बाजारों में 'बाजार निर्माता' (Market Makers) के रूप में कार्य करने हेतु पंजीकृत किया जाता है।

क) संस्थागत अधिदेश: प्राथमिक डीलरों हेतु यह विधिक रूप से अनिवार्य होता है कि वे केंद्रीय सरकार के ट्रेजरी बिलों और दिनांकित प्रतिभूतियों की नीलामी में एक पूर्व-निर्धारित न्यूनतम प्रतिशत की बोली लगाएं (Underwriting Commitment)।

ख) तरलता का प्रावधान: ये मुद्रा बाजार में सतत रूप से दोतरफा मूल्य उद्धरण (Two-way Quotes - क्रय एवं विक्रय मूल्य) प्रस्तुत करते हैं, जिससे ट्रेजरी बिलों और वाणिज्यिक प्रपत्रों में निरंतर द्वितीयक तरलता बनी रहती है।

ग) श्रेणियों का विन्यास: भारत में प्राथमिक डीलर दो प्रकार के होते हैं—स्टैंडअलोन प्राथमिक डीलर (Standalone PDs - गैर-बैंकिंग कंपनियां) और बैंक-प्राथमिक डीलर (Bank-PDs - वाणिज्यिक बैंकों के विशेष विभाग)।

4. अखिल भारतीय वित्तीय संस्थान (AIFIs)
इसके अंतर्गत राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (NABARD), लघु उद्योग विकास बैंक (SIDBI), भारतीय निर्यात-आयात बैंक (EXIM Bank) तथा राष्ट्रीय आवास बैंक (NHB) जैसी शीर्ष विकास वित्तीय संस्थाएं आती हैं।

ये संस्थाएं अपनी विशिष्ट विकास परियोजनाओं के वित्तपोषण हेतु मुद्रा बाजार से वाणिज्यिक पत्र (CP), सावधि मुद्रा और अल्पकालिक बांड जारी करके भारी मात्रा में संसाधन जुटाती हैं।

आरबीआई के विवेकपूर्ण नियमों के अधीन इन संस्थाओं को अपने शुद्ध स्वामित्व वाले कोष (NOF) के एक निश्चित अनुपात तक अल्पकालिक उधारी की अनुमति प्राप्त होती है।

5. म्यूचुअल फंड (विशेषकर लिक्विड एवं मनी मार्केट फंड)
म्यूचुअल फंड कंपनियां, विशेष रूप से उनकी लिक्विड फंड (Liquid Funds) और ओवरनाइट फंड योजनाएं, मुद्रा बाजार में तरलता की प्रमुख आपूर्तिकर्ता (Suppliers of Liquidity) बन चुकी हैं।

अ) कॉर्पोरेट बचतों का संग्रहण: म्यूचुअल फंड कॉर्पोरेट घरानों और व्यक्तिगत निवेशकों से अल्पकालिक अधिशेष निधियां जुटाते हैं।

ब) निवेश नीतियां: सेबी (SEBI) के विनियामक नियमों के अनुसार, लिक्विड फंड्स को अपनी निधियों का 100% केवल उन प्रतिभूतियों में निवेश करने की अनुमति होती है जिनकी परिपक्वता अवधि 91 दिनों या उससे कम होती है। अतः ये फंड वाणिज्यिक पत्रों (CP), जमा प्रमाण पत्रों (CD) और ट्रेजरी बिलों के सबसे बड़े खरीदार हैं।

स) टीआरईपीएस (TREPS) में सहभागिता: म्यूचुअल फंड संस्थागत पुनर्खरीद बाजार (Tri-Party Repo) में सबसे बड़े ऋणदाता के रूप में कार्य करते हैं।

6. गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियां (NBFCs) एवं कॉर्पोरेट घराने

बड़े कॉर्पोरेट घराने और एनबीएफसी मुद्रा बाजार में मुख्य रूप से अल्पकालिक संसाधन जुटाने वाले उधारकर्ताओं के रूप में प्रवेश करते हैं। वे बैंकों की कार्यशील पूंजी ऋण सीमाओं पर अपनी निर्भरता कम करने के लिए कम ब्याज दरों पर वाणिज्यिक पत्र (Commercial Paper) जारी करते हैं।

प्रतिभागी	प्राथमिक भूमिका	प्रमुख प्रयुक्त उपकरण	विनियामक निगरानी
भारतीय रिजर्व बैंक (RBI)	नियामक, तरलता नियंत्रक, अंतिम ऋणदाता।	रेपो, रिवर्स रेपो, SDF, MSF, OMO।	संप्रभु स्वायत्त केंद्रीय बैंक।
वाणिज्यिक बैंक	उधारकर्ता एवं ऋणदाता (दैनिक तरलता प्रबंधन)।	मांग/नोटिस मुद्रा, CD, ट्रेजरी बिल, रेपो।	आरबीआई (बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949)।
प्राथमिक डीलर (PDs)	बाजार निर्माता, सरकारी नीलामी के हामीदार।	ट्रेजरी बिल, रेपो, कमर्शियल पेपर, कॉल मनी।	आरबीआई के मास्टर डायरेक्शंस।
म्यूचुअल फंड	शुद्ध तरलता प्रदाता (अल्पकालिक निवेशक)।	कमर्शियल पेपर, CD, ट्रेजरी बिल, TREPS।	सेबी (SEBI) एवं आरबीआई (संयुक्त रूप से)।
कॉर्पोरेट घराने	अल्पकालिक कार्यशील पूंजी उधारकर्ता।	वाणिज्यिक पत्र (निर्गमनकर्ता), ट्रेजरी बिल (क्रेता)।	सेबी, एमसीए (MCA) एवं आरबीआई।

खंड B: मुद्रा बाजार के प्रमुख उपकरण

उपखंड a: मांग मुद्रा (Call Money), नोटिस मुद्रा, सावधि मुद्रा

अंतर-बैंक मुद्रा बाजार का स्वरूप एवं वर्गीकरण

अंतर-बैंक मुद्रा बाजार (Inter-Bank Money Market) भारतीय वित्तीय प्रणाली का सर्वाधिक संवेदनशील, गतिशील और अस्थिर खंड है। यह विशुद्ध रूप से एक असुरक्षित (Unsecured) बाजार है, जहां निधियों का लेनदेन बिना किसी संपार्श्विक (Collateral) के केवल उधारकर्ता बैंक की साख के आधार पर होता है। परिपक्वता अवधि (अवधि की लंबाई) के आधार पर इसे तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है:

ऋण श्रेणी (Category)	अवधि (Tenure / Maturity)	मुख्य उद्देश्य एवं विशेषताएं
मांग मुद्रा (Call Money)	1 दिन (रातभर / Overnight)	बैंकों द्वारा दैनिक नकद विषमताओं और CRR आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु।
नोटिस मुद्रा (Notice Money)	2 दिन से 14 दिन तक	पाक्षिक CRR चक्र हेतु; लेनदेन समाप्ति पर पूर्व सूचना देकर राशि का निपटान।
सावधि मुद्रा (Term Money)	15 दिन से 1 वर्ष तक	निश्चित परिपक्वता अवधि हेतु; असुरक्षित होने के कारण उच्च जोखिम प्रीमियम शामिल।

क) मांग मुद्रा (Call Money / Overnight Money):

यह केवल **एक दिन (रातभर / 24 घंटे)** की अवधि हेतु उधार दी अथवा ली जाने वाली मुद्रा है।

यदि शुक्रवार को लेनदेन किया जाता है, तो परिपक्वता अगले कार्यदिवस (सोमवार) को होती है, जिसे 3-दिवसीय कॉल मनी माना जाता है।

इसका उपयोग मुख्य रूप से बैंकों द्वारा अपनी तात्कालिक दैनिक नकदी विसंगतियों और सीआरआर (CRR) की दैनिक अनिवार्य सीमाओं को पूरा करने हेतु किया जाता है।

ख) नोटिस मुद्रा (Notice Money):

यह **2 दिन से लेकर 14 दिन** तक की अवधि के लिए उधार दी अथवा ली जाने वाली मुद्रा है।

इसमें लेनदेन की समाप्ति पर ऋणदाता अथवा उधारकर्ता द्वारा पूर्व सूचना (Notice) देकर राशि का निपटान किया जाता है।

यह पाक्षिक सीआरआर रिपोर्टिंग चक्र के दौरान बैंकों के तरलता प्रबंधन का प्राथमिक साधन है।

wincompete

ग) सावधि मुद्रा (Term Money):

यह **15 दिन से अधिक तथा 1 वर्ष तक** की निश्चित परिपक्वता अवधि हेतु उधार ली जाने वाली मुद्रा है।

यद्यपि यह भी असुरक्षित होती है, परंतु अवधि लंबी होने के कारण इसमें उच्च जोखिम प्रीमियम शामिल होता है।

प्रतिभागिता के विनियामक मानदंड एवं गैर-बैंकिंग संस्थाओं का निष्कासन

ऐतिहासिक रूप से 1990 के दशक तक यूटीआई (UTI), एलआईसी (LIC) और आईडीबीआई (IDBI) जैसी गैर-बैंकिंग संस्थाएं मांग मुद्रा बाजार में ऋणदाता के रूप में भाग लेती थीं। तथापि, आरबीआई द्वारा गठित **नरसिम्हम समिति-II (1998)** की सिफारिशों के आधार पर मांग/नोटिस मुद्रा बाजार को विशुद्ध रूप से एक **अंतर-बैंक बाजार (Pure Inter-Bank Market)** में रूपांतरित कर दिया गया।

वर्तमान विनियामक ढांचे (आरबीआई मास्टर डायरेक्शंस) के अनुसार:

केवल अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक (लघु वित्त बैंक और भुगतान बैंक सहित), सहकारी बैंक तथा प्राथमिक डीलर ही मांग, नोटिस और सावधि मुद्रा बाजार में उधारकर्ता और ऋणदाता दोनों के रूप में भाग ले सकते हैं।

गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं, म्यूचुअल फंडों और कॉर्पोरेट्स को इस असुरक्षित बाजार से पूर्णतः बाहर कर दिया गया है; उनके लिए संपार्श्विक-आधारित बाजार (यथा रेपो एवं टीआरईपीएस) स्थापित किए गए हैं।

विवेकपूर्ण सीमाएं (Prudential Limits on Borrowing and Lending)

प्रणालीगत जोखिम (Systemic Risk) और एक बैंक की विफलता से अन्य बैंकों में छूत के प्रभाव (Contagion Effect) को रोकने हेतु आरबीआई ने मांग और नोटिस मुद्रा बाजार में सहभागिता हेतु कठोर मात्रात्मक सीमाएं निर्धारित की हैं:

बैंक संवर्ग	दैनिक उधारी की अधिकतम विनियामक सीमा	दैनिक ऋण देने की अधिकतम विनियामक सीमा
अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक	पाक्षिक औसत आधार पर: टियर-1 और टियर-2 पूंजी का 100%; किसी एकल दिन: पूंजी का अधिकतम 125%।	पाक्षिक औसत आधार पर: टियर-1 और टियर-2 पूंजी का अधिकतम 25%; किसी एकल दिन: अधिकतम 50%।
सहकारी बैंक	पूर्ववर्ती वित्तीय वर्ष के अंत में कुल जमाओं का अधिकतम 2.0%।	पूर्ववर्ती वित्तीय वर्ष के अंत में कुल जमाओं का अधिकतम 2.0%।
प्राथमिक डीलर (PDs)	पाक्षिक औसत आधार पर: शुद्ध स्वामित्व वाले कोष (NOF) का अधिकतम 225%।	किसी एकल दिन: अपने शुद्ध स्वामित्व वाले कोष (NOF) का अधिकतम 25%।

wincompete

मांग मुद्रा दर (Call Money Rate) और मौद्रिक नीति संचालन
मांग मुद्रा बाजार में निर्धारित होने वाली भारित औसत ब्याज दर को **भारित औसत मांग दर (Weighted Average Call Rate - WACR)** कहा जाता है।

मौद्रिक नीति का प्रचालन लक्ष्य (Operating Target): भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक नीति रूपरेखा के अंतर्गत WACR ही मौद्रिक नीति का प्राथमिक प्रचालन लक्ष्य है।

LAF कॉरिडोर के भीतर संचलन: आरबीआई अपनी दैनिक तरलता प्रबंधन कार्रवाइयों (रेपो और एसडीएफ) द्वारा यह सुनिश्चित करता है कि WACR सदैव नीतिगत रेपो दर के अत्यंत समीप रहे और उस विनियामक कॉरिडोर के भीतर संचलित हो, जिसकी निचली सीमा **स्थायी जमा सुविधा (SDF)** दर तथा ऊपरी सीमा **सीमांत स्थायी सुविधा (MSF)** दर द्वारा निर्धारित होती है।

वित्तीय तनाव का बैरोमीटर: यदि मांग मुद्रा दर अचानक MSF दर को पार कर जाती है, तो यह बैंकिंग प्रणाली में गंभीर तरलता संकट का संकेत देती है; इसके विपरीत यदि यह SDF दर से नीचे गिरती है, तो यह प्रणाली में अत्यधिक निष्क्रिय तरलता का प्रमाण होती है।

उपखंड b: ट्रेजरी बिल, वाणिज्यिक पत्र (CP), जमा प्रमाण पत्र (CD), पुनर्खरीद समझौते (Repo/Reverse Repo)

1. ट्रेजरी बिल (Treasury Bills / T-Bills)
ट्रेजरी बिल भारत सरकार की ओर से भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा जारी किए जाने वाले अल्पकालिक संप्रभु ऋण साधन (Sovereign Debt Instruments) हैं। यह केंद्र सरकार की अल्पकालिक नकदी आवश्यकताओं और वित्तीय बेमेल को दूर करने का प्राथमिक माध्यम है।

क) प्रमुख विधिक विशेषताएं:

संप्रभु गारंटी: ये शून्य डिफ़ॉल्ट जोखिम (Zero Credit Risk) वाले वित्तीय प्रपत्र हैं, जिन्हें 'गिल्ट-एज्ड' (Gilt-edged) प्रतिभूतियां माना जाता है।

केवल केंद्र सरकार द्वारा निर्गमन: राज्य सरकारें ट्रेजरी बिल जारी नहीं कर सकती हैं; राज्य सरकारें अपनी अल्पकालिक तरलता आवश्यकताओं हेतु केवल अर्थोपाय अग्रिम (WMA) तथा दीर्घकालिक आवश्यकताओं हेतु राज्य विकास ऋण (SDLs) जारी करती हैं।

बट्टा मूल्य पर निर्गमन (Issued at a Discount): ट्रेजरी बिलों पर कोई नियमित ब्याज कूपन देय नहीं होता। इन्हें उनके अंकित मूल्य (Face Value) से कम बट्टा मूल्य पर जारी किया जाता है और परिपक्वता पर पूर्ण अंकित मूल्य पर शोधित (Redeem) किया जाता है। निर्गमन मूल्य और अंकित मूल्य का अंतर ही निवेशक का अंतर्निहित प्रतिफल (Yield) होता है।

ख) मानक परिपक्वता अवधियां:
वर्तमान में भारत सरकार द्वारा नियमित रूप से तीन मानक परिपक्वता अवधियों के ट्रेजरी बिल नीलाम किए जाते हैं:

91-दिवसीय ट्रेजरी बिल: प्रति सप्ताह (प्रत्येक बुधवार को) नीलाम किए जाते हैं।

182-दिवसीय ट्रेजरी बिल: पाक्षिक आधार पर नीलाम किए जाते हैं।

364-दिवसीय ट्रेजरी बिल: पाक्षिक आधार पर नीलाम किए जाते हैं।

ग) न्यूनतम मूल्य वर्ग एवं नीलामी प्रक्रिया:

ट्रेजरी बिल न्यूनतम **25,000 रुपये** के अंकित मूल्य में तथा उसके पश्चात 25,000 रुपये के गुणकों में जारी किए जाते हैं।

नीलामी आरबीआई के इलेक्ट्रॉनिक प्लेटफॉर्म **ई-कुबेर (E-Kuber)** के माध्यम से संचालित होती है।

नीलामी में दो प्रकार की बोलियां होती हैं: प्रतिस्पर्धी बोलियां (Competitive Bids - संस्थागत निवेशकों हेतु) तथा गैर-प्रतिस्पर्धी बोलियां (Non-Competitive Bids - खुदरा निवेशकों और राज्य सरकारों हेतु, जिन्हें भारित औसत दर पर आबंटन प्राप्त होता है)।

घ) नकदी प्रबंधन बिल (Cash Management Bills - CMBs):
वर्ष 2010 में भारत सरकार ने आरबीआई के परामर्श से अत्यधिक अल्पकालिक नकदी आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु सीएमबी प्रारंभ किए। इनकी परिपक्वता अवधि **91 दिनों से कम (सामान्यतः 14 से 84 दिन)** होती है, शेष सभी विशेषताएं ट्रेजरी बिलों के समान होती हैं।

2. वाणिज्यिक पत्र (Commercial Paper - CP)
वाणिज्यिक पत्र एक असुरक्षित विनिमेय प्रतिज्ञा-पत्र (Unsecured Promissory Note) है, जिसे उच्च क्रेडिट रेटिंग वाले कॉर्पोरेट घरानों, प्राथमिक डीलरों और अखिल भारतीय वित्तीय संस्थानों द्वारा अपनी अल्पकालिक कार्यशील पूंजी आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु जारी किया जाता है। भारत में इसका सूत्रपात वर्ष 1990 में वाघुल समिति की सिफारिशों के आधार पर किया गया था।

अ) निर्गमन की विनियामक शर्तें (आरबीआई मास्टर डायरेक्शंस):

न्यूनतम क्रेडिट रेटिंग: किसी सेबी-पंजीकृत साख मूल्यांकन एजेंसी (CRA) से न्यूनतम **A-3 (अथवा समकक्ष)** की अल्पकालिक रेटिंग प्राप्त होना विधिक रूप से अनिवार्य है। यदि रेटिंग A-3 से नीचे गिरती है, तो कंपनी नया सीपी जारी नहीं कर सकती।

न्यूनतम मूल्य वर्ग: वाणिज्यिक पत्र न्यूनतम **5 लाख रुपये** के अंकित मूल्य में तथा उसके पश्चात 5 लाख रुपये के गुणकों में जारी किए जाते हैं।

परिपक्वता अवधि: न्यूनतम **7 दिन** तथा अधिकतम **1 वर्ष** तक।

निर्गमन का स्वरूप: यह भी ट्रेजरी बिल की भांति अंकित मूल्य पर बट्टे (Discount to Face Value) पर जारी किया जाता है।

wincompete

ब) निर्गमन एवं भुगतान एजेंट (Issuing and Paying Agent - IPA):
प्रत्येक सीपी निर्गमन हेतु एक अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक को आईपीए के रूप में नियुक्त करना अनिवार्य होता है, जो निर्गमनकर्ता की साख और विनियामक अनुपालन का सत्यापन करता है।

स) डीमैट अनिवार्यता: समस्त वाणिज्यिक पत्रों को अनिवार्य रूप से डिपॉजिटरी (NSDL अथवा CDSL) के माध्यम से डीमैटरियलाइज्ड (इलेक्ट्रॉनिक) रूप में ही जारी और धारित किया जाता है।

3. जमा प्रमाण पत्र (Certificate of Deposit - CD)
जमा प्रमाण पत्र एक विनिमेय वित्तीय प्रपत्र (Negotiable Money Market Instrument) है, जो अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों और अखिल भारतीय वित्तीय संस्थानों द्वारा भारी मात्रा में अल्पकालिक जमा जुटाने हेतु डीमैट रूप में जारी किया जाता है। इसका प्रारंभ वर्ष 1989 में हुआ था।

क) वाणिज्यिक बैंक की सावधि जमा (FD) से भिन्नता: बैंक एफडी गैर-हस्तांतरणीय और गैर-विनिमेय होती है, जबकि जमा प्रमाण पत्र (CD) द्वितीयक बाजार में पूरी तरह हस्तांतरणीय और व्यापार-योग्य (Tradable) होता है।

ख) निर्गमनकर्ता संस्थाएं: समस्त अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक (क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों और लघु वित्त बैंकों सहित) तथा आरबीआई द्वारा अनुमत वित्तीय संस्थान (जैसे SIDBI, NABARD)।

ग) न्यूनतम मूल्य वर्ग: जमा प्रमाण पत्र न्यूनतम **5 लाख रुपये** के अंकित मूल्य में तथा उसके पश्चात 5 लाख रुपये के गुणकों में जारी किए जाते हैं (आरबीआई द्वारा वर्ष 2021 के मास्टर डायरेक्शन में न्यूनतम सीमा 1 लाख से बढ़ाकर 5 लाख रुपये की गई)।

घ) परिपक्वता अवधि:

वाणिज्यिक बैंकों द्वारा जारी किए जाने पर: न्यूनतम **7 दिन** से अधिकतम **1 वर्ष**।

वित्तीय संस्थानों (AIFIs) द्वारा जारी किए जाने पर: न्यूनतम **1 वर्ष** से अधिकतम **3 वर्ष** तक।

ङ) विनियामक प्रतिबंध: बैंक अपनी स्वयं की सीडी (CD) के विरुद्ध कोई ऋण प्रदान नहीं कर सकते और न ही वे परिपक्वता से पूर्व अपनी सीडी को पुनः खरीद (Buy-back) सकते हैं।

4. पुनर्खरीद समझौते (रेपो एवं रिवर्स रेपो - Repo and Reverse Repo)
रेपो (Repurchase Agreement) मुद्रा बाजार का एक संपार्श्विक-समर्थित (Collateralized) अल्पकालिक ऋण साधन है। यह एक ऐसा अनुबंध है जिसके अंतर्गत एक पक्षकार किसी वैधानिक वित्तीय प्रतिभूति को दूसरे पक्षकार को इस शर्त पर बेचता है कि वह भविष्य की एक पूर्व-निर्धारित तिथि पर उसी प्रतिभूति को पूर्व-निर्धारित मूल्य पर वापस खरीद लेगा।

चक्र का चरण (Phase)	पहलू 1	पहलू 2
प्रारंभिक चरण	प्रतिभूतियों का विक्रय (ऋणदाता को)	नकदी का तात्कालिक प्रवाह (उधारकर्ता को)
समाप्ति चरण	प्रतिभूतियों की पुनः खरीद	नकदी का पुनर्भुगतान + रेपो ब्याज दर

अ) अवधारणात्मक भेद:

रेपो (उधारकर्ता का दृष्टिकोण): प्रतिभूतियां गिरवी रखकर नकदी प्राप्त करना।

रिवर्स रेपो (ऋणदाता का दृष्टिकोण): नकदी प्रदान करके प्रतिभूतियां प्राप्त करना।

ब) अनुमत संपार्श्विक प्रतिभूतियां:
रेपो लेनदेन केवल केंद्र और राज्य सरकारों की प्रतिभूतियों (ट्रेजरी बिल एवं दिनांकित प्रतिभूतियां) तथा पात्र उच्च-रेटिंग वाले कॉर्पोरेट बांडों पर ही किए जा सकते हैं।

स) हेयरकट (Haircut / Margin): प्रतिभूतियों के बाजार मूल्य में संभावित गिरावट से ऋणदाता की सुरक्षा हेतु प्रतिभूतियों के मूल्य से कुछ प्रतिशत कम ऋण दिया जाता है, जिसे 'हेयरकट' कहते हैं (जैसे सरकारी प्रतिभूतियों पर 2% से 5% तक)।

द) बाजार श्रेणियों का विभाजन:

नीतिगत एलएएफ रेपो (Policy LAF Repo): आरबीआई और वाणिज्यिक बैंकों के मध्य मौद्रिक नीति संचालन हेतु।

अंतर-बैंक बाजार रेपो (Market Repo): बैंकों और प्राथमिक डीलरों के मध्य द्विपक्षीय लेनदेन।

त्रिपक्षीय रेपो (Tri-Party Repo / TREPS):

इसका संचालन भारतीय समाशोधन निगम लिमिटेड (CCIL) द्वारा किया जाता है।

इसमें एक तृतीय पक्ष (CCIL) मध्यस्थ बनकर संपार्श्विक चयन, मार्जिन प्रबंधन और निपटान की केंद्रीय गारंटी प्रदान करता है।

यह कॉर्पोरेट्स और म्यूचुअल फंडों के लिए मुद्रा बाजार में तरलता निवेश का सबसे बड़ा और सुरक्षित साधन बन चुका है।

मुद्रा बाजार उपकरण	निर्गमनकर्ता	न्यूनतम मूल्य वर्ग	परिपक्वता सीमा	निर्गमन का स्वरूप	प्राथमिक विनियामक
ट्रेजरी बिल (T-Bill)	भारत सरकार (आरबीआई द्वारा)	25,000 रुपये	91, 182 एवं 364 दिन	बट्टा मूल्य पर (Zero-coupon)	भारतीय रिजर्व बैंक
वाणिज्यिक पत्र (CP)	उच्च-रेटेड कॉर्पोरेट्स, PDs, AIFIs	5 लाख रुपये	7 दिन से 1 वर्ष	बट्टा मूल्य पर (Promissory Note)	आरबीआई / सेबी

wincompete

जमा प्रमाण पत्र (CD)	वाणिज्यिक बैंक एवं AIFIs	5 लाख रुपये	7 दिन से 1 वर्ष (बैंक हेतु)	बट्टा अथवा फ्लोटिंग दर पर	भारतीय रिजर्व बैंक
मांग मुद्रा (Call Money)	वाणिज्यिक बैंक एवं प्राथमिक डीलर	कोई विहित सीमा नहीं	केवल 1 दिन (रातभर)	असुरक्षित अंतर-बैंक उधारी	भारतीय रिजर्व बैंक
त्रिपक्षीय रेपो (TREPS)	बैंक, PDs, म्यूचुअल फंड, कॉर्पोरेट	1,000 रुपये	1 दिन से 1 वर्ष	संपार्श्विक-समर्थित (G-Secs)	आरबीआई (CCIL द्वारा संचालित)

खंड C: विनियामक एवं समाशोधन अवसंरचना

उपखंड a: भारतीय समाशोधन निगम लिमिटेड (CCIL) एवं इलेक्ट्रॉनिक व्यापार मंच

भारतीय समाशोधन निगम लिमिटेड (CCIL) का संस्थागत विन्यास

भारतीय मुद्रा, सरकारी प्रतिभूति और विदेशी मुद्रा बाजारों के सुरक्षित, कुशल और पारदर्शी संचालन की रीढ़ **भारतीय समाशोधन निगम लिमिटेड (CCIL)** है। इसकी स्थापना अप्रैल 2001 में भारतीय रिजर्व बैंक की पहल पर प्रमुख वाणिज्यिक बैंकों और वित्तीय संस्थानों द्वारा एक वित्तीय बाजार अवसंरचना (Financial Market Infrastructure - FMI) के रूप में की गई थी।

सीसीआईएल की प्राथमिक विनियामक और परिचालन भूमिकाएं:

क) केंद्रीय प्रतिपक्ष (Central Counterparty - CCP):
सीसीआईएल मुद्रा बाजार (रेपो और टीआरईपीएस) तथा सरकारी प्रतिभूति बाजार के समस्त अनुमोदित लेनदेनों में 'नवोन्मेष' (Novation) के कानूनी सिद्धांत के तहत प्रत्येक विक्रेता के लिए क्रेता तथा प्रत्येक क्रेता के लिए विक्रेता की विधिक भूमिका ग्रहण करता है।

ख) निपटान गारंटी (Settlement Guarantee):
यदि कोई बैंक या वित्तीय संस्था अपने दायित्वों के निर्वहन में चूक (Default) करती है, तो सीसीआईएल अपने 'निपटान गारंटी कोष' (SGF) के माध्यम से उस नुकसान को स्वयं वहन करता है, जिससे संपूर्ण वित्तीय प्रणाली में बहु-पक्षीय डिफ़ॉल्ट का प्रणालीगत जोखिम पूर्णतः समाप्त हो जाता है।

ग) द्विपक्षीय नेटिंग (Multilateral Netting):
हजारों लेन-देनों को व्यक्तिगत रूप से निपटाने के स्थान पर सीसीआईएल प्रत्येक प्रतिभागी के दिनभर के कुल लेन-देन की गणना करके केवल शुद्ध देय या प्राप्य राशि (Net Position) का निर्धारण करता है, जिससे बाजार में आवश्यक तरलता की मात्रा में 90 प्रतिशत से अधिक की कमी आती है।

इलेक्ट्रॉनिक व्यापार मंच एवं तकनीकी प्रणालियां

भारतीय मुद्रा और ऋण बाजार पूर्णतः भौतिक कागजी प्रारूप से मुक्त होकर आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक व्यापार मंचों पर स्थानांतरित हो चुके हैं:

अ) एनडीओएम (NDS-OM - नेगोशिएटेड डीलिंग सिस्टम - ऑर्डर मैचिंग): आरबीआई का यह इलेक्ट्रॉनिक प्लेटफॉर्म सरकारी प्रतिभूतियों और ट्रेजरी बिलों के द्वितीयक बाजार में अज्ञात (Anonymous), स्क्रीन-आधारित और ऑर्डर-संचालित व्यापार की सुविधा प्रदान करता है।

ब) ई-कुबेर (E-Kuber): यह भारतीय रिजर्व बैंक का एकीकृत कोर बैंकिंग समाधान (CBS) है। समस्त सरकारी प्रतिभूतियों की प्राथमिक नीलामी, चलनिधि समायोजन सुविधा (LAF) के अंतर्गत रेपो और रिवर्स रेपो बोलियां, तथा बैंकों के सांविधिक आरक्षित अनुपातों का दैनिक निपटान ई-कुबेर के माध्यम से पूर्णतः स्वचालित रूप से संपन्न होता है।

स) एफआईएमएमडीए (FIMMDA - फिक्स्ड इनकम मनी मार्केट एंड डेरिवेटिव्स एसोसिएशन ऑफ इंडिया): यह भारत के बॉन्ड, मुद्रा और व्युत्पन्नी (डेरिवेटिव) बाजारों के प्रतिभागियों का एक स्व-नियामक प्रतिनिधि संघ (Self-Regulatory Body) है। यह बाजार सम्मेलनों, मानकीकृत अनुबंध विलेखों और दैनिक बेंचमार्क दरों (Valuation Benchmarks) के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

द) वित्तीय बेंचमार्क इंडिया प्राइवेट लिमिटेड (FBIL): वर्ष 2014 में गठित एफबीआईएल मुद्रा बाजार के प्रमुख संदर्भ दरों (Benchmarks) का स्वतंत्र और पारदर्शी संगणन करती है। इनमें **MIBOR (मुंबई इंटर-बैंक बिड/ऑफर रेट)** तथा ट्रेजरी बिलों के दैनिक संदर्भ मूल्य सम्मिलित हैं।

महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली एवं प्रमुख अवधारणाएं

भारित औसत मांग दर (Weighted Average Call Rate - WACR): किसी विशिष्ट कार्यदिवस पर अंतर-बैंक मांग मुद्रा बाजार में निष्पादित समस्त लेन-देनों की मात्रा-भारित औसत ब्याज दर। यह भारतीय रिजर्व बैंक की संपूर्ण मौद्रिक नीति का प्राथमिक परिचालन लक्ष्य है।

हेयरकट (Haircut): संपार्श्विक-आधारित ऋण (जैसे रेपो) में गिरवी रखी जाने वाली प्रतिभूतियों के वास्तविक बाजार मूल्य और स्वीकृत ऋण राशि के मध्य का प्रतिशत अंतर। यह ऋणदाता को प्रतिभूतियों के मूल्य में होने वाले संभावित दैनिक उतार-चढ़ाव से वित्तीय सुरक्षा प्रदान करता है।

शून्य-कूपन प्रतिभूति (Zero-Coupon Security): वह ऋण प्रपत्र जिस पर कोई आवधिक ब्याज (कूपन) देय नहीं होता। इसे सदैव इसके अंकित मूल्य पर बट्टे (छूट) के साथ जारी किया जाता है और परिपक्वता पर पूर्ण सममूल्य (Par Value) पर शोधित किया जाता है (यथा 91, 182 और 364-दिवसीय ट्रेजरी बिल)।

चलनिधि समायोजन सुविधा (Liquidity Adjustment Facility - LAF): भारतीय रिजर्व बैंक का वह प्रमुख मौद्रिक उपकरण जिसके अंतर्गत केंद्रीय बैंक अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों और प्राथमिक डीलरों को उनकी दैनिक तरलता आवश्यकताओं हेतु रेपो दर पर नकदी उपलब्ध कराता है तथा स्थायी जमा सुविधा (SDF) या रिवर्स रेपो के माध्यम से अधिशेष तरलता को अवशोषित करता है।

स्थायी जमा सुविधा (Standing Deposit Facility - SDF): अप्रैल 2022 में आरबीआई द्वारा प्रारंभ किया गया एक बिना संपार्श्विक वाला तरलता अवशोषण साधन। इसके तहत बैंक बिना किसी सरकारी प्रतिभूति को बंधक लिए अपनी अतिरिक्त निधियां आरबीआई के पास नीतिगत रेपो दर से 25 आधार अंक नीचे की ब्याज दर पर जमा कर सकते हैं। यह LAF कॉरिडोर की नई निचली सीमा है।

सीमांत स्थायी सुविधा (Marginal Standing Facility - MSF): भारतीय रिजर्व बैंक की वह आपातकालीन उधारी खिड़की जिसके अंतर्गत अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक अत्यधिक तरलता संकट की स्थिति में अपनी एसएलआर (SLR) प्रतिभूतियों के एक विशिष्ट प्रतिशत हिस्से को गिरवी रखकर

रातभर (Overnight) हेतु रेपो दर से 25 आधार अंक उच्च ब्याज दर पर ऋण प्राप्त कर सकते हैं। यह LAF कॉरिडोर की ऊपरी सीमा है।

गिल्ट-एज्ड बाजार (Gilt-Edged Market): सरकारी और अर्ध-सरकारी प्रतिभूतियों (ट्रेजरी बिल, केंद्र एवं राज्य सरकार के बॉन्ड) के क्रय-विक्रय का बाजार। चूंकि इन प्रतिभूतियों को संप्रभु सरकार का पूर्ण वित्तीय समर्थन प्राप्त होता है, अतः इनमें मूलधन और ब्याज की अदायगी का शून्य डिफ़ॉल्ट जोखिम होता है।

अध्याय 17: पूंजी बाजार एवं शेयर बाजार - संरचना, कार्यप्रणाली एवं उपकरण

खंड A: पूंजी बाजार की संरचना

उपखंड a: प्राथमिक बाजार बनाम द्वितीयक बाजार, आईपीओ, एफपीओ, राइट्स इश्यू, निजी नियोजन

पूंजी बाजार की आधारभूत संरचना एवं आर्थिक भूमिका

पूंजी बाजार (Capital Market) देश की वित्तीय प्रणाली का वह दीर्घकालिक खंड है, जो बचतकर्ताओं (मुख्यतः पारिवारिक क्षेत्र एवं संस्थागत निवेशक) से अधिशेष वित्तीय संसाधनों को संकलित करके उत्पादक निवेशों (उद्योग, अवसंरचना, कॉर्पोरेट विस्तार एवं सरकारी विकास परियोजनाएं) की ओर प्रवाहित करता है। यह बाजार 1 वर्ष से अधिक की परिपक्वता अवधि वाली मध्यम एवं दीर्घकालिक प्रतिभूतियों के सृजन, निर्गमन एवं विनिमय से संबंधित होता है। भारतीय पूंजी बाजार का सर्वोच्च विनियामक दायित्व भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (SEBI) के पास निहित है, जो सेबी अधिनियम 1992 के तहत एक स्वायत्त एवं सांविधिक निकाय के रूप में कार्यरत है।

पूंजी बाजार को उसकी परिचालन प्रकृति एवं प्रतिभूतियों के प्रवाह के आधार पर दो सुस्पष्ट संवर्गों में वर्गीकृत किया जाता है:

क) प्राथमिक बाजार (Primary Market / New Issues Market): जहां नई प्रतिभूतियों का प्रथम बार सृजन एवं विक्रय किया जाता है।

ख) द्वितीयक बाजार (Secondary Market / Stock Market): जहां पूर्व-निर्गमित प्रतिभूतियों का निवेशकों के मध्य परस्पर क्रय-विक्रय संपन्न होता है।

प्राथमिक बाजार बनाम द्वितीयक बाजार: तुलनात्मक आयाम

तुलनात्मक आयाम	प्राथमिक बाजार (Primary Market)	द्वितीयक बाजार (Secondary Market)
प्रतिभूतियों का स्वरूप	केवल नवीन प्रतिभूतियों (Fresh Issues) का प्रथम बार निर्गमन।	पूर्व में जारी एवं सूचीबद्ध (Listed) प्रतिभूतियों का सतत व्यापार।

wincompete

लेनदेन का स्वरूप	कंपनी और निवेशक के मध्य प्रत्यक्ष लेनदेन।	निवेशकों के मध्य परस्पर अप्रत्यक्ष लेनदेन (कंपनी प्रत्यक्ष पक्षकार नहीं)।
पूंजी निर्माण पर प्रभाव	प्रत्यक्ष पूंजी निर्माण; जुटाई गई राशि सीधे कंपनी के कोष में जाती है।	अप्रत्यक्ष योगदान; यह केवल विद्यमान संपत्तियों को तरलता प्रदान करता है।
मूल्य निर्धारण तंत्र	निर्गम मूल्य कंपनी और मर्चेंट बैंकर द्वारा पूर्व-निर्धारित अथवा बुक बिल्डिंग प्रक्रिया द्वारा तय।	मांग एवं आपूर्ति की प्रतिस्पर्धी बाजार शक्तियों द्वारा प्रतिभूति का मूल्य तय।
भौगोलिक एवं भौतिक अस्तित्व	कोई निश्चित भौतिक स्थान नहीं; इसका संचालन मर्चेंट बैंकरों व अंडरराइटर्स द्वारा होता है।	स्टॉक एक्सचेंजों (जैसे BSE, NSE) के समर्पित इलेक्ट्रॉनिक ट्रेडिंग प्लेटफॉर्म्स पर केंद्रित।
प्रवेश की आवृत्ति	कोई कंपनी प्राथमिक बाजार में केवल विशिष्ट पूंजी आवश्यकताओं पर ही प्रवेश करती है।	ट्रेडिंग सत्रों के दौरान कार्यदिवसों में निरंतर एवं अनवरत लेनदेन।

प्राथमिक बाजार में पूंजी जुटाने के प्रमुख साधन

प्राथमिक बाजार में पूंजी निर्गम की विधियां (Methods of Capital Issue in Primary Market)

प्राथमिक बाजार में पूंजी निर्गम की विधियां

├── 1. सार्वजनिक निर्गम (Public Issue) ——————▶ आरंभिक सार्वजनिक निर्गम (IPO) + अनुवर्ती सार्वजनिक निर्गम (FPO)

├── 2. अधिकार निर्गम (Rights Issue) ——————▶ केवल विद्यमान अंशधारकों को आनुपातिक आबंटन

├── 3. बोनस निर्गम (Bonus Issue) ——————▶ संचित लाभों के पूंजीकरण द्वारा निःशुल्क शेयर

└── 4. निजी नियोजन (Private Placement) ——————▶ अधिमान्य आबंटन (Preferential Allotment) + पात्र संस्थागत नियोजन (QIP)

क्र.सं.	निर्गम विधि (Method)	उप-घटक एवं कार्यप्रणाली (Sub-Components & Mechanism)
1	सार्वजनिक निर्गम (Public Issue)	आरंभिक सार्वजनिक निर्गम (IPO) + अनुवर्ती सार्वजनिक निर्गम (FPO)
2	अधिकार निर्गम (Rights Issue)	केवल विद्यमान अंशधारकों को आनुपातिक आबंटन (Pro-rata allocation)
3	बोनस निर्गम (Bonus Issue)	संचचित लाभों के पूंजीकरण (Capitalization of reserves) द्वारा निःशुल्क शेयर
4	निजी नियोजन (Private Placement)	अधिमान्य आबंटन (Preferential Allotment) + पात्र संस्थागत नियोजन (QIP)

1. आरंभिक सार्वजनिक निर्गम (Initial Public Offering - IPO)

जब कोई गैर-सूचीबद्ध (Unlisted) कंपनी अपने शेयरों को प्रथम बार आम जनता के समक्ष प्रस्तुत करती है और स्टॉक एक्सचेंज में सूचीबद्ध होने की प्रक्रिया प्रारंभ करती है, तो इस प्रक्रिया को आईपीओ कहा जाता है।

अ) उद्देश्य: नए संयंत्रों की स्थापना, ऋणों का पुनर्भुगतान, कार्यशील पूंजी विस्तार अथवा प्रारंभिक प्रमोटरों/वेंचर कैपिटल निवेशकों द्वारा अपनी हिस्सेदारी बेचने (Offer for Sale - OFS) हेतु।

ब) मूल्य निर्धारण की विधियां:

निश्चित मूल्य पद्धति (Fixed Price Method): जहां कंपनी प्रॉस्पेक्टस में शेयर का एक निश्चित मूल्य पूर्व-निर्धारित करती है।

बुक बिल्डिंग पद्धति (Book Building Method): यह वर्तमान में सर्वाधिक प्रचलित पारदर्शी विधि है, जिसमें कंपनी एक मूल्य दायरा (Price Band - जैसे 450 रुपये से 475 रुपये) घोषित करती है। न्यूनतम मूल्य को 'फ्लोर प्राइस' तथा अधिकतम मूल्य को 'कैप प्राइस' कहा जाता है (कैप प्राइस, फ्लोर प्राइस के 120 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता)। निवेशक इस दायरे के भीतर बोलियां (Bids) लगाते हैं, जिसके पश्चात 'कट-ऑफ प्राइस' निर्धारित होता है।

स) निवेशक श्रेणियां एवं आबंटन कोटा (सेबी ICDR विनियम):

पात्र संस्थागत खरीदार (QIB): म्यूचुअल फंड, विदेशी पोर्टफोलियो निवेशक (FPI), बीमा कंपनियां (सामान्यतः 50 प्रतिशत कोटा आरक्षित)।

गैर-संस्थागत निवेशक (NII / HNI): 2 लाख रुपये से अधिक का निवेश करने वाले उच्च निवल मूल्य व्यक्ति व कॉर्पोरेट (15 प्रतिशत कोटा)।

खुदरा व्यक्तिगत निवेशक (RII): 2 लाख रुपये तक का निवेश करने वाले आम नागरिक (न्यूनतम 35 प्रतिशत कोटा)।

द) एएसबीए (ASBA - Application Supported by Blocked Amount):
सेबी के अनिवार्य विनिर्देशों के अनुसार, आईपीओ में आवेदन करते समय निवेशक के बैंक खाते से राशि तुरंत नहीं कटती, बल्कि आबंटन होने तक केवल अवरुद्ध (Block) रहती है। शेयर आबंटित होने पर ही संबंधित राशि कंपनी के खाते में अंतरित होती है, अन्यथा अवरोध स्वतः समाप्त हो जाता है। यह प्रक्रिया यूपीआई (UPI) प्रणाली के माध्यम से खुदरा निवेशकों हेतु अत्यंत सुगम बना दी गई है।

ङ) न्यूनतम सार्वजनिक शेयरधारिता नियम (MPS Rule): प्रतिभूति संविदा (विनियमन) नियमों के अनुसार, सूचीबद्ध होने के 3 वर्ष के भीतर प्रत्येक कंपनी में न्यूनतम 25 प्रतिशत सार्वजनिक शेयरधारिता होना अनिवार्य है।

2. अनुवर्ती सार्वजनिक निर्गम (Follow-on Public Offering - FPO)
जब कोई कंपनी जो पूर्व से ही किसी मान्यता प्राप्त स्टॉक एक्सचेंज पर सूचीबद्ध है, अतिरिक्त पूंजी जुटाने हेतु आम जनता के लिए नए शेयर जारी करती है अथवा अपने मौजूदा प्रवर्तक शेयरों की बिक्री की पेशकश करती है, तो उसे एफपीओ कहा जाता है। यह आईपीओ की तुलना में कम जोखिम भरा माना जाता है क्योंकि कंपनी का पूर्व वित्तीय और बाजार इतिहास पहले से सार्वजनिक रूप से उपलब्ध होता है।

3. राइट्स इश्यू (Rights Issue / अधिकार निर्गम)
कंपनी अधिनियम 2013 की धारा 62(1)(a) के अनुसार, जब कोई मौजूदा कंपनी अतिरिक्त शेयर पूंजी जारी करना चाहती है, तो उसे ये नए शेयर सर्वप्रथम अपने **विद्यमान अंशधारकों को उनके वर्तमान शेयरधारिता के अनुपात में** प्रस्तावित करने होते हैं।

क) रियायती मूल्य: राइट्स इश्यू प्रायः मौजूदा बाजार मूल्य से पर्याप्त बट्टे (Discounted Price) पर पेश किया जाता है ताकि मौजूदा शेयरधारक इसमें भाग लेने हेतु प्रेरित हों।

ख) अधिकारों का त्याग (Renunciation of Rights): मौजूदा अंशधारक के पास यह विधिक अधिकार होता है कि वह या तो स्वयं इन शेयरों को खरीदे, अथवा अपने इस अधिकार को किसी अन्य तीसरे पक्ष के पक्ष में बेच दे (त्याग कर दे)।

4. निजी नियोजन (Private Placement)
कंपनी अधिनियम 2013 की धारा 42 के अनुसार, जब कोई कंपनी आम जनता को खुला आमंत्रण देने के स्थान पर प्रतिभूतियों को **चयनित व्यक्तियों अथवा संस्थाओं के एक विशिष्ट समूह** (एक वित्तीय वर्ष में अधिकतम 200 व्यक्ति, QIBs और कर्मचारी स्टॉक विकल्पों को छोड़कर) को जारी करती है, तो इसे निजी नियोजन कहा जाता है।

निजी नियोजन के दो प्रमुख रूप प्रचलित हैं:

अ) पात्र संस्थागत नियोजन (Qualified Institutional Placement - QIP): सेबी के विनियमों के तहत केवल सेबी-पंजीकृत 'पात्र संस्थागत खरीदारों' (यथा घरेलू म्यूचुअल फंड, अनुसूचित बैंक, विदेशी पोर्टफोलियो निवेशक) को शेयर या परिवर्तनीय प्रतिभूतियां जारी करने की त्वरित प्रक्रिया। इसमें विस्तृत प्रॉस्पेक्टस जारी करने की लंबी विनियामक औपचारिकताएं नहीं होतीं।

ब) अधिमान्य आबंटन (Preferential Allotment): कंपनी द्वारा कुछ विशिष्ट रणनीतिक निवेशकों, प्रमोटरों अथवा उद्यम पूंजीपतियों को सामान्य बाजार प्रक्रिया से हटकर विशेष शर्तों पर थोक में शेयर या वारंट जारी करना।

उपखंड b: द्वितीयक बाजार के कार्य, स्टॉक एक्सचेंज, बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज (BSE), नेशनल स्टॉक एक्सचेंज (NSE)

द्वितीयक बाजार (शेयर बाजार) के मूलभूत कार्य एवं प्रशासनिक महत्व

द्वितीयक बाजार (Secondary Market) वह तंत्र है जो प्राथमिक बाजार में जारी की जा चुकी प्रतिभूतियों के सतत, पारदर्शी और व्यवस्थित व्यापार को संभव बनाता है। लोक प्रशासन एवं राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में इसके प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं:

क) तरलता एवं विपणनशीलता की निरंतरता: यह निवेशकों को अपनी वित्तीय परिसंपत्तियों को किसी भी कार्यदिवस पर बिना किसी कठिनाई के तत्काल नकदी में बदलने की पूर्ण सुविधा प्रदान करता है। यदि द्वितीयक बाजार न हो, तो प्राथमिक बाजार में कोई भी निवेशक अपनी पूंजी दीर्घकाल के लिए फंसाने को तैयार नहीं होगा।

ख) प्रतिभूतियों का यथार्थ मूल्यांकन (Price Discovery): मांग और आपूर्ति की निरंतर अंतःक्रिया के माध्यम से कंपनियों के शेयरों का वास्तविक समय (Real-time) बाजार मूल्य निर्धारित होता है। यह कंपनियों के वास्तविक वित्तीय स्वास्थ्य और प्रबंधन दक्षता का सार्वजनिक बैरोमीटर है।

ग) पूंजी का इष्टतम पुनराबंटन: शेयर बाजार अकुशल, रुग्ण और घाटे में चल रही कंपनियों से पूंजी को निकाल कर अत्यधिक कुशल, प्रतिस्पर्धी और तेजी से बढ़ते हुए आधुनिक औद्योगिक क्षेत्रों की ओर निर्देशित करता है।

घ) आर्थिक स्थिति का बैरोमीटर: शेयर बाजार के प्रमुख सूचकांक देश के समष्टिगत आर्थिक परिवेश, निवेशकों के विश्वास और भविष्य की आर्थिक संभावनाओं का विश्वसनीय दर्पण प्रस्तुत करते हैं।

स्टॉक एक्सचेंज (शेयर बाजार) का वैधानिक विन्यास

प्रतिभूति संविदा (विनियमन) अधिनियम, 1956 (SCRA) की धारा 2(j) के अनुसार, स्टॉक एक्सचेंज से आशय व्यक्तियों के किसी ऐसे निकाय से है, चाहे वह निगमित हो या नहीं, जो प्रतिभूतियों को खरीदने, बेचने या उनमें लेनदेन करने के व्यवसाय में सहायता करने, उसे विनियमित करने और नियंत्रित करने के उद्देश्य से गठित किया गया हो।

डीम्युचुअलाइजेशन (Demutualization) का ऐतिहासिक सुधार:

ऐतिहासिक रूप से भारतीय स्टॉक एक्सचेंज 'ब्रोकर-स्वामित्व' वाले पारंपरिक संघों के रूप में कार्य करते थे, जिससे हितों का गंभीर टकराव उत्पन्न होता था। वर्ष 2002 में न्यायमूर्ति कानिया समिति की संस्तुतियों के आधार पर सेबी ने स्टॉक एक्सचेंजों का अनिवार्य 'डीम्युचुअलाइजेशन' लागू किया। इसके तहत:

स्टॉक एक्सचेंज के स्वामित्व (Ownership), प्रबंधन (Management) और व्यापारिक अधिकारों (Trading Rights) को विधिक रूप से एक-दूसरे से पूर्णतः पृथक कर दिया गया।

स्टॉक एक्सचेंज अब स्वयं सार्वजनिक रूप से सूचीबद्ध कॉर्पोरेट कंपनियों में रूपांतरित हो चुके हैं, जिनका प्रबंधन स्वतंत्र पेशेवर निदेशक मंडलों द्वारा संचालित होता है।

बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज (BSE): ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं विकास

बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज एशिया का सबसे पुराना और ऐतिहासिक स्टॉक एक्सचेंज है।

अ) स्थापना एवं उद्गम: इसकी स्थापना वर्ष 1875 में प्रेमचंद रायचंद के नेतृत्व में **'द नेटिव शेयर एंड स्टॉक ब्रोकर्स एसोसिएशन'** के नाम से मुंबई के दलाल स्ट्रीट में एक बरगद के पेड़ के नीचे हुई थी।

ब) प्रथम स्थायी मान्यता: प्रतिभूति संविदा (विनियमन) अधिनियम, 1956 के लागू होने के उपरांत भारत सरकार द्वारा 31 अगस्त 1957 को स्थायी वैधानिक मान्यता प्राप्त करने वाला यह देश का प्रथम स्टॉक एक्सचेंज बना।

स) तकनीकी रूपांतरण (BOLT): वर्ष 1995 में बीएसई ने खुली नीलामी वाली भौतिक फर्श-आधारित आउटक्राई प्रणाली (Open Outcry System) को पूर्णतः समाप्त कर **BSE ऑन-लाइन ट्रेडिंग (BOLT)** नामक स्क्रीन-आधारित इलेक्ट्रॉनिक ट्रेडिंग प्रणाली को अंगीकार किया।

द) सूचीबद्धता: वर्ष 2017 में बीएसई स्वयं नेशनल स्टॉक एक्सचेंज पर सूचीबद्ध होने वाला भारत का प्रथम स्टॉक एक्सचेंज बना। वर्तमान में बीएसई पर 5,400 से अधिक कंपनियां सूचीबद्ध हैं, जो विश्व के किसी भी एकल एक्सचेंज पर सूचीबद्ध कंपनियों की सर्वाधिक संख्याओं में से एक है।

नेशनल स्टॉक एक्सचेंज (NSE): आधुनिक वित्तीय क्रांति का अग्रदूत

1990 के दशक के आरंभिक वर्षों में भारतीय शेयर बाजार की अपारदर्शिता, भौतिक कागजी शेयरों के कारण होने वाले फर्जीवाड़े (Bad Deliveries) तथा 1992 के कुख्यात हर्षद मेहता प्रतिभूति घोटाले के उपरांत भारत सरकार ने **एम.जे. फेरवानी समिति (1991)** की सिफारिशों के आधार पर नेशनल स्टॉक एक्सचेंज की स्थापना की।

क) निगमन एवं प्रारंभ: एनएसई का निगमन नवंबर 1992 में एक कर-भुगतानकर्ता कॉर्पोरेट कंपनी के रूप में हुआ। इसे अप्रैल 1993 में स्टॉक एक्सचेंज के रूप में मान्यता मिली। इसने जून 1994 में थोक ऋण बाजार (WDM) में तथा नवंबर 1994 में इक्विटी पूंजी बाजार खंड में राष्ट्रव्यापी इलेक्ट्रॉनिक ट्रेडिंग प्रारंभ की।

ख) तकनीकी नवाचार (NEAT): एनएसई ने भारत में पहली बार उपग्रह-लिंक्ड (VSAT) संचार प्रणाली आधारित **नेशनल एक्सचेंज फॉर ऑटोमेटेड ट्रेडिंग (NEAT)** प्रणाली लागू की। इसने देश के सुदूर अंचलों में बैठे दलालों को मुंबई के केंद्रीय कंप्यूटर से सीधे जोड़कर एक एकीकृत राष्ट्रीय ऑर्डर-संचालित बाजार का निर्माण किया।

ग) व्युत्पन्नी (Derivatives) बाजार में वैश्विक नेतृत्व: वर्ष 2000 में इंडेक्स फ्यूचर्स के प्रारंभ के साथ एनएसई डेरिवेटिव ट्रेडिंग में प्रवेश कर गया। फ्यूचर्स इंडस्ट्री एसोसिएशन (FIA) के वैश्विक आंकड़ों के अनुसार, नेशनल स्टॉक एक्सचेंज अनुबंधों की संख्या के आधार पर विश्व का सबसे बड़ा डेरिवेटिव एक्सचेंज बना हुआ है।

तुलनात्मक आयाम	बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज (BSE)	नेशनल स्टॉक एक्सचेंज (NSE)
स्थापना वर्ष	1875 (एशिया का सबसे पुराना)।	1992 (परिचालन प्रारंभ: 1994)।
सिफारिशी पृष्ठभूमि	व्यापारियों का स्वैच्छिक गिल्ड।	एम.जे. फेरवानी समिति (1991)।
प्रमुख संवेदी सूचकांक	एसएंडपी बीएसई सेंसेक्स (30 कंपनियां)।	निफ्टी 50 (50 कंपनियां)।
सूचीबद्ध कंपनियों की संख्या	अत्यधिक विशाल (5,400+ कंपनियां)।	अपेक्षाकृत चुनिंदा (2,300+ कंपनियां)।
ट्रेडिंग टर्नओवर की स्थिति	कैश मार्केट में मजबूत; डेरिवेटिव्स में कम।	कैश मार्केट एवं डेरिवेटिव्स (F&O) दोनों में निर्विवाद प्रभुत्व।
इलेक्ट्रॉनिक ट्रेडिंग इंजन	बोल्ट (BOLT)।	नीट (NEAT)।

खंड B: बाजार उपकरण एवं अवधारणाएं

उपखंड a: इक्विटी शेयर, प्रेफरेंस शेयर, डिबेंचर, बॉन्ड्स (सरकारी, कॉर्पोरेट, मसाला बॉन्ड, ग्रीन बॉन्ड)

1. इक्विटी शेयर (Ordinary / Equity Shares)

इक्विटी शेयर किसी कंपनी में स्वामित्व की प्राथमिक इकाई का प्रतिनिधित्व करते हैं। कंपनी अधिनियम 2013 की धारा 43(a) के अनुसार, इक्विटी शेयर पूंजी से आशय उस शेयर पूंजी से है जो वरीयता शेयर पूंजी नहीं है।

अ) अवशिष्ट हित (Residual Claim): इक्विटी शेयरधारक कंपनी के वास्तविक स्वामी होते हैं। उनका कंपनी की परिसंपत्तियों और लाभों पर अवशिष्ट अधिकार होता है; अर्थात सभी लेनदारों, कर्मचारियों, करों और वरीयता शेयरधारकों के दावों का पूर्ण निपटान होने के उपरांत ही बचा हुआ लाभ (लाभांश के रूप में) इक्विटी अंशधारकों को मिलता है।

ब) मतदान अधिकार (Voting Rights): प्रत्येक सामान्य इक्विटी शेयरधारक को कंपनी की सामान्य बैठकों में मत देने का वैधानिक अधिकार प्राप्त होता है (एक शेयर, एक वोट)। कंपनी अधिनियम

2013 विभेदक मतदान अधिकारों (DVR - Differential Voting Rights) वाले इक्विटी शेयर जारी करने की भी अनुमति देता है।

स) प्रतिफल की अनिश्चितता: इक्विटी पर लाभांश की कोई निश्चित दर नहीं होती; यह पूरी तरह कंपनी के वार्षिक लाभ और निदेशक मंडल के निर्णय पर निर्भर करता है।

2. वरीयता शेयर (Preference Shares)
कंपनी अधिनियम 2013 की धारा 43(b) के तहत वरीयता शेयर वे शेयर हैं जो सामान्य इक्विटी शेयरों की तुलना में दो विशिष्ट मामलों में वैधानिक वरीयता (Preference) प्राप्त करते हैं:

क) लाभांश में प्राथमिकता: कंपनी के जीवनकाल में इक्विटी अंशधारकों को कोई भी लाभांश दिए जाने से पूर्व एक पूर्व-निर्धारित निश्चित दर (Fixed Rate) से लाभांश प्राप्त करने का प्रथम विधिक अधिकार।

ख) पूंजी वापसी में प्राथमिकता: कंपनी के परिसमापन (Winding-up) की स्थिति में ऋणदाताओं के दावों के पश्चात, किंतु इक्विटी शेयरधारकों से पहले अपनी पूंजी वापस प्राप्त करने का प्रथम अधिकार।

ग) मतदान अधिकारों का अभाव: सामान्य परिस्थितियों में वरीयता शेयरधारकों को मतदान का अधिकार नहीं होता, जब तक कि उनके लाभांश का भुगतान लगातार 2 वर्ष या उससे अधिक समय तक न किया गया हो।

घ) अनिवार्य शोधन: कंपनी अधिनियम 2013 की धारा 55 के तहत भारत में किसी भी कंपनी द्वारा **अशोध्य वरीयता शेयर (Irredeemable Preference Shares) जारी करना पूर्णतः प्रतिबंधित** है। सभी वरीयता शेयरों का अधिकतम 20 वर्ष (अवसंरचना कंपनियों हेतु 30 वर्ष) के भीतर अनिवार्य शोधन होना विधिक रूप से आवश्यक है।

3. डिबेंचर (Debentures / ऋणपत्र)
कंपनी अधिनियम 2013 की धारा 2(30) के अनुसार, डिबेंचर में डिबेंचर स्टॉक, बॉन्ड या कंपनी की कोई अन्य प्रतिभूति शामिल है, जो किसी ऋण का साक्ष्य प्रस्तुत करती है, चाहे वह कंपनी की परिसंपत्तियों पर कोई प्रभार (Charge) सृजित करती हो या नहीं।

अ) लेनदार का दर्जा: डिबेंचर धारक कंपनी के स्वामी नहीं होते, बल्कि कंपनी के विधिक लेनदार (Creditors) होते हैं।

ब) ब्याज का प्रभार (Charge on Profits): डिबेंचरों पर देय ब्याज कंपनी के लाभ पर प्रभार होता है; अर्थात कंपनी को लाभ हो अथवा हानि, नियत कूपन दर (Coupon Rate) से ब्याज का भुगतान अनिवार्य होता है।

स) डिबेंचर शोधन संचय (DRR): कंपनी अधिनियम की धारा 71 के तहत कंपनियों को डिबेंचरों के शोधन की सुरक्षा हेतु अपने लाभों में से एक विशिष्ट 'डिबेंचर शोधन संचय' बनाना अनिवार्य होता है।

द) वर्गीकरण: डिबेंचर परिवर्तनीय (Convertible - जो कालांतर में इक्विटी में बदल जाते हैं) अथवा गैर-परिवर्तनीय (NCD - Non-Convertible Debentures) हो सकते हैं।

4. बॉन्ड्स के विभिन्न संवर्ग एवं आधुनिक उपकरण
पारंपरिक रूप से सरकारों और सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा जारी किए जाने वाले दीर्घकालिक ऋण विलेखों को बॉन्ड कहा जाता है, यद्यपि आधुनिक वित्तीय शब्दावली में बॉन्ड और डिबेंचर का परस्पर विनिमेय उपयोग होता है।

बॉन्ड का प्रकार	मुख्य विशेषता	विवरण
1. सरकारी प्रतिभूतियां (G-Secs)	**संप्रभु गारंटी**	केंद्र सरकार के दिनांकित बॉन्ड तथा राज्यों के SDLs।
2. कॉर्पोरेट बॉन्ड्स (Corporate Bonds)	**दीर्घकालिक पूंजी**	निजी व सार्वजनिक कंपनियों द्वारा जारी किए जाने वाले बॉन्ड।
3. मसाला बॉन्ड्स (Masala Bonds)	**रुपया-अंकित (Foreign Issue)**	विदेशी बाजारों में जारी भारतीय रुपया-अंकित बॉन्ड।
4. ग्रीन बॉन्ड्स (Green Bonds)	**पर्यावरण-अनुकूल**	जलवायु व पर्यावरण-अनुकूल परियोजनाओं हेतु समर्पित बॉन्ड।

क) सरकारी बॉन्ड्स (Government Securities / G-Secs):

केंद्र सरकार और राज्य सरकारों द्वारा राजकोषीय घाटे की भरपाई और दीर्घकालिक विकास परियोजनाओं हेतु जारी किए जाने वाले संप्रभु ऋण साधन।

केंद्र सरकार की दिनांकित प्रतिभूतियां 5 वर्ष से 40 वर्ष तक की परिपक्वता अवधि की होती हैं। राज्य सरकारों द्वारा जारी बांडों को **राज्य विकास ऋण (State Development Loans - SDLs)** कहा जाता है।

ये 'शून्य साख जोखिम' (Sovereign Guarantee) वाले गिल्ट-एज्ड उपकरण होते हैं।

ख) कॉर्पोरेट बॉन्ड्स (Corporate Bonds):

कंपनियों द्वारा बैंकों से ऋण लेने के विकल्प के रूप में सीधे वित्तीय बाजार से दीर्घकालिक पूंजी जुटाने हेतु जारी किए जाते हैं। इन पर क्रेडिट रेटिंग एजेंसियों (CRISIL, ICRA, CARE) द्वारा जोखिम रेटिंग अनिवार्य होती है।

ग) मसाला बॉन्ड्स (Masala Bonds):

मसाला बॉन्ड भारतीय संस्थाओं द्वारा **विदेशी पूंजी बाजारों में जारी किए जाने वाले भारतीय रुपये (INR) में मूल्यवर्गित बांड** हैं।

अंतरराष्ट्रीय वित्त निगम (IFC - विश्व बैंक समूह) ने वर्ष 2014 में भारतीय संस्कृति के प्रतीक के रूप में सर्वप्रथम 'मसाला बॉन्ड' नाम से रुपया-मूल्यवर्गित बांड जारी किए थे। तत्पश्चात 2016 में एचडीएफसी (HDFC) विदेशी बाजार में मसाला बॉन्ड जारी करने वाली प्रथम भारतीय निजी कंपनी बनी।

मुद्रा जोखिम का हस्तांतरण: सामान्य विदेशी मुद्रा बांडों (जैसे डॉलर बांड) में यदि रुपया कमजोर होता है, तो विनिमय दर का नुकसान भारतीय निर्गमनकर्ता को उठाना पड़ता है। मसाला बॉन्ड की सबसे बड़ी रणनीतिक विशेषता यह है कि इसमें **मुद्रा जोखिम (Currency/Exchange Risk) पूरी तरह विदेशी निवेशक पर अंतरित हो जाता है**, क्योंकि मूलधन और कूपन का भुगतान रुपये में निर्धारित होता है।

घ) ग्रीन बॉन्ड्स (Green Bonds / हरित बांड):

ग्रीन बॉन्ड वे निश्चित आय वाले ऋण साधन हैं, जिनके माध्यम से जुटाई गई संपूर्ण पूंजी का उपयोग विशेष रूप से पर्यावरण-अनुकूल, अक्षय ऊर्जा (सौर, पवन), प्रदूषण नियंत्रण, स्वच्छ परिवहन अथवा हरित अवसंरचना परियोजनाओं के वित्तपोषण हेतु किया जाता है।

सेबी के दिशा-निर्देश (2017/2021) तथा अंतरराष्ट्रीय पूंजी बाजार संघ (ICMA) के 'ग्रीन बॉन्ड सिद्धांत' इन बांडों के निर्गमन, स्वतंत्र तीसरे पक्ष द्वारा सत्यापन (Third-party Verification) और निधियों के उपयोग की अनिवार्य ट्रैकिंग को नियंत्रित करते हैं। भारत सरकार ने वर्ष 2023 से सॉवरेन ग्रीन बॉन्ड्स (SGrBs) जारी करने की शुरुआत की है।

ङ) अन्य विशिष्ट बांड:

संप्रभु स्वर्ण बांड (Sovereign Gold Bonds - SGB): आरबीआई द्वारा सोने के भौतिक आयात को हतोत्साहित करने हेतु जारी किए जाने वाले बांड, जो सोने के बाजार मूल्य के साथ 2.5 प्रतिशत वार्षिक ब्याज प्रदान करते हैं।

नगरपालिका बांड (Municipal Bonds / Muni Bonds): शहरी स्थानीय निकायों द्वारा नागरिक अवसंरचना (जल, सीवरेज, मेट्रो) के वित्तपोषण हेतु जारी किए जाने वाले बांड (जैसे पुणे, अहमदाबाद और लखनऊ नगर निगम बांड)।

वित्तीय उपकरण	प्रतिफल का स्वरूप	नियंत्रण एवं मतदान अधिकार	प्राथमिक वित्तीय जोखिम	परिसमापन पर प्राथमिकता क्रम
इक्विटी शेयर	परिवर्तनशील लाभांश + पूंजीगत लाभ।	पूर्ण मतदान अधिकार।	अत्यधिक उच्च बाजार एवं व्यापारिक जोखिम।	सबसे अंतिम (अवशिष्ट दावेदार)।
वरीयता शेयर	निश्चित दर से लाभांश।	सामान्यतः कोई मतदान अधिकार नहीं।	मध्यम जोखिम (कंपनी लाभ पर निर्भर)।	इक्विटी से पहले, लेनदारों के बाद।

wincompete

कॉर्पोरेट डिबेंचर	पूर्व-निर्धारित निश्चित ब्याज कूपन।	कोई मतदान अधिकार नहीं (लेनदार)।	निर्गमनकर्ता का साख/डिफ़ॉल्ट जोखिम।	वरीयता एवं इक्विटी अंशधारकों से पहले।
मसाला बॉन्ड	रुपये में निश्चित ब्याज कूपन।	कोई मतदान अधिकार नहीं।	विदेशी निवेशक हेतु मुद्रा विनिमय जोखिम।	सामान्य ऋणदाताओं के समान।
सरकारी प्रतिभूतियां	निश्चित अर्ध-वार्षिक कूपन ब्याज।	कोई नहीं (संप्रभु ऋण)।	शून्य डिफ़ॉल्ट जोखिम (केवल ब्याज दर जोखिम)।	संप्रभु समर्थन द्वारा सुरक्षित।

उपखंड b: सेंसेक्स, निफ्टी, बाजार पूंजीकरण (लार्ज, मिड, स्मॉल कैप), डिपॉजिटरी (NSDL, CDSL), डीमैट प्रणाली

शेयर बाजार के संवेदी सूचकांक (Market Indices): सेंसेक्स एवं निफ्टी

स्टॉक एक्सचेंज सूचकांक एक सांख्यिकीय पैमाना है जो संपूर्ण बाजार अथवा किसी विशिष्ट क्षेत्र की बाजार प्रवृत्तियों और मूल्य संचलनों का समग्र प्रतिनिधित्व करता है।

1. एसएंडपी बीएसई सेंसेक्स (S&P BSE SENSEX)

सेंसेक्स बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज का प्रमुख और भारत का सबसे पुराना संवेदी सूचकांक है।

अ) उत्पत्ति एवं नामकरण: इसकी रचना वर्ष 1986 में प्रसिद्ध शेयर बाजार विश्लेषक दीपक मोहनी द्वारा 'सेंसिटिव इंडेक्स' के संक्षेपण के रूप में 'सेंसेक्स' नाम देकर की गई थी।

ब) आधार वर्ष एवं आधार मान: सेंसेक्स का **आधार वर्ष 1978-79** तथा **आधार मान 100** निर्धारित किया गया है।

स) टोकरी संरचना: इसमें बीएसई पर विभिन्न प्रमुख औद्योगिक क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाली वित्तीय रूप से सुदृढ़, अत्यधिक तरल और विशाल आकार की **शीर्ष 30 ब्लू-चिप कंपनियां** सम्मिलित होती हैं।

2. निफ्टी 50 (NIFTY 50)

निफ्टी नेशनल स्टॉक एक्सचेंज का प्रमुख बेंचमार्क सूचकांक है।

wincompete

अ) उत्पत्ति एवं नामकरण: इसका शुभारंभ 22 अप्रैल 1996 को एनएसई द्वारा किया गया। इसका नाम 'नेशनल' और 'फिफ्टी' के संयोजन से बना है।

ब) आधार वर्ष एवं आधार मान: निफ्टी का **आधार वर्ष 1995 (3 नवंबर 1995)** तथा **आधार मान 1000** निर्धारित है।

स) टोकरी संरचना: इसमें भारतीय अर्थव्यवस्था के लगभग 13 से 14 महत्वपूर्ण आर्थिक क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाली **शीर्ष 50 बड़ी कंपनियां** सम्मिलित होती हैं।

सूचकांक गणना की कार्यप्रणाली: फ्री-फ्लोट बाजार पूंजीकरण पद्धति

प्रारंभ में सूचकांकों की गणना 'पूर्ण बाजार पूंजीकरण' (Full Market Capitalization) पद्धति से की जाती थी। परंतु 1 सितंबर 2003 से सेंसेक्स ने तथा जून 2009 से निफ्टी ने वैश्विक मानकों के अनुरूप **फ्री-फ्लोट बाजार पूंजीकरण पद्धति (Free-Float Market Capitalization Methodology)** को अंगीकार कर लिया।

फ्री-फ्लोट की अवधारणा: किसी कंपनी के कुल शेयरों में से उन शेयरों को हटा दिया जाता है जो बाजार में सामान्य दैनिक कारोबार हेतु उपलब्ध नहीं होते (यथा प्रमोटरों की हिस्सेदारी, सरकार की रणनीतिक हिस्सेदारी, क्रॉस-होल्डिंग्स, तथा कर्मचारियों को दिए गए लॉक-इन शेयर)। केवल वही शेयर जो आम जनता और संस्थागत निवेशकों के मध्य द्वितीयक बाजार में मुक्त रूप से व्यापार योग्य होते हैं, 'फ्री-फ्लोट शेयर' कहलाते हैं।

$$\text{कंपनीकाकुलबाजारपूंजीकरण} = \text{कुलबकायाशेयरोंकीसंख्या} \times \text{शेयरकावर्तमानबाजारमूल्य}$$

$$\text{फ्री} - \text{फ्लोटबाजारपूंजीकरण} = \text{कुलबाजारपूंजीकरण} \times \text{फ्री} - \text{फ्लोटकारक}(Free - Float\ Factor)$$

$$\text{सूचकांककामान} = \left(\frac{\text{टोकरीमेंशामिलकंपनियोंकावर्तमानकुलफ्री–फ्लोटबाजारपूंजीकरण}}{\text{आधारअवधिकाकुलबाजारपूंजीकरण}}\right) \times \text{आधारसूचकांकमान}$$

बाजार पूंजीकरण के आधार पर कंपनियों का विनियामक वर्गीकरण

सेबी के परिपत्र (अक्टूबर 2017 के वर्गीकरण मानदंडों) के अनुसार म्यूचुअल फंड पोर्टफोलियो और बाजार पारदर्शिता हेतु सूचीबद्ध कंपनियों को उनके कुल बाजार पूंजीकरण के अखिल भारतीय क्रम (रैंकिंग) के आधार पर तीन श्रेणियों में संहिताबद्ध किया गया है:

श्रेणी (Category)	बाजार पूंजीकरण रैंक (Rank)	विवरण (Description)
लार्ज कैप (Large Cap)	**रैंक 1 से 100**	शीर्ष सूचीबद्ध कंपनियां
मिड कैप (Mid Cap)	**रैंक 101 से 250**	मध्यम आकार की कंपनियां
स्मॉल कैप (Small Cap)	**रैंक 251 और नीचे**	समस्त अन्य सूचीबद्ध कंपनियां

क) लार्ज कैप कंपनियां (Large Cap):

भारतीय शेयर बाजार की शीर्ष 100 कंपनियां। ये स्थापित, आर्थिक रूप से विशाल, वित्तीय रूप से अत्यंत स्थिर और उच्च लाभांश देने वाली 'ब्लू-चिप' कंपनियां होती हैं। इनमें अस्थिरता कम होती है।

ख) मिड कैप कंपनियां (Mid Cap):

रैंक 101 से 250 तक की मध्यम आकार की 150 कंपनियां। इनमें लार्ज कैप की तुलना में तीव्र वृद्धि की उच्च संभावनाएं होती हैं, परंतु बाजार मंदी में जोखिम भी तुलनात्मक रूप से अधिक होता है।

ग) स्मॉल कैप कंपनियां (Small Cap):

251वें स्थान से नीचे की सभी कंपनियां। इनमें उच्च प्रतिफल की संभावना के साथ-साथ तरलता की कमी (Illiquidity) और उच्च मूल्य अस्थिरता का जोखिम विद्यमान होता है।

डिपॉजिटरी प्रणाली एवं डीमैटरियलाइजेशन (डीमैट)
वर्ष 1996 से पूर्व भारत में शेयरों का व्यापार भौतिक कागजी प्रमाणपत्रों (Physical Share Certificates) के माध्यम से होता था। इस प्रणाली में भौतिक शेयरों की चोरी, गुमशुदगी, जाली शेयर प्रमाणपत्र, डाक में देरी और 'खराब डिलीवरी' (Bad Delivery) जैसी विकृतियां व्याप्त थीं, जिसके कारण निपटान चक्र में कई महीनों का समय लगता था।

इस संकट के समाधान हेतु संसद द्वारा **डिपॉजिटरी अधिनियम, 1996** अधिनियमित किया गया, जिसने भारत में इलेक्ट्रॉनिक डीमैट क्रांति का सूत्रपात किया।

डिपॉजिटरी की अवधारणा एवं कार्य:
जिस प्रकार बैंक नकदी धन को सुरक्षित रखने और खातों के मध्य इलेक्ट्रॉनिक अंतरण करने का कार्य करता है, उसी प्रकार डिपॉजिटरी प्रतिभूतियों (शेयर, बॉन्ड, डिबेंचर, म्यूचुअल फंड यूनिट्स) को इलेक्ट्रॉनिक रूप में सुरक्षित रखने और उनके स्वामित्व के इलेक्ट्रॉनिक अंतरण की केंद्रीय तिजोरी (Bank of Securities) है।

भारत में दो राष्ट्रीय स्तर की केंद्रीय डिपॉजिटरी कार्यरत हैं:

अ) नेशनल सिक्योरिटीज डिपॉजिटरी लिमिटेड (NSDL):

भारत की प्रथम केंद्रीय डिपॉजिटरी, जिसकी स्थापना अगस्त 1996 में नेशनल स्टॉक एक्सचेंज (NSE), आईडीबीआई (IDBI) और यूटीआई (UTI) के प्रवर्तन से हुई।

ब) सेंट्रल डिपॉजिटरी सर्विसेज (इंडिया) लिमिटेड (CDSL):

दूसरी केंद्रीय डिपॉजिटरी, जिसकी स्थापना फरवरी 1999 में बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज (BSE) तथा प्रमुख वाणिज्यिक बैंकों के सहयोग से की गई। यह एशिया की प्रथम सूचीबद्ध डिपॉजिटरी भी है।

wincompete

डीमैट खाता बनाम ट्रेडिंग खाता
शेयर बाजार में भाग लेने हेतु किसी भी निवेशक के पास तीन परस्पर जुड़े खातों की त्रि-स्तरीय संरचना होना अनिवार्य है:

क) बैंक बचत खाता: जहां से शेयर खरीदने हेतु धनराशि कटती है तथा शेयर बेचने पर धनराशि प्राप्त होती है।

ख) ट्रेडिंग खाता (Trading Account): जो स्टॉक ब्रोकर के पास खुलता है। यह स्टॉक एक्सचेंज पर शेयर खरीदने और बेचने के आदेश (Orders) देने का तकनीकी माध्यम है।

ग) डीमैट खाता (Dematerialized Account): जो डिपॉजिटरी (NSDL/CDSL) के पास डिपॉजिटरी पार्टिसिपेंट के माध्यम से खुलता है। यह वह इलेक्ट्रॉनिक लॉकर है जिसमें खरीदे गए शेयरों का विधिक स्वामित्व इलेक्ट्रॉनिक प्रविष्टियों के रूप में सुरक्षित रहता है।

डिपॉजिटरी पार्टिसिपेंट (Depository Participant - DP):
आम निवेशक सीधे NSDL या CDSL के कार्यालय नहीं जा सकता। डिपॉजिटरी और अंतिम निवेशक के मध्य के अधिकृत एजेंट को 'डिपॉजिटरी पार्टिसिपेंट' (DP) कहा जाता है। यह कोई अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक, वित्तीय संस्थान, कस्टोडियन अथवा सेबी-पंजीकृत स्टॉक ब्रोकर हो सकता है।

निपटान चक्र (Settlement Cycle) का क्रमिक विकास
शेयर बाजार में किसी शेयर के सौदे (ट्रेड) के निष्पादन और खरीदार को शेयरों की वास्तविक डिलीवरी तथा विक्रेता को धन के अंतिम अंतरण के मध्य लगने वाले समय को 'निपटान चक्र' कहा जाता है।

ऐतिहासिक स्थिति: 1990 के दशक में साप्ताहिक निपटान होता था। वर्ष 2001 में T+5 चक्र लागू हुआ, जिसे अप्रैल 2002 में T+3 तथा अप्रैल 2003 में **T+2** (ट्रेडिंग दिवस + 2 कार्यदिवस) किया गया।

T+1 निपटान चक्र: भारत ने जनवरी 2023 से चीन के पश्चात विश्व के सबसे बड़े बाजारों में पूर्ण रूप से **T+1 निपटान चक्र** को सफलतापूर्वक लागू किया।

T+0 एवं तात्कालिक निपटान (Instant Settlement): भारतीय पूंजी बाजार की तकनीकी दक्षता को वैश्विक शिखर पर ले जाते हुए सेबी ने वित्तीय वर्ष 2024-25 से चुनिंदा शीर्ष प्रतिभूतियों हेतु **T+0 (समान दिवस निपटान)** का वैकल्पिक ढांचा प्रारंभ किया है, जिसके तहत शेयर बेचने के उसी दिन विक्रेता को धनराशि और खरीदार को डीमैट खाते में शेयर तत्काल प्राप्त हो जाते हैं।

संस्थागत घटक	NSDL (नेशनल सिक्योरिटीज डिपॉजिटरी)	CDSL (सेंट्रल डिपॉजिटरी सर्विसेज)
स्थापना वर्ष	1996 (भारत की प्रथम डिपॉजिटरी)।	1999 (द्वितीय डिपॉजिटरी)।
मुख्य प्रवर्तक एक्सचेंज	नेशनल स्टॉक एक्सचेंज (NSE)।	बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज (BSE)।
खाता संरचना	14-अंकीय अल्फान्यूमेरिक पहचान (IN से प्रारंभ)।	16-अंकीय विशुद्ध संख्यात्मक (Numeric) BOID।

wincompete

नियामक ढांचा	डिपॉजिटरी अधिनियम, 1996 एवं सेबी नियम।	डिपॉजिटरी अधिनियम, 1996 एवं सेबी नियम।
अंतर-डिपॉजिटरी अंतरण	दोनों डिपॉजिटरी आपस में इलेक्ट्रॉनिक लिंक से जुड़ी हैं; शेयर NSDL से CDSL में सुगमता से अंतरित हो सकते हैं।	

महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली एवं प्रमुख अवधारणाएं

अंडरराइटिंग (गोपनीय हामीदारी / Underwriting): प्राथमिक बाजार में मर्चेंट बैंकरों या वित्तीय संस्थाओं द्वारा दिया जाने वाला वह संविदात्मक आश्वासन, जिसके तहत यदि जनता द्वारा किसी कंपनी के आईपीओ को न्यूनतम अभिदान (सेबी नियमों के अनुसार न्यूनतम 90 प्रतिशत) प्राप्त नहीं होता है, तो अवशिष्ट अनबिके शेयरों को हामीदार स्वयं खरीदने हेतु कानूनी रूप से बाध्य होता है।

बुल (तेजड़िया) एवं बेयर (मंदड़िया):

बुल (Bull): वह आशावादी सटोरिया या निवेशक जो यह मानता है कि भविष्य में प्रतिभूतियों के मूल्य में तीव्र वृद्धि होगी, अतः वह लाभ कमाने हेतु शेयर खरीदता है।

बेयर (Bear): वह निराशावादी सटोरिया जो यह मानता है कि बाजार में गिरावट आएगी, अतः वह मूल्य गिरने की आशंका से अपने शेयर बेचता है अथवा शॉर्ट-सेलिंग करता है।

शॉर्ट सेलिंग (Short Selling): किसी ऐसे शेयर को बेचना जो वर्तमान में विक्रेता के स्वामित्व में नहीं है, इस प्रत्याशा के साथ कि शेयर का मूल्य और गिरेगा, जिससे वह बाद में उसे कम कीमत पर खरीदकर डिलीवरी दे देगा और अंतर का लाभ कमा लेगा।

सर्किट ब्रेकर (Circuit Breakers): अत्यधिक बाजार घबराहट (Panic) या अनियंत्रित सट्टेबाजी की स्थिति में शेयर बाजार के क्रैश को रोकने हेतु सेबी द्वारा निर्धारित राष्ट्रव्यापी स्वचालित तंत्र। जब सूचकांक (सेंसेक्स या निफ्टी) में पूर्व दिवस के बंद मूल्य की तुलना में 10%, 15% या 20% का असामान्य उतार-चढ़ाव होता है, तो पूरे देश में ट्रेडिंग एक निश्चित समय (45 मिनट से 2 घंटे तक अथवा पूरे दिन) के लिए स्वतः स्थगित कर दी जाती है।

अल्गोरिद्मिक ट्रेडिंग (Algo Trading) एवं हाई-फ्रीक्वेंसी ट्रेडिंग (HFT): उन्नत गणितीय मॉडलों, जटिल कंप्यूटर प्रोग्रामों और उच्च गति वाले सर्वरों के माध्यम से बिना किसी मानवीय हस्तक्षेप के मिलीसेकंड के अंश में विशाल मात्रा में सौदे स्वतः निष्पादित करने की आधुनिक ट्रेडिंग तकनीक।

एंकर निवेशक (Anchor Investors): किसी आईपीओ के सार्वजनिक रूप से खुलने से ठीक एक दिन पहले न्यूनतम 10 करोड़ रुपये की बोली लगाने वाले बड़े संस्थागत निवेशक (QIBs)। इनका उद्देश्य खुदरा निवेशकों में विश्वास जगाना होता है, तथा इनके आबंटित शेयरों पर सेबी द्वारा अनिवार्य लॉक-इन अवधि (30 से 90 दिन) लागू होती है।

ग्रीनशू विकल्प (Greenshoe Option / Over-allotment Option): आईपीओ के संदर्भ में कंपनी द्वारा अंडरराइटर को दिया जाने वाला वह कानूनी विकल्प, जिसके तहत अत्यधिक मांग होने पर

कंपनी द्वारा घोषित शेयरों से अतिरिक्त शेयर (अधिकतम 15 प्रतिशत तक) आबंटित किए जा सकते हैं, ताकि लिस्टिंग के पश्चात शेयरों के मूल्य में अत्यधिक उतार-चढ़ाव को स्थिर किया जा सके।

अध्याय 18: सेबी (SEBI) एवं वित्तीय बाजार सुधार

खंड A: सेबी का विनियामक ढांचा

उपखंड a: सेबी की स्थापना, वैधानिक दर्जा (सेबी अधिनियम 1992), उद्देश्य, अधिकार एवं शक्तियां

भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (SEBI) की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं वैधानिक स्थापना

भारतीय पूंजी बाजार 1980 के दशक के उत्तरार्ध तक पूंजी निर्गम नियंत्रक (Controller of Capital Issues - CCI) द्वारा प्रशासित होता था, जो पूंजी निर्गम (नियंत्रण) अधिनियम 1947 के अधीन कार्य करता था। यह औपनिवेशिक व्यवस्था आधुनिक वित्तीय लेन-देनों की जटिलताओं, मूल्य निर्धारण की बाजार-आधारित शक्तियों और निवेशकों के हितों के संवर्धन में अक्षम सिद्ध हो रही थी। बाजार में बढ़ती अनियंत्रित सट्टेबाजी, गैर-पारदर्शी प्रथाओं तथा कंपनियों द्वारा निर्गमों में किए जाने वाले कदाचारों के समाधान हेतु एक स्वायत्त नियामक संस्था की आवश्यकता अनुभव की गई।

भारत सरकार के एक प्रशासनिक प्रस्ताव द्वारा 12 अप्रैल 1988 को भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (Securities and Exchange Board of India - SEBI) का गठन एक गैर-सांविधिक (Non-statutory) संस्था के रूप में किया गया।

क) अध्यादेश एवं वैधानिक रूपांतरण: वर्ष 1992 के आरंभ में प्रतिभूति बाजार की विसंगतियों और हर्षद मेहता प्रतिभूति घोटाले की पृष्ठभूमि में सरकार ने अध्यादेश जारी कर सेबी को व्यापक वैधानिक अधिकार प्रदान किए।

ख) विधायी अधिनियमन: संसद द्वारा **भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड अधिनियम, 1992 (SEBI Act, 1992)** पारित किया गया, जो 30 जनवरी 1992 से भूतलक्षी प्रभाव से लागू हुआ। इसके साथ ही पूंजी निर्गम (नियंत्रण) अधिनियम 1947 को निरस्त कर दिया गया और बाजार शक्तियों को कंपनियों के शेयरों के स्वतंत्र मूल्य निर्धारण (Free Pricing of Equity) का अधिकार प्राप्त हुआ।

ग) मुख्यालय एवं क्षेत्रीय विन्यास: सेबी का प्रधान कार्यालय बांद्रा-कुर्ला कॉम्प्लेक्स, मुंबई में स्थापित है। इसके चार क्षेत्रीय कार्यालय नई दिल्ली (उत्तरी), कोलकाता (पूर्वी), चेन्नई (दक्षिणी) तथा अहमदाबाद (पश्चिमी) में स्थित हैं, जिनके साथ प्रमुख राज्यों की राजधानियों में स्थानीय कार्यालय संबद्ध हैं।

सेबी के आधारभूत उद्देश्य एवं अधिदेश

सेबी अधिनियम 1992 की प्रस्तावना (Preamble) के अनुसार, बोर्ड की स्थापना निम्नलिखित तीन प्रमुख उद्देश्यों की पूर्ति हेतु की गई है:

क) निवेशकों के हितों का संरक्षण: प्रतिभूतियों में निवेश करने वाले आम और संस्थागत निवेशकों के विधिक अधिकारों एवं वित्तीय हितों की सुरक्षा सुनिश्चित करना।

ख) प्रतिभूति बाजार का संवर्धन: पूंजी बाजार के स्वस्थ, व्यवस्थित और पारदर्शी विकास को प्रोत्साहित करना।

ग) बाजार का विनियमन: प्रतिभूति बाजार, स्टॉक एक्सचेंजों और उससे संबद्ध समस्त वित्तीय मध्यस्थों के कार्यकलापों का नियमन और पर्यवेक्षण करना।

स्तंभ / आयाम (Dimension)	विवरण (Description)
निवेशकों का हित संरक्षण	आम और संस्थागत निवेशकों के विधिक अधिकारों तथा वित्तीय हितों की रक्षा करना।
प्रतिभूति बाजार का संवर्धन	पूंजी बाजार के स्वस्थ, व्यवस्थित और पारदर्शी विकास को प्रोत्साहित करना।
बाजार का नियमन	स्टॉक एक्सचेंजों, मध्यस्थों तथा प्रतिभूति बाजार के कार्यकलापों का नियंत्रण व पर्यवेक्षण।

सेबी की प्रबंधकीय संरचना (बोर्ड का गठन)
सेबी अधिनियम 1992 की **धारा 4** के अनुसार, बोर्ड में निम्नलिखित 9 सदस्य सम्मिलित होते हैं:

अ) अध्यक्ष: भारत की केंद्र सरकार द्वारा नियुक्त एक उच्च योग्यता प्राप्त व्यक्ति (कैबिनेट की नियुक्ति समिति - ACC द्वारा अनुमोदित)।

ब) दो सदस्य: केंद्रीय वित्त मंत्रालय के अधिकारियों में से केंद्र सरकार द्वारा नामित (एक सदस्य आर्थिक कार्य विभाग तथा दूसरा कंपनी कार्य विभाग से)।

स) एक सदस्य: भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) के अधिकारियों में से केंद्रीय बैंक द्वारा नामित (सामान्यतः डिप्टी गवर्नर स्तर का अधिकारी)।

द) पांच अन्य सदस्य: केंद्र सरकार द्वारा नियुक्त, जिनमें से कम से कम तीन सदस्य पूर्णकालिक (Whole-Time Members - WTM) होने अनिवार्य हैं। ये सदस्य विधि, वित्त, अर्थशास्त्र या प्रतिभूति बाजार के विशिष्ट ज्ञान व अनुभव से संपन्न होते हैं।

सेबी की विशिष्ट विनियामक प्रकृति: अर्द्ध-विधायी, अर्द्ध-न्यायिक एवं अर्द्ध-कार्यकारी शक्तियां
भारतीय प्रशासनिक विधि के अंतर्गत सेबी एक विशिष्ट नियामक प्राधिकरण है जो शक्तियों के पृथक्करण के पारंपरिक सिद्धांत के विपरीत तीन प्रकार की शक्तियों का समन्वित प्रयोग करता है:

विनियामक आयाम	शक्तियां एवं क्षेत्राधिकार	विधिक स्रोत एवं उदाहरण
अर्द्ध-विधायी (Quasi-Legislative)	प्रतिभूति बाजार के संचालन हेतु स्वतंत्र विनियम (Regulations), नियम एवं दिशानिर्देश निर्मित करने की शक्ति।	सेबी (ICDR) विनियम 2018, सेबी (PIT) विनियम 2015, सेबी (LODR) विनियम 2015।

wincompete

अर्द्ध-कार्यकारी (Quasi-Executive)	विनियमों के अनुपालन की जांच करना, मध्यस्थों का निरीक्षण, तलाशी व जब्ती (Search & Seizure) तथा साक्ष्य संकलन।	अधिनियम की धारा 11C के तहत जांच अधिकारी नियुक्त करना, खातों की संवीक्षा करना।
अर्द्ध-न्यायिक (Quasi-Judicial)	उल्लंघनों की न्यायिक सुनवाई करना, आदेश पारित करना, अनुचित लाभ की जब्ती (Disgorgement) तथा वित्तीय दंड लगाना।	अधिनियम की धारा 11, 11B और 15I के तहत दंडात्मक व सुधारात्मक आदेश जारी करना।

अधिनियम के तहत सेबी के विशिष्ट अधिकार एवं शक्तियां

सेबी अधिनियम 1992 की **धारा 11, 11B एवं 11C** बोर्ड को व्यापक शक्तियां प्रदान करती हैं:

क) सिविल न्यायालय की शक्तियां (धारा 11(3)): सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (CPC) के तहत किसी वाद के विचारण के समान शक्तियां, जिनमें शामिल हैं:

किसी भी व्यक्ति को समन जारी करना, उसकी उपस्थिति बाध्यकारी बनाना तथा शपथ पर उसकी परीक्षा करना।

बहीखातों, रजिस्टरों एवं अन्य इलेक्ट्रॉनिक दस्तावेजों के प्रकटीकरण और उत्पादन का आदेश देना।

किसी बैंक या वित्तीय संस्था से किसी संदेहास्पद खाते की जानकारी या रिकॉर्ड मंगाना।

ख) अंतरिम एवं सुधारात्मक निर्देश जारी करने की शक्ति (धारा 11(4) एवं 11B): बाजार की शुचिता बनाए रखने हेतु जांच लंबित रहने के दौरान भी सेबी निम्नलिखित निर्देश दे सकता है:

किसी व्यक्ति या फर्म को प्रतिभूति बाजार में खरीद-बिक्री करने या प्रतिभूति बाजार तक पहुंच (Market Access) से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वर्जित करना।

किसी संदेहास्पद लेन-देन के संबंध में बैंक खातों या संबंधित प्रतिभूतियों को कुर्क (Attach) करना (अधिकतम 90 दिनों के लिए, जिसे विशेष न्यायालय की अनुमति से बढ़ाया जा सकता है)।

कपटपूर्ण या अनुचित साधनों से अर्जित अवैध लाभ को जब्त (Disgorgement) करने का आदेश देना।

wincompete

ग) तलाशी एवं जब्ती की शक्ति (धारा 11C(8)): वर्ष 2014 के प्रतिभूति कानून (संशोधन) अधिनियम के पश्चात सेबी के अध्यक्ष को यह शक्ति दी गई कि वह प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट की पूर्व अनुमति के बिना भी (विशिष्ट परिस्थितियों में विशेष न्यायालय के प्राधिकार से) किसी संदिग्ध व्यावसायिक परिसर की तलाशी और बहीखातों की जब्ती का आदेश जारी कर सकता है।

घ) मध्यस्थों का विनियमन: स्टॉक ब्रोकरों, सब-ब्रोकरों, शेयर अंतरण एजेंटों, मर्चेंट बैंकरों, अंडरराइटर्स, पोर्टफोलियो प्रबंधकों और क्रेडिट रेटिंग एजेंसियों को अनिवार्य रूप से पंजीकृत करना और उनके शुल्कों का नियमन करना।

ङ) सामूहिक निवेश योजनाओं (CIS) का नियमन: 100 करोड़ रुपये या उससे अधिक की किसी भी गैर-पंजीकृत जन-संग्रह योजना (पॉन्जी स्कीम्स, अनधिकृत रियल एस्टेट पूल) को सामूहिक निवेश योजना घोषित कर बंद कराने और निवेशकों का धन वापस दिलाने का अधिकार।

प्रतिभूति अपीलीय न्यायाधिकरण (Securities Appellate Tribunal - SAT)
सेबी के आदेशों की एकपक्षीय निरंकुशता को रोकने और न्यायिक पुनरावलोकन सुनिश्चित करने हेतु सेबी अधिनियम 1992 की **धारा 15K** के अंतर्गत प्रतिभूति अपीलीय न्यायाधिकरण (SAT) की स्थापना की गई है।

अ) संरचना: इसमें एक पीठासीन अधिकारी (Presiding Officer) तथा न्यायिक व तकनीकी सदस्य होते हैं। पीठासीन अधिकारी उच्चतम न्यायालय का सेवारत या सेवानिवृत्त न्यायाधीश अथवा किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश होना अनिवार्य है (भारत के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से नियुक्त)।

ब) क्षेत्राधिकार: सेबी, बीमा विनियामक और विकास प्राधिकरण (IRDAI) तथा पेंशन निधि विनियामक और विकास प्राधिकरण (PFRDA) द्वारा पारित किसी भी प्रतिकूल आदेश के विरुद्ध पीड़ित पक्षकार 45 दिनों के भीतर SAT में अपील दायर कर सकता है।

स) अपीलीय पदानुक्रम: SAT के किसी भी निर्णय या आदेश के विरुद्ध अपील केवल और केवल **भारत के उच्चतम न्यायालय (Supreme Court of India)** में विधि के सारवान प्रश्न (Substantial Question of Law) के आधार पर 60 दिनों के भीतर की जा सकती है (धारा 15Z)। सिविल न्यायालयों के क्षेत्राधिकार को इस संदर्भ में विधिक रूप से वर्जित किया गया है।

उपखंड b: निवेशकों का संरक्षण, भेदिया व्यापार (Insider Trading) का नियमन, बाजार में हेरफेर पर नियंत्रण

निवेशक संरक्षण ढांचा एवं शिकायत निवारण तंत्र
सेबी का सर्वोपरि संवैधानिक अधिदेश खुदरा निवेशकों के अधिकारों की रक्षा करना है। इस दिशा में प्रमुख विनियामक तंत्र निम्नलिखित हैं:

क) निवेशक शिक्षा एवं संरक्षण कोष (IEPF / IPEF): सेबी द्वारा स्थापित 'निवेशक संरक्षण और शिक्षा कोष' (IPEF) का उपयोग निवेशक जागरूकता कार्यक्रमों, वित्तीय साक्षरता अभियानों तथा संकटग्रस्त निवेशकों के विधिक प्रतिनिधित्व हेतु किया जाता है।

ख) स्कोर्स 2.0 (SCORES - SEBI Complaints Redress System):

यह एक अत्याधुनिक केंद्रीकृत वेब-आधारित और मोबाइल ऐप-आधारित ऑनलाइन शिकायत निवारण प्रणाली है।

इसके माध्यम से कोई भी निवेशक सूचीबद्ध कंपनियों या पंजीकृत मध्यस्थों के विरुद्ध लाभांश न मिलने, शेयर अंतरण में देरी या अनुचित व्यवहार की ऑनलाइन शिकायत दर्ज करा सकता है।

wincompete

अद्यतन सुधार: सेबी ने स्कोर्स प्रणाली को स्वचालित रूटिंग और द्वि-स्तरीय समीक्षा तंत्र से युक्त किया है। प्रत्येक कंपनी हेतु शिकायत प्राप्त होने के 21 कैलेंडर दिनों के भीतर समाधान (Action Taken Report - ATR) प्रस्तुत करना अनिवार्य है।

ग) ऑनलाइन विवाद समाधान (ODR Portal): अगस्त 2023 से सेबी ने संपूर्ण प्रतिभूति बाजार हेतु एक एकीकृत डिजिटल ODR प्लेटफॉर्म प्रारंभ किया है, जो ऑनलाइन मध्यस्थता (Conciliation) और पंचाट (Arbitration) के माध्यम से निवेशकों और सूचीबद्ध संस्थाओं के विवादों का त्वरित, पेपरलेस और समयबद्ध समाधान सुनिश्चित करता है।

भेदिया व्यापार (Insider Trading) का नियमन: विधिक विन्यास

भेदिया व्यापार से अभिप्राय किसी कंपनी के ऐसे आंतरिक व्यक्तियों द्वारा प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय से है, जिनके पास कंपनी से संबंधित कोई ऐसी गोपनीय सूचना उपलब्ध हो जो सार्वजनिक नहीं हुई है और जिसके सार्वजनिक होने पर कंपनी के शेयरों के बाजार मूल्य पर भौतिक प्रभाव पड़ सकता है। इसे रोकने हेतु सेबी ने **सेबी (भेदिया व्यापार का प्रतिषेध) विनियम, 2015 [SEBI (Prohibition of Insider Trading) Regulations, 2015]** अधिसूचित किए हैं।

प्रमुख विधिक संकल्पनाएं एवं परिभाषाएं:

अ) अप्रकाशित मूल्य संवेदनशील सूचना (UPSI - Unpublished Price Sensitive Information): विनियम 2(1)(n) के अनुसार, कंपनी या उसकी प्रतिभूतियों से संबंधित कोई भी ऐसी सूचना जो सामान्यतः जनता के लिए उपलब्ध नहीं है, परंतु उपलब्ध होने पर प्रतिभूतियों के मूल्य को सारवान रूप से प्रभावित कर सकती है। इसमें शामिल हैं:

वित्तीय परिणाम (तिमाही अथवा वार्षिक लाभ-हानि)।

लाभांश की घोषणा (अंतरिम या अंतिम)।

पूंजी संरचना में परिवर्तन (शेयर विभाजन, राइट्स इश्यू, बाय-बैक)।

विलय, समामेलन, अधिग्रहण, डी-मर्जर अथवा सार्वजनिक उपक्रमों का विनिवेश।

प्रमुख प्रबंधकीय कर्मियों (KMP) के पद में परिवर्तन।

ब) 'भेदिया' (Insider): विनियम 2(1)(g) के अनुसार, कोई भी व्यक्ति जो एक 'संबद्ध व्यक्ति' (Connected Person) हो, अथवा जिसके पास अप्रकाशित मूल्य संवेदनशील सूचना (UPSI) की पहुंच हो या उसने ऐसी सूचना प्राप्त की हो।

स) संबद्ध व्यक्ति (Connected Person): कंपनी के निदेशक, अधिकारी, प्रमुख वित्तीय अधिकारी, विधिक सलाहकार, मर्चेंट बैंकर, लेखापरीक्षक (Auditors) अथवा कोई भी ऐसा व्यक्ति जो अपने व्यावसायिक संबंधों के कारण कंपनी की UPSI तक पहुंच रखने की उचित संभावना रखता हो।

विनियामक नियंत्रण तंत्र:

ट्रेडिंग विंडो बंद होना (Trading Window Closure): वित्तीय परिणामों की घोषणा से पूर्व प्रत्येक तिमाही के अंत से लेकर वित्तीय परिणाम सार्वजनिक होने के 48 घंटे बाद तक कंपनी के सभी निदेशकों और निर्दिष्ट व्यक्तियों (Designated Persons) हेतु कंपनी के शेयरों में किसी भी प्रकार का व्यापार करना विधिक रूप से प्रतिबंधित रहता है।

संरचित डिजिटल डेटाबेस (Structured Digital Database - SDD): प्रत्येक सूचीबद्ध कंपनी को एक छेड़छाड़-रहित (Tamper-proof) आंतरिक इलेक्ट्रॉनिक डेटाबेस संधारित करना अनिवार्य है, जिसमें यह दर्ज होता है कि किस व्यक्ति के साथ, किस परियोजना हेतु और किस समय UPSI साझा की गई थी, साथ ही उस व्यक्ति का स्थायी खाता संख्या (PAN) भी दर्ज होता है।

पूर्व-निकासी (Pre-Clearance of Trades): निर्दिष्ट कर्मियों को एक निश्चित वित्तीय सीमा (सामान्यतः 10 लाख रुपये से अधिक) से ऊपर के शेयरों का लेनदेन करने से पूर्व कंपनी के अनुपालन अधिकारी (Compliance Officer) से पूर्व-अनुमोदन लेना अनिवार्य होता है।

बाजार में हेरफेर एवं धोखाधड़ी पर नियंत्रण: PFUTP विनियम

प्रतिभूति बाजार में कृत्रिम मांग उत्पन्न करने, मूल्य को विकृत करने अथवा आम निवेशकों को भ्रमित करने की प्रवृत्तियों को रोकने हेतु **सेबी (कपटपूर्ण और अनुचित व्यापार प्रथाओं का प्रतिषेध) विनियम, 2003 [SEBI (PFUTP) Regulations, 2003]** लागू हैं।

विनियमों के तहत निषिद्ध प्रमुख अनुचित व्यापार प्रथाएं:

क) सर्कुलर ट्रेडिंग एवं वॉश सेल्स (Circular Trading & Wash Sales): ऑपरेटरों या दलालों के एक समूह द्वारा आपस में ही पूर्व-नियोजित मूल्य और समय पर शेयरों की खरीद-बिक्री करना, जिससे स्वामित्व में कोई वास्तविक परिवर्तन (Beneficial Ownership Change) नहीं होता, परंतु ट्रेडिंग स्क्रीन पर कृत्रिम रूप से उच्च वॉल्यूम और तरलता दिखाई देती है।

ख) पंप एंड डंप (Pump and Dump): सोशल मीडिया (टेलीग्राम, व्हाट्सएप चैनल, यूट्यूब) पर फर्जी या बढ़ा-चढ़ाकर वित्तीय अफवाहें फैलाकर किसी कम पूंजीकरण वाले शेयर के मूल्य को कृत्रिम रूप से ऊपर चढ़ाना (Pump), और जब आम खुदरा निवेशक आकर्षित होकर शेयर खरीदने लगें, तो ऑपरेटरों द्वारा अपने शेयर उच्च मूल्य पर बेचकर बाहर निकल जाना (Dump), जिससे आम निवेशकों को भारी वित्तीय क्षति होती है।

ग) फ्रंट रनिंग (Front Running): किसी बड़े संस्थागत निवेशक (जैसे म्यूचुअल फंड) द्वारा किसी विशिष्ट शेयर को भारी मात्रा में खरीदने के अग्रिम आदेश की गोपनीय जानकारी का दुरुपयोग करते हुए फंड मैनेजर या डीलर द्वारा अपने व्यक्तिगत खाते से पहले ही वह शेयर खरीद लेना, ताकि बड़े ऑर्डर के प्रभाव से मूल्य बढ़ने पर लाभ कमाया जा सके।

घ) स्पूफिंग एवं कोटिंग (Spoofing): बाजार की गहराई (Order Book) को प्रभावित करने हेतु बड़ी मात्रा में खरीद या बिक्री के फर्जी ऑर्डर प्रविष्ट करना और सौदा निष्पादित होने से मिलीसेकंड पूर्व उन्हें निरस्त कर देना।

निगरानी और सर्विलांस तंत्र:

डेटा वेयरहाउसिंग और बिजनेस इंटेलिजेंस सिस्टम (DWBIS): सेबी कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और मशीन लर्निंग (ML) आधारित एल्गोरिदम का प्रयोग करके स्टॉक एक्सचेंजों पर होने वाले अरबों लेन-देनों की वास्तविक समय (Real-time) निगरानी करता है। किसी भी असामान्य वॉल्यूम स्पाइक अथवा अचानक मूल्य उतार-चढ़ाव पर स्वचालित अलर्ट उत्पन्न होते हैं।

निगरानी की संवर्धित रूपरेखा (ASM एवं GSM): अत्यधिक उतार-चढ़ाव, उच्च सट्टेबाजी और असामान्य वित्तीय अनुपातों वाले शेयरों को स्टॉक एक्सचेंज 'अतिरिक्त निगरानी उपाय' (Additional Surveillance Measure - ASM) तथा 'ग्रेडेड सर्विलांस मेजर्स' (Graded Surveillance

Measures - GSM) के अंतर्गत रखते हैं, जहां 100% मार्जिन और ट्रेडिंग मूल्य सीमाओं (Circuit Limits) को अत्यंत संकुचित कर दिया जाता है।

खंड B: पूंजी बाजार में संरचनात्मक सुधार

उपखंड a: विदेशी पोर्टफोलियो निवेशक (FPI), प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) के नियम, पार्टिसिपेटरी नोट्स (P-Notes)

विदेशी निवेश के दो मुख्य आयाम: FDI बनाम FPI

वैश्वीकृत वित्तीय व्यवस्था में विदेशी पूंजी प्रवाह को उनके उद्देश्य, स्थायित्व और प्रबंधन नियंत्रण के आधार पर दो मुख्य संवर्गों में विभाजित किया जाता है: प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) और विदेशी पोर्टफोलियो निवेश (FPI)।

भारतीय संदर्भ में दोनों के मध्य की स्पष्ट सीमा-रेखा **अरविंद मायाराम समिति (2014)** की सिफारिशों के आधार पर निर्धारित की गई है, जिसे विदेशी मुद्रा प्रबंधन (गैर-ऋण साधन) नियम 2019 में संहिताबद्ध किया गया है:

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI): जब कोई अनिवासी व्यक्ति या विदेशी संस्था किसी भारतीय सूचीबद्ध कंपनी की चुकता इक्विटी पूंजी के **10 प्रतिशत या उससे अधिक** में निवेश करती है, अथवा किसी गैर-सूचीबद्ध भारतीय कंपनी में किसी भी स्तर का इक्विटी निवेश करती है।

विदेशी पोर्टफोलियो निवेश (FPI): जब कोई विदेशी संस्था किसी भारतीय सूचीबद्ध कंपनी की चुकता इक्विटी पूंजी के **10 प्रतिशत से कम** का निवेश द्वितीयक या प्राथमिक बाजार के माध्यम से करती है। यदि किसी FPI का निवेश किसी एक कंपनी में 10% की सीमा को छूता है या पार करता है, तो उस संपूर्ण निवेश को पुनः वर्गीकृत करके FDI मान लिया जाता है।

तुलनात्मक आयाम	प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI)	विदेशी पोर्टफोलियो निवेश (FPI)
निवेश की प्रकृति	दीर्घकालिक, स्थिर और प्रत्यक्ष भौतिक निवेश।	अल्पकालिक, गतिशील एवं तरल वित्तीय निवेश।
प्रबंधन में नियंत्रण	निवेशक को कंपनी के प्रबंधन, निदेशक मंडल एवं नीति में प्रत्यक्ष नियंत्रण प्राप्त होता है।	केवल वित्तीय प्रतिफल (लाभांश/पूंजीगत लाभ) से सरोकार; प्रबंधन में कोई नियंत्रण नहीं।
पूंजी की गतिशीलता	स्थिर पूंजी; कारखानों, संयंत्रों और भौतिक परिसंपत्तियों में बंधी होती है, जिसे तुरंत निकालना कठिन है।	अत्यधिक अस्थिर ('तप्त मुद्रा' / Hot Money); बाजार में प्रतिकूल परिस्थितियों पर तुरंत पूंजी पलायन संभव।

wincompete

प्रवेश मार्ग	स्वचालित मार्ग (Automatic Route) अथवा सरकारी/अनुमोदन मार्ग (Government Route)।	सेबी-पंजीकृत निर्धारित डिपॉजिटरी प्रतिभागियों (DDP) के माध्यम से केवल पोर्टफोलियो मार्ग।
प्राथमिक विनियामक ढांचा	डीपीआईआईटी (DPIIT), वित्त मंत्रालय तथा फेमा (FEMA) नियम।	सेबी (FPI) विनियम 2019 तथा आरबीआई के दिशानिर्देश।

विदेशी पोर्टफोलियो निवेशक (FPI) विनियामक ढांचा 2019

विदेशी संस्थागत निवेशकों (FII) और उप-खातों की जटिलताओं को समाप्त करने हेतु सेबी ने **सेबी (विदेशी पोर्टफोलियो निवेशक) विनियम, 2019** अधिसूचित किए। इसके अंतर्गत FPIs को दो मुख्य श्रेणियों में सुव्यवस्थित किया गया है:

क) श्रेणी-I FPI (Category-I - निम्नतम जोखिम):

संप्रभु और सरकारी-संबद्ध विदेशी निवेशक: केंद्रीय बैंक, संप्रभु धन कोष (Sovereign Wealth Funds - SWF), विदेशी सरकारी एजेंसियां, अंतरराष्ट्रीय या बहुपक्षीय संगठन (यथा विश्व बैंक, IMF, ADB)।

वित्तीय कार्रवाई कार्यदल (FATF) के सदस्य देशों के पेंशन फंड, विश्वविद्यालय फंड तथा विनियमित संस्थाएं (बैंक, परिसंपत्ति प्रबंधन कंपनियां, निवेश ट्रस्ट)।

लाभ: इन्हें कठोर केवाईसी (KYC) प्रक्रियाओं से छूट प्राप्त होती है और अल्पकालिक पूंजीगत लाभ पर न्यूनतम विनियामक संवीक्षा लागू होती है।

ख) श्रेणी-II FPI (Category-II - मध्यम से उच्च जोखिम):

वे सभी FPI जो श्रेणी-I में शामिल नहीं हैं।

गैर-FATF देशों के विनियमित फंड, धर्मार्थ ट्रस्ट, पारिवारिक कार्यालय (Family Offices), कॉर्पोरेट निकाय, व्यक्ति और हेज फंड।

कठोरता: इन्हें गहन केवाईसी और अंतिम लाभकारी स्वामियों (Beneficial Owners) के विस्तृत प्रकटीकरण मानदंडों का पालन करना होता है।

अंतिम लाभकारी स्वामित्व (Beneficial Ownership) पर सेबी के कड़े नियम:

अगस्त 2023 में सेबी ने कुछ विदेशी पोर्टफोलियो निवेशकों द्वारा न्यूनतम सार्वजनिक शेयरधारिता (MPS) नियमों के उल्लंघन और अदाणी समूह मामले जैसी विसंगतियों को रोकने हेतु नए आदेश जारी किए। इसके अनुसार:

यदि किसी एकल FPI का अपने कुल वैश्विक इक्विटी पोर्टफोलियो का **50 प्रतिशत से अधिक हिस्सा किसी एक ही भारतीय कॉर्पोरेट समूह** में केंद्रित है; अथवा

यदि किसी FPI का भारतीय इक्विटी बाजारों में कुल निवेश **25,000 करोड़ रुपये से अधिक** है, तो उस FPI को अपने संपूर्ण फंड के अंतिम व्यक्तिगत लाभकारी स्वामियों (Natural Persons) की पूर्ण पहचान, आर्थिक हित और संरचना का अनिवार्य प्रकटीकरण सेबी और कस्टोडियन को करना होगा। ऐसा न करने पर FPI का पंजीकरण रद्द किया जा सकता है।

पार्टिसिपेटरी नोट्स (P-Notes / Offshore Derivative Instruments - ODIs)

पार्टिसिपेटरी नोट्स (पी-नोट्स) वे विदेशी व्युत्पन्नी वित्तीय साधन (Offshore Derivative Instruments) हैं, जिन्हें सेबी-पंजीकृत विदेशी पोर्टफोलियो निवेशकों (FPIs) द्वारा उन विदेशी उच्च निवल मूल्य वाले निवेशकों (HNIs) या हेज फंडों के लिए विदेशी बाजारों (जैसे सिंगापुर, मॉरीशस, लंदन) में जारी किया जाता है, जो **सेबी के साथ सीधे पंजीकृत हुए बिना भारतीय शेयर बाजार में निवेश** करना चाहते हैं।

चरण (Step)	सहभागी / पक्षकार (Entity)	क्रिया / विवरण (Action / Description)
1. पूंजी का प्रवाह	**विदेशी अंतर्निहित निवेशक → सेबी-पंजीकृत FPI**	अज्ञात विदेशी निवेशक FPI को धनराशि (डॉलर/यूरो) प्रदान करता है।
2. शेयर क्रय	**FPI → भारतीय शेयर बाजार**	FPI अपने नाम पर भारतीय शेयर बाजार में वास्तविक शेयर खरीदता है।
3. P-Notes निर्गमन	**FPI → विदेशी निवेशक**	FPI खरीदे गए शेयरों के मूल्य से लिंक्ड Participatory Notes विदेशी निवेशक को जारी करता है।

पी-नोट्स का ऐतिहासिक विवाद एवं विनियामक कड़ाई:

विवाद का कारण: 2000 के दशक में भारत में आने वाले कुल FPI प्रवाह का 50 प्रतिशत से अधिक हिस्सा पी-नोट्स के माध्यम से आता था। इसके कारण भारतीय बाजार में काला धन खपाने (Round Tripping) और विदेशी ऑपरेटरों द्वारा गुमनाम पहचान के पीछे छिपकर हेरफेर करने का गंभीर जोखिम उत्पन्न हो गया था।

एसआईटी (SIT) की सिफारिशें: काले धन पर गठित विशेष जांच दल (SIT - न्यायमूर्ति एम.बी. शाह समिति) ने पी-नोट्स के सख्त नियमन की संस्तुति की।

सेबी द्वारा अधिरोपित वर्तमान विनियामक प्रतिबंध:

केवल श्रेणी-I के FPIs को ही चुनिंदा परिस्थितियों में पी-नोट्स जारी करने की अनुमति है; श्रेणी-II FPIs पर पूर्ण प्रतिबंध है।

पी-नोट्स धारकों पर मनी लॉन्ड्रिंग निवारण अधिनियम (PMLA) के अनुसार पूर्ण केवाईसी (KYC) मानदंड अनिवार्य कर दिए गए हैं। FPIs को प्रत्येक माह के अंत में अपने समस्त पी-नोट्स धारकों की सूची और उनके अंतिम लाभकारी स्वामियों का ब्योरा सेबी को प्रस्तुत करना अनिवार्य है।

पी-नोट्स को बिना पूर्व अनुमति के किसी तीसरे पक्ष को पुनः अंतरित (Re-issue / Transfer) करने पर विधिक रोक है।

डेरिवेटिव्स (F&O) खंड में सट्टेबाजी के उद्देश्य से पी-नोट्स जारी करने पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया गया है (केवल नकद हेजिंग को छोड़कर)।

परिणामस्वरूप, भारतीय इक्विटी परिसंपत्तियों में पी-नोट्स का आनुपातिक हिस्सा गिरकर ऐतिहासिक न्यूनतम स्तर (2 से 3 प्रतिशत के आसपास) पर आ गया है।

उपखंड b: टी-प्लस-वन (T+1) और टी-प्लस-जीरो निपटान चक्र, एल्गो ट्रेडिंग का विनियमन, वैकल्पिक निवेश कोष (AIF)

निपटान चक्र (Settlement Cycle) का तकनीकी विकास: T+1 से T+0 की ओर

शेयर बाजार में निपटान (Settlement) से आशय उस औपचारिक प्रक्रिया से है जिसके तहत शेयर के सौदे (ट्रेड) के निष्पादन के उपरांत क्रेता के डीमैट खाते में शेयरों की वास्तविक डिलीवरी पहुंचती है तथा विक्रेता के बैंक खाते में बिक्री की राशि का अंतिम अंतरण संपन्न होता है।

निपटान चक्र का ऐतिहासिक संक्रमण:

2001 तक: साप्ताहिक निपटान (Account Period Settlement)।

2001-2002: T+5 (सौदा दिवस + 5 कार्यदिवस)।

अप्रैल 2002: T+3 चक्र।

अप्रैल 2003: T+2 चक्र (दो दशकों तक भारतीय बाजार का मानक रहा)।

T+1 निपटान चक्र (जनवरी 2023 से पूर्ण क्रियान्वयन):

सेबी ने चरणबद्ध रूप से सबसे छोटी कंपनियों से प्रारंभ करके 27 जनवरी 2023 से भारतीय शेयर बाजार की सभी सूचीबद्ध प्रतिभूतियों (इक्विटी, ईटीएफ, सॉवरेन गोल्ड बॉन्ड) हेतु **T+1 (Trade Date + 1 Working Day)** निपटान चक्र पूर्णतः अनिवार्य रूप से लागू कर दिया।

इसके तहत यदि कोई निवेशक सोमवार को शेयर खरीदता है या बेचता है, तो मंगलवार की शाम तक शेयरों की डिलीवरी और नकद राशि का निपटान पूर्ण हो जाता है।

वैश्विक महत्व: भारत चीन के पश्चात T+1 निपटान प्रणाली को पूर्ण पैमाने पर लागू करने वाला विश्व का **दूसरा सबसे बड़ा देश** बना। संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा और यूरोपीय संघ ने भारत के काफी बाद (मई 2024 में) T+1 चक्र को अंगीकार किया।

T+0 एवं तात्कालिक निपटान (Instant Settlement) का वैकल्पिक ढांचा (2024-2026):

पूंजी बाजार की तकनीकी अवसंरचना को वैश्विक शिखर पर ले जाते हुए सेबी ने 28 मार्च 2024 से **T+0 (समान दिवस निपटान - Same Day Settlement)** का प्रायोगिक बीटा संस्करण प्रारंभ किया।

कार्यप्रणाली: इसके अंतर्गत यदि कोई निवेशक दोपहर 1:30 बजे तक शेयर बेचता है, तो उसी दिन शाम 4:30 बजे तक विक्रेता को उसके बैंक खाते में राशि तथा क्रेता को डीमैट खाते में शेयर प्राप्त हो जाते हैं।

चरणबद्ध विस्तार: प्रारंभिक चरण में यह शीर्ष 25 लिक्विड प्रतिभूतियों हेतु वैकल्पिक (Optional) आधार पर लागू किया गया, जिसे क्रमिक रूप से अन्य शीर्ष 500 प्रतिभूतियों तक विस्तारित किया जा रहा है।

भावी लक्ष्य: इसका अंतिम विनियामक लक्ष्य 'तात्कालिक निपटान' (Instantaneous Settlement) है, जहां यूपीआई और डिपाजिटरी एपीआई (API) के माध्यम से शेयर बेचते ही पलक झपकते (Real-time) राशि सीधे बैंक खाते में जमा हो जाएगी।

निपटान चक्र	सौदे का दिन	धन एवं प्रतिभूतियों की प्राप्ति	प्रणालीगत पूंजीगत लाभ
पारंपरिक T+2 चक्र	सोमवार	बुधवार की शाम	ब्रोकरों और समाशोधन निगम में 48 घंटे तक पूंजी फंसी रहना; उच्च मार्जिन जोखिम।
वर्तमान T+1 चक्र	सोमवार	मंगलवार की शाम	जोखिम में 50% की कमी; पूंजी की तरलता में 24 घंटे की त्वरित वृद्धि।
नवीन T+0 चक्र (वैकल्पिक)	सोमवार (दोपहर 1:30 तक)	सोमवार (शाम 4:30 तक)	शून्य रात्रि-जोखिम (Zero Overnight Risk); उसी दिन पूंजी का पुनर्निवेश संभव।

एल्गोरिदमिक एवं हाई-फ्रीक्वेंसी ट्रेडिंग (Algo / HFT) का विनियामक तंत्र

एल्गोरिदमिक ट्रेडिंग (Algo Trading) से आशय उन्नत गणितीय मॉडलों, जटिल कंप्यूटर प्रोग्रामों और उच्च गति वाले सर्वरों के माध्यम से मानवीय हस्तक्षेप के बिना मिलीसेकंड के सूक्ष्म अंशों में व्यापारिक सौदे (Orders) प्रविष्ट और निष्पादित करने की तकनीक से है। जब यह अत्यधिक तेज गति और भारी मात्रा में की जाती है, तो इसे 'हाई-फ्रीक्वेंसी ट्रेडिंग' (HFT) कहा जाता है।

बाजार विकृतियां एवं जोखिम:

फ्लैश क्रैश (Flash Crash): एल्गोरिदम द्वारा एक ही दिशा में भारी मात्रा में सौदे डालने से बाजार सूचकांकों का कुछ ही मिनटों में हजारों अंक गिर जाना।

सह-स्थान सुविधा (Co-location / Colo Controversy): स्टॉक एक्सचेंज के केंद्रीय सर्वर कक्ष के भीतर ही अपने सर्वर स्थापित करके अन्य सामान्य खुदरा निवेशकों की तुलना में मिलीसेकंड का अनुचित लाभ (Latency Advantage) प्राप्त करना (यथा 2015 का एनएसई कोलो घोटाला)।

सेबी का विनियामक एवं सुरक्षात्मक नियंत्रण:

क) एल्गोरिदम का अनिवार्य पूर्व-परीक्षण और अनुमोदन: किसी भी ब्रोकर या संस्थागत निवेशक द्वारा किसी नवीन एल्गोरिदम को लाइव मार्केट में उतारने से पूर्व स्टॉक एक्सचेंज से उसका सिमुलेटेड वातावरण में गहन परीक्षण कराकर विधिक अनुमोदन लेना अनिवार्य है।

ख) अद्वितीय एल्गोरिदम आईडी (Unique Algo ID): प्रत्येक स्वचालित ऑर्डर के साथ एक विशिष्ट एल्गोरिदम कोड टैग होता है, जिससे किसी भी बाजार हेरफेर की स्थिति में तुरंत पहचान की जा सके।

ग) ऑर्डर-टू-ट्रेड अनुपात (Order-to-Trade Ratio - OTR): सट्टेबाजी और सर्वर पर अत्यधिक दबाव को हतोत्साहित करने हेतु सेबी ने अत्यधिक उच्च OTR (हजारों ऑर्डर डालना किंतु वास्तविक ट्रेड न करना) वाले ब्रोकर्स पर दैनिक दंडात्मक शुल्क अधिरोपित किए हैं।

घ) खुदरा निवेशकों हेतु अनधिकृत एपीआई (API) सेवाओं पर प्रतिबंध: सेबी ने ब्रोकरों को यह स्पष्ट आदेश दिया है कि वे उन तीसरे पक्ष के अनधिकृत सॉफ्टवेयर वेंडर्स या सोशल मीडिया फिनफ्लुएंसर्स के साथ सीधे एपीआई लिंक साझा न करें जो भोले-भाले खुदरा निवेशकों को 'निश्चित रिटर्न' का वादा करके एल्गो सेवाएं बेचते हैं।

वैकल्पिक निवेश कोष (Alternative Investment Funds - AIFs)
वैकल्पिक निवेश कोष भारत में स्थापित या निगमित वह सामूहिक निवेश कोष है, जो परिष्कृत भारतीय और विदेशी निवेशकों से निजी तौर पर निधियां जुटाता है और उन्हें एक परिभाषित निवेश नीति के अनुसार निवेशकों के लाभ हेतु विभिन्न परिसंपत्तियों में निवेश करता है। यह पारंपरिक म्यूचुअल फंडों (जो सार्वजनिक खुदरा निधियां जुटाते हैं) से पूर्णतः पृथक है।

विनियमन का आधार: सेबी (वैकल्पिक निवेश कोष) विनियम, 2012 [SEBI (AIF) Regulations, 2012]:
सेबी ने इन कोषों को उनकी जोखिम प्रकृति, रणनीति और आर्थिक प्रभाव के आधार पर तीन सुस्पष्ट श्रेणियों में वर्गीकृत किया है:

AIF श्रेणी (Category)	लक्ष्य क्षेत्र / रणनीति (Target Sector)	प्रमुख विशेषताएं (Key Features)
श्रेणी-I AIF (Category-I)	सामाजिक/आर्थिक रूप से वांछित क्षेत्र (स्टार्टअप्स, SME, अवसंरचना)	सकारात्मक सामाजिक-आर्थिक प्रभाव; सरकार द्वारा कराधान में पास-थ्रू दर्जा प्राप्त
श्रेणी-II AIF (Category-II)	निजी इक्विटी (PE) एवं रियल एस्टेट फंड	दिन-प्रतिदिन के संचालन के अलावा अतिरिक्त उत्तोलन/उधारी की अनुमति नहीं
श्रेणी-III AIF (Category-III)	हेज फंड एवं जटिल ट्रेडिंग रणनीतियां	अल्पकालिक प्रतिफल हेतु जटिल रणनीतियां; उच्च उत्तोलन एवं मार्जिन ट्रेडिंग अनुमत

क) श्रेणी-I AIF (सकारात्मक सामाजिक-आर्थिक बाह्यताएं):

वे कोष जो स्टार्टअप्स, प्रारंभिक चरण के उपक्रमों, सामाजिक उद्यमों, लघु एवं मध्यम उद्योगों (SMEs) अथवा बुनियादी अवसंरचना में निवेश करते हैं, जिन्हें सरकार आर्थिक दृष्टि से प्राथमिकता प्रदान करती है।

उप-प्रकार: उद्यम पूंजी कोष (Venture Capital Funds - VCF), एंजेल फंड (Angel Funds), सामाजिक प्रभाव कोष (Social Impact Funds), तथा अवसंरचना कोष (Infrastructure Funds)।

प्रोत्साहन: इन्हें सरकार द्वारा कराधान में 'पास-थ्रू' (Pass-through Status) दर्जा तथा विनियामक रियायतें प्रदान की जाती हैं।

ब) श्रेणी-II AIF (अवशिष्ट एवं निजी इक्विटी कोष):

वे कोष जो न तो श्रेणी-I में आते हैं और न ही श्रेणी-III में, तथा जो दिन-प्रतिदिन के परिचालन व्ययों को पूरा करने के अतिरिक्त किसी अन्य उद्देश्य हेतु ऋण (Leverage/Borrowing) नहीं लेते।

उप-प्रकार: निजी इक्विटी (Private Equity - PE) फंड, संकटग्रस्त परिसंपत्ति फंड (Distressed Assets / Debt Funds), तथा रियल एस्टेट फंड। भारत में कुल AIF निवेश का सर्वाधिक हिस्सा इसी श्रेणी के अंतर्गत आता है।

ग) श्रेणी-III AIF (जटिल एवं सट्टेबाजी रणनीतियां):

वे कोष जो अल्पकालिक वित्तीय प्रतिफल प्राप्त करने के उद्देश्य से जटिल ट्रेडिंग रणनीतियों, डेरिवेटिव्स (F&O), आर्बिट्राज तथा मार्जिन ट्रेडिंग का प्रयोग करते हैं।

उप-प्रकार: हेज फंड (Hedge Funds) तथा सार्वजनिक इक्विटी में सक्रिय रूप से ट्रेड करने वाले प्राइवेट फंड।

विनियामक शर्त: इन्हें विहित सीमाओं के भीतर लीवरेज (ऋण लेकर बड़ा दांव लगाना) की अनुमति होती है, अतः इन पर सेबी द्वारा कठोर प्रकटीकरण और जोखिम निगरानी लागू की जाती है।

wincompete

AIFs के मुख्य विनियामक मानदंड:

न्यूनतम निवेश सीमा: किसी भी एकल निवेशक द्वारा किसी AIF (एंजेल फंड को छोड़कर) में न्यूनतम निवेश प्रतिबद्धता **1 करोड़ रुपये** (एंजेल फंड में 25 लाख रुपये, तथा AIF के निदेशकों/कर्मचारियों हेतु 5 लाख रुपये) होना अनिवार्य है। यह सुनिश्चित करता है कि केवल वित्तीय रूप से सक्षम एवं जोखिम समझने वाले परिष्कृत निवेशक ही इसमें भाग लें।

निवेशकों की संख्या की सीमा: किसी भी एकल AIF योजना में निवेशकों की कुल संख्या 1,000 से अधिक नहीं हो सकती (एंजेल फंड में अधिकतम 200 निवेशक)।

डीमैट अनिवार्यता: सेबी ने वर्ष 2024 से सभी AIFs की इकाइयों (Units) को अनिवार्य रूप से डीमैटरियलाइज्ड रूप में जारी करना बाध्यकारी कर दिया है, जिससे वित्तीय प्रणाली में पूर्ण पारदर्शिता स्थापित हो सके।

महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली एवं प्रमुख संकल्पनाएं

अनुचित लाभ की जब्ती (Disgorgement): सेबी अधिनियम की धारा 11B के तहत विहित वह न्यायसंगत और सुधारात्मक उपाय, जिसके अंतर्गत प्रतिभूति कानूनों का उल्लंघन करके अवैध या अनैतिक रूप से कमाए गए संपूर्ण वित्तीय लाभ को सेबी द्वारा आरोपी व्यक्ति या संस्था से ब्याज सहित जबरन वापस छीन लिया जाता है और उसे निवेशक संरक्षण कोष (IPEF) में जमा कराया जाता है।

फिनफ्लुएंसर (Finfluencers / Financial Influencers): सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स (यूट्यूब, इंस्टाग्राम, एक्स, टेलीग्राम) पर वित्तीय निवेश, स्टॉक टिप्स अथवा धन प्रबंधन पर सलाह देने वाले व्यक्ति। सेबी के नए विनियामक नियमों (2024) के अनुसार, सेबी-पंजीकृत वित्तीय संस्थाओं और म्यूचुअल फंडों को किसी भी गैर-पंजीकृत अनधिकृत फिनफ्लुएंसर के साथ वाणिज्यिक अनुबंध करने या उनके विज्ञापनों का वित्तपोषण करने पर पूर्ण विधिक प्रतिबंध लगा दिया गया है।

शॉर्ट सेलिंग पर सेबी की रूपरेखा: किसी ऐसे शेयर को बेचना जो वर्तमान में विक्रेता के स्वामित्व में नहीं है। सेबी ने भारतीय बाजार में 'नेकेड शॉर्ट सेलिंग' (Naked Short Selling - बिना शेयर उधार लिए सीधे बेचना) पर पूर्ण प्रतिबंध लगा रखा है। सभी संस्थागत निवेशकों हेतु सौदे के समय ही यह अनिवार्य रूप से घोषित करना पड़ता है कि क्या वह सौदा एक शॉर्ट-सेल है, तथा उन्हें 'प्रतिभूति उधार एवं ऋण प्रणाली' (SLBM) के माध्यम से शेयरों की भौतिक डिलीवरी सुनिश्चित करनी होती है।

पात्र संस्थागत खरीदार (Qualified Institutional Buyers - QIBs): सेबी द्वारा परिभाषित वे वित्तीय रूप से अत्यंत परिष्कृत और विशाल संस्थागत निवेशक, जिनके पास पूंजी बाजार के जोखिमों का मूल्यांकन करने की आंतरिक पेशेवर विशेषज्ञता होती है। इनमें अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक, म्यूचुअल फंड, विदेशी पोर्टफोलियो निवेशक, बीमा कंपनियां और भविष्य निधि न्यास शामिल हैं।

न्यूनतम सार्वजनिक शेयरधारिता (Minimum Public Shareholding - MPS): प्रतिभूति संविदा नियमों के अनुसार प्रत्येक सार्वजनिक सूचीबद्ध कंपनी में प्रमोटरों के अतिरिक्त आम जनता और गैर-प्रमोटर संस्थागत निवेशकों के पास कंपनी की कुल इक्विटी का न्यूनतम 25 प्रतिशत हिस्सा होना अनिवार्य है। इसका उद्देश्य प्रमोटरों द्वारा शेयरों के मूल्यों में कृत्रिम हेरफेर को रोकना और बाजार में पर्याप्त तरलता बनाए रखना है।

ग्रीनशू विकल्प (Greenshoe Option): किसी कंपनी के आईपीओ में अतिरिक्त मांग (Over-subscription) होने की स्थिति में बाजार मूल्य को स्थिर करने हेतु प्रमोटरों से 15% तक अतिरिक्त शेयर उधार लेकर बाजार में जारी करने का विधिक संविदात्मक विकल्प।

सर्किट फिल्टर / मूल्य सीमाएं (Circuit Filters): अत्यधिक घबराहट (Panic) या अनियंत्रित सट्टेबाजी की स्थिति में शेयर बाजार के क्रैश को रोकने हेतु निर्धारित स्वचालित सुरक्षा तंत्र। व्यक्तिगत शेयरों पर 2%, 5%, 10% या 20% की दैनिक मूल्य सीमाएं लागू होती हैं, जबकि संपूर्ण सूचकांक (सेंसेक्स/निफ्टी) पर 10%, 15% और 20% के राष्ट्रव्यापी समन्वित सर्किट ब्रेकर लागू होते हैं जो ट्रेडिंग को पूर्व-निर्धारित समय हेतु स्वतः निलंबित कर देते हैं।

अध्याय 19: भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक नीति - उपकरण एवं संचरण

खंड A: मौद्रिक नीति का ढांचा एवं उद्देश्य

उपखंड a: मौद्रिक नीति के लक्ष्य - मूल्य स्थिरता बनाम आर्थिक संवृद्धि, लचीला मुद्रास्फीति लक्ष्यीकरण (FIT)

मौद्रिक नीति का सैद्धांतिक आधार एवं संप्रभु उद्देश्य

मौद्रिक नीति (Monetary Policy) किसी देश के केंद्रीय बैंक द्वारा अपनाई जाने वाली वह समष्टि-आर्थिक (Macroeconomic) विनियामक नीति है, जिसके माध्यम से मुद्रा की आपूर्ति (Money Supply), तरलता की उपलब्धता, साख की लागत (ब्याज दरें) तथा वित्तीय प्रणाली की स्थिरता को नियंत्रित किया जाता है। भारतीय संदर्भ में भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 की उद्देशिका (Preamble) स्पष्ट रूप से यह अधिदेश निर्धारित करती है कि मौद्रिक नीति का प्राथमिक उद्देश्य मूल्य स्थिरता (Price Stability) बनाए रखना है, जबकि संवृद्धि (Economic Growth) के लक्ष्य को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

मूल्य स्थिरता और आर्थिक संवृद्धि के मध्य पारंपरिक आर्थिक विमर्श एक सतत संतुलन की मांग करता है:

क) मूल्य स्थिरता की अनिवार्यता: अनियंत्रित मुद्रास्फीति समाज के दुर्बल वर्गों की क्रय शक्ति का क्षरण करती है, निवेश निर्णयों में अनिश्चितता लाती है, घरेलू बचतों को हतोत्साहित करती है तथा रुपये के बाह्य विनिमय मूल्य को कमजोर करती है।

ख) आर्थिक संवृद्धि का समर्थन: यदि केंद्रीय बैंक मूल्य स्थिरता प्राप्त करने हेतु अत्यधिक कठोर अथवा संकुचनकारी मौद्रिक नीति अपनाता है, तो ऋण की लागत अत्यधिक बढ़ जाती है, जिससे निजी निवेश, उत्पादन तथा रोजगार सृजन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

ग) आधुनिक सर्वसम्मति: आधुनिक केंद्रीय बैंकिंग का यह स्थापित सिद्धांत है कि मूल्य स्थिरता और संवृद्धि परस्पर विरोधी नहीं हैं; वस्तुतः मध्यम एवं दीर्घकाल में टिकाऊ, समावेशी और उच्च आर्थिक संवृद्धि प्राप्त करने हेतु निम्न एवं स्थिर मुद्रास्फीति एक अनिवार्य पूर्व-शर्त है।

लचीला मुद्रास्फीति लक्ष्यीकरण (Flexible Inflation Targeting - FIT) का वैधानिक ढांचा

वर्ष 2014 से पूर्व भारत में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा 'एकाधिक संकेतक दृष्टिकोण' (Multiple Indicator Approach) का अनुसरण किया जाता था, जिसके अंतर्गत संवृद्धि, मुद्रास्फीति, विनिमय दर और वित्तीय स्थिरता को एक साथ साधने का प्रयास किया जाता था। इस दृष्टिकोण के कारण नीतिगत प्राथमिकताओं में स्पष्टता का अभाव रहता था और 2009 से 2013 के दौरान देश ने दोहरे अंकों की जीर्ण मुद्रास्फीति का सामना किया।

इस संकट के समाधान हेतु तत्कालीन डिप्टी गवर्नर **डॉ. उर्जित पटेल की अध्यक्षता में गठित विशेषज्ञ समिति (2014)** ने मौद्रिक नीति ढांचे के पूर्ण पुनर्गठन की सिफारिश की। समिति के प्रमुख सुझावों के आधार पर भारत सरकार और आरबीआई के मध्य 20 फरवरी 2015 को 'मौद्रिक नीति ढांचा समझौता' (Monetary Policy Framework Agreement) संपन्न हुआ। तत्पश्चात संसद द्वारा **वित्त अधिनियम, 2016** के माध्यम से भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 में संशोधन कर 'लचीले मुद्रास्फीति लक्ष्यीकरण' (FIT) को औपचारिक वैधानिक दर्जा प्रदान किया गया।

लचीले मुद्रास्फीति लक्ष्यीकरण (FIT) के प्रमुख वैधानिक आयाम:

अ) प्राथमिक विधिक मानक: अधिनियम की धारा 45ZA के अनुसार, केंद्र सरकार भारतीय रिजर्व बैंक के परामर्श से प्रत्येक पांच वर्ष में एक बार उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (CPI-संयुक्त) के आधार पर मुद्रास्फीति का लक्ष्य निर्धारित करेगी।

ब) वर्तमान लक्ष्य एवं सहिष्णुता बैंड: केंद्र सरकार ने 1 अप्रैल 2021 से 31 मार्च 2026 तक की अवधि हेतु (तथा 2026 से आगे के चक्र हेतु निरंतर) मुद्रास्फीति का लक्ष्य **4 प्रतिशत** निर्धारित किया है, जिसमें **2 प्रतिशत का ऊपरी और निचला सहिष्णुता स्तर (Tolerance Band)** विहित है:

केंद्रीय लक्ष्य: 4.0 प्रतिशत

न्यूनतम अनुमेय सीमा: 2.0 प्रतिशत

अधिकतम अनुमेय सीमा: 6.0 प्रतिशत (अर्थात 4 ± 2 प्रतिशत)

स) लक्ष्य मापन का सूचकांक: पूर्ववर्ती थोक मूल्य सूचकांक (WPI) को पूर्णतः त्यागकर राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय (NSO) द्वारा जारी **उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (CPI-संयुक्त / Headline Inflation)** को मौद्रिक नीति का आधिकारिक मापक घोषित किया गया।

द) लक्ष्य विफलता की वैधानिक परिभाषा: आरबीआई अधिनियम की धारा 45ZN के अनुसार, यदि औसत उपभोक्ता मूल्य मुद्रास्फीति लगातार **तीन तिमाहियों (Three Consecutive Quarters)** तक:

6 प्रतिशत की ऊपरी सहिष्णुता सीमा से अधिक बनी रहती है; अथवा

2 प्रतिशत की निचली सहिष्णुता सीमा से नीचे गिर जाती है,
तो इसे मौद्रिक नीति के क्रियान्वयन की विधिक विफलता माना जाएगा।

ङ) विफलता की स्थिति में संसद के प्रति जवाबदेही: विफलता की स्थिति में आरबीआई को केंद्र सरकार को एक औपचारिक प्रतिवेदन प्रस्तुत करना अनिवार्य होता है, जिसमें स्पष्ट करना होता है कि:

विफलता के अंतर्निहित कारण क्या थे;

मुद्रास्फीति को पुनः 4 प्रतिशत के लक्ष्य पर लाने हेतु प्रस्तावित उपचारात्मक उपाय क्या हैं; तथा

उन उपायों के माध्यम से लक्ष्य प्राप्त करने की अनुमानित समयावधि क्या होगी।

उपखंड b: मौद्रिक नीति समिति (MPC) - संरचना, मतदान प्रक्रिया, भूमिका, द्विमासिक समीक्षा

मौद्रिक नीति समिति (Monetary Policy Committee - MPC) का संस्थागत ढांचा

2016 से पूर्व नीतिगत ब्याज दरों का निर्धारण विशुद्ध रूप से भारतीय रिजर्व बैंक के गवर्नर के व्यक्तिगत विवेकाधीन अधिकार पर निर्भर करता था। इस एकाधिकार को समाप्त कर निर्णय-निर्माण को लोकतांत्रिक,

सामूहिक और संस्थागत रूप देने हेतु आरबीआई अधिनियम, 1934 की **धारा 45ZB** के अंतर्गत 6-सदस्यीय 'मौद्रिक नीति समिति' का गठन किया गया।

समिति की संरचना निम्नलिखित 6 सदस्यों से मिलकर होती है:

क) पदेन अध्यक्ष: भारतीय रिजर्व बैंक का गवर्नर।

ख) पदेन सदस्य: भारतीय रिजर्व बैंक का मौद्रिक नीति का प्रभारी डिप्टी गवर्नर।

ग) पदेन अधिकारी: केंद्रीय बोर्ड द्वारा नामित भारतीय रिजर्व बैंक का एक अधिकारी (सामान्यतः कार्यकारी निदेशक - मौद्रिक नीति)।

घ) तीन बाह्य स्वतंत्र सदस्य: केंद्र सरकार द्वारा नियुक्त अर्थशास्त्र, बैंकिंग या वित्त क्षेत्र के प्रतिष्ठित विशेषज्ञ।

बाह्य सदस्यों की नियुक्ति एवं अर्हताएं:

बाह्य सदस्यों का चयन एक उच्च स्तरीय कैबिनेट सचिव की अध्यक्षता वाली समिति (जिसमें आरबीआई गवर्नर और आर्थिक कार्य सचिव भी शामिल होते हैं) की संस्तुति पर किया जाता है।

बाह्य सदस्यों का कार्यकाल **4 वर्ष** का होता है तथा वे पुनर्नियुक्ति (Re-appointment) हेतु पात्र नहीं होते हैं (धारा 45ZC)।

सांसदों, विधायकों, किसी बैंक के कर्मचारियों अथवा वित्तीय संस्थाओं के निदेशकों को हितों के टकराव के कारण एमपीसी का बाह्य सदस्य नियुक्त नहीं किया जा सकता।
सांसदों, विधायकों, किसी बैंक के कर्मचारियों अथवा वित्तीय संस्थाओं के निदेशकों को हितों के टकराव के कारण एमपीसी का बाह्य सदस्य नियुक्त नहीं किया जा सकता।

घटक श्रेणी (Category)	सदस्य संरचना एवं विवरण (Structure & Details)
आरबीआई के आंतरिक सदस्य (Internal Members - 3)	• **गवर्नर:** पदेन अध्यक्ष (Chairperson) • **डिप्टी गवर्नर:** मौद्रिक नीति का प्रभारी सदस्य • **कार्यकारी निदेशक:** केन्द्रीय बोर्ड द्वारा नामित अधिकारी
केंद्र सरकार द्वारा नियुक्त सदस्य (External Experts - 3)	• **बाह्य स्वतंत्र विशेषज्ञ:** प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री व विशेषज्ञ • **कार्यकाल:** 4 वर्ष की अवधि (पुनर्नियुक्ति हेतु गैर-पात्र)

मतदान प्रक्रिया एवं टाई-ब्रेकिंग व्यवस्था

अधिनियम की धारा 45ZL के तहत एमपीसी की कार्यप्रणाली पूर्णतः पारदर्शी और लोकतांत्रिक मतदान पर आधारित है:

अ) एक व्यक्ति, एक मत: समिति का प्रत्येक सदस्य एक मत का हकदार होता है।

ब) गणपूर्ति (Quorum): एमपीसी की किसी भी बैठक के आयोजन हेतु न्यूनतम **4 सदस्यों की उपस्थिति** अनिवार्य होती है, जिनमें से कम से कम एक सदस्य आरबीआई का गवर्नर अथवा उनकी अनुपस्थिति में डिप्टी गवर्नर होना चाहिए।

स) सामान्य निर्णय प्रक्रिया: बैठक में विचारणीय प्रस्ताव (यथा रेपो दर में परिवर्तन या ठहराव) उपस्थित सदस्यों के बहुमत से पारित किए जाते हैं।

द) कास्टिंग वोट (Casting Vote / निर्णायक मत): मतों के बराबर-बराबर बंट जाने की स्थिति (3-3 का टाई) में, भारतीय रिजर्व बैंक के गवर्नर को **द्वितीय अथवा निर्णायक मत (Casting Vote)** देने का विधिक अधिकार प्राप्त होता है।

पारदर्शिता एवं सार्वजनिक प्रकटीकरण (Statutory Disclosures)
एमपीसी के निर्णयों की विश्वसनीयता बनाए रखने हेतु अधिनियम कड़े प्रकटीकरण मानदंड लागू करता है:

क) संकल्प का तत्काल प्रकटीकरण: बैठक के अंतिम दिन दोपहर में एमपीसी द्वारा अपनाए गए संकल्प (ब्याज दर निर्णय) को विस्तृत कारणों सहित सार्वजनिक किया जाता है।

ख) कार्यवृत्त (Minutes) का प्रकाशन: बैठक संपन्न होने के **14वें दिन** एमपीसी की कार्यवाही का संपूर्ण कार्यवृत्त जारी किया जाता है, जिसमें प्रत्येक सदस्य का व्यक्तिगत मत तथा उनके निर्णय के अंतर्निहित आर्थिक तर्कों का सार्वजनिक प्रकटीकरण अनिवार्य होता है।

ग) मौद्रिक नीति प्रतिवेदन (Monetary Policy Report): वर्ष में दो बार (अप्रैल और अक्टूबर में) आरबीआई को मुद्रास्फीति के स्रोतों और आगामी 6 से 18 महीनों के पूर्वानुमानों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करना होता है।

द्विमासिक समीक्षा (Bi-monthly Review) चक्र एवं नीतिगत रुख (Policy Stance)
एमपीसी हेतु यह विधिक रूप से अनिवार्य है कि वह एक वित्तीय वर्ष में **कम से कम 4 बैठकें** अवश्य आयोजित करे। व्यवहार में भारतीय रिजर्व बैंक प्रतिवर्ष **6 नियमित द्विमासिक बैठकें** (प्रत्येक दो माह में) आयोजित करता है (सामान्यतः अप्रैल, जून, अगस्त, अक्टूबर, दिसंबर और फरवरी माह में)। इसके अतिरिक्त गंभीर आर्थिक संकटों के समय विशेष अथवा आपातकालीन बैठकें भी बुलाई जा सकती हैं।

नीतिगत रुख (Policy Stance) के विभिन्न प्रकार:
ब्याज दर निर्धारण के साथ-साथ एमपीसी भविष्य की मौद्रिक दिशा को इंगित करने हेतु एक विशिष्ट 'रुख' घोषित करती है:

अ) उदारवादी रुख (Accommodative Stance): जब केंद्रीय बैंक आर्थिक संवृद्धि को गति देने हेतु प्रणाली में तरलता डालने और ब्याज दरों में कटौती करने या उन्हें कम बनाए रखने हेतु तत्पर होता है।

ब) तटस्थ रुख (Neutral Stance): जब केंद्रीय बैंक परिस्थितियों के अनुसार ब्याज दरें बढ़ाने अथवा घटाने दोनों दिशाओं में जाने हेतु पूर्णतः स्वतंत्र होता है; यह रुख प्रायः तब अपनाया जाता है जब मुद्रास्फीति और संवृद्धि दोनों संतुलित हों।

स) संकुचनकारी / सख्त रुख (Hawkish Stance): जब मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने हेतु प्राथमिक चिंता ब्याज दरों में वृद्धि करने की होती है।

द) समायोजन की वापसी (Withdrawal of Accommodation): संकट काल में दिए गए अतिरिक्त मौद्रिक प्रोत्साहनों और अत्यधिक तरलता को क्रमिक रूप से वापस लेना ताकि मुद्रास्फीति स्थिर रह सके।

विनियामक आयाम	2016 से पूर्व (पूर्ववर्ती ढांचा)	2016 से पश्चात (एमपीसी ढांचा)
निर्णय-निर्माता प्राधिकारी	विशुद्ध रूप से आरबीआई गवर्नर (व्यक्तिगत निर्णय)।	6-सदस्यीय मौद्रिक नीति समिति (सामूहिक निर्णय)।
मुद्रास्फीति का आधिकारिक लक्ष्य	कोई स्पष्ट वैधानिक संख्यात्मक लक्ष्य नहीं।	4 ± 2 प्रतिशत (विधिक रूप से संहिताबद्ध)।
मापन सूचकांक	मुख्य रूप से थोक मूल्य सूचकांक (WPI)।	उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (CPI-संयुक्त)।
जवाबदेही व्यवस्था	संसद के प्रति कोई प्रत्यक्ष कानूनी विफलता रिपोर्ट नहीं।	3 तिमाही विफलता पर केंद्र सरकार को बाध्यकारी रिपोर्ट।
मतदान की पारदर्शिता	आंतरिक तकनीकी सलाहकार समिति के मत गोपनीय।	प्रत्येक सदस्य के व्यक्तिगत मत और तर्कों का 14वें दिन अनिवार्य प्रकाशन।

खंड B: मौद्रिक नीति के उपकरण एवं संचरण

उपखंड a: मात्रात्मक साधन - नकद आरक्षित अनुपात, वैधानिक तरलता अनुपात, रेपो रेट, रिवर्स रेपो रेट, बैंक रेट, सीमांत स्थायी सुविधा, स्थायी जमा सुविधा, ओपन मार्केट ऑपरेशंस

मात्रात्मक (सामान्य) उपकरणों का स्वरूप

मात्रात्मक उपकरण (Quantitative / General Tools) वे साधन हैं जिनका उद्देश्य अर्थव्यवस्था में साख और मुद्रा की कुल मात्रा (Volume of Credit) को समग्र रूप से प्रभावित करना होता है। ये उपकरण वित्तीय प्रणाली के किसी विशिष्ट क्षेत्र के साथ भेदभाव किए बिना संपूर्ण अर्थव्यवस्था में तरलता के स्तर और ब्याज दरों की सामान्य लागत को नियंत्रित करते हैं।

श्रेणी (Category)	मात्रात्मक उपकरण (Quantitative Tools)
सांविधिक आरक्षित अनुपात (Statutory Reserve Ratios)	• **CRR (नकद आरक्षित अनुपात):** आरबीआई के पास नकद शेष • **SLR (वैधानिक तरलता अनुपात):** सरकारी प्रतिभूतियों व सोने में अनिवार्य निवेश

श्रेणी (Category)	मात्रात्मक उपकरण (Quantitative Tools)
नीतिगत दर एवं LAF गलियारा (Policy Rates & LAF Corridor)	• **SDF दर (निचली सीमा):** रेपो - 0.25% (बिना संपार्श्विक तरलता अवशोषण) • **नीतिगत रेपो दर:** मुख्य बेंचमार्क दर (अल्पकालिक उधारी) • **MSF / बैंक दर (ऊपरी सीमा):** रेपो + 0.25% (आपात्कालीन उधारी)
प्रत्यक्ष बाजार परिचालन (Direct Market Operations)	• **OMO (खुले बाजार की कार्रवाइयां):** सरकारी प्रतिभूतियों का प्रत्यक्ष क्रय/विक्रय • **मुद्रा स्वैप (Currency Swaps):** विदेशी मुद्रा विनिमय के माध्यम से तरलता प्रबंधन

1. नकद आरक्षित अनुपात (Cash Reserve Ratio - CRR)
आरबीआई अधिनियम, 1934 की **धारा 42(1)** के तहत अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों को अपनी शुद्ध मांग और सावधि देयताओं (Net Demand and Time Liabilities - NDTL) का एक निश्चित प्रतिशत अनिवार्य रूप से **भारतीय रिजर्व बैंक के पास नकद शेष (Cash Currency)** के रूप में बनाए रखना होता है।

अ) शून्य ब्याज की विधिक स्थिति: आरबीआई बैंकों द्वारा उसके पास रखे गए इस अनिवार्य CRR शेष पर **कोई ब्याज नहीं देता** है।

ब) कानूनी सीमाएं: पूर्व में अधिनियम में न्यूनतम 3% और अधिकतम 20% की सांविधिक सीमा थी, परंतु वर्ष 2006 के आरबीआई संशोधन अधिनियम द्वारा इस ऊपरी और निचली सीमा को पूरी तरह समाप्त कर दिया गया; अब केंद्रीय बैंक अपनी सुविधानुसार इसे किसी भी स्तर पर निर्धारित कर सकता है।

स) दैनिक न्यूनतम आवश्यकता: बैंकों को पाक्षिक आधार पर औसत CRR बनाए रखने के साथ-साथ किसी भी एकल दिन आवश्यक CRR का न्यूनतम **90 प्रतिशत** बनाए रखना अनिवार्य होता है।

द) आर्थिक प्रभाव: यदि आरबीआई CRR में वृद्धि करता है, तो बैंकों की साख सृजन क्षमता तुरंत संकुचित हो जाती है, जिससे बाजार में तरलता घटती है।

2. वैधानिक तरलता अनुपात (Statutory Liquidity Ratio - SLR)
बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की **धारा 24** के अनुसार, सभी बैंकिंग कंपनियों को अपनी शुद्ध मांग और सावधि देयताओं (NDTL) का एक निश्चित प्रतिशत कार्यदिवस की समाप्ति पर स्वयं अपने पास तरल परिसंपत्तियों के रूप में बनाए रखना अनिवार्य होता है।

क) अनुमत परिसंपत्तियों के घटक:

wincompete

अनकंबर्ड (ऋण-मुक्त) नकदी शेष।

स्वर्ण (बाजार मूल्य पर मूल्यांकित)।

केंद्र एवं राज्य सरकारों की अनुमोदित प्रतिभूतियां (Government Securities / Treasury Bills)।

ख) विधिक सीमा: अधिनियम के अनुसार SLR की अधिकतम वैधानिक सीमा **40 प्रतिशत** हो सकती है (वर्ष 2007 के संशोधन द्वारा 25% की न्यूनतम सीमा समाप्त कर दी गई)।

ग) दोहरा उद्देश्य: यह न केवल बैंकों की शोधन क्षमता (Solvency) और जमाकर्ताओं की सुरक्षा सुनिश्चित करता है, बल्कि सरकार के राजकोषीय घाटे की भरपाई हेतु सरकारी प्रतिभूतियों का एक सुनिश्चित और बंधक बाजार (Captive Market) भी उपलब्ध कराता है।

3. नीतिगत रेपो दर (Policy Repo Rate)

रेपो (Repurchase Option) वह ब्याज दर है जिस पर भारतीय रिजर्व बैंक वाणिज्यिक बैंकों को उनकी अल्पकालिक तरलता आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सरकारी प्रतिभूतियों की जमानत पर **अल्पकालिक ऋण (सामान्यतः 1 दिन से 14 दिन)** प्रदान करता है।

अ) संप्रभु नीतिगत दर: वर्तमान मौद्रिक व्यवस्था में रेपो दर ही भारतीय रिजर्व बैंक की 'मुख्य नीतिगत ब्याज दर' (Key Policy Rate) है। एमपीसी द्वारा इसी दर का निर्धारण किया जाता है।

ब) मुद्रास्फीति नियंत्रण का माध्यम: जब अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति का दबाव बढ़ता है, तो आरबीआई रेपो दर में वृद्धि करता है। इससे बैंकों हेतु केंद्रीय बैंक से उधारी लेना महंगा हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप बैंक अपने ग्राहकों हेतु ऋण की ब्याज दरें बढ़ा देते हैं, जिससे समग्र मांग और मुद्रा आपूर्ति में कमी आती है।

4. स्थायी जमा सुविधा (Standing Deposit Facility - SDF)

भारतीय रिजर्व बैंक ने अप्रैल 2022 में तरलता अवशोषण (Liquidity Absorption) के एक क्रांतिकारी उपकरण के रूप में **स्थायी जमा सुविधा (SDF)** को औपचारिक रूप से लागू किया। इसके लिए वर्ष 2018 में वित्त अधिनियम के माध्यम से आरबीआई अधिनियम, 1934 की धारा 17 में संशोधन कर उप-धारा (1A) को अंतःस्थापित किया गया था।

क) संपार्श्विक-रहित प्रकृति (Collateral-free Nature): पारंपरिक रिवर्स रेपो में जब बैंक अपना अतिरिक्त धन आरबीआई के पास रखते थे, तो आरबीआई को उन्हें संपार्श्विक के रूप में सरकारी प्रतिभूतियां देनी पड़ती थीं। अत्यधिक तरलता के समय केंद्रीय बैंक के पास सरकारी प्रतिभूतियों की कमी हो जाती थी। एसडीएफ के तहत आरबीआई बैंकों से **बिना कोई सरकारी प्रतिभूति गिरवी रखे** असीमित अधिशेष तरलता अवशोषित कर सकता है।

ख) एलएएफ गलियारे की निचली सीमा: वर्तमान चलनिधि समायोजन सुविधा (LAF Corridor) में स्थायी जमा सुविधा (SDF) दर को रेपो दर से **25 आधार अंक (0.25%) नीचे** निर्धारित किया गया है।

ग) प्रचालन स्थिति: इसने सामान्य परिस्थितियों में तरलता अवशोषण हेतु पारंपरिक फिक्स्ड रिवर्स रेपो दर का स्थान ले लिया है।

5. सीमांत स्थायी सुविधा (Marginal Standing Facility - MSF)

आरबीआई द्वारा मई 2011 में प्रारंभ की गई MSF एक दंडात्मक आपातकालीन उधारी सुविधा है।

अ) उद्देश्य: जब अंतर-बैंक मुद्रा बाजार में तरलता पूरी तरह सूख जाए और बैंकों के पास रेपो के तहत गिरवी रखने हेतु अतिरिक्त सरकारी प्रतिभूतियां शेष न हों, तो बैंक अति-अल्पकालिक (रातभर / Overnight) नकदी प्राप्त करने हेतु इसका उपयोग करते हैं।

ब) एसएलआर से आहरण का अधिकार: इस सुविधा की सबसे अनूठी विशेषता यह है कि बैंक अपनी **अनिवार्य वैधानिक तरलता अनुपात (SLR) कोटे की सरकारी प्रतिभूतियों में से एक निश्चित सीमा (वर्तमान में NDTL का 2 प्रतिशत) तक गिरवी रखकर** ऋण ले सकते हैं।

स) ब्याज दर: एमएसएफ दर सदैव रेपो दर से **25 आधार अंक (0.25%) उच्च** रखी जाती है। यह LAF कॉरिडोर की ऊपरी सीमा निर्धारित करती है।

6. बैंक दर (Bank Rate)
आरबीआई अधिनियम, 1934 की **धारा 49** के अनुसार, बैंक दर वह मानक ब्याज दर है जिस पर भारतीय रिजर्व बैंक प्रथम श्रेणी के वाणिज्यिक बिलों या प्रतिज्ञा-पत्रों को खरीदने या पुनः बट्टे (Rediscount) पर भुनाने हेतु तैयार रहता है।

क) आधुनिक भूमिका: आधुनिक वित्तीय प्रणाली में बिल पुनर्भुनाई का बाजार अत्यंत सीमित होने के कारण बैंक दर ने अपना प्रत्यक्ष ऋण नियंत्रण का प्रभाव खो दिया है।

ख) दंडात्मक दर का संरेखण: वर्तमान में बैंक दर को पूरी तरह **सीमांत स्थायी सुविधा (MSF) दर के साथ संरेखित (Pegged)** कर दिया गया है। जब भी एमएसएफ दर बदलती है, बैंक दर स्वतः बदल जाती है।

ग) विधिक उपयोग: इसका उपयोग मुख्य रूप से बैंकों द्वारा सीआरआर और एसएलआर की सांविधिक आवश्यकताओं का पालन न करने पर उन पर अधिरोपित किए जाने वाले दंडात्मक ब्याज (Penal Interest Rates) की गणना के आधार के रूप में किया जाता है।

7. आधुनिक चलनिधि समायोजन सुविधा (LAF) गलियारा
वर्तमान मौद्रिक नीति संचालन में दैनिक तरलता प्रबंधन हेतु 50 आधार अंकों का एक सममित (Symmetric) गलियारा स्थापित है:

SDF दर (निचली सीमा)	नीतिगत रेपो दर	MSF / बैंक दर (ऊपरी सीमा)
रेपो दर - 0.25%	(केंद्रीय बेंचमार्क)	रेपो दर + 0.25%

8. खुले बाजार की कार्रवाइयां (Open Market Operations - OMO)
आरबीआई द्वारा द्वितीयक बाजार में वाणिज्यिक बैंकों और वित्तीय संस्थाओं से सरकारी प्रतिभूतियों (G-Secs) का एकपक्षीय एवं प्रत्यक्ष क्रय-विक्रय ओएमओ कहलाता है।

अ) टिकाऊ तरलता का नियंत्रण: रेपो और एसडीएफ अल्पकालिक तरलता को प्रबंधित करते हैं, जबकि ओएमओ के माध्यम से प्रणाली में **स्थायी (Durable) तरलता** का अंतःक्षेपण अथवा अवशोषण किया जाता है।

ब) कार्यप्रणाली: जब बाजार में तरलता का अभाव होता है, तो आरबीआई बैंकों से सरकारी प्रतिभूतियां खरीदता है (जिससे नकदी बैंकों के पास जाती है)। जब बाजार में अत्यधिक नकदी होती है, तो आरबीआई अपनी धारित प्रतिभूतियों को बेचकर नकदी को सोख लेता है।

स) ऑपरेशन ट्विस्ट (Operation Twist): आरबीआई द्वारा अमेरिकी फेडरल रिजर्व की तर्ज पर दीर्घकालिक ब्याज दरों को घटाने तथा अल्पकालिक दरों को स्थिर रखने हेतु एक साथ अल्पकालिक प्रतिभूतियों की बिक्री और दीर्घकालिक प्रतिभूतियों का क्रय करने का विशेष ओएमओ प्रचालन।

मात्रात्मक उपकरण	विधिक/नियामक आधार	प्राथमिक आर्थिक तंत्र	प्रभाव (दर बढ़ाने पर)
नकद आरक्षित अनुपात (CRR)	आरबीआई अधिनियम 1934, धारा 42	बैंकों की नकदी को आरबीआई के पास बिना ब्याज ब्लॉक करना।	बैंकिंग प्रणाली की ऋण सृजन क्षमता में प्रत्यक्ष संकुचन।
वैधानिक तरलता अनुपात (SLR)	बैंकिंग विनियमन अधिनियम 1949, धारा 24	बैंकों की निधियों को सरकारी प्रतिभूतियों व सोने में बांधना।	सरकारी उधारी को समर्थन; वाणिज्यिक साख की मात्रा सीमित।
नीतिगत रेपो दर	आरबीआई अधिनियम 1934, धारा 45ZB	अल्पकालिक संपार्श्विक-आधारित केंद्रीय बैंक पुनर्वित्त।	अर्थव्यवस्था में उधारी की समग्र ब्याज दरों में वृद्धि।
स्थायी जमा सुविधा (SDF)	आरबीआई अधिनियम 1934, धारा 17(1A)	बिना संपार्श्विक अतिरिक्त तरलता का रातोंरात अवशोषण।	प्रणाली की अतिरिक्त तरलता में कमी; न्यूनतम ब्याज तल स्थापित।
सीमांत स्थायी सुविधा (MSF)	आरबीआई द्वारा मई 2011 से अधिसूचित	एसएलआर प्रतिभूतियों को गिरवी रखकर आपातकालीन रातभर उधारी।	अंतर-बैंक मुद्रा बाजार की ब्याज दरों की उच्चतम सीमा तय।
खुले बाजार की कार्रवाइयां (OMO)	आरबीआई अधिनियम 1934, धारा 17(8)	सरकारी प्रतिभूतियों की एकमुश्त खुली खरीद या बिक्री।	स्थायी प्रणालीगत तरलता का सीधा विस्तार अथवा संकुचन।

उपखंड b: गुणात्मक साधन - मार्जिन आवश्यकताएं, नैतिक दबाव, साख का राशनिंग, प्रत्यक्ष कार्रवाई, मौद्रिक संचरण की समस्याएं

गुणात्मक (चयनात्मक) साख नियंत्रण उपकरणों का स्वरूप

मात्रात्मक उपकरणों के विपरीत, गुणात्मक उपकरण (Qualitative / Selective Tools) साख की कुल मात्रा को प्रभावित करने के स्थान पर साख के उपयोग की **दिशा, प्रवाह और प्रयोजन (Direction and Allocation of Credit)** को नियंत्रित करते हैं। इनका उद्देश्य सट्टेबाजी, अनुत्पादक संचय और विलासितापूर्ण उपभोग को हतोत्साहित करना तथा प्राथमिक और उत्पादक क्षेत्रों की ओर ऋण को प्रोत्साहित करना होता है।

बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 21 और 35A केंद्रीय बैंक को चयनात्मक साख नियंत्रण लागू करने की व्यापक वैधानिक शक्तियां प्रदान करती हैं।

1. मार्जिन आवश्यकताओं का निर्धारण (Fixing Margin Requirements)
मार्जिन से आशय किसी ऋण हेतु गिरवी रखी जाने वाली प्रतिभूति के वर्तमान बाजार मूल्य तथा बैंक द्वारा स्वीकृत अधिकतम ऋण राशि के मध्य के प्रतिशत अंतर से है।

मार्जिन = प्रतिभूतिकाबाजारमूल्य – स्वीकृतऋणकीराशि

अ) कार्यप्रणाली: यदि किसी शेयर अथवा वस्तु के स्टॉक का बाजार मूल्य 100 रुपये है और आरबीआई 40% मार्जिन निर्धारित करता है, तो बैंक अधिकतम 60 रुपये का ऋण दे सकता है।

ब) चयनात्मक उपयोग: जब किसी विशिष्ट वस्तु (यथा खाद्यान्न, तिलहन या शेयर बाजार) में अत्यधिक सट्टेबाजी होती है, तो आरबीआई उस विशिष्ट क्षेत्र के विरुद्ध दिए जाने वाले ऋणों पर मार्जिन को बढ़ाकर 70-80% कर देता है। इससे सटोरियों को बैंक साख मिलना अत्यंत कठिन हो जाता है, जिससे सट्टेबाजी पर तत्काल रोक लगती है।

2. नैतिक दबाव (Moral Suasion)
यह एक मनोवैज्ञानिक और परामर्शदात्री अनौपचारिक उपकरण है, जिसमें आरबीआई बैंकों को किसी विधिक आदेश के बिना, अनौपचारिक बैठकों, सम्मेलनों और परिपत्रों के माध्यम से राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुसार आचरण करने हेतु राजी (Persuade) करता है।

क) अनुप्रयोग: बैंकों को नीतिगत दरों में कटौती का लाभ तत्काल अंतिम ग्राहकों तक पहुंचाने, संवेदनशील क्षेत्रों (रियल एस्टेट, सट्टा बाजार) को अत्यधिक ऋण न देने अथवा तनावग्रस्त परिसंपत्तियों (NPA) के समाधान में पारदर्शिता बरतने हेतु नैतिक रूप से प्रेरित करना।

ख) शक्ति: यद्यपि यह औपचारिक रूप से कानूनन बाध्यकारी नहीं दिखता, परंतु आरबीआई की नियामक संप्रभुता के कारण कोई भी वाणिज्यिक बैंक केंद्रीय बैंक की 'सलाह' की अवहेलना करने का साहस नहीं करता।

3. साख का राशनिंग (Rationing of Credit)
यह किसी बैंक अथवा विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र हेतु ऋण की अधिकतम सीमा (Ceiling) पूर्व-निर्धारित करने की विधिक पद्धति है:

अ) अधिकतम ऋण सीमा: आरबीआई यह निर्धारित कर सकता है कि कोई बैंक अपने कुल ऋणों का एक विशिष्ट प्रतिशत से अधिक किसी एकल उद्योग, क्षेत्र अथवा व्यावसायिक घराने को नहीं दे सकता (यथा लार्ज एक्सपोजर फ्रेमवर्क)।

ब) कोटा निर्धारण: विभिन्न व्यावसायिक क्षेत्रों हेतु प्राथमिकताओं के आधार पर साख कोटा निर्धारित करना, ताकि बड़े उद्योग समस्त साख को न सोख लें और लघु व कुटीर उद्योगों हेतु पर्याप्त पूंजी बची रहे।

Wincompete

4. उपभोक्ता साख का नियमन (Regulation of Consumer Credit)
टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं (कार, टेलीविजन, इलेक्ट्रॉनिक्स) की खरीद हेतु दिए जाने वाले ऋणों की शर्तों को नियंत्रित करना:

क) न्यूनतम डाउन-पेमेंट (Down-payment) की सीमा बढ़ाना।

ख) मासिक किश्तों (EMI) के भुगतान की अधिकतम समयावधि को कम करना।

ग) जब मुद्रास्फीति को नियंत्रित करना हो, तो डाउन-पेमेंट बढ़ाकर उपभोक्ता मांग को तुरंत दबा दिया जाता है।

5. प्रत्यक्ष कार्रवाई (Direct Action)
जब कोई वाणिज्यिक बैंक आरबीआई के निर्देशों, सांविधिक आरक्षित अनुपातों अथवा चयनात्मक साख नियंत्रणों की बार-बार अवहेलना करता है, तो केंद्रीय बैंक उसके विरुद्ध प्रत्यक्ष दंडात्मक कदम उठाता है:

अ) दंडात्मक ब्याज लगाना।

ब) पुनर्वित्त (Refinancing) और एलएएफ (LAF) खिड़की तक बैंक की पहुंच को पूरी तरह प्रतिबंधित करना।

स) बैंक को त्वरित सुधारात्मक कार्रवाई (PCA Framework) के अधीन रखना, शाखा विस्तार पर रोक लगाना अथवा बैंक प्रबंधन को निलंबित करना।

उपखंड c: मौद्रिक संचरण (Monetary Transmission) की समस्याएं एवं विनियामक सुधार

मौद्रिक संचरण की अवधारणा एवं इसके चार पारंपरिक माध्यम
मौद्रिक संचरण (Monetary Transmission) वह गतिशील समष्टि-आर्थिक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से केंद्रीय बैंक द्वारा नीतिगत रेपो दर में किए गए परिवर्तनों का प्रभाव वित्तीय बाजारों, बैंकों की जमा व ऋण दरों, परिसंपत्ति मूल्यों, विनिमय दर और अंततः समग्र मांग, उत्पादन तथा मुद्रास्फीति पर क्रमिक रूप से पहुंचता है।

मौद्रिक संचरण के चार प्राथमिक चैनल (Monetary Transmission Channels)

क्र.	संचरण चैनल (Channel)	संचरण प्रक्रिया एवं प्रभाव (Mechanism & Impact)
1	ब्याज दर चैनल	रेपो दर परिवर्तन ➔ बैंक उधारी व जमा दरों में बदलाव ➔ निवेश एवं उपभोग व्यय पर सीधा प्रभाव
2	परिसंपत्ति मूल्य चैनल	ब्याज दर परिवर्तन ➔ बॉन्ड, इक्विटी व रियल एस्टेट मूल्यों में बदलाव ➔ संपत्ति प्रभाव (Wealth Effect)
3	विनिमय दर चैनल	घरेलू ब्याज दर ➔ विदेशी पूंजी अंतर्वाह/बहिर्वाह ➔ रुपये का विनिमय मूल्य ➔ आयात-निर्यात प्रतिस्पर्धा
4	बैंक साख चैनल	नीतिगत तरलता में परिवर्तन ➔ बैंकों की ऋण देने की कुल क्षमता (Credit Availability) में बदलाव

[नीतिगत दर परिवर्तन ➔ वित्तीय बाजार / परिसंपत्ति मूल्य / विनिमय दर / बैंक साख ➔ समग्र मांग एवं मुद्रास्फीति]

भारतीय अर्थव्यवस्था में मौद्रिक संचरण की ऐतिहासिक अड़चनें एवं समस्याएं

भारत में मौद्रिक संचरण ऐतिहासिक रूप से अत्यधिक सुस्त, अधूरा और असममित (Asymmetric) रहा है। जब आरबीआई मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने हेतु रेपो दर बढ़ाता था, तो बैंक अपनी ऋण दरों को तुरंत बढ़ा देते थे; परंतु जब आरबीआई संवृद्धि को सहारा देने हेतु रेपो दर में कटौती करता था, तो बैंक अपनी ऋण दरों को घटाने में महीनों की देरी करते थे।

इस संचरण विफलता के प्रमुख संरचनात्मक कारण निम्नलिखित रहे हैं:

क) गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों (NPA) का विशाल बोझ:

बैंकों के बहीखातों में फंसे हुए कर्ज (दबावग्रस्त ऋण) के कारण बैंकों को भारी प्रावधानीकरण (Provisioning) करना पड़ता था।

लाभप्रदता बनाए रखने हेतु बैंक अपनी ऋण दरों (Lending Rates) को कृत्रिम रूप से उच्च बनाए रखने हेतु विवश थे, जिससे केंद्रीय बैंक की दर कटौतियों का लाभ अंतिम ग्राहकों तक नहीं पहुंच पाता था।

ख) छोटी बचत योजनाओं (Small Savings Schemes) से कड़ी प्रतिस्पर्धा:

लोक भविष्य निधि (PPF), राष्ट्रीय बचत पत्र (NSC) और सुकन्या समृद्धि जैसी सरकारी लघु बचत योजनाओं पर ब्याज दरें सरकार द्वारा तय की जाती हैं, जो प्रायः राजनीतिक कारणों से उच्च बनी रहती हैं।

यदि वाणिज्यिक बैंक रेपो दर घटने पर अपनी सावधि जमा (FD) दरों में कटौती करते थे, तो जमाकर्ताओं की बचतें बैंकों से निकलकर डाकघर की लघु बचत योजनाओं में स्थानांतरित होने लगती थीं। अतः बैंक अपनी जमा दरें नहीं घटा पाते थे, जिसके कारण उनकी ऋण लागत भी कम नहीं हो पाती थी।

ग) देयताओं की कठोर संरचना (Rigidity of Liabilities):

भारतीय बैंकों की कुल जमाओं का अधिकांश हिस्सा (लगभग 50-60%) सावधि जमाओं (Fixed Deposits) के रूप में होता है, जो 1 से 3 वर्ष की पूर्व-निर्धारित स्थिर ब्याज दरों पर अनुबंधित होती हैं।

अतः नीतिगत दर घटने पर भी बैंकों की कोष की औसत लागत (Cost of Funds) रातों-रात नहीं घटती, बल्कि उसमें 12 से 18 महीनों का लंबा समय लगता है।

wincompete

घ) राजकोषीय घाटा और बाजार उधारी:

सरकार द्वारा अपने विशाल राजकोषीय घाटे की पूर्ति हेतु वित्तीय बाजार से बड़े पैमाने पर उधारी लेने से 'क्राउडिंग-आउट प्रभाव' (Crowding-out Effect) उत्पन्न होता है, जिससे बाजार में दीर्घकालिक बांड प्रतिफल उच्च बने रहते हैं और ब्याज दरें नीचे नहीं आ पातीं।

ब्याज दर निर्धारण व्यवस्थाओं का क्रमिक विकास: BPLR से EBLR तक
आरबीआई ने मौद्रिक संचरण की सुस्ती और अपारदर्शिता को दूर करने हेतु पिछले दो दशकों में चार भिन्न-भिन्न बेंचमार्क प्रणालियों का परीक्षण किया है:

बेंचमार्क व्यवस्था	प्रभावी समयावधि	संरचनात्मक विशेषताएं	संचरण विफलता का प्राथमिक कारण
BPLR (बेंचमार्क प्राइम लेंडिंग रेट)	2003 से 2010	बैंकों द्वारा अपने सर्वोत्तम ग्राहकों हेतु घोषित काल्पनिक न्यूनतम दर।	पूर्णतः अपारदर्शी; बैंक बड़े कॉर्पोरेट्स को बीपीएलआर से काफी नीचे ऋण देते थे तथा खुदरा ग्राहकों से अधिक वसूलते थे।
बेस रेट (Base Rate)	2010 से 2016	कोष की औसत लागत (Average Cost of Funds) पर आधारित न्यूनतम दर, जिसके नीचे ऋण देना विधिक रूप से निषिद्ध था।	बैंक कोष की औसत लागत निकालने में मनमानी पद्धतियां अपनाते थे; रेपो दर कटौती का लाभ ग्राहकों को नहीं दिया जाता था।
MCLR (कोषों की सीमांत लागत आधारित उधारी दर)	2016 से 2019	नए संकलित कोषों की सीमांत लागत (Marginal Cost) पर आधारित वैज्ञानिक एवं मासिक रूप से पुनरीक्षित दर।	यद्यपि यह बेस रेट से बेहतर थी, परंतु यह अब भी 'आंतरिक बेंचमार्क' थी; बैंकों के पास दरों को पुनर्निर्धारित (Reset) करने में अत्यधिक विवेकाधिकार था।
EBLR (बाह्य बेंचमार्क आधारित उधारी दर)	**1 अक्टूबर 2019 से वर्तमान**	ऋण दरों को अनिवार्य रूप से एक स्वतंत्र **बाह्य बाजार बेंचमार्क** (जैसे रेपो दर या टी-बिल यील्ड) से सीधे जोड़ना।	संचरण की बाधाओं का ऐतिहासिक समाधान; रेपो दर में परिवर्तन होते ही ऋण दर स्वतः तत्काल बदल जाती है।

wincompete

ईबीएलआर (External Benchmark Lending Rate - EBLR) व्यवस्था की सफलता
मौद्रिक संचरण की ऐतिहासिक विकृति को समाप्त करने हेतु आरबीआई ने **1 अक्टूबर 2019 से** सभी वाणिज्यिक बैंकों हेतु यह अनिवार्य कर दिया कि वे सभी नए फ्लोटिंग-रेट व्यक्तिगत ऋण (आवास, ऑटो) तथा एमएसएमई (MSME) ऋणों को केवल एक 'बाह्य बेंचमार्क' से ही लिंक करेंगे।

अनुमत बाह्य बेंचमार्क:

अ) भारतीय रिजर्व बैंक की नीतिगत रेपो दर (वर्तमान में 80% से अधिक ऋण इसी से लिंक हैं)।

ब) फाइनेंशियल बेंचमार्क्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड (FBIL) द्वारा प्रकाशित 91-दिवसीय ट्रेजरी बिल यील्ड।

स) FBIL द्वारा प्रकाशित 182-दिवसीय ट्रेजरी बिल यील्ड अथवा अन्य कोई अनुमोदित बाह्य बाजार बेंचमार्क।

ईबीएलआर के विधिक नियम:

स्प्रेड (Spread) का स्थिरीकरण: बैंक बाह्य बेंचमार्क के ऊपर अपना परिचालन व्यय और क्रेडिट जोखिम प्रीमियम (क्रेडिट स्प्रेड) जोड़ सकते हैं, परंतु बैंक इस स्प्रेड को ऋण अवधि के दौरान अपनी मर्जी से नहीं बढ़ा सकते (जब तक कि उधारकर्ता की क्रेडिट रेटिंग में कोई सारवान गिरावट न आए)।

अनिवार्य त्रैमासिक रिसेट: बाह्य बेंचमार्क में होने वाले प्रत्येक बदलाव को बैंकों द्वारा कम से कम **प्रत्येक तीन माह में एक बार** अनिवार्य रूप से ग्राहक की ऋण ब्याज दर में समायोजित करना विधिक रूप से बाध्यकारी है।

परिणाम: ईबीएलआर लागू होने के पश्चात भारतीय बैंकिंग इतिहास में पहली बार मौद्रिक नीति संचरण लगभग पूर्ण, तत्काल और पारदर्शी रूप से संचालित होना प्रारंभ हुआ है।

महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली एवं प्रमुख अवधारणाएं

शुद्ध मांग और सावधि देयताएं (NDTL - Net Demand and Time Liabilities): बैंकों की कुल जमाओं (चालू खाता, बचत खाता - मांग देयताएं; तथा सावधि जमा, आवर्ती जमा - सावधि देयताएं) में से अन्य बैंकों के पास जमा परिसंपत्तियों को घटाने के बाद बची हुई शुद्ध राशि। इसी NDTL के आधार पर सीआरआर और एसएलआर की सांविधिक गणना की जाती है।

चलनिधि समायोजन सुविधा (LAF): भारतीय रिजर्व बैंक का वह दैनिक तरलता प्रबंधन तंत्र जिसके अंतर्गत केंद्रीय बैंक अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों और प्राथमिक डीलरों को रेपो दर पर अल्पकालिक तरलता सुलभ कराता है तथा स्थायी जमा सुविधा (SDF) अथवा रिवर्स रेपो के माध्यम से अधिशेष तरलता को अवशोषित करता है।

तप्त मुद्रा (Hot Money): वह अल्पकालिक विदेशी पोर्टफोलियो पूंजी जो विभिन्न देशों के मध्य केवल उच्च ब्याज दरों अथवा त्वरित पूंजीगत लाभ की तलाश में तीव्र गति से प्रवाहित होती है। यह घरेलू मुद्रा के विनिमय मूल्य और तरलता में अत्यधिक अस्थिरता उत्पन्न करती है।

तरलता जाल (Liquidity Trap): अर्थशास्त्री जॉन मेनार्ड कीन्स द्वारा प्रतिपादित वह मौद्रिक स्थिति जिसमें नाममात्र ब्याज दरें शून्य या ऐतिहासिक न्यूनतम स्तर के करीब पहुंच जाती हैं और मुद्रा की सट्टा मांग पूर्णतः लोचदार हो जाती है। ऐसी स्थिति में केंद्रीय बैंक द्वारा प्रणाली में कितना भी पैसा डाला जाए, लोग उसे निवेश या खर्च करने के स्थान पर केवल निष्क्रिय नकदी के रूप में जमा करने लगते हैं; परिणामस्वरूप मौद्रिक नीति पूरी तरह शक्तिहीन हो जाती है।

मुद्रा गुणक (Money Multiplier): व्यापक मुद्रा (Broad Money - M_3) और उच्च अधिकार प्राप्त आरक्षित मुद्रा (Reserve Money - M_0) के मध्य का अनुपात। यह दर्शाता है कि केंद्रीय बैंक द्वारा सृजित प्रत्येक 1 रुपये के प्राथमिक आरक्षित आधार से बैंकिंग प्रणाली वाणिज्यिक ऋणों के माध्यम से कितनी अतिरिक्त मुद्रा का सृजन करती है।

असममित संचरण (Asymmetric Transmission): वित्तीय प्रणाली का वह संरचनात्मक दोष जिसमें नीतिगत दरों में वृद्धि का संचरण बैंकों द्वारा अपनी ऋण दरों में तत्काल कर दिया जाता है, परंतु नीतिगत दरों में कटौती का लाभ अंतिम उधारकर्ताओं तक पहुंचाने में बैंक अत्यधिक विलंब करते हैं अथवा आंशिक कटौती ही करते हैं।

ऑपरेशन ट्विस्ट (Operation Twist): केंद्रीय बैंक का वह गैर-पारंपरिक खुला बाजार प्रचालन जिसमें कुल मुद्रा आपूर्ति को अपरिवर्तित रखते हुए, दीर्घावधि प्रतिभूतियों को खरीदा जाता है तथा अल्पावधि प्रतिभूतियों को बेचा जाता है, ताकि दीर्घावधि बांड प्रतिफल (Yield) को घटाकर कॉर्पोरेट निवेश को प्रोत्साहित किया जा सके।

अध्याय 20: राजकोषीय नीति, राजकोषीय संघवाद एवं सार्वजनिक ऋण प्रबंधन

खंड A: राजकोषीय नीति के आयाम एवं प्रभाव

उपखंड a: विस्तारवादी बनाम संकुचनकारी राजकोषीय नीति, चक्रीय बनाम प्रति-चक्रीय राजकोषीय नीति

राजकोषीय नीति की समष्टि-आर्थिक संकल्पना एवं उद्देश्य

राजकोषीय नीति (Fiscal Policy) से आशय सरकार की उस आय-व्यय संबंधी नीति से है जिसके अंतर्गत कराधान (Taxation), सार्वजनिक व्यय (Public Expenditure), सार्वजनिक ऋण (Public Debt) तथा घाटे के वित्तपोषण (Deficit Financing) के माध्यम से समष्टि-आर्थिक उद्देश्यों को साधा जाता है। प्रख्यात अर्थशास्त्री जॉन मेनार्ड कीन्स के अनुसार, राजकोषीय नीति केवल आय जुटाने और व्यय करने का वित्तीय खाता मात्र नहीं है, बल्कि यह अर्थव्यवस्था में समग्र मांग (Aggregate Demand), उत्पादन क्षमता, रोजगार सृजन तथा मूल्य स्थिरता को विनियमित करने का एक शक्तिशाली हस्तक्षेपकारी उपकरण है।

कल्याणकारी एवं विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के परिप्रेक्ष्य में राजकोषीय नीति के प्राथमिक उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

क) उच्च एवं संधारणीय आर्थिक संवृद्धि दर की प्राप्ति तथा पूंजी निर्माण को गति प्रदान करना।

ख) पूर्ण रोजगार अथवा उच्च रोजगार स्तरों का सृजन करना।

ग) मुद्रास्फीति एवं अपस्फीति के दोलनों को नियंत्रित कर आंतरिक मूल्य स्थिरता बनाए रखना।

घ) प्रगतिशील कराधान और लक्षित सार्वजनिक अंतरणों द्वारा आय, संपदा और अवसरों की विषमताओं को कम करना।

ङ) अवसंरचनात्मक विकास और संतुलित क्षेत्रीय विकास को प्रोत्साहित करना।

wincompete

विस्तारवादी बनाम संकुचनकारी राजकोषीय नीति

अर्थव्यवस्था में चक्रीय उतार-चढ़ाव (व्यापार चक्र) के प्रत्युत्तर में सरकार द्वारा अपनाई जाने वाली दिशा के आधार पर राजकोषीय नीति को दो स्पष्ट रूपों में वर्गीकृत किया जाता है:

राजकोषीय नीति का प्रकार	सार्वजनिक व्यय (Public Expenditure)	कराधान (Taxation)
विस्तारवादी (Expansionary)	वृद्धि (▲)	कटौती (▼)
संकुचनकारी (Contractionary)	कटौती (▼)	वृद्धि (▲)

क) विस्तारवादी राजकोषीय नीति (Expansionary Fiscal Policy):

प्रयोग की परिस्थितियां: यह नीति सामान्यतः आर्थिक मंदी, अवसाद (Depression) अथवा न्यून मांग की स्थिति में अपनाई जाती है, जब निजी उपभोग और निजी निवेश में तीव्र गिरावट आती है।

नीतिगत उपकरण: सरकार अपने सार्वजनिक व्यय (विशेषकर अवसंरचना, स्वास्थ्य, शिक्षा और पूंजीगत परिसंपत्तियों पर) में व्यापक वृद्धि करती है तथा प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष करों की दरों में कटौती करती है।

आर्थिक संचरण: करों में कटौती से व्यक्तियों की प्रयोज्य आय (Disposable Income) बढ़ती है, जिससे उपभोग व्यय बढ़ता है। साथ ही, सार्वजनिक व्यय में वृद्धि से रोजगार और उत्पादन बढ़ता है, जिससे कीन्सियन गुणक प्रभाव (Keynesian Multiplier Effect) के माध्यम से समग्र मांग वक्र दाहिनी ओर विस्थापित होता है।

राजकोषीय परिणाम: यह नीति जानबूझकर राजकोषीय घाटे को बढ़ाती है, जिसकी भरपाई बाजार उधारी द्वारा की जाती है।

ख) संकुचनकारी राजकोषीय नीति (Contractionary Fiscal Policy):

प्रयोग की परिस्थितियां: जब अर्थव्यवस्था अति-तापन (Overheating) के दौर से गुजर रही हो और अत्यधिक मांग के कारण मुद्रास्फीति अनियंत्रित हो रही हो।

नीतिगत उपकरण: सरकार अपने गैर-विकासात्मक और उपभोग व्ययों में कठोर कटौती करती है तथा करों की दरों में वृद्धि करती है अथवा नए उपकर/अधिभार आरोपित करती है।

आर्थिक संचरण: उच्च करों और कम सरकारी व्यय से नागरिकों और कॉर्पोरेट्स के पास व्यय-योग्य अधिशेष घट जाता है, जिससे समग्र मांग संकुचित होती है और मुद्रास्फीतिकारी दबाव शांत होता है।

wincompete

तुलनात्मक आयाम	विस्तारवादी राजकोषीय नीति	संकुचनकारी राजकोषीय नीति
आर्थिक संदर्भ	मंदी, अवसाद एवं बेरोजगारी का संकट।	अति-तापन (Overheating) एवं उच्च मांग-जनित मुद्रास्फीति।
सरकारी व्यय का रुख	सार्वजनिक पूंजीगत एवं राजस्व व्यय में तीव्र विस्तार।	सरकारी व्यय में अनुशासन एवं कठोर कटौती।
कराधान की दिशा	कर दरों में रियायतें, छूट एवं कटौती।	कर दरों में वृद्धि, कर आधार का विस्तार।
समग्र मांग पर प्रभाव	समग्र मांग (Aggregate Demand) में त्वरित वृद्धि।	समग्र मांग का नियंत्रित संकुचन।
राजकोषीय घाटा	बजट घाटा एवं राजकोषीय घाटा बढ़ता है।	बजट अधिशेष अथवा राजकोषीय घाटे में तीव्र कमी।

चक्रीय बनाम प्रति-चक्रीय राजकोषीय नीति

व्यापार चक्र (Business Cycles) के साथ राजकोषीय नीति का संरेखण इस बात को निर्धारित करता है कि राजकोषीय नीति आर्थिक अस्थिरता को बढ़ाती है अथवा उसे शांत करती है:

अ) चक्रीय अथवा चक्र-समर्थक राजकोषीय नीति (Pro-cyclical Fiscal Policy):

यह नीति व्यापार चक्र की दिशा में ही कार्य करती है, अर्थात यह 'उछाल' (Boom) के समय विस्तारवादी हो जाती है और 'मंदी' (Recession) के समय संकुचनकारी।

कार्यप्रणाली: जब अर्थव्यवस्था में उछाल होता है और कर राजस्व स्वतः बढ़ता है, तो सरकार अत्यधिक व्यय करने लगती है। जब मंदी आती है और राजस्व गिरता है, तो सरकार अपने व्यय में कटौती कर देती है।

परिणाम: यह नीति आर्थिक चक्रों के उतार-चढ़ाव को और अधिक तीव्र तथा विनाशकारी बना देती है। यह ऐतिहासिक रूप से कई विकासशील देशों की कमजोरी रही है, जहां ऋण सीमाओं की विवशता के कारण मंदी में व्यय घटाना पड़ता है।

ब) प्रति-चक्रीय राजकोषीय नीति (Counter-cyclical Fiscal Policy):

यह नीति व्यापार चक्र की दिशा के विपरीत कार्य करती है और एक आर्थिक प्रघात-अवशोषक (Shock Absorber) के रूप में कार्य करती है।

कार्यप्रणाली: आर्थिक उछाल के समय सरकार करों को उच्च रखकर राजकोषीय बचत (अधिशेष) जमा करती है और व्यय को संयमित रखती है। जब मंदी आती है, तो पूर्व-संचित वित्तीय क्षमता का उपयोग करते हुए भारी सार्वजनिक निवेश करती है।

भारतीय अनुभव: भारत ने कोविड-19 महामारी के संकट के दौरान तथा उसके पश्चात पूंजीगत व्यय में अभूतपूर्व वृद्धि करके प्रति-चक्रीय राजकोषीय नीति का सफल प्रयोग किया, जिससे निजी निवेश की सुस्ती के बावजूद आर्थिक विकास की गति बनी रही।

उपखंड b: कराधान, व्यय और घाटे के प्रबंधन का समग्र अर्थव्यवस्था पर प्रभाव, क्राउडिंग-आउट प्रभाव

कराधान का समष्टि-आर्थिक प्रभाव: कर उछाल एवं लोचशीलता

कराधान सरकार की संप्रभु आय का सबसे बड़ा स्रोत है। इसका अर्थव्यवस्था पर प्रभाव केवल राजस्व संकलन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह आर्थिक व्यवहार को भी रूपांतरित करता है:

क) विरूपणकारी प्रभाव एवं डेडवेट लॉस (Deadweight Loss): अत्यधिक उच्च कर दरें कार्य करने, बचत करने और निवेश करने की प्रेरणा को हतोत्साहित करती हैं। लैफर वक्र (Laffer Curve) के अनुसार, एक निश्चित इष्टतम कर दर के पश्चात कर की दरों में वृद्धि करने पर कुल कर राजस्व घटने लगता है क्योंकि कर अपवंचन बढ़ता है और आर्थिक गतिविधियां संकुचित होती हैं।

ख) प्रत्यक्ष बनाम अप्रत्यक्ष कराधान का वितरण प्रभाव: प्रत्यक्ष कर (आयकर, निगम कर) प्रगतिशील होते हैं और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देते हैं, जबकि अप्रत्यक्ष कर (जीएसटी) प्रतिगामी (Regressive) प्रकृति के होते हैं क्योंकि वे अमीर और गरीब दोनों पर समान दर से भार डालते हैं।

ग) कर उछाल (Tax Buoyancy) बनाम कर लोचशीलता (Tax Elasticity):

कर उछाल: सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में आनुपातिक परिवर्तन के प्रत्युत्तर में कुल कर राजस्व में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन का माप। इसमें कर दरों में किए गए नीतिगत संशोधनों का प्रभाव सम्मिलित होता है:

$$\text{करउछाल} = \frac{\text{कर राजस्व में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{जीडीपी में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

यदि कर उछाल 1 से अधिक है, तो कर प्रणाली को अत्यधिक गतिशील और दक्ष माना जाता है।

कर लोचशीलता: यह केवल स्वचालित आर्थिक संवृद्धि के कारण कर राजस्व में होने वाली वृद्धि को मापती है, जिसमें कर दरों या आधार में किए गए नीतिगत परिवर्तनों के प्रभाव को अलग (बहिष्कृत) कर दिया जाता है।

wincompete

सार्वजनिक व्यय की संरचना: राजस्व व्यय बनाम पूंजीगत व्यय गुणक
सार्वजनिक व्यय की गुणवत्ता आर्थिक संवृद्धि की स्थिरता निर्धारित करती है:

अ) राजस्व व्यय (Revenue Expenditure): इसमें वेतन, पेंशन, प्रशासनिक व्यय, सब्सिडी और पूर्व ऋणों पर ब्याज भुगतान शामिल हैं। इसका आर्थिक गुणक (Multiplier) अत्यंत कम (लगभग 0.8 से 0.9) होता है। अर्थात, 1 रुपये के राजस्व व्यय से जीडीपी में 1 रुपये से भी कम की वृद्धि होती है, और यह प्रायः मुद्रास्फीतिकारी होता है।

ब) पूंजीगत व्यय (Capital Expenditure - CapEx): इसमें राजमार्ग, रेलवे, बंदरगाह, डिजिटल नेटवर्क, सिंचाई और विद्युत संयंत्रों जैसी स्थायी भौतिक परिसंपत्तियों का निर्माण शामिल है।

स) पूंजीगत व्यय का उच्च गुणक प्रभाव: भारतीय रिजर्व बैंक तथा राष्ट्रीय लोक वित्त एवं नीति संस्थान (NIPFP) के अध्ययनों के अनुसार, भारत में पूंजीगत व्यय का गुणक **2.45 से 3.25** के मध्य है। इसका अर्थ यह है कि सरकार द्वारा पूंजीगत परिसंपत्तियों में लगाए गए प्रत्येक 1 रुपये से मध्यम अवधि में कुल आर्थिक उत्पादन में 3 रुपये से अधिक का विस्तार होता है।

क्राउडिंग-आउट प्रभाव (Crowding-out Effect): तंत्र एवं प्रकार
जब सरकार अपने भारी राजकोषीय घाटे की पूर्ति हेतु घरेलू वित्तीय बाजार से बड़े पैमाने पर ऋण जुटाती है, तो इसका निजी क्षेत्र के निवेश पर पड़ने वाला प्रतिकूल प्रभाव क्राउडिंग-आउट प्रभाव कहलाता है।

क्राउडिंग-आउट प्रभाव का संचरण क्रम (Crowding-out Effect Mechanism)

चरण	घटना/अवस्था (Stage)	वित्तीय एवं आर्थिक विवरण (Impact & Description)
1	अत्यधिक बाजार उधारी	सरकार अपने विशाल राजकोषीय घाटे की पूर्ति हेतु वित्तीय बाजार से बड़े पैमाने पर बांड जारी कर ऋण जुटाती है।
2	ऋण योग्य कोषों की कमी	बैंकिंग प्रणाली तथा वित्तीय संस्थानों में निजी क्षेत्र हेतु उपलब्ध कुल ऋण योग्य निधियां संकुचित हो जाती हैं।
3	ब्याज दरों (Yields) में वृद्धि	सरकारी बांड की आपूर्ति बढ़ने से G-Sec Yields बढ़ती हैं, जिससे समग्र उधारी दरें महंगी हो जाती हैं।
4	निजी निवेश का हतोत्साहन	उच्च उधारी लागत के कारण निजी कॉर्पोरेट क्षेत्र की नई निवेश परियोजनाएं अव्यवहार्य होकर बाहर (Crowd-out) हो जाती हैं।

📉 **[अत्यधिक सरकारी उधारी ➔ ऋण योग्य कोषों में कमी ➔ ब्याज दरों (G-Sec Yields) में वृद्धि ➔ निजी निवेश में गिरावट]**
क्राउडिंग-आउट के दो प्रमुख रूप होते हैं:

क) वित्तीय क्राउडिंग-आउट (Financial Crowding-out): सरकारी प्रतिभूतियों (G-Secs) की भारी आपूर्ति से बॉन्ड यील्ड बढ़ जाती है। चूंकि सरकारी बॉन्ड जोखिम-मुक्त (Sovereign) होते हैं, अतः बैंक और वित्तीय संस्थान निजी कंपनियों को ऋण देने के बजाय सरकारी बांड खरीदना पसंद करते हैं। इसके परिणामस्वरूप निजी कॉर्पोरेट क्षेत्र हेतु उधारी की लागत बढ़ जाती है और कई निजी निवेश परियोजनाएं अव्यवहार्य हो जाती हैं।

ख) वास्तविक क्राउडिंग-आउट (Real Crowding-out): पूर्ण रोजगार अथवा क्षमता की पूर्ण उपयोगिता के निकट, जब सरकार भौतिक संसाधनों (सीमेंट, स्टील, कुशल श्रम) को बड़े पैमाने पर अधिगृहीत कर लेती है, तो इन इनपुटों की कीमतें बढ़ जाती हैं, जिससे निजी क्षेत्र के लिए उत्पादन महंगा हो जाता है।

ग) क्राउडिंग-इन प्रभाव (Crowding-in Effect - एक अपवाद): जब अर्थव्यवस्था में अप्रयुक्त क्षमता और मंदी विद्यमान हो, तो सरकार द्वारा बुनियादी अवसंरचना (सड़क, रसद, ऊर्जा) में किया गया पूंजीगत व्यय निजी क्षेत्र की परिचालन लागत को घटाता है। इससे निजी क्षेत्र के निवेश हेतु नए अवसर सृजित होते हैं और निजी निवेश बाहर धकेले जाने के बजाय आकर्षित (Crowd-in) होता है।

खंड B: राजकोषीय संघवाद एवं वित्त आयोग

उपखंड a: संवैधानिक प्रावधान, केंद्र और राज्यों के मध्य वित्तीय संबंध, विभाज्य पूल

राजकोषीय संघवाद (Fiscal Federalism) की संवैधानिक रूपरेखा

भारतीय संविधान एक अर्ध-संघात्मक ढांचे के अंतर्गत केंद्र और राज्यों के मध्य वित्तीय संसाधनों और जिम्मेदारियों का स्पष्ट विभाजन करता है। भारतीय राजकोषीय संघवाद की एक अद्वितीय विशेषता यह है कि संविधान निर्माताओं ने कराधान के अधिकांश उच्च-उत्पादक और लोचशील स्रोत (आयकर, निगम कर, सीमा शुल्क) केंद्र को सौंपे, जबकि लोक-कल्याण, स्वास्थ्य, शिक्षा, पुलिस, कृषि और सामाजिक अवसंरचना के भारी उत्तरदायित्व राज्यों के अधिकार क्षेत्र (राज्य सूची) में रखे।

इस संरचनात्मक विन्यास के परिणामस्वरूप भारतीय संघवाद में दो प्रकार के राजकोषीय असंतुलन अंतर्निहित हैं:

अ) लंबवत राजकोषीय असंतुलन (Vertical Fiscal Imbalance): केंद्र सरकार के राजस्व और उसकी व्यय जिम्मेदारियों के मध्य का असंतुलन। राज्यों का संयुक्त व्यय कुल सरकारी व्यय का लगभग 60 प्रतिशत है, जबकि उनका अपना राजस्व कुल कर राजस्व का मात्र 35 से 40 प्रतिशत है।

ब) क्षैतिज राजकोषीय असंतुलन (Horizontal Fiscal Imbalance): विभिन्न राज्यों के मध्य आर्थिक विकास, भौगोलिक विषमताओं, प्राकृतिक संसाधनों और कर-अर्जन क्षमता का भारी अंतर।

संविधान के प्रमुख वित्तीय अनुच्छेद

संविधान के भाग XII (अध्याय I) के अंतर्गत केंद्र-राज्य वित्तीय संबंधों को निम्नलिखित अनुच्छेदों में संहिताबद्ध किया गया है:

wincompete

संवैधानिक अनुच्छेद	विधिक प्रावधान एवं प्रकृति	प्रशासनिक एवं राजकोषीय प्रभाव
अनुच्छेद 265	विधि के प्राधिकार के बिना करों का न अधिरोपण।	कार्यपालिका मनमाने ढंग से कोई कर नहीं लगा सकती; संसदीय स्वीकृति अनिवार्य।
अनुच्छेद 268	संघ द्वारा उद्गृहीत किंतु राज्यों द्वारा संगृहीत एवं उपभोजित कर।	स्टांप शुल्क तथा औषधीय प्रसाधनों पर उत्पाद शुल्क।
अनुच्छेद 269	अंतर-राज्यीय व्यापार में माल की बिक्री पर कर।	केंद्र द्वारा लगाया और वसूला जाता है, परंतु राज्यों को सौंप दिया जाता है।
अनुच्छेद 269A	अंतर-राज्यीय व्यापार में वस्तु एवं सेवा कर (IGST)।	101वें संविधान संशोधन द्वारा अंतःस्थापित; केंद्र द्वारा संगृहीत और नियमों के तहत विभाजित।
अनुच्छेद 270	उद्गृहीत कर और उनका संघ तथा राज्यों के बीच वितरण।	विभाज्य पूल (Divisible Pool) का मूल संवैधानिक आधार।
अनुच्छेद 271	संघ के प्रयोजनों हेतु कुछ शुल्कों और करों पर अधिभार (Surcharge)।	केंद्र को अनन्य अधिकार; यह विभाज्य पूल का हिस्सा नहीं बनता (राज्यों से साझा नहीं होता)।
अनुच्छेद 275	कुछ राज्यों को संघ से सहायता अनुदान (Statutory Grants)।	संसद द्वारा विधि द्वारा निर्धारित; भारत की संचित निधि पर भारित।
अनुच्छेद 280	वित्त आयोग की स्थापना एवं अधिदेश।	प्रत्येक 5 वर्ष में राष्ट्रपति द्वारा एक अर्द्ध-न्यायिक निकाय का गठन।

wincompete

अनुच्छेद 282	संघ या राज्य द्वारा अपने राजस्व से किए जाने वाले विवेकाधीन अनुदान।	केंद्र प्रायोजित योजनाओं (CSS) के वित्तपोषण का प्राथमिक माध्यम।
अनुच्छेद 292 एवं 293	केंद्र एवं राज्यों की उधार लेने की शक्तियां।	केंद्र संचित निधि की गारंटी पर देश-विदेश से उधारी ले सकता है; राज्यों की उधारी केंद्र के नियंत्रण में।

विभाज्य पूल (Divisible Pool) की संकल्पना एवं 80वां संविधान संशोधन
विभाज्य पूल केंद्रीय करों का वह शुद्ध संकलित कोष है जिसे संविधान के अनुच्छेद 270 के अंतर्गत केंद्र और राज्यों के मध्य आनुपातिक रूप से साझा किया जाना अनिवार्य है।

80वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2000 (दसवें वित्त आयोग की वैकल्पिक योजना):
वर्ष 2000 से पूर्व केवल व्यक्तिगत आयकर (अनुच्छेद 270) और केंद्रीय उत्पाद शुल्क (अनुच्छेद 272) ही राज्यों के साथ साझा किए जाते थे, जबकि निगम कर और सीमा शुल्क पर केंद्र का एकाधिकार था। 80वें संविधान संशोधन ने इस व्यवस्था को पूर्णतः बदल दिया:

अनुच्छेद 270 को संशोधित कर यह व्यवस्था की गई कि केंद्र सरकार द्वारा लगाए जाने वाले **समस्त केंद्रीय कर (All Central Taxes)** विभाज्य पूल का हिस्सा होंगे।

विभाज्य पूल से अनिवार्य रूप से बाहर रखी जाने वाली मदें:

अनुच्छेद 268 और 269 के तहत निर्दिष्ट कर।

वस्तु एवं सेवा कर (IGST) का वह हिस्सा जो केंद्र के पास रहता है।

संविधान के अनुच्छेद 271 के अंतर्गत केंद्र द्वारा लगाए जाने वाले **समस्त उपकर (Cess) एवं अधिभार (Surcharge)**।

करों के संग्रहण की प्रशासनिक लागत (Cost of Collection - जिसे नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा प्रमाणित किया जाता है)।

उपकर एवं अधिभार का विवाद (Cess and Surcharge Controversy):
हाल के वर्षों में केंद्र सरकार द्वारा अपने सकल कर राजस्व में उपकर (जैसे कृषि अवसंरचना उपकर, स्वास्थ्य एवं शिक्षा उपकर, सड़क एवं अवसंरचना उपकर) के अनुपात में अत्यधिक वृद्धि की गई है। वित्तीय वर्ष 2024-26 के आंकड़ों के अनुसार, केंद्र के कुल कर राजस्व का लगभग 18 से 20 प्रतिशत हिस्सा उपकर और अधिभार से आता है। चूंकि अनुच्छेद 271 के तहत यह राशि विभाज्य पूल से बाहर रहती है, अतः राज्यों का तर्क है कि यद्यपि वित्त आयोग ने राज्यों की हिस्सेदारी 41 प्रतिशत तय की है, परंतु वास्तविक विभाज्य पूल सिकुड़ जाने के कारण राज्यों को केंद्र के कुल सकल कर राजस्व का मात्र 30 से 32 प्रतिशत ही प्रभावी रूप से मिल पाता है।

उपखंड b: वित्त आयोग की भूमिका, 15वें एवं 16वें वित्त आयोग के विचारणीय विषय, क्षैतिज एवं लंबवत हस्तांतरण के मानदंड, राज्यों की उधारी सीमाएं

वित्त आयोग की संवैधानिक स्थिति एवं कार्यप्रणाली

संविधान का अनुच्छेद 280 यह उपबंध करता है कि संविधान के प्रारंभ से दो वर्ष के भीतर और तत्पश्चात प्रत्येक पांचवें वर्ष की समाप्ति पर या उससे पूर्व, जिसे राष्ट्रपति आवश्यक समझे, एक वित्त आयोग का गठन किया जाएगा।

वित्त आयोग (विविध उपबंध) अधिनियम, 1951 के अनुसार, आयोग में **एक अध्यक्ष और चार अन्य सदस्य** होते हैं, जिनकी योग्यताएं संसद द्वारा निर्धारित की गई हैं (उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की योग्यता रखने वाला, लोक वित्त का विशेषज्ञ, अर्थशास्त्री तथा प्रशासनिक मामलों का अनुभवी व्यक्ति)।

अनुच्छेद 280(3) के अनुसार वित्त आयोग का कर्तव्य राष्ट्रपति को निम्नलिखित विषयों पर सिफारिशें करना है:

क) संघ और राज्यों के बीच करों के शुद्ध आगमों का वितरण (लंबवत हस्तांतरण) तथा राज्यों के बीच ऐसे आगमों के संबंधित भागों का आबंटन (क्षैतिज हस्तांतरण)।

ख) वे सिद्धांत जो भारत की संचित निधि में से राज्यों के राजस्व की सहायता अनुदानों (अनुच्छेद 275) को शासित करने चाहिए।

ग) राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर राज्य की पंचायतों और नगरपालिकाओं के संसाधनों की पूर्ति हेतु राज्य की संचित निधि के संवर्धन हेतु आवश्यक उपाय।

घ) सुदृढ़ वित्त के हित में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को संदर्भित कोई अन्य विषय।

15वां वित्त आयोग (एन.के. सिंह आयोग): लंबवत एवं क्षैतिज हस्तांतरण

15वें वित्त आयोग का गठन नवंबर 2017 में एन.के. सिंह की अध्यक्षता में किया गया था। आयोग ने अपनी अंतिम रिपोर्ट 2021-26 (पाँच वित्तीय वर्षों) हेतु प्रस्तुत की।

1. लंबवत हस्तांतरण (Vertical Devolution):

15वें वित्त आयोग ने विभाज्य पूल में राज्यों की कुल हिस्सेदारी को **41 प्रतिशत** निर्धारित किया।

पूर्ववर्ती 14वें वित्त आयोग (वाई.वी. रेड्डी आयोग) ने इसे 32% से बढ़ाकर ऐतिहासिक रूप से 42% किया था। 15वें वित्त आयोग ने 42% से 1% की कटौती करके इसे 41% किया। इस 1 प्रतिशत की कटौती का कारण जम्मू एवं कश्मीर राज्य का पुनर्गठन कर दो नए केंद्र शासित प्रदेशों (जम्मू-कश्मीर तथा लद्दाख) का निर्माण था, जिनकी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति अब सीधे केंद्र सरकार के संचित कोष से की जानी थी।

2. क्षैतिज हस्तांतरण (Horizontal Devolution) के मानदंड एवं भारांक:

राज्यों के मध्य 41 प्रतिशत राशि का वितरण निम्नलिखित छह वैज्ञानिक पैमानों के आधार पर किया गया:

15वें वित्त आयोग का मानदंड	भारांक (%)	विजुअल प्रतिनिधित्व
1. आय की दूरी (Income Distance)	45.0%	9
2. जनसंख्या (2011 की जनगणना)	15.0%	3
3. क्षेत्रफल (Area)	15.0%	3
4. जनसांख्यिकीय प्रदर्शन (Demographic Performance)	12.5%	2.5
5. वन एवं पारिस्थितिकी (Forest & Ecology)	10.0%	2
6. कर एवं राजकोषीय प्रयास (Tax Effort)	2.5%	0.5

मानदंड (Criteria)	भारांक (Weight)	उद्देश्य एवं अंतर्निहित सिद्धांत
आय की दूरी	45.0%	समता (Equity) का सिद्धांत; सबसे अमीर राज्य की प्रति व्यक्ति आय से किसी राज्य की दूरी जितनी अधिक होगी, उसे उतना अधिक हिस्सा मिलेगा।
जनसंख्या (2011)	15.0%	राज्य की विशालता और सार्वजनिक सेवाओं की वास्तविक मांग का पैमाना। 1971 की जनसंख्या को पूर्णतः हटा दिया गया।
क्षेत्रफल	15.0%	प्रशासनिक लागत एवं दूरी की निशक्तता (Disability) की भरपाई।
वन एवं पारिस्थितिकी	10.0%	घना वन आवरण बनाए रखने वाले राज्यों को कार्बन सिंक और पर्यावरणीय सेवाओं हेतु प्रोत्साहन।

wincompete

जनसांख्यिकीय प्रदर्शन	12.5%	उन राज्यों (विशेषकर दक्षिणी राज्यों) को पुरस्कृत करना जिन्होंने परिवार नियोजन द्वारा प्रजनन दर (TFR) में कमी की।
कर प्रयास	2.5%	अपने स्वयं के कर राजस्व को जीडीपी के अनुपात में बढ़ाने वाले राज्यों को दक्षता प्रोत्साहन।

16वां वित्त आयोग (डॉ. अरविंद पनगढ़िया आयोग): अधिदेश एवं समकालीन चुनौतियां

31 दिसंबर 2023 को भारत सरकार ने नीति आयोग के पूर्व उपाध्यक्ष और कोलंबिया विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री **डॉ. अरविंद पनगढ़िया** की अध्यक्षता में 16वें वित्त आयोग का औपचारिक गठन किया। श्री ऋत्विक रंजनम पांडे को आयोग का सचिव नियुक्त किया गया।

विचारणीय विषय (Terms of Reference - ToR) एवं समयावधि:

क) संस्तुति अवधि: आयोग की सिफारिशें 1 अप्रैल 2026 से प्रारंभ होने वाली पांच वर्ष की अवधि (2026-27 से 2030-31) को आच्छादित करेंगी।

ख) रिपोर्ट प्रस्तुति की समय-सीमा: आयोग को अपनी विस्तृत रिपोर्ट **31 अक्टूबर 2025 तक** भारत के राष्ट्रपति को सौंपनी है।

ग) विचारणीय विषयों के प्रमुख बिंदु:

अनुच्छेद 270 के तहत केंद्रीय करों के विभाज्य पूल का केंद्र और राज्यों के बीच आबंटन तथा राज्यों का परस्पर वितरण।

अनुच्छेद 275 के तहत राज्यों को राजस्व घाटा अनुदान (Revenue Deficit Grants) और विशिष्ट अनुदान देने के सिद्धांत।

पंचायतों और नगरपालिकाओं के संसाधनों की पूर्ति हेतु राज्यों की संचित निधि के संवर्धन के उपाय।

आपदा प्रबंधन पहलों (NDRF/SDRF) के वित्तपोषण की वर्तमान व्यवस्थाओं की समीक्षा और सिफारिशें।

घ) 16वें वित्त आयोग के सम्मुख प्रमुख राजकोषीय चुनौतियां:

wincompete

उपकर और अधिभार के कारण विभाज्य पूल के संकुचन पर राज्यों की आपत्तियों का समाधान।

मुफ्त उपहारों (Freebies) बनाम सामाजिक जनकल्याण पर राज्यों के बढ़ते राजस्व व्यय और राजकोषीय घाटे पर अंकुश लगाने के उपाय।

2011 की जनगणना के आधार पर क्षैतिज वितरण में उत्तर बनाम दक्षिण राज्यों के मध्य गहराते असंतोष का शमन।

स्थानीय निकायों (पंचायतों/नगर निगमों) को प्रत्यक्ष डिजिटल वित्तीय हस्तांतरण की व्यवस्था का सुदृढ़ीकरण।

राज्यों की उधारी सीमाएं: अनुच्छेद 293 एवं एफआरबीएम विन्यास

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 293(3) के अनुसार, यदि किसी राज्य सरकार पर केंद्र सरकार का कोई पूर्ववर्ती ऋण बकाया है, तो वह राज्य केंद्र सरकार की पूर्व सहमति के बिना घरेलू वित्तीय बाजार से कोई नया ऋण नहीं ले सकता। चूंकि सभी राज्य केंद्र के ऋणी हैं, अतः राज्यों की वार्षिक बाजार उधारी सीमा (Net Borrowing Ceiling - NBC) का निर्धारण पूर्णतः केंद्र सरकार (केंद्रीय वित्त मंत्रालय के व्यय विभाग) द्वारा किया जाता है।

उधारी सीमाओं का वर्तमान विनियामक ढांचा (वित्तीय वर्ष 2024-26):

क) सामान्य सीमा: 15वें वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुरूप राज्यों की सामान्य शुद्ध उधारी सीमा उनके **सकल राज्य घरेलू उत्पाद (GSDP) का 3.0 प्रतिशत** निर्धारित है।

ख) विद्युत क्षेत्र सुधारों हेतु अतिरिक्त उधारी: विद्युत वितरण कंपनियों (DISCOMs) के घाटे को कम करने, निजीकरण, स्मार्ट मीटरिंग और परिचालन दक्षता सुधारने वाले राज्यों को GSDP के **0.5 प्रतिशत की अतिरिक्त उधारी** की अनुमति दी गई है (अर्थात कुल 3.5%)।

ग) ऑफ-बजट उधारी (Off-Budget Borrowings) पर कठोर नियंत्रण: केंद्र सरकार ने वर्ष 2022 से यह नियम कड़ाई से लागू किया है कि यदि कोई राज्य अपनी सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों या विशेष प्रयोजन वाहनों (SPVs) के माध्यम से बाजार से बांड जारी करवाकर उधारी लेता है और उस ऋण की अदायगी राज्य के बजट से की जाती है, तो उस ऑफ-बजट उधारी को राज्य की प्रत्यक्ष शुद्ध उधारी सीमा (3%) में से काट लिया जाएगा।

द) पूंजीगत निवेश हेतु राज्यों को 50-वर्षीय ब्याज-मुक्त ऋण: केंद्र सरकार ने राज्यों में पूंजीगत व्यय को बढ़ावा देने हेतु 'विशेष पूंजीगत सहायता योजना' के अंतर्गत राज्यों को 50 वर्ष की अवधि हेतु शून्य ब्याज दर पर दीर्घकालिक ऋण उपलब्ध कराया है, जिसे राज्यों की सामान्य एफआरबीएम उधारी सीमा से बाहर रखा गया है।

महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली एवं प्रमुख अवधारणाएं

विभाज्य पूल (Divisible Pool): केंद्रीय करों की वह शुद्ध राशि जिसे संविधान के अनुच्छेद 270 के तहत राज्यों के साथ अनिवार्य रूप से साझा किया जाता है। इसमें से संग्रहण लागत, उपकर और अधिभार पूर्णतः बाहर रखे जाते हैं।

उपकर (Cess): किसी पूर्व-निर्धारित विशिष्ट सार्वजनिक उद्देश्य (जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य अथवा सड़क निर्माण) हेतु लगाया जाने वाला कर पर कर (Tax on Tax)। इससे प्राप्त संपूर्ण राजस्व को केवल उसी निर्दिष्ट उद्देश्य पर व्यय किया जा सकता है, तथा इसे राज्यों के साथ साझा नहीं किया जाता।

अधिभार (Surcharge): किसी विशिष्ट उद्देश्य के बिना, सीधे कर देनदारी पर लगाया जाने वाला अतिरिक्त कर (जैसे सुपर-अमीरों पर अतिरिक्त आयकर)। यह सीधे केंद्र की संचित निधि में जाता है और विभाज्य पूल का हिस्सा नहीं बनता।

राजस्व घाटा अनुदान (Revenue Deficit Grants - RDG): संविधान के अनुच्छेद 275 के तहत वित्त आयोग की सिफारिश पर उन राज्यों को दिया जाने वाला सहायता अनुदान, जिनका राजस्व खाता

केंद्रीय करों के हस्तांतरण के पश्चात भी घाटे में रहता है। इसका उद्देश्य राज्यों के प्राथमिक प्रशासनिक ढांचे को बनाए रखना है।

लंबवत हस्तांतरण (Vertical Devolution): केंद्र सरकार के विभाज्य पूल से सभी राज्यों को संयुक्त रूप से मिलने वाला प्रतिशत हिस्सा (वर्तमान में 41%)।

क्षैतिज हस्तांतरण (Horizontal Devolution): राज्यों के लिए निर्धारित 41 प्रतिशत हिस्से को विभिन्न राज्यों के मध्य उनकी जनसंख्या, क्षेत्रफल, आय की दूरी और वन आवरण के आधार पर आनुपातिक रूप से बांटने का फॉर्मूला।

वित्तीय क्राउडिंग-आउट (Financial Crowding-out): सरकार द्वारा अत्यधिक राजकोषीय घाटे को पूरा करने हेतु बाजार से भारी मात्रा में बांड जारी कर ऋण लेने से ब्याज दरों का बढ़ना, जिसके कारण निजी क्षेत्र के लिए उधारी महंगी हो जाती है और निजी निवेश घट जाता है।

लैफर वक्र (Laffer Curve): अमेरिकी अर्थशास्त्री आर्थर लैफर द्वारा प्रतिपादित वह वक्र जो कर की दरों और प्राप्त होने वाले कुल कर राजस्व के मध्य के संबंध को उल्टे 'U' आकार में प्रदर्शित करता है। यह सिद्ध करता है कि अत्यधिक कर दरें कर आधार को संकुचित कर कुल राजस्व घटा देती हैं।

अध्याय 21: मुद्रास्फीति - अवधारणा, प्रकार एवं सिद्धांत

खंड A: मुद्रास्फीति का स्वरूप एवं वर्गीकरण

उपखंड a: मुद्रास्फीति की परिभाषा, अवस्फीति, अपस्फीति, गतिरोध जनित स्फीति, अति-मुद्रास्फीति

मुद्रास्फीति की आधारभूत संकल्पना एवं परिभाषाएं

समष्टि अर्थशास्त्र में मुद्रास्फीति (Inflation) से आशय किसी अर्थव्यवस्था में वस्तुओं एवं सेवाओं के सामान्य मूल्य स्तर (General Price Level) में होने वाली सतत, निरंतर एवं व्यापक वृद्धि से है। जब सामान्य मूल्य स्तर में वृद्धि होती है, तो मुद्रा की प्रत्येक इकाई की क्रय शक्ति (Purchasing Power) में आनुपातिक ह्रास होता है। इसका व्यावहारिक तात्पर्य यह है कि मुद्रास्फीति की स्थिति में मुद्रा का मूल्य घट जाता है तथा वस्तुओं व सेवाओं का मौद्रिक मूल्य बढ़ जाता है।

प्रमुख अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत आधिकारिक परिभाषाएं निम्नलिखित हैं:

क) जे. एम. कीन्स के अनुसार: पूर्ण रोजगार के स्तर के पश्चात जब कुल मांग में होने वाली वृद्धि के प्रत्युत्तर में कुल उत्पादन का विस्तार संभव नहीं होता, तो मूल्य स्तर में होने वाली विशुद्ध मौद्रिक वृद्धि ही 'वास्तविक मुद्रास्फीति' (True Inflation) कहलाती है। पूर्ण रोजगार से पूर्व होने वाली मूल्य वृद्धि को कीन्स ने 'अर्ध-मुद्रास्फीति' (Semi-inflation) की संज्ञा दी थी।

ख) मिल्टन फ्रीडमैन के अनुसार: मुद्रावादी दृष्टिकोण के प्रतिपादक फ्रीडमैन ने प्रतिपादित किया कि "मुद्रास्फीति सदैव और सर्वत्र एक मौद्रिक परिघटना (Monetary Phenomenon) है।" यह तब उत्पन्न होती है जब उत्पादन की तुलना में मुद्रा की मात्रा में अत्यधिक तीव्र विस्तार होता है।

ग) ई. एफ. एम. डरबन एवं क्रॉउथर के अनुसार: क्रॉउथर ने इसे परिभाषित करते हुए लिखा कि "मुद्रास्फीति वह अवस्था है जिसमें मुद्रा का मूल्य गिर रहा होता है और वस्तुओं के मूल्य बढ़ रहे होते हैं।"

मुद्रास्फीति के निर्धारण हेतु दो शर्तें अनिवार्य हैं: प्रथम, मूल्य वृद्धि एकाकी अथवा किसी एक विशिष्ट वस्तु तक सीमित न होकर अर्थव्यवस्था की अधिकांश वस्तुओं एवं सेवाओं में व्यापक होनी चाहिए। द्वितीय, यह वृद्धि अल्पकालिक या मौसमी न होकर एक समयावधि तक निरंतर बनी रहनी चाहिए।

संबंधित मूल्य अवधारणाएं: अवस्फीति, अपस्फीति एवं गतिरोध जनित स्फीति
मुद्रास्फीति के विभिन्न चरणों तथा विपरीत परिस्थितियों को स्पष्ट करने हेतु अर्थशास्त्र में विशिष्ट तकनीकी शब्दावलियों का प्रयोग किया जाता है:

1. मुद्रास्फीति (मूल्य में लगातार वृद्धि)	2. अपस्फीति (स्फीति दर में गिरावट)	3. शून्य दर (मूल्य स्थिरता)	4. अवस्फीति (ऋणात्मक मूल्य वृद्धि)

अ) अवस्फीति (Deflation / मुद्रा संकुचन):
यह मुद्रास्फीति की पूर्णतः विपरीत स्थिति है। जब अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं का सामान्य मूल्य स्तर निरंतर गिरने लगता है तथा मुद्रास्फीति की दर शून्य से नीचे जाकर ऋणात्मक (Negative) हो जाती है, तो उसे अवस्फीति कहा जाता है।

इसके अंतर्गत मुद्रा की क्रय शक्ति बढ़ती है, किंतु यह आर्थिक संवृद्धि हेतु विनाशकारी मानी जाती है।

उत्पादकों के लाभ समाप्त होने लगते हैं, जिससे उत्पादन में कटौती, कारखानों की बंदी, वेतन में ह्रास तथा व्यापक बेरोजगारी (Deflationary Spiral) जन्म लेती है।

ब) अपस्फीति (Disinflation):
अपस्फीति से आशय मूल्य स्तर में गिरावट से नहीं, बल्कि **मुद्रास्फीति की दर में होने वाली क्रमिक कमी** से है।

इसमें मूल्य स्तर बढ़ता तो है, परंतु उसकी वृद्धि की गति धीमी हो जाती है।

उदाहरणार्थ: यदि किसी देश में वार्षिक मुद्रास्फीति की दर जनवरी में 7 प्रतिशत थी, जो फरवरी में घटकर 5 प्रतिशत और मार्च में 3 प्रतिशत रह जाती है, तो इस प्रक्रिया को अपस्फीति कहा जाएगा। यहां मूल्य स्तर अब भी बढ़ रहा है, परंतु उसकी संवृद्धि दर घट रही है।

स) गतिरोध जनित स्फीति (Stagflation / स्टैगफ्लेशन):
यह एक अत्यंत जटिल और विरोधाभासी समष्टि-आर्थिक स्थिति है, जिसमें तीन प्रतिकूल आर्थिक तत्व एक साथ उपस्थित होते हैं:

उच्च मुद्रास्फीति (High Inflation)।

आर्थिक संवृद्धि में गतिहीनता अथवा मंदी (Stagnant Growth / Low GDP Growth)।

उच्च बेरोजगारी दर (High Unemployment)।

पारंपरिक कीन्सियन अर्थशास्त्र यह मानता था कि मुद्रास्फीति और बेरोजगारी के मध्य विपरीत संबंध होता है (फिलिप्स वक्र)। तथापि, 1970 के दशक में वैश्विक तेल संकट के समय स्टैगफ्लेशन ने इस मान्यता को ध्वस्त कर दिया। यह स्थिति सामान्यतः कुल आपूर्ति में तीव्र व्यवधान (Negative Supply Shock) के कारण उत्पन्न होती है।

द) अति-मुद्रास्फीति (Hyperinflation):
यह मुद्रास्फीति का चरम, अनियंत्रित और विनाशकारी रूप है, जिसमें मूल्य स्तर अत्यंत तीव्र गति से (प्रतिमाह 50 प्रतिशत से अधिक अथवा वार्षिक आधार पर हजारों-लाखों प्रतिशत) बढ़ता है।

इस स्थिति में नागरिक अपनी ही राष्ट्रीय मुद्रा पर से विश्वास खो देते हैं और मुद्रा का विनिमय माध्यम के रूप में अस्तित्व समाप्त हो जाता है। लोग विदेशी मुद्राओं (जैसे अमेरिकी डॉलर) अथवा वस्तु विनिमय की ओर लौटने लगते हैं।

ऐतिहासिक उदाहरण: प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात जर्मनी का वाइमर गणराज्य (1923), 2008 में जिम्बाब्वे तथा हाल के वर्षों में वेनेजुएला।

ङ) रिफ्लेशन (Reflation / मुद्रा पुनरस्फीति):
जब अर्थव्यवस्था मंदी अथवा अवस्फीति के गर्त में फंसी होती है, तब सरकार और केंद्रीय बैंक द्वारा जानबूझकर राजकोषीय प्रोत्साहन (व्यय बढ़ाकर) एवं मौद्रिक ढील (ब्याज दरें घटाकर) के माध्यम से मूल्य स्तर और समग्र मांग को सामान्य स्तर तक उठाने का जो प्रयास किया जाता है, उसे रिफ्लेशन कहा जाता है।

आर्थिक संकल्पना	मूल्य स्तर की प्रवृत्ति	आर्थिक संवृद्धि की स्थिति	रोजगार की स्थिति	नीतिगत संदर्भ
मुद्रास्फीति (Inflation)	निरंतर एवं व्यापक वृद्धि।	सामान्यतः सकारात्मक (मध्यम स्तर तक)।	बढ़ता हुआ अथवा स्थिर।	मांग नियमन एवं आपूर्ति विस्तार।
अवस्फीति (Deflation)	निरंतर गिरावट (ऋणात्मक दर)।	तीव्र संकुचन एवं मंदी।	व्यापक बेरोजगारी में वृद्धि।	राजकोषीय व मौद्रिक प्रोत्साहन।

wincompete

अपस्फीति (Disinflation)	वृद्धि दर में क्रमिक कमी।	संवृद्धि बनी रहती है।	स्थिर अथवा न्यूनतम प्रभाव।	केंद्रीय बैंक का सुनियोजित नियंत्रण।
स्टैगफ्लेशन (Stagflation)	अत्यधिक उच्च स्तर।	आर्थिक गतिहीनता अथवा नकारात्मक।	अभूतपूर्व उच्च बेरोजगारी।	आपूर्ति पक्षीय संरचनात्मक सुधार।
अति-मुद्रास्फीति (Hyperinflation)	खगोलीय एवं घातीय वृद्धि।	आर्थिक तंत्र का पूर्ण पतन।	आर्थिक अराजकता।	मुद्रा का विमुद्रीकरण/नवीन मुद्रा।

उपखंड b: दर के आधार पर वर्गीकरण - रेंगती, चलती, दौड़ती और कूदती मुद्रास्फीति

मुद्रास्फीति की गति अथवा तीव्रता के आधार पर वर्गीकरण

मूल्य स्तर में होने वाले वार्षिक प्रतिशत परिवर्तनों की तीव्रता के आधार पर अर्थशास्त्रियों ने मुद्रास्फीति को चार प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया है:

1. रेंगती स्फीति	2. चलती स्फीति	3. दौड़ती स्फीति	4. कूदती/सरपट स्फीति
(1% से 3%)	(3% से 9%)	(10% से 20%)	(> 20%)

1. रेंगती मुद्रास्फीति (Creeping Inflation)

अ) संख्यात्मक सीमा: जब सामान्य मूल्य स्तर में वार्षिक वृद्धि की दर **1 प्रतिशत से 3 प्रतिशत** तक अत्यंत धीमी गति से होती है।

ब) आर्थिक प्रभाव: अर्थशास्त्री इसे अर्थव्यवस्था के स्वास्थ्य हेतु 'टॉनिक' अथवा उत्प्रेरक मानते हैं। यह उत्पादकों को अपने लाभ मार्जिन सुरक्षित रखने, नए पूंजीगत निवेश करने तथा उत्पादन बढ़ाने हेतु निरंतर प्रोत्साहित करती है, बिना उपभोक्ताओं की क्रय शक्ति को गंभीर नुकसान पहुंचाए। अधिकांश विकसित देशों के केंद्रीय बैंक (जैसे अमेरिकी फेडरल रिजर्व, बैंक ऑफ इंग्लैंड) 2 प्रतिशत की रेंगती मुद्रास्फीति को ही अपना आधिकारिक लक्ष्य बनाते हैं।

2. चलती मुद्रास्फीति (Walking / Trotting Inflation)

क) संख्यात्मक सीमा: जब वार्षिक मूल्य वृद्धि की दर **3 प्रतिशत से 9 प्रतिशत (एकल अंक / Single Digit)** के मध्य बनी रहती है।

ख) आर्थिक प्रभाव: यह विकासशील अर्थव्यवस्थाओं (जैसे भारत) में तीव्र पूंजी निर्माण और औद्योगिकीकरण के संक्रमण काल में प्रायः देखी जाती है।

ग) विनियामक चेतावनी: यदि यह 6 प्रतिशत से ऊपर निकलती है, तो यह केंद्रीय बैंक हेतु एक स्पष्ट चेतावनी संकेत होती है। यदि इस स्तर पर मौद्रिक और राजकोषीय नियंत्रण न लगाए जाएं, तो यह तीव्र गति पकड़कर अनियंत्रित रूप धारण कर सकती है।

3. दौड़ती मुद्रास्फीति (Running Inflation)

अ) संख्यात्मक सीमा: जब मूल्य वृद्धि की दर दोहरे अंकों (Double Digits) में प्रवेश कर जाती है और वार्षिक आधार पर **10 प्रतिशत से 20 प्रतिशत** के मध्य पहुंच जाती है।

ब) आर्थिक प्रभाव: यह अर्थव्यवस्था में मध्यम और निम्न आय वर्ग, पेंशनभोगियों तथा दैनिक वेतनभोगियों की वास्तविक आय को तीव्र गति से नष्ट करती है। आवश्यक वस्तुओं (खाद्यान्न, ईंधन) की जमाखोरी शुरू हो जाती है और बचत दर में तीव्र गिरावट दर्ज की जाती है। इस स्तर पर सरकार को कठोर संकुचनकारी नीतियां लागू करनी पड़ती हैं।

4. कूदती / सरपट / भागती मुद्रास्फीति (Galloping / Jumping Inflation)

क) संख्यात्मक सीमा: जब मूल्य वृद्धि की वार्षिक दर **20 प्रतिशत से अधिक, सैकड़ों प्रतिशत (तिहरे या चौहरे अंक)** तक पहुंच जाती है।

ख) आर्थिक प्रभाव: इसे 'सरपट मुद्रास्फीति' भी कहा जाता है। इसमें दीर्घकालिक वित्तीय अनुबंध, ऋण समझौते और बैंक जमाएं अपना आर्थिक औचित्य खो देती हैं। पूंजी का तेजी से विदेशों में पलायन (Capital Flight) होने लगता है और संपूर्ण अर्थव्यवस्था गहरे संकट में घिर जाती है। जब यह नियंत्रण से पूरी तरह बाहर हो जाती है, तो अति-मुद्रास्फीति (Hyperinflation) का रूप ले लेती है।

श्रेणी	वार्षिक वृद्धि दर की सीमा	अर्थव्यवस्था पर प्रभाव	नीतिगत आवश्यकता
रेंगती (Creeping)	1% से 3%	आर्थिक संवृद्धि हेतु आदर्श एवं लाभदायक।	निगरानी एवं निरंतरता।
चलती (Walking)	3% से 9%	मध्यम प्रभाव; निम्न आय वर्ग पर क्रमिक दबाव।	सतर्क मौद्रिक प्रबंधन (जैसे FIT ढांचा)।
दौड़ती (Running)	10% से 20%	गंभीर सामाजिक-आर्थिक असंतुलन, बचत का क्षरण।	कठोर ब्याज दर वृद्धि एवं राजकोषीय कटौती।
कूदती (Galloping)	20% से सैकड़ों प्रतिशत	आर्थिक तंत्र का अव्यवस्थित होना, सट्टेबाजी का बोलबाला।	आपातकालीन प्रशासनिक व संरचनात्मक नियंत्रण।

wincompete

खंड B: मुद्रास्फीति के कारण एवं सैद्धांतिक दृष्टिकोण

उपखंड a: मांग-प्रेरित मुद्रास्फीति (Demand-Pull Inflation) और उसके कारक

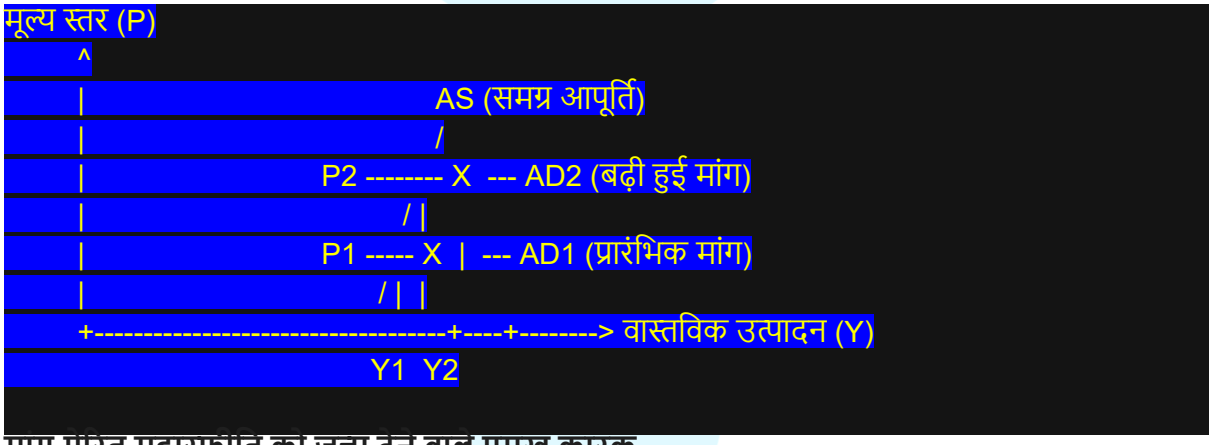
मांग-प्रेरित मुद्रास्फीति की सैद्धांतिक व्याख्या

मांग-प्रेरित मुद्रास्फीति वह स्थिति है जब किसी अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं की समग्र मांग (Aggregate Demand - AD) उपलब्ध समग्र आपूर्ति (Aggregate Supply - AS) की तुलना में अत्यधिक

तीव्र गति से बढ़ती है। सरल आर्थिक मुहावरे में इसे **"अत्यधिक मुद्रा द्वारा अत्यंत अल्प वस्तुओं का पीछा करना" (Too much money chasing too few goods)** कहा जाता है।

कीन्सियन दृष्टिकोण के अनुसार, राष्ट्रीय आय के संतुलन समीकरण में:

समग्रमांग$(AD) = C + I + G + (X - M)$
जहाँ C = निजी उपभोग व्यय, I = निजी निवेश व्यय, G = सरकारी व्यय, तथा $(X - M)$ = शुद्ध निर्यात। जब इनमें से किसी भी घटक में स्वायत्त वृद्धि होती है और अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार अथवा क्षमता की पूर्ण उपयोगिता के निकट कार्य कर रही होती है, तो कुल उत्पादन तुरंत नहीं बढ़ पाता, जिससे कीमतों में वृद्धि अनिवार्य हो जाती है। इसे कीन्स ने 'मुद्रास्फीतिकारी अंतराल' (Inflationary Gap) कहा था।



मांग-प्रेरित मुद्रास्फीति को जन्म देने वाले प्रमुख कारक

क) मुद्रा आपूर्ति में अनियंत्रित विस्तार (Expansion in Money Supply):
जब केंद्रीय बैंक अत्यधिक मात्रा में नई मुद्रा जारी करता है अथवा बैंकों के माध्यम से सस्ते ऋण (कम ब्याज दरों पर) उपलब्ध कराता है, तो जनता की तरलता और क्रय शक्ति बढ़ जाती है। यदि मौद्रिक विस्तार की दर वास्तविक जीडीपी की वृद्धि दर से अधिक हो, तो अतिरिक्त तरलता सीधे कीमतों को ऊपर खींचती है।

ख) सार्वजनिक व्यय में भारी वृद्धि (Increase in Public Expenditure):
सरकारों द्वारा विकास योजनाओं, अवसंरचना, रक्षा अथवा लोक-कल्याणकारी सामाजिक अंतरणों (सब्सिडी, प्रत्यक्ष नकद हस्तांतरण) पर किए जाने वाले भारी बजटीय व्यय से बाजार में तात्कालिक मांग उत्पन्न होती है। यदि यह व्यय अनुत्पादक उपभोग पर केंद्रित हो, तो मांग-प्रेरित स्फीति तीव्र हो जाती है।

ग) घाटे का वित्तपोषण (Deficit Financing):
सरकार द्वारा अपने राजकोषीय घाटे की भरपाई हेतु केंद्रीय बैंक से उधारी लेना अथवा नई मुद्रा का मुद्रीकरण करना अर्थव्यवस्था में सीधे नई क्रय शक्ति का संचार करता है, जिससे समग्र मांग बढ़ती है।

घ) प्रयोज्य आय में वृद्धि एवं करों में कटौती:
प्रत्यक्ष करों (जैसे व्यक्तिगत आयकर) की दरों में कटौती किए जाने से नागरिकों की शुद्ध व्यय-योग्य आय बढ़ जाती है, जिससे उपभोग वस्तुओं की मांग में उछाल आता है।

ङ) सस्ते उपभोक्ता ऋण का विस्तार (Consumer Credit Boom):
वित्तीय संस्थाओं और फिनटेक कंपनियों द्वारा व्यक्तिगत ऋण, क्रेडिट कार्ड तथा ईएमआई (EMI) सुविधाओं का आक्रामक विस्तार भविष्य की आय को वर्तमान उपभोग में बदल देता है, जिससे तात्कालिक समग्र मांग तेजी से बढ़ती है।

च) विदेशी मांग एवं निर्यात में उछाल (Export Boom):
घरेलू स्तर पर उत्पादित वस्तुओं की विदेशी बाजारों में मांग अत्यधिक बढ़ जाने पर घरेलू आपूर्ति का एक बड़ा हिस्सा निर्यात हो जाता है, जिससे घरेलू बाजार में वस्तुओं की कमी हो जाती है और कीमतें बढ़ने लगती हैं।

छ) काला धन एवं समानांतर अर्थव्यवस्था (Black Money):
कर अपवंचन से उत्पन्न अघोषित आय (काली संपदा) सामान्यतः बचत या औपचारिक निवेश में न जाकर विलासितापूर्ण उपभोग, रियल एस्टेट और सोने की सट्टेबाजी में प्रवाहित होती है, जो कृत्रिम मांग का सृजन करती है।

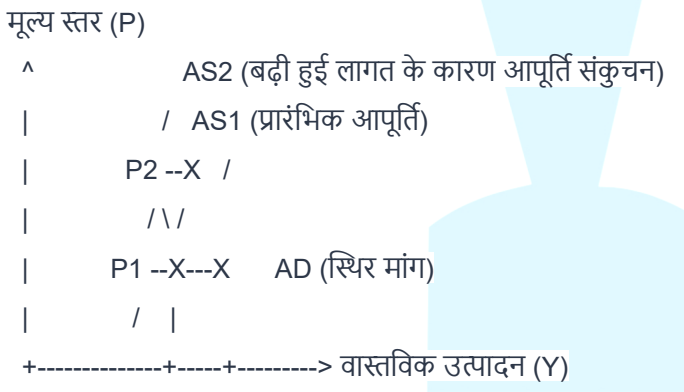
उपखंड b: लागत-प्रेरित मुद्रास्फीति (Cost-Push Inflation) - कच्चे माल की लागत, मजदूरी वृद्धि, आपूर्ति श्रृंखला व्यवधान, संरचनात्मक मुद्रास्फीति

लागत-प्रेरित मुद्रास्फीति का सैद्धांतिक ढांचा

लागत-प्रेरित मुद्रास्फीति समग्र मांग में वृद्धि के कारण नहीं, बल्कि उत्पादन के विभिन्न कारकों की लागत में होने वाली वृद्धि के कारण उत्पन्न होती है। जब उत्पादन लागत बढ़ती है, तो उत्पादक अपने लाभ मार्जिन को सुरक्षित रखने हेतु तैयार माल के विक्रय मूल्य में वृद्धि कर देते हैं। इसे 'आपूर्ति-आघात मुद्रास्फीति' (Supply-Shock Inflation) भी कहा जाता है।

इस स्थिति में समग्र आपूर्ति वक्र (Aggregate Supply Curve) बाईं ओर विस्थापित हो जाता है, जिससे उत्पादन और रोजगार घटता है तथा कीमतें बढ़ती हैं (जो स्टैगफ्लेशन का मुख्य कारण बनता है)।

लागत-प्रेरित मुद्रास्फीति और कुल आपूर्ति संकुचन (Cost-Push Inflation)



wincompete

क्र.सं.	आयाम / बिंदु (Dimension / Point)	आर्थिक निहितार्थ (Economic Implication)
1	प्रारंभिक संतुलन (Point P1 & Y1)	स्थिर मांग (AD) और प्रारंभिक आपूर्ति (AS1) के तहत संतुलन बिंदु
2	लागत वृद्धि और संकुचन (Point P2 & Y2)	उत्पादन लागत बढ़ने पर AS वक्र का बाएं खिसकना (AS2), जिससे मूल्य स्तर बढ़कर P2 और उत्पादन घटकर Y2 हो जाता है

लागत-प्रेरित मुद्रास्फीति के प्रमुख स्रोत एवं घटक

1. कच्चे माल एवं ऊर्जा की लागत में वृद्धि (Raw Material & Energy Shocks)

अ) कच्चे तेल (Crude Oil) की वैश्विक कीमतों में उछाल: भारत जैसे देश हेतु, जो अपनी पेट्रोलियम आवश्यकताओं का 85 प्रतिशत से अधिक आयात करता है, अंतरराष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल की कीमतों में वृद्धि एक गंभीर लागत झटका होती है। पेट्रोलियम उत्पादों के मूल्य बढ़ने से देश में माल-भाड़ा और परिवहन लागत तुरंत बढ़ जाती है, जिसका प्रभाव कृषि से लेकर विनिर्माण तक सभी वस्तुओं के मूल्यों पर पड़ता है।

ब) बुनियादी औद्योगिक धातुओं (इस्पात, सीमेंट, तांबा, सेमीकंडक्टर चिप्स) की कीमतों में वृद्धि निर्माण और विनिर्माण क्षेत्र की लागत को सीधे बढ़ा देती है।

2. मजदूरी-मूल्य सर्पिल (Wage-Price Spiral)

क) प्रक्रिया का स्वरूप: जब श्रमिकों और शक्तिशाली श्रम संघों द्वारा जीवन-यापन की लागत बढ़ने के कारण उच्च मजदूरी की मांग की जाती है और कंपनियां उसे स्वीकार कर लेती हैं, तो उत्पादन की श्रम लागत बढ़ जाती है।

ख) सर्पिल चक्र: कंपनियां इस बढ़ी हुई श्रम लागत की भरपाई हेतु अपने उत्पादों के विक्रय मूल्य बढ़ा देती हैं। बढ़ी हुई कीमतों के कारण श्रमिक पुनः और अधिक मजदूरी की मांग करते हैं। यह प्रक्रिया एक अंतहीन दुष्चक्र का रूप ले लेती है, जिसे अर्थशास्त्र में **'मजदूरी-मूल्य सर्पिल'** कहा जाता है।

wincompete

मजदूरी-मूल्य सर्पिल का दुष्चक्र (Wage-Price Spiral Vicious Circle)

चरण	कड़ी / अवस्था (Stage)	आर्थिक प्रभाव / विवरण (Economic Impact / Dimension)
1	मजदूरी दरों में वृद्धि	कर्मचारियों द्वारा वेतन/मजदूरी बढ़ाने की मांग व प्राप्ति
2	उत्पादन लागत में वृद्धि	उच्च मजदूरी के कारण उद्योगों पर वित्तीय भार का बढ़ना
3	विक्रय मूल्यों में वृद्धि	उत्पादकों द्वारा बढ़ी हुई लागत की भरपाई हेतु वस्तुओं के दाम बढ़ाना
4	जीवन-यापन लागत में वृद्धि	महंगाई बढ़ने के कारण आम जनजीवन का प्रभावित होना
5	पुनः उच्च मजदूरी की मांग	महंगाई से मुकाबला करने के लिए फिर से मजदूरी बढ़ाने की मांग (चक्र निरंतर)

wincompete

🔁 **[मजदूरी दरों में वृद्धि ➔ उत्पादन लागत में वृद्धि ➔ विक्रय मूल्यों में वृद्धि ➔ जीवन-यापन लागत में वृद्धि ➔ पुनः उच्च मजदूरी की मांग]**

3. आपूर्ति श्रृंखला व्यवधान (Supply Chain Disruptions)

अ) भू-राजनीतिक संघर्ष एवं युद्ध: यूक्रेन युद्ध अथवा लाल सागर संकट जैसे भू-राजनीतिक तनावों के कारण वैश्विक व्यापारिक समुद्री मार्ग बाधित होते हैं, जिससे जहाजरानी बीमा और कंटेनर भाड़े में कई गुना वृद्धि हो जाती है।

ब) प्राकृतिक आपदाएं और चरम मौसमी घटनाएं: जलवायु परिवर्तन, अल-नीनो (El Niño) के प्रभाव से सूखा अथवा अत्यधिक वर्षा के कारण कृषि उत्पादन का नष्ट होना खाद्य मुद्रास्फीति को जन्म देता है। भारत में टमाटर, प्याज और दालों की कीमतों में मौसमी उछाल इसी आपूर्ति आघात का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

4. आयातित मुद्रास्फीति (Imported Inflation)

क) विनिमय दर में गिरावट (Rupee Depreciation): जब विदेशी मुद्रा बाजार में भारतीय रुपये का बाह्य मूल्य अमेरिकी डॉलर के सापेक्ष गिरता है (मूल्यह्रास), तो आयातित वस्तुएं (कच्चा तेल, खाद्य तेल, मशीनरी, उर्वरक) घरेलू मुद्रा में अत्यधिक महंगी हो जाती हैं। विदेशी मुद्रा में स्थिर मूल्य होने के बावजूद घरेलू बाजार में उनका अवतरण मूल्य बढ़ जाता है।

ख) वैश्विक कमोडिटी चक्र: वैश्विक स्तर पर प्रमुख खाद्य पदार्थों या उर्वरकों के निर्यात पर प्रतिबंध (जैसे इंडोनेशिया द्वारा पाम ऑयल निर्यात पर रोक) घरेलू मुद्रास्फीति को सीधे आयातित करता है।

5. अप्रत्यक्ष करों में वृद्धि (Tax Push Inflation)

जब सरकार वित्तीय घाटे को पाटने अथवा राजस्व बढ़ाने हेतु आवश्यक उपभोग की वस्तुओं पर वस्तु एवं सेवा कर (GST) की दरों अथवा पेट्रोलियम उत्पादों पर केंद्रीय उत्पाद शुल्क व वैट में वृद्धि करती है, तो यह कर सीधे वस्तुओं के अंतिम मूल्य में जुड़ जाता है, जिससे लागत-प्रेरित स्फीति उत्पन्न होती है।

6. संरचनात्मक मुद्रास्फीति (Structural Inflation) का दृष्टिकोण

विकासशील देशों के संदर्भ में लैटिन अमेरिकी अर्थशास्त्रियों (जैसे राउल प्रेबिश, सेल्सो फुरटाडो) द्वारा 'संरचनात्मक दृष्टिकोण' (Structuralist Approach) प्रतिपादित किया गया।

इस सिद्धांत के अनुसार विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में मुद्रास्फीति केवल मौद्रिक या मांग जनित नहीं होती, बल्कि यह अर्थव्यवस्था की अंतर्निहित **संरचनात्मक बाधाओं, अड़चनों (Bottlenecks) और संस्थागत कमियों** का परिणाम होती है।

प्रमुख संरचनात्मक अड़चनें:

कृषि क्षेत्र की संरचनात्मक बाधा: भूमि सुधारों का अभाव, सिंचाई सुविधाओं की कमी, मानसून पर अत्यधिक निर्भरता तथा भंडारण एवं शीत-गृहों (Cold Storages) का अभाव, जिससे खाद्यान्न आपूर्ति मांग के अनुरूप लोचदार नहीं हो पाती।

विपणन एवं मध्यस्थों की श्रृंखला: कृषि उपज विपणन समितियों (APMC) में बिचौलियों और आढ़तियों की लंबी श्रृंखला द्वारा अत्यधिक लाभ मार्जिन जोड़ना तथा जमाखोरी।

अवसंरचनात्मक कमियां: खराब सड़कें, बंदरगाहों पर जाम, तथा अविश्वसनीय विद्युत आपूर्ति के कारण उत्पादन और परिवहन लागत का स्थायी रूप से उच्च बने रहना।

तुलनात्मक आयाम	मांग-प्रेरित मुद्रास्फीति (Demand-Pull)	लागत-प्रेरित मुद्रास्फीति (Cost-Push)
मूल चालक	समग्र मांग (AD) में अत्यधिक विस्तार।	उत्पादन लागत में वृद्धि से समग्र आपूर्ति (AS) का संकुचन।
उत्पादन एवं जीडीपी पर प्रभाव	अल्पकाल में उत्पादन एवं रोजगार में वृद्धि हो सकती है।	उत्पादन घटता है, आर्थिक संवृद्धि धीमी होती है (स्टैगफ्लेशन)।
संकेतक की प्रकृति	क्रेता-संचालित (Buyers' Market)।	विक्रेता-संचालित (Sellers' Market)।
उपयुक्त नीतिगत समाधान	मौद्रिक नीति (ब्याज दर वृद्धि, CRR वृद्धि) एवं राजकोषीय सख्ती।	आपूर्ति-पक्षीय सुधार (कर कटौती, आयात शुल्क घटाना, रसद सुधार)।
संचरण का प्रारंभिक बिंदु	मुद्रा आपूर्ति, सरकारी व्यय अथवा प्रयोज्य आय में वृद्धि।	कच्चा तेल, मजदूरी, आयातित लागत अथवा आपूर्ति व्यवधान।

महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली एवं प्रमुख अवधारणाएं

कोर मुद्रास्फीति बनाम हेडलाइन मुद्रास्फीति (Core vs Headline Inflation):

हेडलाइन मुद्रास्फीति (Headline Inflation): उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (CPI-संयुक्त) की संपूर्ण टोकरी पर आधारित समग्र मुद्रास्फीति दर। इसमें खाद्य और ईंधन सहित सभी वस्तुएं शामिल होती हैं।

कोर मुद्रास्फीति (Core Inflation): हेडलाइन मुद्रास्फीति में से अत्यधिक उतार-चढ़ाव वाले घटकों—**खाद्य एवं पेय पदार्थ (Food) तथा ईंधन व प्रकाश (Fuel)**—को घटाने के पश्चात प्राप्त मुद्रास्फीति दर। यह अर्थव्यवस्था में अंतर्निहित और दीर्घकालिक मूल्य प्रवृत्ति को मापती है।

मुद्रास्फीतिकारी कर (Inflation Tax): सरकार द्वारा अतिरिक्त मुद्रा छापे जाने से जब मुद्रास्फीति उत्पन्न होती है और जनता की वास्तविक क्रय शक्ति घटती है, तो जनता के संसाधनों का यह अदृश्य हस्तांतरण सरकार की ओर हो जाता है। इसे ही 'मुद्रास्फीतिकारी कर' कहा जाता है; यह बिना किसी औपचारिक संसदीय कानून के जनता पर पड़ता है।

श्रिंकफ्लेशन (Shrinkflation): उत्पादकों द्वारा वस्तुओं के खुदरा मूल्य को अपरिवर्तित रखते हुए उनके आकार, वजन या मात्रा में सूक्ष्म कटौती करने की व्यावसायिक रणनीति (यथा 10 रुपये के बिस्कुट के पैकेट की कीमत वही रखना किंतु वजन 100 ग्राम से घटाकर 85 ग्राम कर देना)। यह मुद्रास्फीति का एक छिपा हुआ रूप है।

स्किम्पफ्लेशन (Skimpflation): मूल्य को स्थिर रखते हुए उत्पाद अथवा सेवा की गुणवत्ता या सेवा मानकों में जानबूझकर गिरावट कर देना (यथा होटलों में हाउसकीपिंग कम करना या खाद्य उत्पादों में घटिया सामग्री मिलाना)।

ग्रीडफ्लेशन (Greedflation): जब बड़े कॉर्पोरेट घराने सामान्य लागत वृद्धि की आड़ में अपने उत्पादों के मूल्यों में अत्यधिक और अनुचित वृद्धि करके अपने लाभ मार्जिन (Profit Margins) को कृत्रिम रूप से बहुत अधिक बढ़ा लेते हैं।

शू-लेदर लागत (Shoe-leather Cost): उच्च मुद्रास्फीति के समय नकदी रखने की अवसर लागत बढ़ जाने के कारण लोगों द्वारा अपने पास नकद न रखकर बार-बार बैंक जाने और लेन-देन करने में जो समय और ऊर्जा नष्ट होती है, उसे शू-लेदर लागत कहा जाता है।

मेन्यू लागत (Menu Cost): व्यवसायों द्वारा मूल्य स्तर में निरंतर परिवर्तन होने पर अपने नए मूल्य-सूचियों (Price Lists), कैटलॉग, विज्ञापनों और मेन्यू कार्डों को बार-बार अद्यतन और मुद्रित करने में होने वाला वास्तविक प्रशासनिक व्यय।

बोतल-गर्दन मुद्रास्फीति (Bottleneck Inflation): जब अर्थव्यवस्था के किसी एक महत्वपूर्ण क्षेत्र (जैसे सेमीकंडक्टर चिप या बिजली) में आपूर्ति की भीषण कमी हो जाती है, जिसके कारण उससे जुड़े दर्जनों अन्य उद्योगों का उत्पादन ठप हो जाता है और कीमतें बढ़ जाती हैं, भले ही शेष अर्थव्यवस्था में मांग सामान्य हो।

अध्याय 22: मुद्रास्फीति का प्रभाव, मापन पद्धतियां एवं नियंत्रण तंत्र

खंड A: मुद्रास्फीति का सामाजिक-आर्थिक प्रभाव

उपखंड a: विभिन्न वर्गों पर प्रभाव - लेनदार बनाम देनदार, निश्चित आय वर्ग, निवेशक, कृषक, निर्यातक-आयातक

मुद्रास्फीति का वितरणकारी स्वरूप

मुद्रास्फीति अर्थव्यवस्था के विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक संवर्गों को एकसमान रूप से प्रभावित नहीं करती। जब सामान्य मूल्य स्तर में निरंतर वृद्धि होती है, तो यह समाज के भीतर आय और संपदा का पुनर्वितरण (Redistribution of Income and Wealth) करती है। कुछ वर्ग इस मूल्य वृद्धि के कारण भारी वित्तीय क्षति उठाते हैं, जबकि कुछ विशिष्ट वर्ग अप्रत्याशित वित्तीय लाभ (Windfall Gains) अर्जित करते हैं। यह वितरणकारी विषमता समाज में आर्थिक असमानता को गहरा करती है।

लेनदार (Creditor) बनाम देनदार (Debtor)

ऋण अनुबंधों के संदर्भ में मुद्रास्फीति का प्रभाव वास्तविक ब्याज दर (Real Interest Rate) के माध्यम से संचालित होता है। फिशर समीकरण के अनुसार:

वास्तविकब्याजदर = नाममात्रब्याजदर – मुद्रास्फीतिदर

क) देनदार / ऋणी (Debtors) को शुद्ध लाभ: मुद्रास्फीति के कालखंड में देनदारों को प्रत्यक्ष वित्तीय लाभ प्राप्त होता है। जब किसी व्यक्ति या संस्था ने ऋण लिया था, तब मुद्रा की क्रय शक्ति उच्च थी। ऋण चुकाते समय, मुद्रास्फीति के कारण मुद्रा का वास्तविक मूल्य घट चुका होता है। यद्यपि देनदार नाममात्र रूप में अनुबंध के अनुसार समान मौद्रिक राशि चुकाता है, परंतु उस राशि का वास्तविक मूल्य (Real Purchasing Power) पूर्व की तुलना में काफी कम होता है। अतः देनदार सस्ते मूल्य वाली मुद्रा में अपने ऋण का दायित्व चुकाते हैं।

ख) लेनदार / ऋणदाता (Creditors) को शुद्ध हानि: लेनदार मुद्रास्फीति के सबसे बड़े शिकार होते हैं। उन्हें जो मूलधन और ब्याज वापस प्राप्त होता है, उससे वे पहले की तुलना में कम वस्तुएं और सेवाएं खरीद पाते हैं। यदि मुद्रास्फीति की दर अनुबंध में तय की गई नाममात्र ब्याज दर से अधिक हो जाती है, तो लेनदार को ऋणात्मक वास्तविक प्रतिफल (Negative Real Return) प्राप्त होता है, जिससे उसकी वास्तविक संपदा का क्षरण होता है।

निश्चित आय वर्ग बनाम परिवर्तनशील आय वर्ग

अ) निश्चित आय वर्ग (Fixed Income Groups): इसके अंतर्गत नियमित वेतनभोगी कर्मचारी, पेंशनभोगी, जीवन बीमा वार्षिकी धारक तथा बैंक सावधि जमाओं (FD) पर निर्भर वृद्ध नागरिक आते हैं। इन वर्गों की मौद्रिक आय स्थिर अथवा कठोर (Rigid) होती है, जो मूल्य स्तर में होने वाली त्वरित वृद्धि के अनुपात में स्वतः समायोजित नहीं होती। परिणामस्वरूप, इनकी वास्तविक आय (Real Income) निरंतर गिरती जाती है और इनका जीवन स्तर संकुचित हो जाता है। यद्यपि सरकारी कर्मचारियों को महंगाई भत्ता (Dearness Allowance - DA) प्रदान किया जाता है, परंतु यह प्रायः मूल्य वृद्धि के काफी समय बाद और अपूर्ण समायोजन के साथ मिलता है।

ब) परिवर्तनशील आय वर्ग (Variable Income Groups / उद्यमी व व्यापारी): इस वर्ग में उद्योगपति, व्यापारी, सटोरिए तथा इक्विटी शेयरधारक आते हैं। मुद्रास्फीति के दौरान वस्तुओं के विक्रय मूल्य उत्पादन लागत (जिसमें मजदूरी और पुराना कच्चा माल शामिल है) की तुलना में अधिक तीव्र गति से बढ़ते हैं। इससे व्यवसायों का लाभ मार्जिन (Profit Margin) विस्तृत होता है, जिससे यह वर्ग अत्यधिक लाभान्वित होता है।

निवेशक वर्ग: निश्चित आय प्रतिभूतियां बनाम इक्विटी शेयर

क) बॉन्ड और डिबेंचर निवेशक: वे निवेशक जिन्होंने निश्चित ब्याज देने वाले सरकारी बॉन्ड, कॉर्पोरेट डिबेंचर अथवा बैंक जमाओं में पूंजी लगाई है, वे मुद्रास्फीति के समय गंभीर नुकसान उठाते हैं क्योंकि उनके ब्याज का कूपन स्थिर रहता है जबकि मुद्रा का मूल्य घट जाता है।

ख) इक्विटी एवं परिसंपत्ति निवेशक: जिन निवेशकों ने कंपनियों के इक्विटी शेयरों, अचल संपत्ति (Real Estate) अथवा सोने (Gold) में निवेश किया है, वे मुद्रास्फीति के विरुद्ध एक प्राकृतिक सुरक्षा कवच (Hedge against Inflation) प्राप्त करते हैं। कंपनियों के लाभ बढ़ने से शेयरों के बाजार मूल्य और लाभांश बढ़ते हैं तथा भौतिक परिसंपत्तियों के मूल्य मुद्रास्फीति के समानांतर ऊपर चढ़ते हैं।

कृषक एवं प्राथमिक उत्पादक वर्ग

कृषकों पर मुद्रास्फीति का प्रभाव एक दोधारी तलवार के समान होता है:

अ) उत्पादक के रूप में लाभ: कृषि उपज (खाद्यान्न, तिलहन, नकदी फसलें) के बाजार मूल्यों में वृद्धि होने पर कृषकों को अपनी उपज का बेहतर मूल्य प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त, अधिकांश कृषक संस्थागत अथवा अनौपचारिक ऋणों के देनदार (Debtors) होते हैं, अतः मुद्रास्फीति उनके वास्तविक ऋण भार को हल्का करती है।

ब) उपभोक्ता के रूप में हानि: कृषक जब उपभोक्ता के रूप में औद्योगिक उत्पाद (उर्वरक, कीटनाशक, डीजल, ट्रैक्टर, कपड़े) खरीदते हैं, तो उन्हें बढ़ी हुई कीमतें चुकानी पड़ती हैं। यदि कृषि आगतों (Inputs) की कीमतें कृषि उपज की कीमतों से अधिक तीव्र गति से बढ़ती हैं, तो व्यापार की शर्तें (Terms of Trade) कृषि के प्रतिकूल हो जाती हैं, जिससे विशेषकर लघु एवं सीमांत किसान तथा भूमिहीन खेतिहर मजदूर गंभीर संकट में घिर जाते हैं।

विदेशी व्यापार: निर्यातक बनाम आयातक

क) निर्यातकों (Exporters) को हानि: घरेलू मुद्रास्फीति देश में उत्पादित वस्तुओं की उत्पादन लागत और निर्यात मूल्य को बढ़ा देती है। अंतरराष्ट्रीय बाजार में विदेशी प्रतिस्पर्धियों की तुलना में भारतीय वस्तुएं महंगी हो जाती हैं, जिससे उनकी अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता (Competitiveness) घटती है और देश के निर्यातों में संकुचन होता है।

ख) आयातकों (Importers) को सापेक्ष लाभ: यदि घरेलू स्तर पर वस्तुओं की कीमतें अत्यधिक बढ़ जाती हैं, तो घरेलू उपभोक्ताओं हेतु विदेशी निर्मित वस्तुएं अपेक्षाकृत सस्ती प्रतीत होने लगती हैं, जिससे आयातों में वृद्धि होती है। इसके परिणामस्वरूप देश का व्यापार घाटा (Trade Deficit) तथा चालू खाता घाटा (CAD) अनियंत्रित रूप से विस्तृत होने लगता है।

सामाजिक/आर्थिक संवर्ग	मुद्रास्फीति का शुद्ध प्रभाव	अंतर्निहित आर्थिक कारण
देनदार (Debtors)	**स्पष्ट लाभ**	अवमूल्यित क्रय शक्ति वाली मुद्रा में पुराने ऋणों की अदायगी।
लेनदार (Creditors)	**प्रत्यक्ष हानि**	प्राप्त होने वाले मूलधन एवं ब्याज की वास्तविक क्रय शक्ति में भारी ह्रास।
निश्चित आय वर्ग (पेंशनभोगी/मजदूर)	**गंभीर हानि**	मौद्रिक आय का स्थिर रहना तथा जीवन-यापन लागत में तीव्र वृद्धि।
उद्यमी एवं व्यापारी	**पर्याप्त लाभ**	उत्पादन लागत की तुलना में विक्रय मूल्यों एवं लाभ मार्जिन का तीव्र विस्तार।
इक्विटी निवेशक	**सापेक्ष लाभ**	कॉर्पोरेट आय एवं शेयर परिसंपत्ति मूल्यों में मुद्रास्फीति के साथ वृद्धि।

wincompete

बॉन्ड एवं बचतकर्ता	**प्रत्यक्ष हानि**	नाममात्र ब्याज दरों का वास्तविक मुद्रास्फीति दर से नीचे रह जाना।
निर्यातक	**हानि**	उत्पादन लागत बढ़ने से वैश्विक बाजार में उत्पादों की प्रतिस्पर्धात्मकता का क्षरण।
आयातक	**सापेक्ष लाभ**	घरेलू निर्मित वस्तुओं की तुलना में आयातित माल का अपेक्षाकृत सस्ता होना।

उपखंड b: बचत, निवेश, आर्थिक संवृद्धि और विनिमय दर पर प्रभाव

घरेलू बचतों पर प्रभाव: वास्तविक ब्याज दर का क्षरण

मुद्रास्फीति समाज की बचत करने की क्षमता और इच्छा दोनों पर प्रतिकूल आघात करती है:

क) क्षमता का संकुचन: जब दैनिक जीवन-यापन की अनिवार्य वस्तुओं (खाद्य, ईंधन, आवास) के मूल्य बढ़ते हैं, तो परिवारों को अपने उपभोग स्तर को बनाए रखने हेतु अपनी कुल आय का एक बड़ा हिस्सा व्यय करना पड़ता है। इससे परिवारों का वित्तीय अधिशेष घट जाता है।

ख) वित्तीय बचतों का विमुद्रीकरण: यदि बैंकों की बचत एवं सावधि जमाओं (FD) पर मिलने वाली नाममात्र ब्याज दर मुद्रास्फीति की दर से कम हो, तो वास्तविक ब्याज दर ऋणात्मक हो जाती है।

ग) भौतिक परिसंपत्तियों की ओर पलायन: ऋणात्मक वास्तविक ब्याज दर के कारण नागरिक औपचारिक वित्तीय प्रणाली (बैंक जमा, म्यूचुअल फंड, बीमा) से अपनी बचतें निकालकर गैर-उत्पादक भौतिक परिसंपत्तियों (सोना, चांदी, रियल एस्टेट) में निवेश करने लगते हैं। इससे देश की बैंकिंग प्रणाली में ऋण योग्य कोषों (Loanable Funds) की कमी हो जाती है।

निवेश एवं पूंजी निर्माण पर प्रभाव: अनिश्चितता का संकट

यद्यपि हल्की मुद्रास्फीति (2 से 3 प्रतिशत) निवेश को प्रोत्साहित करती है, परंतु उच्च और अप्रत्याशित मुद्रास्फीति पूंजी निर्माण की प्रक्रिया को गंभीर रूप से बाधित करती है:

अ) गणना में अनिश्चितता: उच्च मुद्रास्फीति भविष्य की लागतों, राजस्व और लाभप्रदता के वित्तीय आकलनों को अविश्वसनीय बना देती है। दीर्घकालिक अवसंरचना परियोजनाओं के लागत अनुमान (Cost Overruns) विफल हो जाते हैं।

ब) जोखिम प्रीमियम में वृद्धि: वित्तीय संस्थान अनिश्चितता के कारण ऋणों पर उच्च जोखिम प्रीमियम मांगते हैं, जिससे दीर्घावधि उधारी की ब्याज दरें अत्यधिक बढ़ जाती हैं।

स) सट्टा निवेश को बढ़ावा: उत्पादक विनिर्माण में नई फैक्ट्रियां लगाने के स्थान पर निवेशक अल्पकालिक सट्टा गतिविधियों, भूमि की जमाखोरी और कमोडिटी ट्रेडिंग की ओर आकर्षित होते हैं, जिससे अर्थव्यवस्था की वास्तविक उत्पादन क्षमता का विस्तार रुक जाता है।

आर्थिक संवृद्धि (Economic Growth) पर प्रभाव: थ्रेशोल्ड मुद्रास्फीति का सिद्धांत

मुद्रास्फीति और आर्थिक संवृद्धि के अंतर्संबंधों का विश्लेषण 'थ्रेशोल्ड मुद्रास्फीति' (Threshold Inflation) के सिद्धांत द्वारा किया जाता है:

क) अनुकूल प्रभाव (थ्रेशोल्ड सीमा के भीतर): चक्रवर्ती समिति (1985) तथा उर्जित पटेल समिति (2014) के अनुसार, भारत जैसी विकासशील अर्थव्यवस्था में **4 प्रतिशत (± 2 प्रतिशत)** की मध्यम मुद्रास्फीति आर्थिक संवृद्धि का संवाहक होती है। यह उत्पादकों को लाभ देती है, संसाधनों को अकुशल क्षेत्रों से कुशल क्षेत्रों की ओर खींचती है तथा मजदूरी में आवश्यक लचीलापन लाती है।

ख) विनाशकारी प्रभाव (थ्रेशोल्ड सीमा के पार): जब मुद्रास्फीति 6 प्रतिशत की ऊपरी सहिष्णुता सीमा को पार कर जाती है, तो यह आर्थिक संवृद्धि को बाधित करने लगती है। यह समग्र घरेलू मांग को कुचल देती है, निजी कॉर्पोरेट निवेश को हतोत्साहित करती है और केंद्रीय बैंक को नीतिगत ब्याज दरें (रेपो दर) बढ़ाने हेतु बाध्य करती है, जिससे आर्थिक वृद्धि की गति धीमी हो जाती है।
ख) विनाशकारी प्रभाव (थ्रेशोल्ड सीमा के पार): जब मुद्रास्फीति 6 प्रतिशत की ऊपरी सहिष्णुता सीमा को पार कर जाती है, तो यह आर्थिक संवृद्धि को बाधित करने लगती है। यह समग्र घरेलू मांग को कुचल देती है, निजी कॉर्पोरेट निवेश को हतोत्साहित करती है और केंद्रीय बैंक को नीतिगत ब्याज दरें (रेपो दर) बढ़ाने हेतु बाध्य करती है, जिससे आर्थिक वृद्धि की गति धीमी हो जाती है।

थ्रेशोल्ड मुद्रास्फीति एवं आर्थिक संवृद्धि (Threshold Inflation & Economic Growth)

📊 **इष्टतम मुद्रास्फीति सीमा = 4% (± 2%)**

मुद्रास्फीति दर (%)	संवृद्धि क्षेत्र (Zone)	आर्थिक प्रभाव एवं विवरण
< 2%	**धीमी संवृद्धि**	न्यून मांग तथा निवेश में प्रोत्साहन का अभाव।
2% - 6% (लक्ष्य: 4%)	**इष्टतम क्षेत्र (Optimal)**	संवृद्धि को बढ़ावा, उत्पादकों हेतु सकारात्मक लाभप्रदता।
> 6%	**संवृद्धि में गिरावट**	मांग में गिरावट, उच्च ब्याज दरें तथा निवेश में कमी।

विनिमय दर एवं भुगतान संतुलन पर प्रभाव
मुद्रास्फीति देश के बाह्य वित्तीय क्षेत्र तथा विदेशी मुद्रा विनिमय दर को सीधे विकृत करती है। इसे **क्रय शक्ति समता सिद्धांत (Purchasing Power Parity - PPP)** के माध्यम से समझा जा सकता है:

अ) घरेलू मुद्रा का अवमूल्यन (Depreciation of Rupee): यदि भारत में मुद्रास्फीति की दर उसके प्रमुख व्यापारिक साझेदारों (जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका) की तुलना में अधिक है, तो भारतीय रुपये की आंतरिक क्रय शक्ति डॉलर की तुलना में तेजी से गिरती है। विदेशी मुद्रा बाजार में रुपये की आपूर्ति बढ़ती है और मांग घटती है, जिसके परिणामस्वरूप डॉलर के सापेक्ष भारतीय रुपये का मूल्यह्रास (Depreciation) होता है।

ब) चालू खाता घाटे (CAD) का विस्तार: निर्यातों के महंगा होने और आयातों के बढ़ने से व्यापार संतुलन बिगड़ता है। इसके अतिरिक्त, रुपये के कमजोर होने से भारत का तेल आयात बिल स्वतः बढ़ जाता है, जिससे चालू खाता घाटा और अधिक चौड़ा हो जाता है।

स) विदेशी पूंजी का पलायन: उच्च घरेलू मुद्रास्फीति से विदेशी पोर्टफोलियो निवेशकों (FPI) का वास्तविक डॉलर प्रतिफल घट जाता है, जिससे वे भारतीय शेयर और बॉन्ड बाजारों से अपनी पूंजी निकालकर सुरक्षित बाजारों (जैसे अमेरिकी ट्रेजरी) की ओर पलायन करने लगते हैं।

खंड B: मुद्रास्फीति का मापन एवं नियंत्रण

उपखंड a: थोक मूल्य सूचकांक (WPI) - आधार वर्ष, वस्तु टोकरी, भारिता, डीपीआईआईटी की भूमिका

थोक मूल्य सूचकांक (WPI) का संस्थागत एवं प्रशासनिक ढांचा

थोक मूल्य सूचकांक (Wholesale Price Index - WPI) भारत में थोक व्यापार के प्रथम बिंदु पर थोक स्तर पर बेची जाने वाली वस्तुओं के मूल्य संचलनों को मापने वाला एक प्रमुख वृहद-आर्थिक सूचकांक है। यह थोक मंडियों और कारखाने के गेट (Factory Gate) पर थोक सौदों के थोक मूल्यों में होने वाले परिवर्तनों को ट्रैक करता है।

नोडल प्रशासनिक एजेंसी एवं प्रकाशन:

क) प्रशासनिक मंत्रालय: WPI का संकलन एवं मासिक प्रकाशन **वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय** के **उद्योग एवं आंतरिक व्यापार संवर्धन विभाग (DPIIT)** के अंतर्गत कार्यरत **आर्थिक सलाहकार के कार्यालय (Office of the Economic Adviser - OEA)** द्वारा किया जाता है।

ख) आवृत्ति: WPI का संकलन मासिक आधार पर किया जाता है तथा प्रत्येक माह की 14 तारीख को (अथवा अगले कार्यदिवस पर) पूर्ववर्ती माह का सूचकांक आधिकारिक रूप से जारी किया जाता है।

आधार वर्ष एवं सौमित्र चौधरी कार्यदल

वर्तमान में लागू WPI श्रृंखला का **आधार वर्ष 2011-12** है।

अ) ऐतिहासिक संशोधन: पूर्ववर्ती आधार वर्ष 2004-05 को प्रतिस्थापित करते हुए योजना आयोग के तत्कालीन सदस्य **डॉ. सौमित्र चौधरी की अध्यक्षता वाले कार्यदल** की सिफारिशों के आधार पर मई 2017 में 2011-12 आधार वर्ष वाली नवीन श्रृंखला प्रारंभ की गई थी।

ब) संरचनात्मक परिष्कार: 2011-12 की श्रृंखला में वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था के अनुरूप 'अप्रत्यक्ष करों' (उत्पाद शुल्क आदि) को वस्तुओं के थोक मूल्य से पूर्णतः हटा दिया गया, ताकि सूचकांक केवल विनिर्माताओं द्वारा प्राप्त शुद्ध कारखाने-गेट मूल्य को दर्शाए और राजकोषीय कर परिवर्तनों से विकृत न हो।

स) अद्यतन संशोधन प्रक्रिया: वर्तमान में नीति आयोग के सदस्य डॉ. रमेश चंद की अध्यक्षता वाले कार्यदल की रिपोर्ट के आधार पर WPI के आधार वर्ष को पुनः अद्यतन कर 2017-18 अथवा 2022-23 करने की प्रक्रिया विचाराधीन है।

WPI की वस्तु टोकरी (Basket of Goods) एवं भारांक संरचना

WPI (आधार वर्ष 2011-12) की टोकरी में कुल **697 वस्तुएं** सम्मिलित हैं। WPI की सबसे बड़ी संरचनात्मक विशेषता यह है कि यह **केवल भौतिक वस्तुओं** के थोक मूल्यों को मापता है; इसमें **सेवाओं (Services) को पूर्णतः बहिष्कृत** रखा गया है।

समस्त 697 वस्तुओं को तीन प्रमुख समूहों में वर्गीकृत किया गया है:

थोक मूल्य सूचकांक (WPI) की त्रि-स्तरीय संरचना (Three-Tier Structure of WPI)

📊 **कुल वस्तुएं = 697**

क्र.सं.	श्रेणी (Category)	वस्तुओं की संख्या एवं भार (Items & Weightage)
1	प्राथमिक वस्तुएं (Primary Articles)	117 वस्तुएं *(भार = 22.62%)*
2	ईंधन एवं शक्ति (Fuel & Power)	16 वस्तुएं *(भार = 13.15%)*
3	विनिर्मित उत्पाद (Manufactured Products)	564 वस्तुएं *(भार = 64.23%)*

तीन प्रमुख समूहों का विस्तृत विश्लेषण:

1. प्राथमिक वस्तुएं (Primary Articles - भार: 22.62%):
इसके अंतर्गत कुल 117 वस्तुएं शामिल हैं, जिन्हें पुनः तीन उप-समूहों में बांटा गया है:

खाद्य वस्तुएं (Food Articles - भार 15.26%): अनाज (चावल, गेहूं), दालें, सब्जियां, फल, दूध, अंडा, मांस व मछली।

गैर-खाद्य वस्तुएं (Non-Food Articles - भार 4.12%): तिलहन, कच्चा कपास, कच्चा जूट, चारा।

खनिज (Minerals - भार 0.83%): लौह अयस्क, तांबा, बॉक्साइट।

कच्चा पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस (भार 2.41%)।

2. ईंधन एवं शक्ति (Fuel & Power - भार: 13.15%):
इसके अंतर्गत कुल 16 अत्यंत महत्वपूर्ण ऊर्जा वस्तुएं सम्मिलित हैं:

एलपीजी (LPG), पेट्रोल, हाई-स्पीड डीजल (HSD), केरोसिन, विमानन ईंधन (ATF), नेफ्था, बिटुमेन, कोयला तथा विद्युत (Electricity)।

इस समूह में मूल्य परिवर्तन संपूर्ण विनिर्माण और परिवहन लागत को तुरंत प्रभावित करते हैं।

3. विनिर्मित उत्पाद (Manufactured Products - भार: 64.23%):
यह WPI का सबसे विशाल समूह है, जिसमें कुल 564 वस्तुएं सम्मिलित हैं। इसे 22 उप-समूहों में विभाजित किया गया है:

विनिर्मित खाद्य उत्पाद (खाद्य तेल, चीनी, डेयरी उत्पाद - भार 9.12%)।

पेय पदार्थ, तंबाकू उत्पाद, कपड़ा व वस्त्र, चमड़ा उत्पाद, रसायन एवं रासायनिक उत्पाद, फार्मास्यूटिकल्स, मूल धातुएं (लोहा, इस्पात, एल्युमिनियम), मशीनरी व उपकरण, तथा ऑटोमोबाइल व परिवहन उपकरण।

WPI खाद्य सूचकांक (WPI Food Index):
थोक स्तर पर खाद्य मुद्रास्फीति की सटीक निगरानी हेतु DPIIT द्वारा 'प्राथमिक वस्तु समूह' की खाद्य वस्तुओं (15.26%) तथा 'विनिर्मित उत्पाद समूह' के विनिर्मित खाद्य उत्पादों (9.12%) को मिलाकर एक संयुक्त **WPI खाद्य सूचकांक (संयुक्त भार = 24.38%)** पृथक रूप से प्रकाशित किया जाता है।

WPI प्रमुख समूह	वस्तुओं की संख्या	समूह का भारांक (%)	प्रमुख प्रतिनिधि वस्तुएं
प्राथमिक वस्तुएं	117	**22.62%**	गेहूं, धान, सब्जियां, दूध, कच्चा कपास, कच्चा तेल।
ईंधन एवं शक्ति	16	**13.15%**	पेट्रोल, डीजल, एलपीजी, कोयला, बिजली।
विनिर्मित उत्पाद	564	**64.23%**	वनस्पति तेल, रसायन, इस्पात, सीमेंट, वस्त्र, मशीनरी।

wincompete

कुल योग	**697**	**100.00%**	केवल भौतिक वस्तुएं (सेवाएं पूर्णतः बहिष्कृत)।

उपखंड b: उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (CPI) - श्रेणियां, आधार वर्ष, हेडलाइन बनाम कोर मुद्रास्फीति, नियंत्रण के उपाय

उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (CPI) का सैद्धांतिक आधार एवं श्रेणियां

उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (Consumer Price Index - CPI) अंतिम उपभोक्ताओं द्वारा दैनिक जीवन में उपभोग की जाने वाली वस्तुओं और सेवाओं की एक प्रतिनिधि टोकरी के **खुदरा मूल्यों (Retail Prices)** में होने वाले औसत परिवर्तन को मापता है। थोक मूल्य सूचकांक के विपरीत, CPI में भौतिक वस्तुओं के साथ-साथ **सेवाओं (Services - शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, संचार, मनोरंजन) को अनिवार्य रूप से शामिल** किया जाता है।

भारत में वर्तमान में चार भिन्न-भिन्न प्रकार के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक संकलित किए जाते हैं, जिन्हें दो अलग-अलग आधिकारिक एजेंसियों द्वारा प्रकाशित किया जाता है:

wincompete

भारत में CPI के चार प्रमुख प्रकार (Four Major Types of CPI in India)

जारीकर्ता संगठन (Issuing Organization)	सूचकांक का नाम (CPI Type)	कवर क्षेत्र / आयाम (Coverage / Dimension)
राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय (NSO - MoSPI)	**1. CPI (संयुक्त / ग्रामीण / शहरी)**	राष्ट्रीय मानक (Unified / Rural / Urban)
श्रम ब्यूरो (Labour Bureau - श्रम मंत्रालय)	**2. CPI-IW (Industrial Worker)**	औद्योगिक श्रमिक
	3. CPI-AL (Agricultural Labourer)	कृषि मजदूर
	4. CPI-RL (Rural Labourer)	ग्रामीण मजदूर

1. राष्ट्रीय उपभोक्ता मूल्य सूचकांक [CPI (Rural, Urban, Combined)]

क) संकलनकर्ता एजेंसी: **सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय (MoSPI)** के अंतर्गत कार्यरत **राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय (NSO)**।

ख) आधार वर्ष: वर्तमान में इसका **आधार वर्ष 2012 = 100** है।

ग) तीन पृथक उप-सूचकांक:

CPI-ग्रामीण (CPI-Rural): ग्रामीण क्षेत्रों के 1,181 चयनित गांवों से 448 वस्तुओं व सेवाओं के खुदरा मूल्यों पर आधारित।

wincompete

CPI-शहरी (CPI-Urban): देश के 310 चयनित शहरों के 1,114 बाजारों से 460 मदों के मूल्यों पर आधारित।

CPI-संयुक्त (CPI-Combined): संपूर्ण देश का अखिल भारतीय एकीकृत सूचकांक, जो ग्रामीण और शहरी सूचकांकों का भारित समन्वय है।

घ) मौद्रिक नीति का आधिकारिक पैमाना: 2016 में लचीले मुद्रास्फीति लक्ष्यीकरण (FIT) के अंगीकरण के पश्चात से, **भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) की मौद्रिक नीति समिति (MPC) केवल CPI-संयुक्त (CPI-C) को ही अपने 4 ± 2 प्रतिशत के लक्ष्य हेतु आधिकारिक मानक मानती है**।

CPI-संयुक्त (आधार वर्ष 2012) की टोकरी एवं भारांक संरचना:
CPI की टोकरी को छह प्रमुख उप-समूहों में विभाजित किया गया है:

CPI उप-समूह	CPI-ग्रामीण भार (%)	CPI-शहरी भार (%)	CPI-संयुक्त भार (%)	मुख्य समाहित घटक
1. खाद्य एवं पेय पदार्थ	54.18%	36.29%	**45.86%**	अनाज, दालें, दूध, फल, सब्जियां, तेल, मांस, मसाले।
2. पान, तंबाकू एवं नशीले पदार्थ	3.26%	1.36%	**2.38%**	बीड़ी, सिगरेट, पान मसाला।
3. वस्त्र एवं जूते-चप्पल	7.36%	5.57%	**6.53%**	कपड़े, सिले-सिलाए वस्त्र, जूते।
4. आवास (Housing)	**0.00%**	**21.67%**	**10.07%**	केवल शहरी किराए के मकान (ग्रामीण में शून्य भार)।
5. ईंधन एवं प्रकाश (Fuel & Light)	7.94%	5.58%	**6.84%**	एलपीजी, बिजली, केरोसिन, जलाऊ लकड़ी।

wincompete

6. विविध (Miscellaneous / सेवाएं)	27.26%	29.53%	**28.32%**	स्वास्थ्य, शिक्षा, परिवहन, संचार, व्यक्तिगत देखभाल।
कुल योग	**100.00%**	**100.00%**	**100.00%**	वस्तुएं एवं सेवाएं दोनों सम्मिलित।

2. श्रम ब्यूरो (Labour Bureau) द्वारा जारी विशिष्ट CPI सूचकांक

अ) औद्योगिक श्रमिकों हेतु CPI (CPI-IW - Industrial Workers):

नोडल एजेंसी: श्रम एवं रोजगार मंत्रालय का **श्रम ब्यूरो (मुख्यालय: चंडीगढ़)**।

अद्यतन आधार वर्ष: इसका **आधार वर्ष 2016 = 100** है (पूर्व आधार वर्ष 2001 को अक्टूबर 2020 में बदला गया)।

प्रशासनिक उपयोग: केंद्र और राज्य सरकार के कर्मचारियों एवं पेंशनभोगियों के **महंगाई भत्ते (Dearness Allowance - DA)** की गणना हेतु तथा संगठित औद्योगिक क्षेत्र में न्यूनतम मजदूरी के पुनर्निर्धारण हेतु इसी सूचकांक का विधिक प्रयोग किया जाता है।

ब) कृषि मजदूरों हेतु CPI (CPI-AL - Agricultural Labourers):

आधार वर्ष: **1986-87 = 100**।

प्रशासनिक उपयोग: कृषि श्रमिकों हेतु न्यूनतम मजदूरी के संशोधन तथा मनरेगा (MGNREGA) की दैनिक मजदूरी दरों के वार्षिक संशोधन हेतु।

स) ग्रामीण मजदूरों हेतु CPI (CPI-RL - Rural Labourers):

आधार वर्ष: **1986-87 = 100**। ग्रामीण गैर-कृषि मजदूरों की मजदूरी दरों के नियमन हेतु।

WPI बनाम CPI: व्यापक तुलनात्मक विश्लेषण

तुलनात्मक आयाम	थोक मूल्य सूचकांक (WPI)	उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (CPI-संयुक्त)
मापन का स्तर	थोक व्यापारिक स्तर (कारखाना गेट / प्रथम मंडी)।	खुदरा स्तर (अंतिम उपभोक्ता द्वारा क्रय मूल्य)।

wincompete

प्रकाशन एजेंसी	आर्थिक सलाहकार कार्यालय, DPIIT, वाणिज्य मंत्रालय।	राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय (NSO), MoSPI।
वर्तमान आधार वर्ष	**2011-12 = 100**	**2012 = 100**
कवरेज की प्रकृति	**केवल भौतिक वस्तुएं (697)**; सेवाएं पूर्णतः बाहर।	**वस्तुएं एवं सेवाएं दोनों** व्यापक रूप से सम्मिलित।
खाद्य पदार्थों का भार	तुलनात्मक रूप से अत्यंत कम (**24.38%**)।	अत्यधिक विशाल एवं प्रभावी (**45.86%**)।
विनिर्मित उत्पादों का भार	सर्वोच्च भारिता (**64.23%**)।	विविध सेवाओं में विभाजित।
ईंधन समूह का भार	उच्च भारिता (**13.15%**)।	मध्यम भारिता (**6.84%**)।
मौद्रिक नीति में भूमिका	2014 से पूर्व प्रयुक्त; अब केवल संदर्भ हेतु।	**आरबीआई का आधिकारिक मौद्रिक नीति लक्ष्य सूचकांक**।

हेडलाइन मुद्रास्फीति बनाम कोर मुद्रास्फीति (Headline vs Core Inflation)
मुद्रास्फीति की अंतर्निहित प्रकृति को समझने हेतु अर्थशास्त्री इसे दो भागों में विभाजित करते हैं:

क) हेडलाइन मुद्रास्फीति (Headline Inflation):

यह उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (CPI-संयुक्त) की संपूर्ण टोकरी पर आधारित समग्र मुद्रास्फीति दर है।

इसमें खाद्य, पेय पदार्थ, ईंधन, प्रकाश, विनिर्मित वस्तुएं तथा सेवाएं—सभी घटक अपने पूर्ण आधिकारिक भार के साथ शामिल होते हैं।

यह आम जनता द्वारा अनुभव की जाने वाली वास्तविक जीवन-यापन लागत को दर्शाती है।

दोष: यह अत्यधिक अस्थिर (Volatile) होती है क्योंकि कृषि फसलों की मौसमी बर्बादी (टमाटर, प्याज के मूल्य) अथवा वैश्विक कच्चे तेल के झटकों से इसमें अचानक भारी उछाल या गिरावट आ जाती है।

wincompete

ख) कोर मुद्रास्फीति (Core Inflation / अंतर्निहित मुद्रास्फीति):

हेडलाइन मुद्रास्फीति में से उन घटकों को पूरी तरह हटाकर (बहिष्कृत करके) निकाली गई मुद्रास्फीति दर, जिनके मूल्यों में अल्पकाल में अत्यधिक तीव्र और अस्थायी उतार-चढ़ाव होता है।

कोर मुद्रास्फीति का सूत्र एवं घटक (Core Inflation Formula & Components)

📊 **कोर मुद्रास्फीति = हेडलैलाइन CPI मुद्रास्फीति - [खाद्य एवं पेय पदार्थ (45.86%) + ईंधन एवं प्रकाश (6.84%)]**

क्र.सं.	हटाए गए अस्थिर घटक (Excluded Volatile Components)	भार / प्रतिशत (Weightage)
1	खाद्य एवं पेय पदार्थ (Food & Beverages)	45.86%
2	ईंधन एवं प्रकाश (Fuel & Light)	6.84%
कुल निष्कासित भार (Total Excluded Weight)		**~52.7%**

विशेषता / प्रभाव: चूंकि कुल टोकरी के लगभग 52.7 प्रतिशत अस्थिर हिस्से को हटा दिया जाता है, अतः कोर मुद्रास्फीति मुख्य रूप से **विनिर्मित उत्पादों और गैर-खाद्य सेवाओं** (स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास, परिवहन) के मूल्यों को दर्शाती है।

wincompete

प्रबंधकीय उपयोग: यह अर्थव्यवस्था में मांग के वास्तविक दबाव और दीर्घकालिक मूल्य प्रवृत्तियों को प्रकट करती है, जिससे केंद्रीय बैंक को यह निर्णय लेने में सहायता मिलती है कि क्या ब्याज दरों में बदलाव की आवश्यकता है।

उपखंड c: मुद्रास्फीति नियंत्रण के राजकोषीय, मौद्रिक एवं प्रशासनिक उपाय

मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने हेतु सरकार और केंद्रीय बैंक द्वारा एक त्रि-आयामी समन्वित रणनीति का प्रयोग किया जाता है:

मुद्रास्फीति नियंत्रण के तीन स्तंभ (Three Pillars of Inflation Control)

क्र.सं.	स्तंभ / उपाय (Pillar / Measure)	विस्तृत आयाम / कार्यप्रणाली (Detailed Dimension / Mechanism)
1	मौद्रिक उपाय (आरबीआई)	ब्याज दर वृद्धि (रेपो), CRR/SLR वृद्धि, तरलता अवशोषण (SDF/OMO)
2	राजकोषीय उपाय (सरकार)	सार्वजनिक व्यय में कमी, करों में कटौती, राजकोषीय घाटा नियंत्रण
3	प्रशासनिक/आपूर्ति उपाय	आवश्यक वस्तुओं का आयात, बफर स्टॉक रिलीज, स्टॉक सीमाएं, निर्यात प्रतिबंध

1. मौद्रिक उपाय (Monetary Measures - भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा)

मौद्रिक नीति का प्राथमिक उद्देश्य अर्थव्यवस्था में कुल मुद्रा आपूर्ति और साख की उपलब्धता को संकुचित करके मांग-प्रेरित दबावों को समाप्त करना है:

अ) नीतिगत रेपो दर में वृद्धि: रेपो दर बढ़ाने से वाणिज्यिक बैंकों हेतु केंद्रीय बैंक से उधार लेना महंगा हो जाता है। बैंक अपनी ऋण ब्याज दरें (EBLR/MCLR) बढ़ा देते हैं, जिससे उपभोक्ता ऋण (गृह, वाहन ऋण) और कॉर्पोरेट निवेश धीमा हो जाता है, जिससे समग्र मांग घटती है।

ब) सांविधिक अनुपातों (CRR एवं SLR) में वृद्धि: नकद आरक्षित अनुपात (CRR) बढ़ाकर बैंकों की ऋण देने योग्य अधिशेष नकदी को सीधे लॉक कर दिया जाता है।

स) तरलता अवशोषण (Liquidity Absorption): स्थायी जमा सुविधा (SDF) और खुले बाजार की कार्रवाइयों (OMO) के माध्यम से सरकारी प्रतिभूतियों को बेचकर बाजार से अतिरिक्त नकदी को सोख लिया जाता है।

द) चयनात्मक साख नियंत्रण: सट्टेबाजी वाले संवेदनशील क्षेत्रों (कमोडिटी, शेयर, रियल एस्टेट) हेतु मार्जिन आवश्यकताओं में वृद्धि करना तथा साख की राशनिंग करना।

2. राजकोषीय उपाय (Fiscal Measures - केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा)
राजकोषीय नीति सरकारी बजट के माध्यम से नागरिकों की प्रयोज्य आय को प्रभावित करती है तथा उत्पादन लागत को घटाती है:

क) सार्वजनिक व्यय में कटौती: सरकार अपने गैर-विकासात्मक, प्रशासनिक और उपभोग व्ययों को स्थगित या कम करती है, जिससे बाजार में नई मुद्रा का प्रवाह रुकता है।

ख) आयात शुल्कों (Customs Duties) का युक्तिकरण: जब घरेलू बाजार में आवश्यक खाद्य वस्तुओं (यथा खाद्य तेल, दालें, गेहूं) की कीमतें बढ़ती हैं, तो सरकार तत्काल प्रभाव से उनके आयात पर लगने वाले मूल सीमा शुल्क और उपकर को घटाकर शून्य कर देती है, ताकि सस्ते विदेशी माल के आगमन से घरेलू कीमतें गिरें।

ग) अप्रत्यक्ष करों में कटौती: पेट्रोलियम उत्पादों (पेट्रोल एवं डीजल) पर केंद्रीय उत्पाद शुल्क (Excise Duty) तथा राज्यों द्वारा मूल्य संवर्धित कर (VAT) में कटौती करना। इससे माल-भाड़ा और परिवहन लागत घटती है, जो लागत-प्रेरित मुद्रास्फीति को तुरंत शांत करती है।

घ) राजकोषीय घाटे का संकुचन: एफआरबीएम (FRBM) अधिनियम के लक्ष्यों के अनुरूप राजकोषीय समेकन का पालन करना और बाजार से अतिरिक्त उधारी लेने से बचना, ताकि मुद्रा का अत्यधिक मुद्रीकरण न हो।

3. प्रशासनिक एवं आपूर्ति-पक्षीय उपाय (Administrative and Supply-Side Measures)
विकासशील देशों में खाद्य मुद्रास्फीति प्रायः संरचनात्मक कमियों और आपूर्ति व्यवधानों के कारण होती है, जिसे केवल मौद्रिक नीति से नियंत्रित नहीं किया जा सकता। इसके लिए प्रत्यक्ष प्रशासनिक हस्तक्षेप किए जाते हैं:

अ) बफर स्टॉक का खुला बाजार विक्रय (OMSS - Open Market Sale Scheme):
भारतीय खाद्य निगम (FCI) के पास संचित केंद्रीय पूल से गेहूं और चावल को खुले बाजार में थोक व्यापारियों और आटा मिलों को रियायती आरक्षित मूल्य पर नीलाम करना, जिससे खुले बाजार में खाद्यान्न की आपूर्ति बढ़े और कीमतें नीचे आएं।

ब) मूल्य स्थिरीकरण कोष (Price Stabilization Fund - PSF):
उपभोक्ता मामले मंत्रालय द्वारा संचालित इस कोष के माध्यम से दालों (चना, तुअर, उड़द) तथा प्याज-टमाटर का रणनीतिक बफर स्टॉक तैयार किया जाता है और मूल्य वृद्धि के समय उन्हें बाजार में लागत मूल्य पर उतारा जाता है (जैसे 'भारत दाल' और 'भारत आटा' पहल)।

स) निर्यात प्रतिबंध एवं न्यूनतम निर्यात मूल्य (MEP):
घरेलू उपलब्धता सुनिश्चित करने हेतु संकट के समय आवश्यक वस्तुओं (यथा गैर-बासमती चावल, गेहूं, चीनी, प्याज) के निर्यात पर पूर्ण प्रतिबंध लगाना अथवा अत्यधिक उच्च न्यूनतम निर्यात मूल्य अधिरोपित करना, ताकि माल देश से बाहर न जाए।

द) आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 (Essential Commodities Act) का क्रियान्वयन:

व्यापारियों, थोक विक्रेताओं और बड़े खुदरा विक्रेताओं पर दालों, तिलहनों अथवा चीनी की अधिकतम स्टॉक सीमा (Stock Limits) लागू करना, सघन निरीक्षण करना तथा चोरबाजारी और अवैध जमाखोरी (Hoarding) करने वालों के विरुद्ध दंडात्मक विधिक कार्रवाई करना।

महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली एवं प्रमुख अवधारणाएं

रिफ्लेशन (Reflation): मंदी अथवा अवस्फीति के दौर के उपरांत आर्थिक संवृद्धि को पुनर्जीवित करने और बेरोजगारी घटाने के उद्देश्य से सरकार द्वारा जानबूझकर राजकोषीय प्रोत्साहन (व्यय विस्तार) तथा मौद्रिक ढील (ब्याज दर कटौती) के माध्यम से मूल्य स्तर को नियंत्रित रूप से ऊपर उठाने की सुनियोजित आर्थिक नीति।

फिशर प्रभाव (Fisher Effect): अर्थशास्त्री इरविंग फिशर द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत, जिसके अनुसार दीर्घकाल में नाममात्र ब्याज दर (Nominal Interest Rate) प्रत्याशित मुद्रास्फीति दर के साथ 1:1 के अनुपात में समायोजित होती है, ताकि वास्तविक ब्याज दर स्थिर बनी रहे:

$$\text{नाममात्रब्याजदर} = \text{वास्तविकब्याजदर} + \text{प्रत्याशितमुद्रास्फीतिदर}$$

कोर-कोर मुद्रास्फीति (Super-Core / Core-Core Inflation): कोर मुद्रास्फीति में से भी परिवहन और संचार जैसे अत्यधिक ऊर्जा-संवेदनशील सेवा घटकों को और अधिक बाहर निकालकर विशुद्ध रूप से गैर-ऊर्जा, गैर-खाद्य विनिर्मित उत्पादों और बुनियादी सेवाओं की मुद्रास्फीति को मापना।

आधार प्रभाव (Base Effect): किसी चालू माह में मुद्रास्फीति की वार्षिक दर की गणना पर पूर्व वर्ष के संबंधित माह के मूल्य सूचकांक के स्तर का पड़ने वाला सांख्यिकीय प्रभाव। यदि पूर्व वर्ष के उसी माह में मूल्य सूचकांक असामान्य रूप से अत्यधिक उच्च था, तो चालू वर्ष में वास्तविक मूल्य वृद्धि होने के बावजूद मुद्रास्फीति की प्रतिशत दर सांख्यिकीय रूप से कम दिखाई देती है (अनुकूल आधार प्रभाव)।

व्यापार की शर्तें (Terms of Trade - ToT): किसी क्षेत्र अथवा देश के निर्यात मूल्यों और आयात मूल्यों का अनुपात:

$$ToT = \left(\frac{\text{निर्यातमूल्यसूचकांक}}{\text{आयातमूल्यसूचकांक}}\right) \times 100$$

कृषि के संदर्भ में, यह किसानों द्वारा बेची जाने वाली उपज के मूल्य और उनके द्वारा खरीदे जाने वाले औद्योगिक इनपुट के मूल्य का सापेक्ष अनुपात है।

अदृश्य मुद्रास्फीति / श्रिंकफ्लेशन (Shrinkflation): विनिर्माताओं द्वारा उत्पाद के खुदरा विक्रय मूल्य को स्थिर रखते हुए उसके पैकेट के आकार, वजन या मात्रा को गुप्त रूप से कम कर देना। यह मूल्य सूचकांकों में सीधे परिलक्षित हुए बिना उपभोक्ता की जेब पर पड़ने वाली मुद्रास्फीति का एक प्रच्छन्न रूप है।

मुद्रास्फीति अंतराल (Inflationary Gap): पूर्ण रोजगार के स्तर पर अर्थव्यवस्था में कुल वास्तविक उत्पादन की तुलना में समग्र मांग (Aggregate Demand) का आधिक्य। यह वह अतिरिक्त मांग है जिसे पूरा करने हेतु भौतिक संसाधन उपलब्ध नहीं होते, जिसके कारण उत्पादन बढ़े बिना केवल मूल्य स्तर में तीव्र उछाल आता है।

अध्याय 23: सब्सिडी (राजसहायता) - प्रकार, अर्थशास्त्र एवं तर्कसंगतता

खंड A: सब्सिडी का सैद्धांतिक ढांचा एवं प्रभाव

उपखंड a: सब्सिडी की परिभाषा, आवश्यकता, आर्थिक औचित्य, मेरिट बनाम गैर-मेरिट सब्सिडी

सब्सिडी की सैद्धांतिक एवं संस्थागत परिभाषा

सब्सिडी अथवा राजसहायता सरकार द्वारा किसी उपभोक्ता, उत्पादक अथवा व्यावसायिक इकाई को दिया जाने वाला वह वित्तीय अंतरण (Financial Transfer) अथवा आर्थिक लाभ है, जिसके परिणामस्वरूप संबंधित वस्तु अथवा सेवा का उपभोग मूल्य बाजार-निर्धारित मूल्य से कम हो जाता है अथवा उत्पादक की उत्पादन लागत में कमी आती है। लोक वित्त के सिद्धांत में सब्सिडी को 'ऋणात्मक कर' (Negative Tax) माना जाता है। जिस प्रकार कर (Tax) किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि करके उसके उपभोग को हतोत्साहित करता है, उसी प्रकार सब्सिडी वस्तु की उपभोक्ता कीमत को उसकी उत्पादन लागत से नीचे लाकर उसके उत्पादन एवं उपभोग को कृत्रिम रूप से प्रोत्साहित करती है।

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) एवं विश्व व्यापार संगठन (WTO) के 'सब्सिडी एवं प्रतिकारी उपाय समझौते' (ASCM) के अनुसार, सब्सिडी के तीन प्राथमिक घटक होते हैं:

क) सरकार अथवा किसी सार्वजनिक निकाय द्वारा वित्तीय योगदान (यथा प्रत्यक्ष अनुदान, ऋण या इक्विटी अंतःक्षेपण)।

ख) सरकारी राजस्व का परित्याग (यथा कर रियायतें, शुल्क छूट अथवा मूल्यह्रास भत्ते)।

ग) सरकार द्वारा सामान्य बाजार से कम मूल्य पर वस्तुओं या सेवाओं का प्रावधान अथवा बाजार से अधिक मूल्य पर वस्तुओं का क्रय।

सब्सिडी की आवश्यकता एवं आर्थिक औचित्य

कल्याणकारी राज्य में बाजार प्रणाली प्रायः सामाजिक प्राथमिकताओं के अनुरूप संसाधनों का आबंटन करने में असमर्थ रहती है। सब्सिडी का औचित्य निम्नलिखित आर्थिक सिद्धांतों पर आधारित है:

अ) बाजार विफलता (Market Failure) का सुधार: पूर्ण प्रतिस्पर्धी बाजार केवल उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करता है जहां निजी लाभ अधिकतम हो। जब किसी वस्तु के उत्पादन या उपभोग से समाज को सकारात्मक लाभ प्राप्त होते हैं किंतु निजी निवेशक उसकी लागत वहन नहीं कर पाते, तब राज्य को बाजार में हस्तक्षेप करना पड़ता है।

ब) सकारात्मक बाह्यताएं (Positive Externalities): जब किसी वस्तु के उपभोग का लाभ केवल उपभोगकर्ता तक सीमित न रहकर संपूर्ण समाज में फैलता है, तो उसे धनात्मक बाह्यता कहते हैं (यथा टीकाकरण, प्राथमिक शिक्षा, सीवरेज शोधन)। सब्सिडी इन बाह्यताओं की सामाजिक लागत को कम करके इनके उपभोग को सामाजिक रूप से इष्टतम स्तर तक ले जाती है।

स) मेरिट वस्तुओं का प्रावधान: कुछ वस्तुएं ऐसी होती हैं जिनकी उपयोगिता को उपभोक्ता अल्पकालिक दृष्टिकोण के कारण कम आंकते हैं (यथा पोषण, स्वच्छता, प्राथमिक स्वास्थ्य)। सरकार सब्सिडी के माध्यम से इनके उपभोग को अनिवार्य स्तर तक प्रोत्साहित करती है।

द) पुनर्वितरण एवं सामाजिक न्याय (अनुच्छेद 38 व 39): निर्धनतम वर्गों की क्रय शक्ति सीमित होने के कारण वे आवश्यक जीवन-रक्षक वस्तुओं (खाद्यान्न, दवाइयां) से वंचित न रहें, अतः सब्सिडी आय

पुनर्वितरण और उपभोग समता (Consumption Equality) स्थापित करने का संवैधानिक साधन बनती है।

मेरिट बनाम गैर-मेरिट सब्सिडी का वर्गीकरण
भारत में सब्सिडी के युक्तिकरण और उसके बजटीय प्रभाव का प्रथम व्यवस्थित विश्लेषण करने हेतु वित्त मंत्रालय द्वारा **डॉ. पार्थसारथी शोम समिति (1997)** तथा तत्पश्चात वर्ष 2004 में राष्ट्रीय लोक वित्त एवं नीति संस्थान (NIPFP) के माध्यम से श्वेत पत्र तैयार किया गया था। इस वर्गीकरण के अनुसार संपूर्ण सरकारी राजसहायता को तीन स्पष्ट श्रेणियों में विभाजित किया जाता है:

सब्सिडी का कार्यात्मक वर्गीकरण (Functional Classification of Subsidy)

क्र.सं.	श्रेणी (Category)	शामिल क्षेत्र / वस्तुएं (Included Sectors / Goods)
1	मेरिट वस्तुएं श्रेणी-I (Merit-I)	सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा, प्राथमिक स्वास्थ्य, पर्यावरण
2	मेरिट वस्तुएं श्रेणी-II (Merit-II)	उच्च शिक्षा, कृषि अनुसंधान, ग्रामीण सड़कें, जल आपूर्ति
3	गैर-मेरिट वस्तुएं (Non-Merit)	उर्वरक, एलपीजी, विद्युत, सिंचाई, उच्चतर तकनीकी प्रशिक्षण

क) मेरिट सब्सिडी (Merit Subsidies):

परिभाषा: वे सामाजिक एवं आर्थिक सेवाएं जिनके उपभोग से व्यापक सकारात्मक बाह्यताएं उत्पन्न होती हैं और जिनका सामाजिक लाभ उनके निजी लाभ से कई गुना अधिक होता है।

श्रेणी-I मेरिट वस्तुएं: प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा, बुनियादी सार्वजनिक स्वास्थ्य, टीकाकरण कार्यक्रम, संचारी रोग नियंत्रण, पर्यावरण संरक्षण, अपशिष्ट प्रबंधन तथा मौसम पूर्वानुमान। इनका शत-प्रतिशत सार्वजनिक वित्तपोषण आर्थिक रूप से सर्वथा न्यायसंगत माना जाता है।

श्रेणी-II मेरिट वस्तुएं: उच्च शिक्षा, मृदा संरक्षण, बाढ़ नियंत्रण, सिंचाई की लघु परियोजनाएं, तथा कृषि अनुसंधान। इनमें निजी लाभ का अंश होने के कारण आंशिक लागत वसूली (Cost Recovery) का सुझाव दिया जाता है।

ख) गैर-मेरिट सब्सिडी (Non-Merit Subsidies):

परिभाषा: वे वस्तुएं एवं सेवाएं जिनके उपभोग से कोई स्पष्ट सकारात्मक सामाजिक बाह्यता उत्पन्न नहीं होती अथवा जिनका लाभ मुख्य रूप से संपन्न, संगठित और आर्थिक रूप से सक्षम वर्गों द्वारा उठाया जाता है।

उदाहरण: यूरिया पर अत्यधिक सब्सिडी, घरेलू रसोई गैस (एलपीजी) पर सामान्य मूल्य समर्थन, सिंचाई हेतु निःशुल्क विद्युत, राज्य परिवहन निगमों के घाटे की भरपाई तथा गैर-प्राथमिकता वाले सार्वजनिक उपक्रमों को दिए जाने वाले वित्तीय अनुदान।

नीतिगत संस्तुति: विशेषज्ञ समितियों का यह स्पष्ट मत रहा है कि गैर-मेरिट सब्सिडी अर्थव्यवस्था में विकृतियां पैदा करती है और इसे चरणबद्ध रूप से समाप्त अथवा लक्षित किया जाना चाहिए।

वर्गीकरण आयाम	**मेरिट सब्सिडी (Merit Subsidy)**	**गैर-मेरिट सब्सिडी (Non-Merit Subsidy)**
बाह्यताओं का स्वरूप	अत्यधिक उच्च धनात्मक बाह्यताएं (समाज को व्यापक लाभ)।	नगण्य बाह्यताएं; लाभ मुख्य रूप से प्रत्यक्ष उपभोक्ता तक सीमित।
लक्षित वर्ग	समाज के सबसे निर्धन, वंचित एवं हाशिए के वर्ग।	प्रायः मध्यम एवं उच्च-मध्यम वर्ग अथवा बड़े भू-स्वामी।
आर्थिक उत्पादकता	मानव पूंजी निर्माण और दीर्घकालिक उत्पादकता में वृद्धि।	अनुत्पादक उपभोग व्यय; संसाधनों का अपव्यय।
लागत वसूली की नीति	न्यूनतम अथवा शून्य लागत वसूली (सार्वजनिक दायित्व)।	पूर्ण अथवा अधिकतम लागत वसूली अनिवार्य होनी चाहिए।
प्रमुख उदाहरण	प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, मिड-डे मील, स्वच्छ पेयजल।	कृषि विद्युत पर शून्य प्रभार, हवाई अड्डों का अप्रत्यक्ष समर्थन।

wincompete

उपखंड b: प्रत्यक्ष सब्सिडी बनाम अप्रत्यक्ष सब्सिडी, बाजार विकृतियां, बजटीय बोझ और वित्तीय घाटा

प्रत्यक्ष बनाम अप्रत्यक्ष सब्सिडी: तंत्र एवं संरचनात्मक भेद

सब्सिडी के वितरण माध्यम के आधार पर इसे दो प्रशासनिक प्रतिमानों में वर्गीकृत किया जाता है:

सब्सिडी वितरण प्रतिमान (Subsidy Distribution Paradigm)

क्र.सं.	प्रतिमान (Paradigm)	कार्यप्रणाली / प्रभाव (Mechanism / Impact)
1	**प्रत्यक्ष सब्सिडी (Direct)**	सीधे लाभार्थी के बैंक खाते में नकद अंतरण *(मूल्य बाजार द्वारा तय)*
2	**अप्रत्यक्ष सब्सिडी (Indirect)**	उत्पादक को भुगतान अथवा नियंत्रित मूल्य *(बाजार प्रणाली में कृत्रिम हस्तक्षेप)*

अ) प्रत्यक्ष सब्सिडी (Direct Subsidy):

कार्यप्रणाली: इसमें सरकार बाजार में वस्तुओं के मूल्यों में कोई प्रत्यक्ष हस्तक्षेप नहीं करती। वस्तुएं खुले बाजार में उनकी वास्तविक मांग-आपूर्ति आधारित लागत पर बिकती हैं। सरकार पूर्व-निर्धारित पात्र लाभार्थियों के बैंक खातों में प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT) के माध्यम से नकद सहायता अंतरित कर देती है।

उदाहरण: पीएम-किसान (PM-KISAN) योजना के तहत किसानों को प्रतिवर्ष 6,000 रुपये का नकद अंतरण, पहल (PAHAL) योजना के अंतर्गत एलपीजी सिलेंडरों पर खाते में सब्सिडी, तथा खाद्य कूपन प्रणाली।

गुण: बाजार की मूल्य प्रणाली अक्षुण्ण रहती है, रिसाव (Leakages) और कालाबाजारी समाप्त होती है तथा प्रशासनिक व्यय में कमी आती है।

ब) अप्रत्यक्ष सब्सिडी (Indirect Subsidy / Price Subsidy):

कार्यप्रणाली: इसमें सरकार उत्पादन आगतों (Inputs) अथवा अंतिम उत्पादों के विक्रय मूल्य को कृत्रिम रूप से कम रखने हेतु उत्पादकों या वितरकों को क्षतिपूर्ति का भुगतान करती है। उपभोक्ता को वस्तु बाजार मूल्य से काफी कम दर पर उपलब्ध कराई जाती है।

उदाहरण: उर्वरक कंपनियों को उत्पादन लागत और नियंत्रित एमआरपी के अंतर का पुनर्भरण, भारतीय खाद्य निगम (FCI) को खाद्यान्न की आर्थिक लागत और केंद्रीय निर्गम मूल्य के अंतर की भरपाई।

दोष: इसमें विशाल प्रशासनिक तंत्र की आवश्यकता होती है, अपात्र संपन्न वर्ग भी इसका लाभ उठाते हैं तथा माल की खुले बाजार में कालाबाजारी की संभावना बनी रहती है।

तुलनात्मक आयाम	प्रत्यक्ष सब्सिडी (DBT ढांचा)	अप्रत्यक्ष सब्सिडी (मूल्य विकृति ढांचा)
हस्तांतरण का बिंदु	अंतिम उपभोक्ता के बैंक खाते में प्रत्यक्ष नकद।	उत्पादक अथवा आपूर्ति एजेंसी (जैसे FCI या उर्वरक कंपनी)।
बाजार मूल्य प्रणाली	बाजार की मांग और आपूर्ति के आधार पर स्वतंत्र मूल्य।	सरकार द्वारा विहित वैधानिक नियंत्रित मूल्य (MRP)।
अपवर्जन एवं रिसाव	आधार एवं बायोमेट्रिक प्रमाणीकरण के कारण न्यूनतम रिसाव।	बिचौलियों, फर्जी राशन कार्डों व तस्करी के कारण भारी रिसाव।
उपभोक्ता की संप्रभुता	उपभोक्ता अपनी प्राथमिकता के अनुसार धन व्यय करने हेतु स्वतंत्र।	उपभोक्ता केवल उसी विशिष्ट वस्तु का उपभोग करने हेतु विवश।
संसाधनों का अपव्यय	बाजार मूल्य चुकाने के कारण संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग।	अत्यधिक सस्ते मूल्य के कारण संसाधनों का अनियंत्रित दोहन।

सब्सिडी जनित बाजार विकृतियां (Market Distortions) एवं अप्रत्यक्ष हानियां

जब सरकार किसी वस्तु के मूल्य को उसकी वास्तविक सीमांत लागत से नीचे बनाए रखती है, तो अर्थशास्त्र के नियमों के अनुसार गंभीर संरचनात्मक विकृतियां उत्पन्न होती हैं:

क) मूल्य संकेतों का विरूपण (Price Signal Distortion): बाजार में मूल्य scarcity (दुर्लभता) का संकेतक होता है। सब्सिडी दुर्लभ संसाधनों को कृत्रिम रूप से सस्ता बनाकर यह भ्रम पैदा करती है कि वे संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं।

ख) प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध क्षरण:

कृषि क्षेत्र में निःशुल्क अथवा अत्यधिक सस्ती विद्युत और नहर जल सब्सिडी के कारण पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी राजस्थान में जल-सघन फसलों (धान, गन्ना) की खेती को प्रोत्साहन मिला। इसके परिणामस्वरूप भूजल का स्तर खतरनाक रूप से गिर गया।

यूरिया पर अत्यधिक सब्सिडी के कारण संतुलित उर्वरक अनुपात (4:2:1) बिगड़कर 8:3:1 से भी अधिक हो गया, जिससे मृदा की उर्वरता नष्ट हुई और भूजल में नाइट्रेट प्रदूषण बढ़ा।

ग) निजी निवेश का निष्कासन (Crowding-out of Private Investment): सार्वजनिक वितरण प्रणाली में अत्यधिक रियायती खाद्यान्न और सरकारी एकाधिकार के कारण निजी अनाज भंडारण और रसद अवसंरचना का विकास अवरुद्ध हुआ।

घ) डेडवेट लॉस (Deadweight Loss): सब्सिडी की प्रशासनिक लागत और इसके वित्तपोषण हेतु जनता पर लगाए जाने वाले करों से समाज को होने वाली शुद्ध आर्थिक हानि उस वास्तविक लाभ से कहीं अधिक हो जाती है जो उपभोक्ताओं को मिलता है।

बजटीय बोझ एवं राजकोषीय समेकन पर प्रभाव

भारत के केंद्रीय बजट में सब्सिडी व्यय राजस्व व्यय (Revenue Expenditure) का एक अत्यंत विशाल और कठोर (Inflexible) घटक है।

अ) राजकोषीय घाटे का संवर्धन: केंद्र सरकार के कुल राजस्व व्यय का लगभग 8 से 10 प्रतिशत हिस्सा केवल तीन प्रमुख सब्सिडियों—खाद्य, उर्वरक और पेट्रोलियम—पर व्यय होता है। यह व्यय सरकार के राजस्व घाटे (Revenue Deficit) को बढ़ाता है, जिसे पाटने हेतु सरकार को बाजार से भारी उधारी लेनी पड़ती है।

ब) उत्पादक पूंजीगत व्यय का ह्रास: सब्सिडी पर किया जाने वाला व्यय उपभोग-उन्मुख होता है। जब सरकार का एक बड़ा बजटीय हिस्सा सब्सिडी देनदारियों को चुकाने में चला जाता है, तो रेलवे, राष्ट्रीय राजमार्गों, वैज्ञानिक अनुसंधान, स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी परिसंपत्ति-सृजक पूंजीगत परियोजनाओं (CapEx) हेतु बजटीय संसाधन संकुचित हो जाते हैं।

स) पूर्ववर्ती ऑफ-बजट सब्सिडी बांड्स (Oil/Fertilizer Bonds) की देनदारियां: 2000 के दशक में सरकारों द्वारा बजटीय घाटे को कृत्रिम रूप से कम दिखाने हेतु तेल और उर्वरक कंपनियों को नकद सब्सिडी देने के स्थान पर 'विशेष संप्रभु बांड' जारी किए गए थे। इन ऑफ-बजट देयताओं के मूलधन और ब्याज का भुगतान आधुनिक बजटों पर आज भी एक स्थायी वित्तीय भार बना हुआ है।

wincompete

खंड B: प्रमुख सब्सिडियां एवं सुधारात्मक कदम

उपखंड a: खाद्य सब्सिडी - न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP), आर्थिक लागत, भारतीय खाद्य निगम (FCI) का संचालन

खाद्य सब्सिडी का त्रिकोणीय विन्यास एवं विधिक अधिदेश

भारत में खाद्य सब्सिडी प्रणाली देश की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने, कृषकों को लाभकारी मूल्य प्रदान करने तथा निर्धनतम नागरिकों को रियायती खाद्यान्न उपलब्ध कराने के उद्देश्य से संचालित की जाती है। **राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (NFSA), 2013** के अधिनियमन के पश्चात यह एक विधिक अधिकार बन चुकी है।

खाद्य सब्सिडी का संपूर्ण तंत्र तीन अंतर्संबंधित प्रशासनिक बिंदुओं पर कार्य करता है:

खाद्य सब्सिडी का प्रवाह चक्र (Food Subsidy Flow Cycle)

चरण	संस्था / इकाई (Entity)	प्रक्रिया / भूमिका (Process / Role)
1	कृषक	न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) पर खरीद
2	भारतीय खाद्य निगम (FCI)	केंद्रीय एजेंसी द्वारा खाद्यान्न का संग्रहण व रख-रखाव
3	राज्य / उचित मूल्य दुकानें	केंद्रीय निर्गम मूल्य (CIP) पर आवंटन एवं वितरण
4	अंतिम उपभोक्ता	लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से खाद्यान्न प्राप्ति

💡 **सब्सिडी सूत्र: [आर्थिक लागत - CIP = प्रति क्विंटल सब्सिडी]**

wincompete

न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) का निर्धारण एवं लागत पद्धतियां
न्यूनतम समर्थन मूल्य वह न्यूनतम गारंटीकृत मूल्य है जिस पर सरकार (FCI एवं राज्य एजेंसियों के माध्यम से) किसानों से खाद्यान्न की खुली खरीद करने हेतु कानूनी रूप से प्रतिबद्ध होती है, ताकि बंपर पैदावार के समय बाजार मूल्यों में गिरावट से किसानों को सुरक्षित रखा जा सके।

क) कृषि लागत एवं मूल्य आयोग (CACP): भारत सरकार के कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय के अधीन कार्यरत सीएसीपी प्रतिवर्ष 22 अनिवार्य फसलों (7 अनाज, 5 दालें, 8 तिलहन और 2 वाणिज्यिक फसलें) हेतु एमएसपी तथा गन्ने हेतु उचित एवं लाभकारी मूल्य (FRP) की संस्तुति करता है। अंतिम निर्णय प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली **आर्थिक मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति (CCEA)** द्वारा लिया जाता है।

ख) स्वामीनाथन आयोग (राष्ट्रीय किसान आयोग, 2006) की संस्तुति: प्रोफेसर एम.एस. स्वामीनाथन की अध्यक्षता वाले आयोग ने सिफारिश की थी कि किसानों को एमएसपी उनकी समग्र उत्पादन लागत (Comprehensive Cost - C2) का कम से कम 50 प्रतिशत जोड़कर ($C2 + 50\%$) दिया जाना चाहिए।

ग) सीएसीपी द्वारा प्रयुक्त तीन लागत संकल्पनाएं:

A2 लागत: इसमें किसान द्वारा बीज, उर्वरक, कीटनाशक, किराए के मजदूर, ईंधन, सिंचाई आदि पर नकद और वस्तु के रूप में किया गया प्रत्यक्ष व्यय सम्मिलित होता है।

A2 + FL लागत: प्रत्यक्ष नकद लागत (A2) के साथ-साथ किसान के परिवार के सदस्यों द्वारा किए गए अवैतनिक पारिवारिक श्रम (Family Labour - FL) का आकलित मूल्य।

C2 लागत (समग्र लागत): यह एक व्यापक लागत अवधारणा है, जिसमें $A2 + FL$ के अतिरिक्त किसान की अपनी कृषि भूमि का आकलित किराया (Rent) तथा स्वाधिकृत स्थायी पूंजीगत परिसंपत्तियों पर ब्याज भी सम्मिलित होता है।

घ) वर्तमान सरकारी नीति: केंद्रीय बजट 2018-19 की घोषणा के अनुसार, सरकार सभी अधिसूचित फसलों हेतु एमएसपी को उत्पादन लागत ($A2 + FL$) के **कम से कम 1.5 गुना (अर्थात लागत पर 50% का सुनिश्चित लाभ)** निर्धारित करती है।

भारतीय खाद्य निगम (FCI) की आर्थिक लागत (Economic Cost of Foodgrains)

खाद्य सब्सिडी की वास्तविक गणितीय गणना भारतीय खाद्य निगम द्वारा वहन की जाने वाली 'आर्थिक लागत' पर आधारित होती है। खाद्यान्न की प्रति क्विंटल आर्थिक लागत के तीन प्रमुख घटक होते हैं:

wincompete

प्रति क्विंटल आर्थिक लागत (Economic Cost per Quintal)

क्र.सं.	घटक (Component)	विवरण / आयाम (Description / Dimension)
1	न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP)	सरकार द्वारा किसानों को उनकी फसल पर दिया जाने वाला सुनिश्चित मूल्य
2	अधिप्राप्ति सहवर्ती व्यय (Procurement Incidental Cost)	खरीद प्रक्रिया, रख-रखाव, और मंडियों से जुड़े प्रशासनिक व आनुषंगिक खर्चे
3	वितरण लागत (Distribution Cost)	भण्डारण, ढुलाई (Transportation), और खाद्यान्न के सार्वजनिक वितरण से जुड़े व्यय

अ) अधिप्राप्ति मूल्य (Procurement Price / MSP): किसानों को सीधे उनके बैंक खातों में भुगतान किया जाने वाला न्यूनतम समर्थन मूल्य।

ब) अधिप्राप्ति सहवर्ती व्यय (Procurement Incidentals): मंडियों में खरीद के समय लगने वाले राज्य स्तरीय कर, मंडी शुल्क, ग्रामीण विकास उपकर, आढ़तिया आढ़त (दलाली), बारदाना (जूट की बोरियों) की लागत, मढ़ाई व तुलाई व्यय तथा स्थानीय परिवहन।

स) वितरण लागत (Distribution Cost): केंद्रीय भंडारण निगम व रेल परिवहन द्वारा अनाजों को अधिशेष राज्यों (पंजाब, हरियाणा, मध्य प्रदेश) से घाटे वाले उपभोक्ता राज्यों तक ले जाने का माल-भाड़ा, भंडारण शुल्क, हैंडलिंग व्यय, पारगमन व भंडारण हानियां (Transit and Storage Losses) तथा एफसीआई के प्रशासनिक स्थापना व्यय।

खाद्य सब्सिडी की गणितीय गणना एवं केंद्रीय निर्गम मूल्य (CIP)
केंद्रीय निर्गम मूल्य (Central Issue Price - CIP) वह रियायती दर है जिस पर केंद्र सरकार (FCI) सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) के तहत राज्यों को खाद्यान्न जारी करती है।

$$\text{प्रतिक्विंटलखाद्यसब्सिडी} = \text{खाद्यान्नकीआर्थिकलागत} - \text{केंद्रीयनिर्गममूल्य}(CIP)$$

कुलखाद्यसब्सिडी = प्रतिक्विंटलसब्सिडी × उठाएगएखाद्यान्नकीकुलमात्रा + रणनीतिकबफरस्टॉकरखनेकीलागत

प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना (PMGKAY) के तहत ऐतिहासिक परिवर्तन:

1 जनवरी 2023 से केंद्र सरकार ने राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (NFSA) के तहत अंत्योदय अन्न योजना (AAY) के परिवारों को प्रति परिवार 35 किग्रा तथा प्राथमिकता प्राप्त परिवारों (PHH) को प्रति व्यक्ति 5 किग्रा खाद्यान्न **पूर्णतः निःशुल्क (Zero CIP)** प्रदान करने का निर्णय लिया है।

केंद्रीय मंत्रिमंडल ने इस निःशुल्क खाद्यान्न वितरण योजना को 1 जनवरी 2024 से आगामी 5 वर्षों (2028 के अंत तक) के लिए विस्तारित कर दिया है।

परिणाम: चूंकि केंद्रीय निर्गम मूल्य (CIP) शून्य हो चुका है, अतः केंद्र सरकार खाद्यान्न की **शत-प्रतिशत आर्थिक लागत (MSP + खरीद व्यय + वितरण व्यय)** को स्वयं वहन कर रही है, जिससे केंद्रीय बजट पर खाद्य सब्सिडी का वार्षिक भार 2 लाख करोड़ रुपये से अधिक के उच्च स्तर पर स्थिर हो गया है।

शांता कुमार उच्च स्तरीय समिति (2015) की सिफारिशें

भारतीय खाद्य निगम के परिचालन पुनर्गठन, भंडारण हानियों के निवारण तथा खाद्य सब्सिडी के युक्तिकरण हेतु शांता कुमार की अध्यक्षता में उच्च स्तरीय समिति गठित की गई थी। समिति की प्रमुख सिफारिशें निम्नलिखित थीं:

क) अधिप्राप्ति का विकेंद्रीकरण: एफसीआई को उन राज्यों (पंजाब, हरियाणा, आंध्र प्रदेश) में खाद्यान्न खरीद पूरी तरह राज्य सरकारों को सौंप देनी चाहिए जहां खरीद अवसंरचना मजबूत है, और अपना ध्यान पूर्वी व मध्य भारत (उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, असम) के छोटे किसानों पर केंद्रित करना चाहिए।

ख) एनएफएसए कवरेज का युक्तिकरण: राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम के तहत वर्तमान कवरेज को 67 प्रतिशत जनसंख्या से घटाकर **40 प्रतिशत (केवल वास्तविक जरूरतमंद बीपीएल)** तक सीमित किया जाना चाहिए।

ग) नकद अंतरण (DBT) का विकल्प: 10 लाख से अधिक आबादी वाले शहरों और खाद्यान्न-अधिशेष राज्यों में भौतिक अनाज वितरण के स्थान पर प्रति व्यक्ति सीधे बैंक खाते में नकद सब्सिडी अंतरित की जानी चाहिए।

घ) भंडारण का पूर्ण निजीकरण: पारंपरिक बोरियों के स्थान पर अत्याधुनिक स्टील साइलो (Steel Silos) का निर्माण सार्वजनिक-निजी भागीदारी (PPP) आधार पर करना।

wincompete

उपखंड b: उर्वरक सब्सिडी - यूरिया बनाम गैर-यूरिया (NBS नीति), पेट्रोलियम सब्सिडी का विनियमन, प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (पहल योजना), मुफ्त उपहार (Freebies) बनाम कल्याणकारी सब्सिडी पर बहस

उर्वरक सब्सिडी का दोहरा ढांचा: यूरिया बनाम गैर-यूरिया (P&K)
भारत में रासायनिक उर्वरकों पर दी जाने वाली राजसहायता खाद्य सब्सिडी के पश्चात दूसरा सबसे बड़ा बजटीय व्यय है। भारतीय उर्वरक बाजार नीतिगत रूप से दो अत्यधिक विषम व्यवस्थाओं में विभाजित है:

उर्वरक सब्सिडी का दोहरा विन्यास (Dual Configuration of Fertilizer Subsidy)

क्र.सं.	उर्वरक प्रकार (Fertilizer Type)	नीति / नियंत्रण आयाम (Policy / Control Dimension)
1	यूरिया (नाइट्रोजन - N)	पूर्णतः सरकारी मूल्य नियंत्रण *(New Urea Policy)*
2	गैर-यूरिया (P & K - DAP/MOP)	पोषक तत्व आधारित सब्सिडी नीति *(NBS Policy 2010)*

1. यूरिया सब्सिडी व्यवस्था (New Urea Policy):
यूरिया का मुख्य पोषक तत्व नाइट्रोजन (N) है। भारत में यूरिया का खुदरा विक्रय मूल्य सांविधिक रूप से सरकार द्वारा तय किया जाता है।

अ) सांविधिक अधिकतम खुदरा मूल्य (Statutory MRP): केंद्र सरकार ने 45 किलोग्राम की यूरिया बोरी का मूल्य 242 रुपये (नीम लेपित यूरिया प्रभार सहित लगभग 268 रुपये) पर वर्षों से स्थिर रखा हुआ है, जो इसकी वास्तविक उत्पादन या आयात लागत का मात्र 15 से 20 प्रतिशत है।

ब) नई मूल्य निर्धारण योजना (New Pricing Scheme / New Urea Policy): सरकार प्रत्येक विनिर्माण संयंत्र की ऊर्जा दक्षता और उत्पादन लागत का आकलन करती है। सरकार विनिर्माता इकाई

की उत्पादन लागत और निर्धारित एमआरपी के बीच के संपूर्ण अंतर को प्रत्यक्ष सब्सिडी के रूप में उर्वरक कंपनी को चुकाती है।

स) 100% नीम लेपित यूरिया (Neem Coated Urea): वर्ष 2015 से सरकार ने देश में उत्पादित और आयातित संपूर्ण यूरिया का नीम-लेपन अनिवार्य कर दिया है। इससे यूरिया का कृषि से रासायनिक और प्लाईवुड उद्योगों की ओर होने वाला गैर-कानूनी औद्योगिक विचलन (Diversion) रुक गया है तथा भूमि में नाइट्रोजन का क्रमिक अवशोषण (Slow Release) सुनिश्चित हुआ है।

द) नैनो यूरिया (Nano Urea): पारंपरिक बोरी वाले यूरिया के विकल्प के रूप में इफको (IFFCO) द्वारा विकसित तरल नैनो यूरिया के प्रयोग को प्रोत्साहित किया जा रहा है, जिससे आयात निर्भरता और बजटीय सब्सिडी बोझ कम हो सके।

2. गैर-यूरिया उर्वरक: पोषक तत्व आधारित सब्सिडी (NBS Policy, 2010):
फॉस्फेटिक एवं पोटाशिक (P&K) उर्वरकों (यथा डीएपी, एमओपी, एनपीके सम्मिश्रण) में विकृतियों को दूर करने हेतु 1 अप्रैल 2010 से **पोषक तत्व आधारित सब्सिडी (Nutrient Based Subsidy - NBS)** नीति लागू की गई।

क) कार्यप्रणाली: सरकार उर्वरकों के प्रति किलोग्राम प्राथमिक पोषक तत्वों—नाइट्रोजन (N), फॉस्फोरस (P), पोटाश (K) तथा सल्फर (S)—पर एक निश्चित वार्षिक/अर्ध-वार्षिक सब्सिडी दर (रुपये प्रति किग्रा) घोषित करती है।

ख) नियंत्रण-मुक्त एमआरपी: यूरिया के विपरीत, गैर-यूरिया उर्वरकों का अधिकतम खुदरा मूल्य (MRP) सरकार द्वारा तय नहीं किया जाता; कंपनियां अंतरराष्ट्रीय बाजार मूल्य और सरकार से मिलने वाली निश्चित एनबीएस सब्सिडी को घटाकर उचित मूल्य निर्धारित करने हेतु स्वतंत्र होती हैं।

ग) नीतिगत विसंगति: चूंकि यूरिया की कीमत अत्यधिक कम और स्थिर रखी गई, जबकि डीएपी और पोटाश की कीमतें अंतरराष्ट्रीय बाजार के कारण बढ़ती रहीं, अतः किसानों ने गैर-यूरिया उर्वरकों का उपयोग घटाकर अत्यधिक मात्रा में सस्ता यूरिया डालना शुरू कर दिया। इसने देश के कृषि पारिस्थितिकी तंत्र में N:P:K के रासायनिक संतुलन को गंभीर रूप से बिगाड़ दिया।

उर्वरक क्षेत्र में प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT in Fertilizers):
वर्ष 2018 से उर्वरक विभाग द्वारा संपूर्ण देश में उर्वरक डीबीटी प्रणाली लागू की गई है।

यह प्रणाली एलपीजी की भांति सीधे किसान के खाते में नकद भेजने वाली प्रणाली नहीं है।

इसमें खुदरा उर्वरक दुकानों पर प्वाइंट-ऑफ-सेल (PoS) मशीनें लगाई गई हैं।

किसान द्वारा अपनी पहचान (आधार कार्ड या किसान क्रेडिट कार्ड) और बायोमेट्रिक सत्यापन के माध्यम से उर्वरक खरीदने के उपरांत ही संबंधित कंपनी के खाते में उस बोरी की सब्सिडी राशि वास्तविक समय (Real-time) में इलेक्ट्रॉनिक रूप से जारी की जाती है।

पेट्रोलियम सब्सिडी का ऐतिहासिक विनियमन एवं पहल (PAHAL) योजना
अ) पेट्रोल एवं डीजल का मूल्य अविनियमन:

डॉ. किरीट पारिख समिति की सिफारिशों के आधार पर जून 2010 में पेट्रोल की कीमतों को तथा अक्टूबर 2014 में डीजल की कीमतों को प्रशासनिक मूल्य प्रणाली (APM) से पूर्णतः

मुक्त कर दिया गया। अब तेल विपणन कंपनियां (OMCs) अंतरराष्ट्रीय क्रूड ऑयल की कीमतों के आधार पर दैनिक रूप से खुदरा कीमतें तय करती हैं।

मिट्टी के तेल (PDS Kerosene) पर दी जाने वाली सब्सिडी को भी राज्यों में विद्युतीकरण और उज्ज्वला योजना के विस्तार के साथ व्यावहारिक रूप से समाप्त कर दिया गया है।

ब) पहल योजना (PAHAL / DBTL - प्रत्यक्ष हस्तांतरित लाभ):

घरेलू रसोई गैस (LPG) में व्याप्त कालाबाजारी और वाणिज्यिक होटलों में सिलेंडरों के दुरुपयोग को रोकने हेतु 1 जनवरी 2015 को देश भर में 'पहल' योजना का औपचारिक पुनरारंभ किया गया।

गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड्स द्वारा इसे विश्व की सबसे बड़ी प्रत्यक्ष नकद अंतरण योजना के रूप में प्रमाणित किया गया।

कार्यप्रणाली: उपभोक्ता बाजार मूल्य पर एलपीजी सिलेंडर खरीदता है, और सरकार द्वारा निर्धारित सब्सिडी राशि सीधे उपभोक्ता के आधार-संबद्ध बैंक खाते में इलेक्ट्रॉनिक रूप से अंतरित कर दी जाती है।

स) प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना (PMUY):

मई 2016 में बलिया (उत्तर प्रदेश) से प्रारंभ की गई इस योजना का उद्देश्य गरीब ग्रामीण महिलाओं को लकड़ी और कोयले के धुएं से मुक्ति दिलाकर स्वच्छ ईंधन उपलब्ध कराना है।

इसके तहत 10 करोड़ से अधिक गरीब परिवारों को निःशुल्क एलपीजी कनेक्शन दिए गए हैं तथा सरकार द्वारा उज्ज्वला लाभार्थियों को प्रति 14.2 किग्रा सिलेंडर 300 रुपये की लक्षित प्रत्यक्ष सब्सिडी (प्रतिवर्ष 12 रिफिल तक) प्रदान की जा रही है।

मुफ्त उपहार (Freebies) बनाम कल्याणकारी सब्सिडी: संवैधानिक एवं आर्थिक विमर्श

हाल के वर्षों में विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा चुनावी लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से की जाने वाली लोकलुभावन घोषणाओं (यथा सभी नागरिकों को निःशुल्क बिजली, मुफ्त बस यात्रा, बेरोजगारी भत्ता, उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुएं जैसे टीवी, लैपटॉप, मिक्सर ग्राइंडर का वितरण) ने देश के राजकोषीय स्वास्थ्य पर गंभीर बहस छेड़ दी है।

सर्वोच्च न्यायालय का हस्तक्षेप एवं भारतीय रिजर्व बैंक का अध्ययन:

सर्वोच्च न्यायालय में दायर जनहित याचिकाओं में यह मांग की गई कि राजनीतिक दलों द्वारा चुनाव से पूर्व राज्य के संचित कोष से गैर-मेरिट मुफ्त उपहार बांटने के वादों को विनियमित किया जाए।

भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा जून 2022 में प्रकाशित 'राज्य वित्त: जोखिमों का एक अध्ययन' प्रतिवेदन में चेतावनी दी गई कि कई राज्यों (यथा पंजाब, राजस्थान, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश, केरल) का ऋण-जीएसडीपी अनुपात 35 से 45 प्रतिशत के खतरनाक स्तर को पार कर गया है, जिसका मुख्य कारण अनुत्पादक मुफ्त उपहारों (Freebies) पर किया जाने वाला भारी राजस्व व्यय है।

मुफ्त उपहार (Freebies) और कल्याणकारी सब्सिडी (Merit Welfare) में संरचनात्मक विभेद:

तुलनात्मक आयाम	कल्याणकारी सब्सिडी (Merit Welfare)	मुफ्त उपहार (Freebies / लोकलुभावनवाद)
मूल दार्शनिक आधार	मानवीय क्षमता संवर्धन (अमर्त्य सेन का सक्षमता दृष्टिकोण)।	तात्कालिक राजनीतिक एवं चुनावी लाभ की प्राप्ति।
लक्षित समूह	अत्यधिक विशिष्ट, सत्यापित एवं सामाजिक रूप से कमजोर वर्ग।	सार्वभौमिक एवं गैर-लक्षित (अमीर-गरीब के भेद के बिना)।
आर्थिक प्रभाव	दीर्घकालिक उत्पादकता, स्वास्थ्य, शिक्षा व मानव पूंजी निर्माण।	शून्य परिसंपत्ति सृजन; अनुत्पादक उपभोग को कृत्रिम बढ़ावा।
संसाधनों पर प्रभाव	सकारात्मक बाह्यताओं द्वारा भविष्य के कर राजस्व में वृद्धि।	राज्य विद्युत वितरण कंपनियों (DISCOMs) और निगमों को दिवालिया बनाना।
बजटीय संवहनीयता	संविधान के नीति निदेशक तत्वों (DPSP) के अनुरूप न्यायसंगत।	वित्तीय अनुशासन (FRBM अधिनियम) का खुला उल्लंघन; भविष्य की पीढ़ियों पर ऋण।
व्यावहारिक उदाहरण	प्राथमिक स्वास्थ्य, स्कूली छात्रवृत्ति, आंगनवाड़ी, जननी सुरक्षा।	सभी को 300 यूनिट मुफ्त बिजली, सार्वजनिक परिवहन में गैर-लक्षित मुफ्त यात्रा।

महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली एवं प्रमुख अवधारणाएं

ऋणात्मक कर (Negative Tax): अर्थशास्त्र का वह सिद्धांत जिसके तहत सरकार किसी आर्थिक गतिविधि पर कर लगाकर नागरिकों से धन लेने के स्थान पर, उन्हें वस्तु की कीमत कम करने अथवा उत्पादन बढ़ाने हेतु सरकारी कोष से धन का भुगतान करती है। सब्सिडी को ऋणात्मक कर माना जाता है।

केंद्रीय निर्गम मूल्य (Central Issue Price - CIP): वह पूर्व-निर्धारित रियायती दर जिस पर केंद्र सरकार (भारतीय खाद्य निगम के माध्यम से) राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम तथा अन्य कल्याणकारी

योजनाओं के संचालन हेतु राज्य सरकारों को केंद्रीय पूल से खाद्यान्न आवंटित करती है। वर्तमान में PMGKAY के तहत CIP शून्य (निःशुल्क) है।

शांता कुमार समिति (2015): भारत सरकार द्वारा गठित उच्च स्तरीय समिति जिसने भारतीय खाद्य निगम (FCI) के परिचालन पुनर्गठन, अधिप्राप्ति के विकेंद्रीकरण, एनएफएसए लाभार्थियों की संख्या को 67% से घटाकर 40% करने तथा चरणबद्ध रूप से खाद्यान्न के स्थान पर प्रत्यक्ष नकद हस्तांतरण (DBT) लागू करने की संस्तुति की थी।

पोषक तत्व आधारित सब्सिडी (NBS Policy): वर्ष 2010 में गैर-यूरिया (P&K) उर्वरकों हेतु लागू की गई नीति, जिसके तहत सरकार उर्वरकों के वजन पर सब्सिडी न देकर उनमें उपस्थित शुद्ध पोषक तत्वों (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश, सल्फर) की प्रति किलोग्राम मात्रा के आधार पर एक निश्चित वार्षिक सब्सिडी प्रदान करती है।

डेडवेट लॉस (Deadweight Loss): किसी आर्थिक विकृति (जैसे कर अथवा सब्सिडी) के कारण समाज को होने वाली वह शुद्ध आर्थिक दक्षता हानि, जिसकी भरपाई न तो उपभोक्ता के अधिशेष से होती है और न ही उत्पादक या सरकार के लाभ से। यह बाजार विरूपण की शुद्ध सामाजिक लागत है।

खुला बाजार बिक्री योजना (Open Market Sale Scheme - OMSS): भारतीय खाद्य निगम द्वारा खुले बाजार में खाद्यान्नों (विशेषकर गेहूं और चावल) की घरेलू आपूर्ति बढ़ाने तथा गैर-फसल मौसम में खुले बाजार के थोक मूल्यों को नियंत्रित करने हेतु पूर्व-निर्धारित आरक्षित मूल्यों पर व्यापारियों और थोक उपभोक्ताओं को ई-नीलामी के माध्यम से खाद्यान्न बेचने की विनियामक नीति।

ऑफ-बजट उधारी (Off-Budget Borrowing via Subsidies): सरकार द्वारा अपने वित्तीय घाटे को औपचारिक बजट में कम दिखाने हेतु सब्सिडी देयताओं का नकद भुगतान करने के स्थान पर अपनी सार्वजनिक एजेंसियों (जैसे पूर्व में तेल कंपनियों को ऑयल बांड जारी करना अथवा FCI को राष्ट्रीय लघु बचत निधि - NSSF से ऋण लेने हेतु बाध्य करना) के माध्यम से बाजार से ऋण उठवाना। आधुनिक राजकोषीय सुधारों के तहत इसे पूर्णतः बंद कर प्रत्यक्ष बजटीय सब्सिडी में समाहित कर लिया गया है।

अध्याय 24: सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) एवं खाद्य सुरक्षा तंत्र

खंड A: पीडीएस का विकास एवं पुनर्गठन

उपखंड a: पारंपरिक पीडीएस से लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (TPDS) तक का सफर, बीपीएल, एपीएल और अंत्योदय अन्न योजना (AAY)

सार्वजनिक वितरण प्रणाली की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं विकासक्रम

भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public Distribution System - PDS) का उद्भव द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान वर्ष 1939 में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन द्वारा लागू की गई 'राशनिंग प्रणाली' (Rationing System) से माना जाता है। वर्ष 1943 के भीषण बंगाल अकाल के पश्चात खाद्यान्न की उपलब्धता सुनिश्चित करने हेतु शहरी केंद्रों में आवश्यक वस्तुओं के वितरण को संस्थागत रूप दिया गया। स्वतंत्रता के पश्चात प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान इसका स्वरूप मुख्य रूप से आयातित खाद्यान्न (विशेष रूप से अमेरिकी पीएल-480 कार्यक्रम) के प्रबंधन और तीव्र मूल्य वृद्धि के शमन तक सीमित था।

वर्ष 1965 में कृषि मूल्य आयोग (कालांतर में कृषि लागत एवं मूल्य आयोग - CACP) तथा **भारतीय खाद्य निगम (FCI)** की स्थापना ने खाद्य प्रबंधन को एक एकीकृत आधार प्रदान किया। 1970 के दशक की 'हरित क्रांति' के पश्चात भारत खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ा, जिसके परिणामस्वरूप पीडीएस को एक स्थायी और राष्ट्रव्यापी कल्याणकारी तंत्र में रूपांतरित किया गया।

पारंपरिक (सार्वभौमिक) पीडीएस का स्वरूप एवं उसकी संरचनात्मक कमियां
वर्ष 1992 तक संचालित प्रणाली को 'सार्वभौमिक पीडीएस' (Universal PDS) कहा जाता था:

क) सार्वभौमिक पहुंच: इसमें नागरिकों के मध्य आय अथवा आर्थिक स्थिति के आधार पर कोई विभेद नहीं था। भारत का कोई भी नागरिक उचित मूल्य दुकान (Fair Price Shop - FPS) से रियायती खाद्यान्न प्राप्त करने का पात्र था।

ख) शहरी पूर्वाग्रह (Urban Bias): इस प्रणाली का विशाल संकेंद्रण महानगरीय और बड़े शहरी क्षेत्रों तक सीमित था, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में, जहां निर्धनता का घनत्व सर्वाधिक था, उचित मूल्य दुकानों का संजाल अत्यंत क्षीण था।

ग) प्रतिगामी लाभ वितरण: अध्ययनों ने यह सिद्ध किया कि सार्वभौमिक प्रणाली के तहत दी जाने वाली खाद्य सब्सिडी का एक बड़ा हिस्सा उच्च-मध्यम और संपन्न वर्गों द्वारा उपभोग किया जा रहा था, जिससे लक्षित निर्धनों तक वास्तविक सहायता नहीं पहुंच पा रही थी।

घ) राजकोषीय असंतुलन: खुले बाजार से उच्च न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) पर अनाज खरीदकर सभी नागरिकों को अत्यधिक रियायती दरों पर अनाज उपलब्ध कराने से केंद्रीय बजट पर खाद्य सब्सिडी का असहनीय वित्तीय बोझ बढ़ता गया।

पुनर्गठित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (RPDS - 1992)
सार्वजनिक वितरण प्रणाली की पहुंच को सुदूर, दुर्गम और पिछड़े क्षेत्रों तक विस्तारित करने के उद्देश्य से जून 1992 में **पुनर्गठित सार्वजनिक वितरण प्रणाली** (Revamped PDS - RPDS) प्रारंभ की गई।

अ) भौगोलिक लक्ष्यीकरण: यह देश के 1,775 चिन्हित पिछड़े ब्लॉकों में लागू की गई, जिनमें सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम (DPAP), एकीकृत जनजातीय विकास परियोजनाएं (ITDP), मरु विकास कार्यक्रम (DDP) तथा विशेष पर्वतीय क्षेत्र सम्मिलित थे।

ब) विशेष रियायती मूल्य: इन क्षेत्रों में सामान्य केंद्रीय निर्गम मूल्य (CIP) की तुलना में 50 रुपये प्रति क्विंटल कम दर पर प्रति कार्ड 20 किलोग्राम खाद्यान्न आवंटित किया गया।

स) सीमा: यद्यपि इसने भौगोलिक पहुंच में सुधार किया, किंतु यह भी 'आय-आधारित लक्ष्यीकरण' करने में विफल रही, जिससे अपात्रों का समावेशन बना रहा।

लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (TPDS - जून 1997) का ऐतिहासिक प्रादुर्भाव
सार्वभौमिक दृष्टिकोण के स्थान पर जरूरतमंदों पर संसाधनों को संकेंद्रित करने हेतु भारत सरकार द्वारा 1 जून 1997 को **लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली** (Targeted Public Distribution System - TPDS) प्रारंभ की गई।

टीपीडीएस के अंतर्गत देश की संपूर्ण जनसंख्या को योजना आयोग द्वारा डी.टी. लकड़ावाला फार्मूले के आधार पर निर्धारित 'गरीबी रेखा' (Poverty Line) के अनुसार दो स्पष्ट श्रेणियों में विभक्त किया गया:

लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (TPDS) का त्रि-स्तरीय ढांचा

क्र.सं.	श्रेणी (Category)	मूल्य निर्धारण / विशेषता (Pricing / Dimension)
1	गरीबी रेखा से नीचे (BPL)	अत्यधिक रियायती केंद्रीय निर्गम मूल्य (CIP)
2	गरीबी रेखा से ऊपर (APL)	आर्थिक लागत के निकट उच्चतर निर्गम मूल्य
3	अंत्योदय अन्न योजना (AAY - 2000)	निर्धनों में निर्धनतम परिवारों हेतु अधिकतम सुरक्षा

1. गरीबी रेखा से नीचे (Below Poverty Line - BPL):

लक्षित समूह: राज्यों द्वारा सर्वेक्षणों के आधार पर चिन्हित निर्धन परिवार।

प्रारंभिक आबंटन: प्रारंभ में प्रति परिवार 10 किलोग्राम खाद्यान्न प्रतिमाह निर्धारित किया गया, जिसे अप्रैल 2000 में बढ़ाकर 20 किलोग्राम तथा अप्रैल 2002 में **35 किलोग्राम प्रति परिवार प्रतिमाह** कर दिया गया।

मूल्य निर्धारण: आर्थिक लागत का 50 प्रतिशत (गेहूं 4.15 रुपये प्रति किग्रा एवं चावल 5.65 रुपये प्रति किग्रा)।

2. गरीबी रेखा से ऊपर (Above Poverty Line - APL):

लक्षित समूह: वे सभी परिवार जो बीपीएल श्रेणी में शामिल नहीं थे।

कोटा एवं मूल्य: केंद्रीय पूल में खाद्यान्न की उपलब्धता के आधार पर परिवर्तनीय कोटा (15 से 35 किग्रा)।
मूल्य निर्धारण: केंद्रीय निर्गम मूल्य को भारतीय खाद्य निगम की **शत-प्रतिशत आर्थिक लागत (Economic Cost)** के बराबर रखा गया, जिससे इस वर्ग पर दी जाने वाली प्रत्यक्ष सब्सिडी लगभग समाप्त हो गई।

अंत्योदय अन्न योजना (AAY - दिसंबर 2000): निर्धनों में निर्धनतम का संरक्षण
टीपीडीएस के क्रियान्वयन के उपरांत भी यह अनुभव किया गया कि बीपीएल वर्ग के भीतर जो अत्यंत असहाय, निराश्रित और भुखमरी के कगार पर खड़े परिवार हैं, वे रियायती मूल्य पर भी 35 किग्रा खाद्यान्न खरीदने की क्रय शक्ति नहीं रखते। इस चरम खाद्य असुरक्षा के समाधान हेतु 25 दिसंबर 2000 को **अंत्योदय अन्न योजना** का शुभारंभ किया गया।

क) प्रारंभिक कवरेज: लक्षित बीपीएल परिवारों के सबसे निचले **एक करोड़ परिवारों (लगभग 15 प्रतिशत)** को इसके अंतर्गत चिन्हित किया गया। विभिन्न चरणों में विस्तार के पश्चात इसकी सीमा बढ़ाकर **2.50 करोड़ परिवारों** तक कर दी गई।

ख) आबंटन पैमाना: प्रत्येक अंत्योदय परिवार को **35 किलोग्राम खाद्यान्न प्रति परिवार प्रतिमाह** की विधिक गारंटी।
ग) न्यूनतम केंद्रीय निर्गम मूल्य:

चावल: 3.00 रुपये प्रति किलोग्राम

गेहूं: 2.00 रुपये प्रति किलोग्राम

मोटे अनाज (Coarse Grains): 1.00 रुपये प्रति किलोग्राम

- घ) अंत्योदय परिवारों के चयन के विधिक मानदंड:

भूमिहीन खेतिहर मजदूर, सीमांत किसान, ग्रामीण कारीगर (कुम्हार, बुनकर, चर्मकार, बढ़ई) तथा झुग्गीवासी।

विधवाओं, गंभीर रूप से बीमार, विकलांग अथवा 60 वर्ष या उससे अधिक आयु के व्यक्तियों की अध्यक्षता वाले परिवार, जिनके पास आजीविका का कोई सुनिश्चित साधन न हो।

सभी आदिम जनजातीय समूह (PVTGs) के परिवार।

एचआईवी/एड्स से पीड़ित व्यक्तियों की अध्यक्षता वाले निराश्रित परिवार।

wincompete

प्रणाली का प्रकार	लागू होने का वर्ष	लक्षित जनसंख्या	आबंटन का पैमाना	केंद्रीय निर्गम मूल्य (गेहूं / चावल)
सार्वभौमिक पीडीएस	ऐतिहासिक (1992 तक)	देश के समस्त नागरिक (कोई आय सीमा नहीं)।	प्रति व्यक्ति/कार्ड (परिवर्तनशील)।	सभी हेतु समान रियायती दर।
पुनर्गठित पीडीएस (RPDS)	1992	1,775 पिछड़े/जनजातीय ब्लॉक।	20 किग्रा प्रति कार्ड।	सामान्य CIP से 50 रु/क्विंटल कम।
टीपीडीएस (BPL)	1997	चिन्हित गरीब परिवार।	35 किग्रा प्रति परिवार प्रतिमाह।	आर्थिक लागत का 50% (4.15 / 5.65 रु)।
टीपीडीएस (APL)	1997	गैर-गरीब परिवार।	15 से 35 किग्रा प्रति परिवार।	100% आर्थिक लागत (6.10 / 8.30 रु)।
अंत्योदय अन्न योजना (AAY)	2000	2.5 करोड़ निर्धनतम परिवार।	**35 किग्रा प्रति परिवार प्रतिमाह**।	**गेहूं: 2 रु/किग्रा, चावल: 3 रु/किग्रा**।

उपखंड b: राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (NFSA) 2013 - मुख्य प्रावधान, कवरेज, कानूनी अधिकार, पात्रता

कल्याणकारी दृष्टिकोण से विधिक अधिकार-आधारित प्रतिमान की ओर ऐतिहासिक संक्रमण

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के इतिहास में सबसे युगांतरकारी विधिक बदलाव संसद द्वारा पारित **राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013** (National Food Security Act - NFSA, 2013) के माध्यम से आया। यह अधिनियम 5 जुलाई 2013 से भूतलक्षी प्रभाव से लागू हुआ तथा 10 सितंबर 2013 को राष्ट्रपति की स्वीकृति के पश्चात संविधि पुस्तक में दर्ज हुआ।

इस कानून ने भारत में खाद्य प्रबंधन के दर्शन को पूर्णतः बदल दिया। इसने भोजन को राज्य के एक दया-आधारित 'कल्याणकारी उपकार' के स्थान पर नागरिक के **'न्यायसंगत विधिक अधिकार' (Justiciable**

Legal Right) के रूप में रूपांतरित कर दिया। यदि राज्य किसी पात्र नागरिक को विहित खाद्यान्न उपलब्ध कराने में विफल रहता है, तो नागरिक को विधिक रूप से क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का सांविधिक अधिकार प्राप्त होता है।

संविधान का आधार एवं पीयूसीएल बनाम भारत संघ वाद (2001)
एनएफएसए का कानूनी आधार सर्वोच्च न्यायालय के युगांतरकारी वाद **पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज (PUCL) बनाम भारत संघ (रिट याचिका 196/2001)** से निर्मित हुआ, जिसे लोकप्रिय रूप से 'भोजन का अधिकार वाद' (Right to Food Case) कहा जाता है।

अ) अनुच्छेद 21 का न्यायिक विस्तार: उच्चतम न्यायालय ने यह ऐतिहासिक व्यवस्था दी कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत प्रदत्त **'प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार'** केवल जैविक अस्तित्व तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें **मानवीय गरिमा के साथ जीने का अधिकार और भूख से मुक्ति का अधिकार** अंतर्निहित है।

ब) न्यायालय के अंतरिम आदेश: न्यायालय ने टीपीडीएस, मध्याह्न भोजन योजना और एकीकृत बाल विकास सेवा (ICDS) को न्यायालय के आदेशों के तहत विधिक अधिकारों में परिवर्तित कर दिया और राज्यों को आदेश दिया कि केंद्रीय पूलों में अनाज के सड़ने के बावजूद देश में कोई भी भूख से नहीं मरना चाहिए। इस सतत न्यायिक निगरानी ने अंततः संसद को एनएफएसए अधिनियमित करने हेतु प्रेरित किया।

कवरेज एवं लाभार्थी श्रेणियों का विधिक पुनर्गठन
अधिनियम की धारा 3(2) के तहत संपूर्ण देश की आबादी के एक विशाल हिस्से को कानूनी रूप से आच्छादित किया गया है:

क) समग्र कवरेज: 2011 की जनगणना के आंकड़ों के आधार पर देश की कुल जनसंख्या का **67 प्रतिशत (दो-तिहाई हिस्सा)** इस कानून के तहत विधिक गारंटी प्राप्त है:

ग्रामीण जनसंख्या का 75 प्रतिशत हिस्सा।
शहरी जनसंख्या का 50 प्रतिशत हिस्सा।

wincompete

ख) श्रेणियों का पुनर्निर्धारण (बीपीएल/एपीएल की समाप्ति):

एनएफएसए ने पूर्ववर्ती बीपीएल और एपीएल के भ्रमपूर्ण वर्गीकरण को पूर्णतः समाप्त कर दिया और लाभार्थियों को केवल दो विधिक श्रेणियों में पुनर्गठित किया:

एनएफएसए 2013 की द्वि-स्तरीय लाभार्थी संरचना (NFSA 2013 Two-Tier Beneficiary Structure)

क्र.सं.	श्रेणी / परिवार (Category)	आवंटन / पात्रता मानदंड (Allocation / Quota)
1	अंत्योदय अन्न योजना (AAY) परिवार	35 किलोग्राम प्रति परिवार प्रतिमाह *(स्थिर कोटा)*
2	प्राथमिकता प्राप्त परिवार (PHH)	5 किलोग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिमाह *(जनसंख्या-आधारित)*

1. अंत्योदय अन्न योजना (AAY) परिवार:
पूर्व से चिन्हित 2.5 करोड़ निर्धनतम परिवारों के विधिक अधिकारों को यथावत सुरक्षित रखा गया। इन्हें परिवार में सदस्यों की संख्या की परवाह किए बिना **35 किग्रा खाद्यान्न प्रति परिवार प्रतिमाह** प्राप्त करने का वैधानिक अधिकार प्राप्त है।

2. प्राथमिकता प्राप्त परिवार (Priority Households - PHH):
AAY के अतिरिक्त आच्छादित होने वाली शेष लक्षित आबादी को PHH श्रेणी में रखा गया। इन्हें **5 किलोग्राम खाद्यान्न प्रति व्यक्ति प्रतिमाह** प्राप्त करने का कानूनी अधिकार दिया गया। (उदाहरणार्थ, यदि किसी प्राथमिकता परिवार में 6 सदस्य हैं, तो उस परिवार को प्रतिमाह 30 किग्रा खाद्यान्न प्राप्त होगा)।

जीवन चक्र उपागम (Life-Cycle Approach) के विशिष्ट प्रावधान
एनएफएसए केवल पीडीएस खाद्यान्न तक सीमित नहीं है; यह व्यक्ति के जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने हेतु एक समग्र जीवन-चक्र ढांचा प्रस्तुत करता है:

अ) गर्भवती महिलाओं और स्तनपान कराने वाली माताओं हेतु (धारा 4):

गर्भावस्था के दौरान और प्रसव के 6 माह बाद तक आंगनवाड़ी के माध्यम से निःशुल्क पौष्टिक भोजन।
मातृत्व लाभ (Maternity Benefit): कम से कम **6,000 रुपये का प्रत्यक्ष नकद लाभ** (वर्तमान में 'प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना' के माध्यम से किश्तों में वितरित), ताकि मजदूरी के नुकसान की भरपाई हो सके और पोषण सुनिश्चित हो सके।

ब) बच्चों हेतु पोषण सहायता (धारा 5):

6 माह से 6 वर्ष की आयु के बच्चों हेतु: स्थानीय आंगनवाड़ी के माध्यम से निःशुल्क आयु-उपयुक्त भोजन (टेक-होम राशन अथवा गर्म पका हुआ भोजन)।
6 वर्ष से 14 वर्ष की आयु (अथवा कक्षा 8 तक) के बच्चों हेतु: सर्व शिक्षा अभियान के तहत सभी सरकारी और सहायता प्राप्त विद्यालयों में प्रतिदिन एक समय का **निःशुल्क पौष्टिक मध्याह्न भोजन (वर्तमान में पीएम-पोषण योजना)**।
कुपोषित बच्चों की पहचान कर उनके स्वास्थ्य सुधार हेतु विशेष पोषण मानकों का निर्धारण।

स) खाद्य सुरक्षा भत्ता (Food Security Allowance - धारा 8):
यदि किसी विधिक रूप से अधिकृत नागरिक को किसी भी कारण से (अनाज की अनुपलब्धता, हड़ताल या प्रशासनिक विफलता) विहित समय पर रियायती खाद्यान्न उपलब्ध नहीं कराया जाता है, तो राज्य सरकार उस व्यक्ति को नकद **'खाद्य सुरक्षा भत्ता'** देने हेतु कानूनी रूप से बाध्य होगी।

महिला सशक्तीकरण एवं संस्थागत सुधार संबंधी प्रावधान

क) महिला के नाम राशन कार्ड (धारा 13): राशन कार्ड जारी करने के प्रयोजन हेतु परिवार की **18 वर्ष या उससे अधिक आयु की ज्येष्ठतम महिला को अनिवार्य रूप से 'परिवार की मुखिया'** माना जाएगा। यदि किसी परिवार में 18 वर्ष से अधिक आयु की महिला नहीं है, तो सबसे ज्येष्ठ पुरुष को अस्थायी रूप से मुखिया माना जाएगा जब तक कि कोई महिला 18 वर्ष की आयु प्राप्त न कर ले।

ख) आंतरिक शिकायत निवारण तंत्र (धारा 14 एवं 15): प्रत्येक जिले में नागरिकों की शिकायतों के त्वरित समाधान हेतु एक **जिला शिकायत निवारण अधिकारी (DGRO)** की नियुक्ति अनिवार्य की गई है।

ग) राज्य खाद्य आयोग (State Food Commission - धारा 16): अधिनियम के कार्यान्वयन की निगरानी और उल्लंघनों की जांच हेतु प्रत्येक राज्य में एक स्वतंत्र अर्द्ध-न्यायिक निकाय के रूप में 'राज्य खाद्य आयोग' का गठन अनिवार्य किया गया है। आयोग को सिविल न्यायालय की शक्तियां प्राप्त होती हैं।

घ) अनिवार्य सामाजिक अंकेक्षण (धारा 28): स्थानीय निकायों (पंचायतों और नगरपालिकाओं) अथवा ग्राम सभाओं द्वारा उचित मूल्य दुकानों और राशन वितरण का नियमित सामाजिक अंकेक्षण किया जाना अनिवार्य है।

ङ) सतर्कता समितियां (धारा 29): राज्य, जिला, ब्लॉक और उचित मूल्य दुकान स्तर पर विभिन्न वर्गों, महिलाओं और उपभोक्ताओं का प्रतिनिधित्व करने वाली सतर्कता समितियों की स्थापना।

खंड B: पीडीएस में सुधार, तकनीक और चुनौतियां

उपखंड a: 'एक राष्ट्र, एक राशन कार्ड' (ONORC) योजना - पोर्टेबिलिटी, तकनीकी ढांचा (IM-PDS)

पारंपरिक पीडीएस की भौगोलिक सीमाएं एवं प्रवासी श्रमिकों का संकट
ऐतिहासिक रूप से भारत में राशन कार्ड एक 'स्थान-विशिष्ट' (Location-bound) दस्तावेज था। किसी नागरिक का राशन कार्ड किसी एक निश्चित गांव या मोहल्ले की एक विशिष्ट 'उचित मूल्य दुकान' (FPS) से बंधा होता था।

प्रवासी संकट: जब देश के करोड़ों ग्रामीण मजदूर, निर्माण श्रमिक, दैनिक वेतनभोगी और अनौपचारिक कामगार रोजगार की तलाश में अपने गृह राज्य (जैसे बिहार, उत्तर प्रदेश, ओडिशा, राजस्थान) से दूसरे राज्यों (जैसे महाराष्ट्र, गुजरात, दिल्ली, कर्नाटक) में पलायन करते थे, तो वे अपने विधिक खाद्य अधिकारों से वंचित हो जाते थे।

दोहरा नुकसान: प्रवासी श्रमिक अपने कार्यस्थल पर अत्यधिक महंगे खुले बाजार से खाद्यान्न खरीदने हेतु विवश होते थे, जबकि उनके गृह गांव में उनके हिस्से का अनाज दुकानदारों द्वारा कालाबाजारी में बेच दिया जाता था।

'एक राष्ट्र, एक राशन कार्ड' (ONORC) का संस्थागत उद्भव
प्रवासी श्रमिकों की इस अंतर-पीढ़ीगत खाद्य असुरक्षा को समाप्त करने और खाद्यान्न अधिकारों की सार्वभौमिक भौगोलिक सुवाह्यता (Portability) सुनिश्चित करने हेतु उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्रालय द्वारा वर्ष 2019 में **'एक राष्ट्र, एक राशन कार्ड' (One Nation One Ration Card - ONORC)** योजना प्रारंभ की गई।

सर्वोच्च न्यायालय ने कोविड-19 महामारी के दौरान प्रवासी संकट पर स्वतः संज्ञान लेते हुए **'प्रवासी कामगारों की समस्याओं और कष्टों के संबंध में' (2021)** ऐतिहासिक निर्णय में देश के सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों को 31 जुलाई 2021 तक ओएनओआरसी प्रणाली को अनिवार्य रूप से लागू करने का न्यायिक आदेश दिया। वर्तमान में यह प्रणाली देश के सभी 36 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में शत-प्रतिशत क्रियान्वित हो चुकी है।

पोर्टेबिलिटी के दोहरे आयाम
ओएनओआरसी योजना लाभार्थियों को दो प्रकार की सुवाह्यता प्रदान करती है:

अ) अंतःराज्यीय पोर्टेबिलिटी (Intra-State Portability): लाभार्थी अपने ही गृह जिले अथवा गृह राज्य के भीतर किसी भी गांव या शहर की किसी भी उचित मूल्य दुकान से अपनी पसंद अनुसार राशन प्राप्त कर सकता है। इससे स्थानीय राशन डीलर का एकाधिकार और दुर्व्यवहार समाप्त हुआ है।

ब) अंतर-राज्यीय पोर्टेबिलिटी (Inter-State Portability): कोई भी प्रवासी श्रमिक देश के किसी भी कोने में, किसी भी राज्य की किसी भी ई-पीओएस सक्षम उचित मूल्य दुकान से अपने मौजूदा राशन कार्ड और बायोमेट्रिक सत्यापन के माध्यम से अपना विधिक राशन प्राप्त कर सकता है।

स) राशन का विभाजन (Split Rationing): यह योजना परिवार को राशन विभाजित करने की अनूठी सुविधा देती है। उदाहरणार्थ: यदि कोई श्रमिक मुंबई में काम कर रहा है और उसका परिवार बिहार के गांव में रहता है, तो वह श्रमिक अपने हिस्से का अनाज (जैसे 5 किग्रा) मुंबई में ले सकता है, जबकि उसका परिवार शेष 20 या 25 किग्रा अनाज अपने गृह गांव की दुकान से प्राप्त कर सकता है।

ओएनओआरसी का तकनीकी ढांचा: IM-PDS एवं अनवरत प्लेटफॉर्म
ओएनओआरसी का निर्बाध संचालन एक अत्याधुनिक, बहु-स्तरीय डिजिटल सूचना प्रौद्योगिकी अवसंरचना पर आधारित है:

ओएनओआरसी का तकनीकी पारिस्थितिकी तंत्र (ONORC Technical Ecosystem)

स्तर (Level)	इकाई / घटक (Component / Node)	तकनीकी आयाम / कार्यप्रणाली (Technical Dimension)
केंद्रीय स्तर (NIC)	केंद्रीय स्तर (NIC)	एकीकृत सार्वजनिक वितरण प्रणाली प्रबंधन (IM-PDS पोर्टल) *(वास्तविक समय डेटा लिंकेज)*
राज्य स्तर	राज्य स्तर	राज्य खाद्य नागरिक आपूर्ति पोर्टल एवं डिजिटल राशन डेटाबेस *(ऑनलाइन कनेक्टिविटी)*
दुकान स्तर (FPS)	दुकान स्तर (FPS)	इलेक्ट्रॉनिक पॉइंट ऑफ सेल (e-PoS उपकरण) + बायोमेट्रिक सत्यापन

1. एकीकृत सार्वजनिक वितरण प्रणाली प्रबंधन (IM-PDS पोर्टल):
राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्र (NIC) द्वारा विकसित यह केंद्रीय क्लाउड-आधारित पोर्टल संपूर्ण देश के राशन कार्ड डेटाबेस का केंद्रीय भंडार है। यह विभिन्न राज्यों के स्वतंत्र खाद्य पोर्टलों के मध्य एक डिजिटल सेतु का कार्य करता है।

2. अनवरत (Annavitran) पोर्टल:
यह पोर्टल देश भर में उचित मूल्य दुकानों पर ई-पीओएस मशीनों के माध्यम से होने वाले दैनिक खाद्यान्न वितरण के वास्तविक समय (Real-time) आंकड़ों को प्रदर्शित करता है। यह अंतःराज्यीय पोर्टेबिलिटी की इलेक्ट्रॉनिक निगरानी करता है।

wincompete

3. राशन कार्डों का मानकीकरण (Standardized Ration Card):
समस्त राज्यों के राशन कार्डों के प्रारूप को एक समान 10-अंकीय मानक प्रारूप में ढाला गया है, जिसमें प्रथम दो अंक राज्य कोड को, अगले दो अंक चालू वर्ष को तथा शेष अंक विशिष्ट परिवार पहचान को दर्शाते हैं।

4. मेरा राशन (Mera Ration) मोबाइल ऐप:
नागरिकों, विशेषकर प्रवासी श्रमिकों हेतु 13 से अधिक क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध यह ऐप निकटतम उचित मूल्य दुकान का नक्शा, पात्रता का विवरण, पिछले छह महीनों के लेनदेन का इतिहास तथा पोर्टेबिलिटी की स्थिति जानने की सुविधा देता है।

उपखंड b: पीडीएस की कमियां - रिसाव, अपवर्जन व समावेशन त्रुटियां, उचित मूल्य दुकानों का डिजिटलीकरण, बायोमेट्रिक प्रमाणीकरण, डीबीटी विकल्प

सार्वजनिक वितरण प्रणाली की प्रमुख संरचनात्मक एवं परिचालन विकृतियां

विश्व के सबसे बड़े खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम होने के बावजूद भारतीय पीडीएस कई गंभीर कमियों से ग्रस्त रहा है, जिनका उद्घाटन विभिन्न विशेषज्ञ समितियों (जैसे शांता कुमार समिति, 2015) तथा भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG) के प्रतिवेदनों में किया गया है:

1. खाद्यान्न का बड़े पैमाने पर रिसाव एवं विपथन (Leakages & Diversion)

क) खुले बाजार में कालाबाजारी: भारतीय खाद्य निगम के गोदामों से उचित मूल्य दुकानों तक परिवहन के दौरान तथा उचित मूल्य दुकानों के स्तर पर रियायती खाद्यान्न को अवैध रूप से निजी व्यापारियों, आटा मिलों अथवा शराब भट्टियों को बेच दिया जाता है।

ख) सांख्यिकीय आकलन: उच्च स्तरीय शांता कुमार समिति (2015) के अनुसार, देश भर में वितरित होने वाले कुल पीडीएस खाद्यान्न का औसतन **40 से 46 प्रतिशत हिस्सा** लीकेज और कालाबाजारी के कारण वास्तविक लाभार्थियों तक पहुंचे बिना ही रास्ते में गायब हो जाता था (कुछ पूर्वोत्तर और मध्य भारतीय राज्यों में यह रिसाव 60% से अधिक दर्ज किया गया था)।

2. अपवर्जन बनाम समावेशन त्रुटियां (Exclusion vs Inclusion Errors)

लक्षित वितरण प्रणाली का सबसे गंभीर सामाजिक-आर्थिक दोष सही लाभार्थियों की पहचान में विफलता रहा है:

त्रुटि का प्रकार	विवरण
समावेशन त्रुटि (Inclusion Error / Type-II)	अपात्र संपन्न व्यक्ति गलत तरीके से लाभ प्राप्त कर रहे हैं
अपवर्जन त्रुटि (Exclusion Error / Type-I)	वास्तविक पात्र गरीब व्यक्ति व्यवस्था से बाहर छूट गए हैं

wincompete

अ) समावेशन त्रुटि (Inclusion Error): जाली, फर्जी अथवा मृत व्यक्तियों के नाम पर बने 'छाया राशन कार्डों' (Ghost Ration Cards) के माध्यम से संपन्न, पक्के मकानों, चौपहिया वाहनों और सरकारी नौकरियों वाले परिवार रियायती अनाज का उपभोग करते रहे।

ब) अपवर्जन त्रुटि (Exclusion Error): अत्यधिक निर्धन, बेसहारा, कुष्ठ रोगी, घुमंतू समुदाय और निराश्रित व्यक्ति जातिगत भेदभाव, स्थायी पते के अभाव अथवा प्रशासनिक भ्रष्टाचार के कारण राशन कार्ड बनवाने से वंचित रह गए। समाज कल्याण के दृष्टिकोण से अपवर्जन त्रुटि सर्वाधिक घातक मानी जाती है क्योंकि यह सीधे भुखमरी को जन्म देती है।

स) 2011 की जनगणना पर निर्भरता की समस्या: एनएफएसए 2013 के तहत 67% आबादी (लगभग 81.35 करोड़ व्यक्ति) का कोटा वर्ष 2011 की जनगणना के आधार पर तय किया गया था। वर्तमान में जनसंख्या वृद्धि के कारण लगभग 10 करोड़ से अधिक नए पात्र नागरिक (विशेषकर युवा परिवार) राष्ट्रीय स्तर पर राशन कार्ड से वंचित हैं क्योंकि 2021 की जनगणना संपन्न नहीं हो सकी है।

3. उचित मूल्य दुकानों (FPS) की आर्थिक अव्यवहार्यता
देश में लगभग 5.43 लाख उचित मूल्य दुकानें कार्यरत हैं।

डीलरों का अत्यंत निम्न कमीशन मार्जिन (डीलर कमीशन) उन्हें प्रशासनिक रूप से आर्थिक संकट में रखता है।
कई राज्यों में डीलरों को समय पर कमीशन न मिलने के कारण वे अपनी आजीविका चलाने हेतु खाद्यान्न की घटतौली (Under-weighing) अथवा अनाज के विपथन जैसी भ्रष्ट कार्यप्रणालियों की ओर प्रवृत्त होते हैं।

तकनीकी समाधान: डिजिटलीकरण एवं बायोमेट्रिक प्रमाणीकरण
इन विसंगतियों को दूर करने हेतु केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा **सार्वजनिक वितरण प्रणाली के संपूर्ण एंड-टू-एंड कंप्यूटरीकरण (End-to-End Computerization of PDS)** का अभियान संचालित किया गया है:

क) राशन कार्ड डेटाबेस का 100% डिजिटलीकरण एवं डी-डुप्लीकेशन:
समस्त राशन कार्डों को इलेक्ट्रॉनिक प्रारूप में परिवर्तित किया गया तथा परिवार के सभी सदस्यों के विशिष्ट पहचान नंबरों को राशन कार्ड से जोड़ा गया। इस प्रक्रिया के माध्यम से विगत वर्षों में देश भर में **लगभग 4.5 करोड़ से अधिक फर्जी, जाली और मृत व्यक्तियों के राशन कार्ड** निरस्त किए गए।
ब) उचित मूल्य दुकानों पर ई-पीओएस (Electronic Point of Sale - e-PoS) उपकरण:
देश की 5.43 लाख उचित मूल्य दुकानों में से 99 प्रतिशत से अधिक दुकानों पर इलेक्ट्रॉनिक ई-पीओएस मशीनें स्थापित कर दी गई हैं।

ये उपकरण वास्तविक समय (Real-time) में इंटरनेट के माध्यम से राज्य के केंद्रीय सर्वर से जुड़े होते हैं।
राशन केवल तभी जारी होता है जब मशीन पर इलेक्ट्रॉनिक तौल कांटा (Electronic Weighing Scale) जुड़ा हो।

स) इलेक्ट्रॉनिक तौल पैमानों का ई-पीओएस से एकीकरण (e-Weighing Scale Integration):
डीलर द्वारा की जाने वाली घटतौली को रोकने हेतु ई-पीओएस मशीनों को ब्लूटूथ अथवा केबल के माध्यम से सीधे इलेक्ट्रॉनिक इलेक्ट्रॉनिक तौल कांटे से जोड़ दिया गया है। जब तक तौल कांटे पर सही वजन (यथा 5 किग्रा) नहीं आता, तब तक ई-पीओएस मशीन लेनदेन की रसीद नहीं निकालती।
द) बायोमेट्रिक प्रमाणीकरण एवं आधार प्रमाणीकरण:
राशन प्राप्त करते समय लाभार्थी को ई-पीओएस मशीन पर अपनी उंगली की छाप (Fingerprint) अथवा आंख की पुतली (Iris Scan) का प्रमाणीकरण करना अनिवार्य होता है। इससे यह सुनिश्चित होता है कि अनाज केवल उसी व्यक्ति को मिल रहा है जिसके नाम पर आबंटन है, जिससे बिचौलियों का विलोपन हुआ है।

बायोमेट्रिक प्रमाणीकरण की धरातलीय चुनौतियां (तकनीकी विफलताएं)
यद्यपि बायोमेट्रिक तकनीक ने रिसाव को रोका है, परंतु इसने कई दुर्गम क्षेत्रों में गंभीर अपवर्जन संकट (New Exclusion Errors) भी उत्पन्न किए हैं:

अ) नेटवर्क और कनेक्टिविटी का अभाव: दूरदराज के पहाड़ी, वनवासी और मरुस्थलीय क्षेत्रों में इंटरनेट सिग्नल न होने के कारण ई-पीओएस मशीनें ऑफलाइन हो जाती हैं और राशन वितरण ठप हो जाता है।
ब) बायोमेट्रिक विफलता (Authentication Failure): अत्यधिक शारीरिक श्रम करने वाले वृद्ध मजदूरों, ईंट-भट्ठा श्रमिकों और कृषकों के हाथों की रेखाएं घिस जाने के कारण बायोमेट्रिक स्कैनर उनके फिंगरप्रिंट पहचानने में विफल रहते हैं।
स) आधार लिंकिंग की विफलता के कारण भुखमरी के विवाद: झारखंड और कुछ अन्य राज्यों में तकनीकी विफलताओं अथवा आधार सीडिंग न होने के कारण कुछ परिवारों के राशन कार्ड रद्द कर दिए जाने और उसके उपरांत भुखमरी से मौतों की घटनाओं ने गंभीर मानवाधिकार प्रश्न खड़े किए। सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट निर्देश दिए हैं कि किसी भी वास्तविक नागरिक को केवल बायोमेट्रिक विफलता अथवा तकनीकी त्रुटि के आधार पर खाद्यान्न देने से इनकार नहीं किया जा सकता; ऐसे मामलों में प्रॉक्सी सत्यापन, ओटीपी (OTP) अथवा भौतिक रजिस्टर अपवाद तंत्र लागू किया जाना अनिवार्य है।

प्रत्यक्ष नकद अंतरण (DBT) विकल्प: खाद्यान्न बनाम नकद बहस

एनएफएसए 2013 की धारा 12 तथा 'खाद्य सुरक्षा (नकद अंतरण नियम), 2015' के तहत सरकार ने राज्यों को यह विकल्प प्रदान किया कि वे चाहें तो भौतिक अनाज वितरण के स्थान पर सीधे लाभार्थियों के बैंक खातों में **प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT - Direct Benefit Transfer)** के रूप में नकद खाद्य सब्सिडी भेज सकते हैं।

वर्तमान में यह व्यवस्था प्रायोगिक तौर पर तीन केंद्र शासित प्रदेशों—**चंडीगढ़, पुडुचेरी तथा दादरा एवं नगर हवेली (शहरी क्षेत्र)**—में लागू है।

तुलनात्मक आयाम	**प्रत्यक्ष नकद अंतरण विकल्प (DBT in Food)**	**भौतिक खाद्यान्न वितरण प्रणाली (In-kind PDS)**
प्रशासनिक लागत	अत्यधिक न्यूनतम; खरीद, भंडारण और परिवहन की कोई आवश्यकता नहीं।	अत्यधिक विशाल; एफसीआई और राज्य एजेंसियों का भारी लॉजिस्टिक्स व्यय।
रिसाव एवं कालाबाजारी	शून्य भौतिक रिसाव; धन सीधे लाभार्थी के बैंक खाते में जमा।	गोदामों और दुकानों के स्तर पर 30 से 40% तक अनाज की चोरी की संभावना।
उपभोक्ता की स्वतंत्रता	उपभोक्ता अपनी पसंद का अनाज (दाल, फल, दूध) बाजार से खरीदने को स्वतंत्र।	केवल पूर्व-निर्धारित गेहूं या चावल तक सीमित विकल्प।

wincompete

मुद्रास्फीति का जोखिम	नकद राशि स्थिर रहने पर बाजार में मूल्य वृद्धि होने पर क्रय शक्ति घटती है।	मूल्य में उतार-चढ़ाव की स्थिति में भी 100% भौतिक खाद्य सुरक्षा की गारंटी।
धन का दुरुपयोग	नकद राशि का उपयोग परिवार के पुरुषों द्वारा शराब, सट्टेबाजी आदि में होने का भय।	भौतिक अनाज सीधे रसोई में पहुंचता है, जिससे बच्चों और महिलाओं का पोषण सुनिश्चित।
बाजार की उपलब्धता	सुदूर जनजातीय अंचलों में निजी खाद्यान्न बाजारों का अभाव होने पर विफलता।	राज्य स्वयं अपने तंत्र से अंतिम छोर (Last Mile) तक अनाज पहुंचाता है।

महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली एवं प्रमुख अवधारणाएं

केंद्रीय निर्गम मूल्य (Central Issue Price - CIP): वह पूर्व-निर्धारित रियायती मूल्य जिस पर केंद्र सरकार (भारतीय खाद्य निगम) लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत राज्यों को खाद्यान्न जारी करती है। 1 जनवरी 2023 से PMGKAY के तहत NFSA लाभार्थियों हेतु यह मूल्य शून्य (निःशुल्क) कर दिया गया है।

बफर स्टॉक (Buffer Stock): किसी अप्रत्याशित आपातकाल (यथा सूखा, बाढ़, युद्ध अथवा फसल विफलता) के समय मूल्य स्थिरता बनाए रखने तथा राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने हेतु भारतीय खाद्य निगम द्वारा संधारित खाद्यान्न (गेहूं और चावल) का रणनीतिक न्यूनतम संप्रभु भंडार। इसमें दो घटक होते हैं: 'परिचालन स्टॉक' (चालू वितरण हेतु) तथा 'रणनीतिक आरक्षित स्टॉक' (आपातकाल हेतु)।

आर्थिक लागत (Economic Cost of Foodgrains): भारतीय खाद्य निगम द्वारा खाद्यान्न की खरीद, संचालन और वितरण में वहन की जाने वाली कुल वास्तविक प्रति क्विंटल लागत। इसमें न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP), खरीद सहवर्ती प्रभार (मंडी टैक्स, बारदाना, ढुलाई) तथा वितरण लागत (रेलवे माल-भाड़ा, भंडारण व्यय, हैंडलिंग) सम्मिलित होते हैं।

ओपन मार्केट सेल स्कीम (OMSS - खुला बाजार बिक्री योजना): भारतीय खाद्य निगम द्वारा गैर-फसल मौसम अथवा खाद्यान्न की महंगाई के समय केंद्रीय पूल के अतिरिक्त अधिशेष स्टॉक से गेहूं और चावल को ई-नीलामी के माध्यम से खुले बाजार में थोक व्यापारियों, आटा मिलों और व्यापारियों को बेचने की नीति, ताकि खुले बाजार में आपूर्ति बढ़ाकर कीमतों को नियंत्रित किया जा सके।

खाद्य सुरक्षा भत्ता (Food Security Allowance): राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013 की धारा 8 के तहत विहित वह कानूनी क्षतिपूर्ति जो किसी पात्र लाभार्थी को उसके विहित खाद्यान्न की आपूर्ति न होने की स्थिति में संबंधित राज्य सरकार द्वारा नकद रूप में प्रदान की जानी अनिवार्य है।

विकेंद्रीकृत अधिप्राप्ति योजना (Decentralized Procurement Scheme - DCP): वर्ष 1997-98 में प्रारंभ की गई वह व्यवस्था जिसके अंतर्गत राज्य सरकारें स्वयं अपने स्थानीय स्तर पर किसानों से सीधे खाद्यान्न की खरीद करती हैं, उसका भंडारण करती हैं और अपने राज्य की पीडीएस आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। केवल अतिरिक्त अधिशेष ही एफसीआई के केंद्रीय पूल को सौंपा जाता है, जिससे एफसीआई की परिवहन लागत में भारी बचत होती है।

ई-पीओएस (Electronic Point of Sale / e-PoS उपकरण): उचित मूल्य दुकानों पर स्थापित वह हैंडहेल्ड इलेक्ट्रॉनिक बायोमेट्रिक मशीन जो वास्तविक समय में इंटरनेट से जुड़ी होती है। यह लाभार्थी के आधार बायोमेट्रिक्स का सत्यापन करती है, इलेक्ट्रॉनिक तौल कांटे से वजन प्रमाणित करती है तथा लेन-देन की डिजिटल रसीद जारी करती है।

आगामी टेस्ट सीरीज हेतु उपयोगिता निर्देशिका

अनुभाग A: बहुविकल्पीय प्रश्नों की संरचना

उपखंड a: विश्लेषणात्मक प्रश्नों (कथन-कारण, बहु-कथन परीक्षण) हेतु अध्यायों का उपयोग

विश्लेषणात्मक प्रश्नों की पद्धति एवं निर्माण प्रविधि

आधुनिक वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन प्रणालियों में केवल प्रत्यक्ष तथ्यात्मक स्मरण के परीक्षण के स्थान पर उच्च-स्तरीय संज्ञानात्मक क्षमताओं, आलोचनात्मक समझ, अवधारणात्मक स्पष्टता और अंतःविषय संबंधों के परीक्षण पर बल दिया जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में बहु-कथन परीक्षण (Multi-Statement Evaluation) और अभिकथन-तर्क (Assertion-Reason) प्रारूप सर्वाधिक प्रमाणिक और अकादमिक रूप से परिष्कृत उपकरण हैं।

इन प्रारूपों का निर्माण करते समय यह सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है कि प्रत्येक प्रश्न शिक्षार्थी की उस क्षमता को परखे जिसके द्वारा वह सिद्धांतों, विधिक प्रावधानों, संवैधानिक सीमाओं और व्यावहारिक आर्थिक नीतियों के मध्य कारण-प्रभाव संबंध (Causal Relationship) स्थापित करता है।

बहु-कथन परीक्षण प्रारूप: संरचनात्मक सिद्धांत

बहु-कथन परीक्षण प्रारूप में तीन अथवा चार परस्पर जुड़े हुए कथन प्रस्तुत किए जाते हैं, जिनमें सूक्ष्म तकनीकी, वैधानिक या प्रक्रियात्मक भिन्नताएं अंतर्निहित होती हैं।

बहु-कथन प्रश्नों के निर्माण हेतु प्रमुख संरचनात्मक दिशा-निर्देश:

क) कथनों की स्वायत्तता एवं प्रासंगिकता: प्रत्येक कथन तथ्यात्मक रूप से स्वतंत्र किंतु विषयगत रूप से केंद्रीय विषय से आबद्ध होना चाहिए।
ख) सूक्ष्म विभेदकों (Nuances) का प्रयोग: कथनों में विधिक अपवादों, न्यूनतम व अधिकतम सीमाओं, कालानुक्रमिक अनुक्रमों तथा संस्थागत अधिकार-क्षेत्रों के सूक्ष्म अंतरों का समावेश किया जाना चाहिए।
ग) निरपेक्ष शब्दों के प्रयोग में सावधानी: 'सदैव', 'कभी नहीं', 'सभी', 'केवल' जैसे निरपेक्ष शब्दों का उपयोग केवल तभी किया जाना चाहिए जब संबंधित अधिनियम, सांविधिक नियम अथवा आर्थिक सिद्धांत में वह निरपेक्षता वैधानिक रूप से अनिवार्य हो।
घ) विकल्पों का वैज्ञानिक विन्यास: विकल्पों के संयोजन (यथा केवल कथन अ और ब; केवल कथन ब और स; सभी अ, ब और स) ऐसे होने चाहिए जो आंशिक ज्ञान के आधार पर तुक्के लगाने की संभावना को समाप्त कर दें।

मूल्यांकन प्रारूप	प्राथमिक संज्ञानात्मक उद्देश्य	प्रमुख निर्माण तत्व	विशिष्ट विषयगत अनुप्रयोग
बहु-कथन प्रारूप	बहुआयामी तथ्यों, विधिक सीमाओं और अपवादों की समग्र संवीक्षा।	3 से 4 तथ्यपरक एवं विश्लेषणात्मक कथन; कूट-आधारित विकल्प।	सांविधिक निकाय, मौद्रिक उपकरण, राजकोषीय हस्तांतरण के सूत्र।

wincompete

अभिकथन-तर्क प्रारूप	आर्थिक/प्रशासनिक घटनाओं के अंतर्निहित कारणों की वैज्ञानिक पड़ताल।	एक दावा (Assertion) और उसका कार्य-कारण तर्क (Reason)।	नीतिगत दर परिवर्तन, मुद्रास्फीति संचरण, कराधान प्रभाव।
सुमेलित कीजिए प्रारूप	वर्गीकरण, सूचकांक, आधार वर्ष और संस्थागत अधिकार-क्षेत्र का परीक्षण।	दो समानांतर स्तंभ (सूची I एवं सूची II); 4 से 5 परस्पर संबंधित मदें।	समितियां व उनकी संस्तुतियां, आर्थिक सूचकांक व नोडल मंत्रालय।

अभिकथन-तर्क (कथन-कारण) प्रारूप: तार्किक परीक्षण तंत्र

अभिकथन-तर्क प्रारूप में दो कथन दिए जाते हैं—अभिकथन (A) और तर्क (R)। यह प्रारूप शिक्षार्थी की यह परख करता है कि क्या वह किसी आर्थिक परिघटना के होने के वास्तविक वैज्ञानिक अथवा विधिक कारण को पहचानता है।

अभिकथन-तर्क प्रश्नों के निर्माण के चार मानक परीक्षण स्तर:

अ) स्तर 1 (दोनों कथन सत्य एवं सही व्याख्या): अभिकथन (A) और तर्क (R) दोनों व्यक्तिगत रूप से सत्य होते हैं, और 'R' वास्तव में 'A' के घटित होने का प्रत्यक्ष कारण होता है।
ब) स्तर 2 (दोनों कथन सत्य किंतु सही व्याख्या नहीं): दोनों कथन अपनी-अपनी जगह पर पूर्णतः सत्य और प्रामाणिक होते हैं, परंतु 'R' का 'A' के कारण से कोई सीधा तार्किक संबंध नहीं होता।
स) स्तर 3 (एक कथन सत्य एवं दूसरा असत्य): या तो अभिकथन सत्य होता है और तर्क असत्य, अथवा अभिकथन असत्य होता है और तर्क सत्य।
द) स्तर 4 (दोनों कथन असत्य): दोनों ही कथन स्थापित सिद्धांतों अथवा वैधानिक प्रावधानों के विपरीत होते हैं।

उपखंड b: संकल्पनात्मक प्रश्नों (पारिभाषिक शब्दावली, अर्थशास्त्र के नियम) का निर्माण

पारिभाषिक शब्दावली का यथार्थवादी एवं अकादमिक उपयोग

अर्थशास्त्र, वित्तीय प्रबंधन और लोक प्रशासन की पारिभाषिक शब्दावली अत्यधिक संहिताबद्ध और विशिष्ट अर्थ वाली होती है। संकल्पनात्मक प्रश्नों के निर्माण में पारिभाषिक शब्दों के शाब्दिक अर्थ के बजाय उनके व्यावहारिक और प्रणालीगत प्रभावों पर प्रश्न केंद्रित होने चाहिए।

प्रमुख पारिभाषिक संवर्ग और उनके प्रश्न-निर्माण आधार:

क) मौद्रिक एवं वित्तीय अवधारणाएं:

चलनिधि समायोजन सुविधा (LAF), स्थायी जमा सुविधा (SDF), सीमांत स्थायी सुविधा (MSF) के मध्य परिचालनात्मक भेद।
हेयरकट (Haircut), पूंजी पर्याप्तता अनुपात (CRAR), और भारित औसत मांग दर (WACR) का निर्धारण।
कोर मुद्रास्फीति बनाम हेडलाइन मुद्रास्फीति की संरचनात्मक टोकरी।

wincompete

ख) राजकोषीय एवं बजट संबंधी संकल्पनाएं:

राजस्व घाटा, राजकोषीय घाटा, प्राथमिक घाटा और प्रभावी राजस्व घाटा के मध्य गणितीय एवं नीतिगत संबंध।
कर उछाल (Tax Buoyancy) बनाम कर लोचशीलता (Tax Elasticity)।
क्राउडिंग-आउट बनाम क्राउडिंग-इन प्रभाव की संचरण प्रक्रियाएं।

ग) पूंजी बाजार एवं प्रतिभूति उपकरण:

डीम्युचुअलाइजेशन, मसाला बॉन्ड, ग्रीन बॉन्ड, पार्टिसिपेटरी नोट्स (P-Notes)।
टी-प्लस-वन (T+1) और टी-प्लस-जीरो (T+0) निपटान चक्र की विधिक समय-सीमाएं।

आर्थिक नियमों एवं वक्रों (Economic Curves) का आनुपातिक समावेश

आर्थिक सिद्धांतों के औपचारिक नियमों और वक्रों पर आधारित प्रश्नों का निर्माण करते समय उनकी मान्यताओं (Assumptions), मोड़ बिंदुओं (Turning Points) और नीतिगत सीमाओं को केंद्र में रखा जाना चाहिए:

प्रमुख आर्थिक वक्र एवं उनके परीक्षण आयाम

क्र.सं.	आर्थिक वक्र (Economic Curve)	परीक्षण आयाम / संबंध (Testing Dimension)
1	फिलिप्स वक्र (Phillips Curve)	मुद्रास्फीति बनाम बेरोजगारी *(अल्पकालिक बनाम दीर्घकालिक)*
2	कुजनेट्स वक्र (Kuznets Curve)	आर्थिक संवृद्धि बनाम आय असमानता *(उल्टा 'U' आकार)*
3	पर्यावरणीय कुजनेट्स वक्र (EKC)	प्रति व्यक्ति आय बनाम पर्यावरणीय क्षरण
4	लैफर वक्र (Laffer Curve)	कर की दरें बनाम कुल कर राजस्व
5	लोरेंज वक्र एवं गिनी गुणांक	संचयी जनसंख्या बनाम संचयी राष्ट्रीय आय

अ) फिलिप्स वक्र: अल्पकाल में मुद्रास्फीति और बेरोजगारी के मध्य व्युत्क्रम संबंध, परंतु दीर्घकाल में प्राकृतिक बेरोजगारी दर (NAIRU) पर ऊर्ध्वाधर (Vertical) स्वरूप।

ब) लैफर वक्र: कर दरों के शून्य से 100 प्रतिशत तक बढ़ने पर कर राजस्व का परवलयाकार (Parabolic) व्यवहार, तथा इष्टतम कर दर (Optimal Tax Rate) के पश्चात राजस्व में गिरावट का कारण।
स) लोरेंज वक्र और गिनी गुणांक: पूर्ण समानता रेखा (Line of Absolute Equality) से विचलन का ज्यामितीय माप, जहां 0 पूर्ण समानता और 1 पूर्ण असमानता को व्यक्त करता है।

अनुभाग B: समसामयिक आंकड़ों का एकीकरण

उपखंड a: नवीनतम केंद्रीय एवं राज्य आर्थिक समीक्षा, बजट आंकड़ों का समावेश

केंद्रीय बजट एवं आर्थिक समीक्षा (अद्यतन प्रवृत्तियां)

प्रश्नों की प्रामाणिकता और उत्तर-कुंजी की अचूकता सुनिश्चित करने हेतु आवश्यक है कि सभी समष्टि-आर्थिक आंकड़े केंद्रीय वित्त मंत्रालय द्वारा जारी नवीनतम आर्थिक समीक्षा तथा केंद्रीय बजट के संशोधित एवं बजट अनुमानों (RE एवं BE) से सीधे संरेखित हों।

प्रमुख समष्टि-आर्थिक आयाम एवं उनके आधिकारिक मानक:

क) संवृद्धि दर (GDP Growth Rate):

स्थिर (2011-12) मूल्यों पर वास्तविक जीडीपी संवृद्धि दर।
प्रचलित मूल्यों पर नाममात्र (Nominal) जीडीपी संवृद्धि दर।
सकल मूल्य वर्धन (GVA) में प्राथमिक (कृषि), द्वितीयक (उद्योग) और तृतीयक (सेवा) क्षेत्रों का सापेक्ष प्रतिशत योगदान।

ख) राजकोषीय घाटा संकेतक (Fiscal Deficit Trajectory):

राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबंधन (FRBM) अधिनियम के अंतर्गत निर्धारित राजकोषीय समेकन का पथ।
जीडीपी के प्रतिशत के रूप में राजकोषीय घाटा (वित्तीय वर्ष 2025-26 एवं 2026-27 के लक्ष्य: 4.5 प्रतिशत से नीचे लाने की रूपरेखा)।
केंद्र सरकार का कुल ऋण-जीडीपी अनुपात (Debt-to-GDP Ratio)।

ग) पूंजीगत व्यय की दिशा (Capital Expenditure Outlay):
प्रभावी पूंजीगत व्यय में सार्वजनिक निवेश का आनुपातिक हिस्सा।
अवसंरचना विकास (राष्ट्रीय अवसंरचना पाइपलाइन - NIP, गतिशक्ति) हेतु बजटीय आवंटन।
घ) कर संरचना एवं राजस्व प्रवृत्तियां:

सकल कर राजस्व (GTR) में प्रत्यक्ष करों (आयकर व निगम कर) और अप्रत्यक्ष करों (GST व सीमा शुल्क) का सापेक्ष अनुपात।
प्रत्यक्ष कर-जीडीपी अनुपात की प्रवृत्तियां।

wincompete

समष्टि-आर्थिक संकेतक	केंद्रीय संदर्भ (अद्यतन मानक)	राज्य संदर्भ (राजस्थान आर्थिक समीक्षा)	प्रश्न-निर्माण में सावधानियां
जीडीपी / जीएसडीपी संवृद्धि दर	स्थिर (2011-12) मूल्यों पर वास्तविक वृद्धि दर।	स्थिर (2011-12) मूल्यों पर वास्तविक वृद्धि दर।	स्थिर मूल्यों और प्रचलित मूल्यों के आंकड़ों में स्पष्ट विभेद करना।
क्षेत्रवार योगदान (GVA)	सेवा क्षेत्र (~54-55%), उद्योग (~28-29%), कृषि (~17-18%)।	कृषि (~27-29%), उद्योग (~27-28%), सेवा (~43-44%)।	राज्य में कृषि के उच्चतर योगदान के संरचनात्मक कारणों पर ध्यान केंद्रित करना।
राजकोषीय घाटा लक्ष्य	जीडीपी का 4.5% तक लाने का समेकन लक्ष्य।	जीएसडीपी का 3.0% (विद्युत सुधारों सहित 3.5%)।	एफआरबीएम विनियामक सीमाओं और 15वें वित्त आयोग की शर्तों का मिलान।
प्रति व्यक्ति आय	प्रचलित एवं स्थिर दोनों आधारों पर राष्ट्रीय औसत।	प्रचलित एवं स्थिर दोनों आधारों पर राज्य का औसत।	राष्ट्रीय औसत से राज्य की सापेक्ष स्थिति और आय की दूरी का सटीक उपयोग।

राज्य आर्थिक समीक्षा एवं बजट का समन्वित उपयोग

राज्य-स्तरीय प्रश्नों के निर्माण में राज्य सरकार के आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय (DES) द्वारा प्रकाशित वार्षिक आर्थिक समीक्षा के आंकड़ों का उपयोग अनिवार्य है:

अ) जीएसडीपी (सकल राज्य घरेलू उत्पाद): प्रचलित एवं स्थिर (2011-12) मूल्यों पर अग्रिम अनुमान।
ब) क्षेत्रवार संरचनात्मक रुझान: राज्य की अर्थव्यवस्था में कृषि और संबद्ध क्षेत्र का सुदृढ़ हिस्सा (पशुपालन का विशिष्ट योगदान), खनिज संपदा और सौर ऊर्जा अवसंरचना का विस्तार।
स) थोक एवं उपभोक्ता मूल्य सूचकांक: राज्य-विशिष्ट थोक मूल्य सूचकांक (1999-2000 = 100) और राज्य में उपभोक्ता मूल्य मुद्रास्फीति की प्रवृत्तियां।
द) राज्य का राजकोषीय स्वास्थ्य: राजस्व घाटा, राजकोषीय घाटा, स्वयं का कर राजस्व (SOTR) और गैर-कर राजस्व के घटक।

उपखंड b: नीति आयोग, आरबीआई, सेबी और वैश्विक वित्तीय संस्थाओं की अद्यतन रिपोर्टों का समन्वय

नीति आयोग के प्रमुख सूचकांक एवं प्रशासनिक पहलें

नीति आयोग द्वारा जारी किए जाने वाले समग्र सूचकांक राज्यों के मध्य प्रतिस्पर्धी और सहकारी संघवाद के मूल्यांकन का प्राथमिक स्रोत हैं:

क) एसडीजी इंडिया इंडेक्स (SDG India Index):

17 सतत विकास लक्ष्यों में से 16 लक्ष्यों पर राज्यों का समग्र स्कोर (0 से 100)।
चार प्रदर्शन श्रेणियां: आकांक्षी (0-49), परफॉर्मर (50-64), फ्रंट रनर (65-99), अचीवर (100)।
अग्रणी राज्य (केरल, उत्तराखंड, तमिलनाडु) एवं सुधार की आवश्यकता वाले राज्य।

ख) राष्ट्रीय बहुआयामी गरीबी सूचकांक (National MPI):

3 आयामों (स्वास्थ्य, शिक्षा, जीवन स्तर) के अंतर्गत 12 संकेतकों (प्रसवपूर्व देखभाल और बैंक खाते सहित) पर आधारित विश्लेषण।
हेडकाउंट अनुपात (H) और गरीबी की तीव्रता (A) का गुणनफल ($MPI = H \times A$)।
बहुआयामी गरीबी से बाहर निकले व्यक्तियों की संख्या और राज्यों में गरीबी में कमी की गति।

ग) आकांक्षी जिला एवं ब्लॉक कार्यक्रम (ADP / ABP):

112 आकांक्षी जिलों और 500 आकांक्षी ब्लॉकों में वास्तविक समय डेटा निगरानी (Real-time Monitoring) और डेल्टा रैंकिंग।

भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) की आधिकारिक रिपोर्टें एवं मौद्रिक संकेतक

आरबीआई के प्रकाशन मौद्रिक अर्थशास्त्र, बैंकिंग प्रणाली और विदेशी मुद्रा प्रबंधन के अचूक स्रोत हैं:

अ) मौद्रिक नीति रिपोर्ट (Monetary Policy Report):

उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (CPI-संयुक्त) पर आधारित मुद्रास्फीति का आधिकारिक पूर्वानुमान।
लचीले मुद्रास्फीति लक्ष्यीकरण (FIT) के तहत 4 ± 2 प्रतिशत के लक्ष्य का अनुपालन।

ब) वित्तीय स्थिरता रिपोर्ट (Financial Stability Report - FSR):

अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों का सकल गैर-निष्पादित परिसंपत्ति (GNPA) अनुपात और शुद्ध गैर-निष्पादित परिसंपत्ति (NNPA) अनुपात।
बैंकों का पूंजी से जोखिम-भारित परिसंपत्ति अनुपात (CRAR) और प्रावधानीकरण कवरेज अनुपात (PCR)।
मैक्रो-तनाव परीक्षण (Macro-stress tests) के परिणाम।

स) करेंसी एंड फाइनेंस पर रिपोर्ट (Report on Currency and Finance - RCF):

जलवायु परिवर्तन का मौद्रिक नीति पर प्रभाव, डिजिटल रुपया (CBDC) का विस्तार और फिनटेक विनियमन।

सेबी (SEBI) के विनियामक दिशानिर्देश एवं सुधार

पूंजी बाजार से संबंधित प्रश्नों में सेबी के अद्यतन नियमों का समावेश होना चाहिए:

क) निपटान चक्र सुधार: T+1 का सार्वभौमिक क्रियान्वयन और T+0 (समान दिवस निपटान) का प्रायोगिक ढांचा।
ख) विदेशी पोर्टफोलियो निवेशक (FPI) विनियम: उच्च जोखिम वाले FPIs के अंतिम लाभकारी स्वामियों (Beneficial Owners) के अनिवार्य प्रकटीकरण नियम।
ग) वैकल्पिक निवेश कोष (AIFs): श्रेणी I, II और III के AIFs की इकाइयों का अनिवार्य डीमैटरियलाइजेशन।
घ) बाजार सुरक्षा: सोशल मीडिया पर अवैध सलाह देने वाले अनधिकृत फिनफ्लुएंसर्स पर प्रतिबंध और डार्क पैटर्न का निषेध।

वैश्विक वित्तीय संस्थाओं के प्रतिवेदन एवं सूचकांक

अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और तुलनात्मक अध्ययन हेतु वैश्विक निकायों की आधिकारिक रिपोर्टों का एकीकरण:

अ) अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF): **विश्व आर्थिक आउटलुक (World Economic Outlook - WEO)** और वैश्विक वित्तीय स्थिरता रिपोर्ट। भारत की अनुमानित संवृद्धि दर और वैश्विक व्यापार प्रवृत्तियां।
ब) विश्व बैंक (World Bank): **ग्लोबल इकोनॉमिक प्रॉस्पेक्ट्स (GEP)** तथा महिला, व्यवसाय और विधि रिपोर्ट।
स) संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP): **मानव विकास रिपोर्ट (HDR)** - मानव विकास सूचकांक (HDI), असमानता-समायोजित मानव विकास सूचकांक (IHDI), लैंगिक असमानता सूचकांक (GII) और लैंगिक विकास सूचकांक (GDI) में भारत की सापेक्ष रैंकिंग और घटक मान।
द) विश्व आर्थिक मंच (WEF): वैश्विक लैंगिक अंतराल रिपोर्ट (Global Gender Gap Report) और वैश्विक जोखिम रिपोर्ट।

wincompete